श्रीः

बृहन्निघंटुरत्नाकर

(हिन्दीटीकासहित)

द्वितीय भाग

टीकाकार

श्री० दत्तराम श्रीकृष्णलाल माथुर

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन

बम्बई-४

श्रीः

बृहन्निघंटुरत्नाकर

(हिन्दीटीकासहित)

द्वितीय भाग

टीकाकार

श्री० दत्तराम श्रीकृष्णलाल माथुर

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन

बम्बई-४

संस्करण- सन् १९९५ सम्वत् २०५२

मूल्य १८० रुपये मात्र

Printed by Shri Sanjay Bajaj for M/s Khemraj Shrikrishnadass proprietors Shri Venkateshwar press Bombay-400 004. at their Shri Venkateshwar press, 66, Hadapsar Industrial Estate, Pune-411013.

श्रीः ।

अनुक्रमाणिका.

आयुर्वेदोद्धार बृहन्निघण्टुरत्नाकरके दूसरे वर्षकी

शोणितवर्णनीयाध्यायः ।

दोषधातुमलक्षयवृद्धिविज्ञानीया०

दोषवर्णनीयाध्यायः ।

चर्य्याचन्द्रोदयप्रारम्भः ।

ऋतुचर्याध्यायः

दिनचर्याध्यायः ।

पाकविधान. ५५६

मोदक.

अमानुषीयभक्षण।

इति पाकविधिः।

इन्द्रियोपक्रमणीयाध्याय।

इति चर्य्याचंद्रोदयः ।

विशिखानुप्रवेशनीयाध्यायः ।

अष्टविधपरीक्षा ।

अथ स्वप्नप्रकाशिका ।

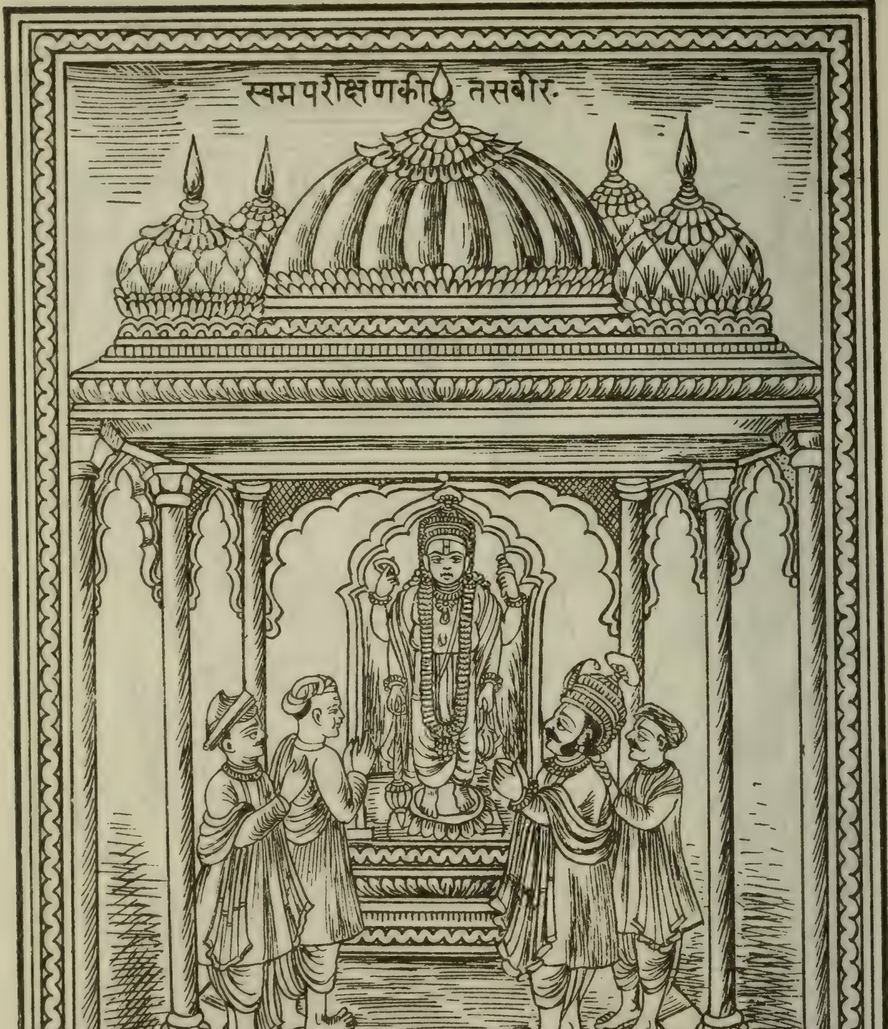
नाडीदर्पणप्रारंभः

इंग्रजी संज्ञा.

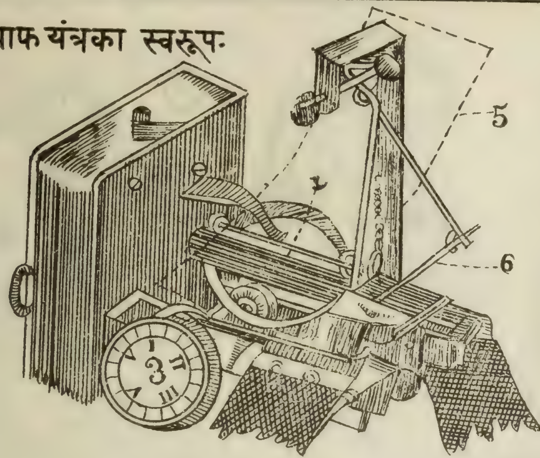
इति संज्ञानामनुक्रमणिका समाप्ता ।

खेमराज श्रीकृष्णदास,
" श्रीवेङ्कटेश्वर " छापाखाना-मुंबई.

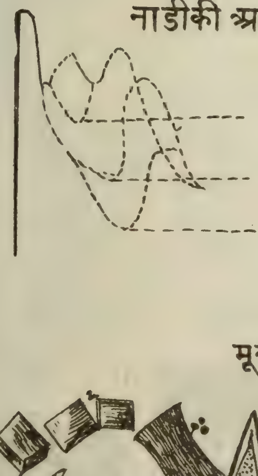


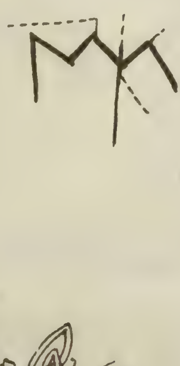

स्वप्नपरीक्षणकी तसबीर.

स्फिग्मोग्राफ यंत्रका स्वरूप:

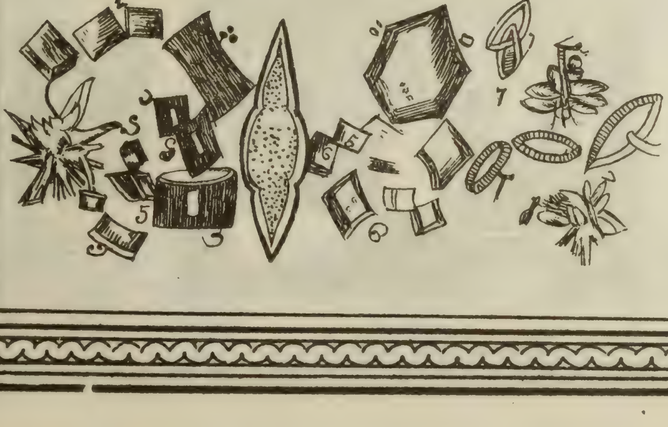


नाडीकी अक्स पडनेका स्वरूप:





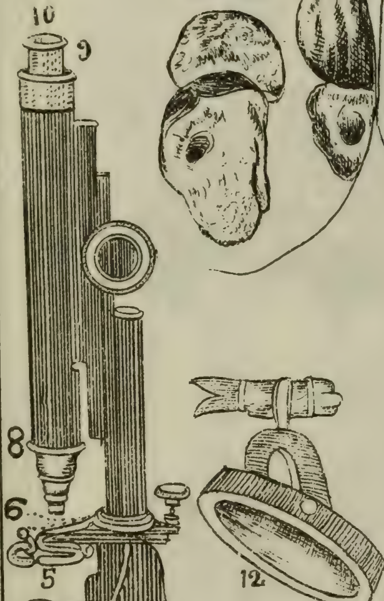
मूत्रजन्य पदार्थ:



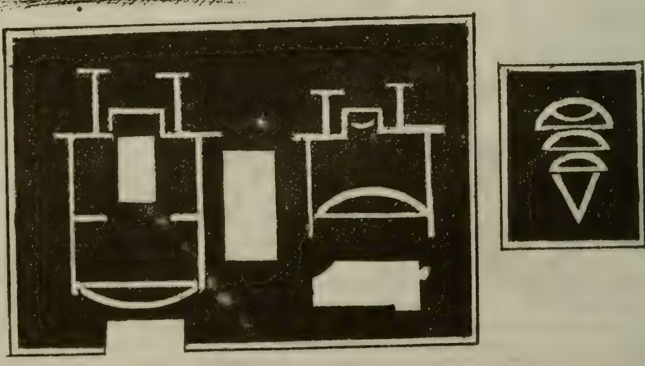
मूत्रजन्य द्वितीय प्रकारके पदार्थ.



खुर्दबीन.



मूत्रदर्शक खुर्दबीन.




रसोई करनेका स्थान.


पाकस्थान·
सामिग्री धरनेका स्थान·


भोजनस्थानः


भोजनस्थान

श्रीः ।

अथातःक्षारपाकविधिमध्यायंव्याख्यास्यामः ।

अर्थ–अब क्षारपाक और क्षारविधिकी अथवा क्षारपाकविधि जिसमें ऐसीअध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

शस्त्रानुशस्त्रेभ्यःक्षारःप्रधानतमश्छेद्यभेद्यलेख्यकरणात् त्रिदोषघ्नत्वाद्विशेषक्रियावचारणाच्च ।

अर्थ–छेद्य, भेद्य, लेख्य करनेसे और त्रिदोषनाशक होनेसे तथा विशेषक्रियाके परिश्रम बचानेसे सर्व शस्त्र (मंडलाग्रादि) और अनुशस्त्र (त्वक्सारादिकों) में क्षार प्रधानतम है ।

क्षारशब्दकी निरुक्ति ।

तत्रक्षरणात्क्षणनाद्वाक्षारः ।

अर्थ–दुष्ट त्वङ्मासादिकोंके चालनसे और नष्ट करनेसे इसको क्षार कहते हैं । कोई [क्षपणात्] इस प्रकार लिख इसका शोधनअर्थ करते हैं ।

नानौषधिसमवायात्रिदोषघ्नः शुक्लत्वात्सौम्यस्तस्यसौम्यस्यापिसतो दहनपचनदारणादिशक्तिरविरुद्धा ।

अर्थ--अनेक औषधोंके संयोगसे इस क्षारको त्रिदोषघ्नता है और सपेद होनेसे इसको सौम्यता है, परंतु सौम्य होनेपर भी दहन पचन और दारणादि शक्ति अविरुद्ध है । अर्थात् जो द्रव्य सौम्य होतीहै वो दाहक पाचक और विदीर्णकर्त्ता नहीं होती परंतु वो शक्ती इस षारमें है अतएव इसको अविरुद्ध लिखा है ।

क्षारके गुण ।

सखल्वाग्नेयौषधिगणभूयिष्ठत्वात् कटुकउष्णस्तीक्ष्णःपाचनो विलयनः शोधनोरोपणःशोषणःस्तंभनोलेखनःकृम्यामकफकुष्ठविषमेदसामुपहन्तापुंस्त्वस्यचातिसेवितः ।

अर्थ–इस क्षारको आग्नेय औषधिगणोंके बहुतायास करके उत्पन्न होनेसे

यह कटुक, उष्ण, तीक्ष्ण, पाचक, विलयन, शोधन, रोपण, शोषण, स्तंभन और लेखन है, तथा कृमि, आमवात, कफ, कोढ; विष और मेदरोगको नष्ट करे हैं और अत्यंत सेवन करनेसे यह मनुष्यको नपुंसक करदेताहै । अथवा पुंस्त्वकहिये शुक्रका नाशक है ।

क्षारके भेद ।

सद्विविधःप्रतिसारणीयः पानीयश्च । तत्रप्रतिसारणीयः कुष्ठकिटिभदद्रुकिलासमण्डलभगंदरार्बुददुष्टव्रणनाडीचर्मकीलतिलकालकन्यच्छव्यङ्गमशकवाह्यविद्रधिकृमिविषार्शःसूपदिश्यते सप्तसुच मुखरोगेषूपजिह्वाधिजिह्वोपकुशदन्तवैदर्भेषुतिसृषुच रोहिणीष्वेतेषुचैवानुशस्त्रप्रणिधानमुक्तम् ।

अर्थ--क्षार दो प्रकारका है[1] प्रतिसारणीय (लगाने योग्य) और दूसरा पानीय (पीने योग्य क्षारोदक) तहां प्रतिसारणीय क्षार कुष्ठ, किटिभ, दाद, किलास, मंडल, भगंदर, अर्बुद,दुष्टव्रण, नाडी, चर्मकील, तिलकालक, (तिल) न्यच्छ, व्यंग (ए दोनों क्षुद्ररोगमें हैं) मस्सा, बाहरीविद्रधि, कृमि, विष और बवासीर, इन रोगोंमें ग्राह्य है । तथा सात प्रकारके मुखरोगोंमें तहां मुखरोगोंको कहतेहैं । उपजिह्वा, अधिजिह्वा, उपकुश, दंतवैदर्भ और तीन प्रकारके रोहणीरोग, इनमें अनुशस्त्रकरके क्षारकोही लगाना कहा है ।

पानीयस्तुगरगुल्मोदराग्निशूलाजीर्णारोचकानाहशर्कराश्मर्य्यभ्यन्तरविद्रधिकृमिराविषार्शःसूपदिश्यते ।

अर्थ--पानीयक्षार, जहर, गोला, उदररोग, मंदाग्नि, शूल, अजीर्ण, अरुचि, आनाह, शर्करा, पथरी,भीतरकी विद्रधि, कृमिरोग, दूषीविष और बवासीर इन रोगोंमें देना चाहिये ।

वर्जितमनुष्य ।

अहितस्तुरक्तपित्तज्वरितपित्तप्रकृतिबालवृद्धदुर्बलभ्रममदमूर्च्छातिमिरपरीतेभ्योऽन्येभ्यश्चैवंविधेभ्यः ।

---

१ इस जगे योगशक्तिके प्रभावसे क्षारको तिलयवकल्कके सदृश शोधनरोपणमें विरुद्धता नहीं है,जब क्षारसे शुद्ध होजावेगा वह स्वयंरोपण कहिये भरजावेगा ।

अर्थ-रक्तपित्ती, ज्वरवान्, पित्तप्रकृतिवाला, बालक, वृद्ध, दुर्बल और भ्रम, मद, मूर्च्छा, तिमिर, इनकरके व्याप्त मनुष्योंको तथा इसी प्रकारके और रोगियोंको क्षार देना अहित है।

पानीयक्षारकी विधि संक्षेपसे कहते हैं।

तच्चेतरक्षारवद्दग्ध्वापरिस्रावयेत्तस्यविस्तारोऽन्यत्र।

अर्थ-तहां पानीयक्षारकोभी प्रतिसारणीयक्षारके समान काष्ठसे दाहकर छःगुने पानीमें पाक करे जब तीन भाग शेष रहे तब उस जलको चुवायलेवे, क्षारभस्मकी मात्रा उत्तम १ पलकी मध्यम ३ कर्षकी और अधम अर्धपलकी होतीहै। इसके देनेकी विधि गुल्मरोगाध्यायमें विस्तारपूर्वक कही है।

प्रतिसारणीयक्षारकीविधि।

अथेतरस्त्रिविधोमृदुर्मध्यस्तीक्ष्णश्च तं चिकीर्षुः शरदि गिरिसानुजं शुचिरुपोष्यप्रशस्तेऽहनि प्रशस्तदेशजात-मनुपहतंमध्यमवयसंमहान्तमासितमुष्ककमधिवास्यापरेद्युः पाटयित्वाभिमन्त्र्यानेनमंत्रेण।

अर्थ-अथेतरकहिये प्रतिसारणीयक्षार तीन प्रकारका होताहै। मृदु, मध्य, और तीक्ष्ण कहिये करडा, तहां इसको बनानेवाला मनुष्य शरदऋतुमें पर्वतोंमें होनेवाली अथवा जांगलदेशमें होनेवाली औषधोंको पवित्रतापूर्वक सिंचनादिसे उसकी रक्षा करे और जो उत्तमदेशमें उत्पन्न हुई हो. कीडा दावानल शरदी आदिसें जो दूषित न हो मध्यम अवस्थाकी लंबावमें बडी हो. ऐसे मोखावृक्षको उत्तमदिनमें उसका मंत्रोंसे पूजन कर और मंत्रपठनपूर्वक उसको उखाडे, अब अभिमंत्रणका मंत्रकहते हैं।

मंत्र

अग्निवीर्यमहावीर्यमातेवीर्यंप्रणश्यतु। इहैवतिष्ठकल्याणममकार्यंकरिष्यसि। ममकार्येकृतेपश्चात्स्वर्गलोकंगमिष्यसि। श्वेतपुष्परक्तपुष्पसहस्रंजुहुयात्। खण्डशःप्रकल्प्यावपाट्य निर्वातेदेशेनिचितिंकृत्वासुधाशर्कराश्चप्रक्षिप्यतिलनालैरांदीपयेत्।

अर्थः-इसप्रकार (अग्निवीर्यमहावीर्य) इत्याद्यादि मंत्रोंसे अभिमंत्रण करके

पीछे फूल तथा लाल पुष्प एकहजार अग्निमें हवन करे, कोई आचार्य कहताहै कि पूर्वमुख स्थितहो वृक्षसे सूत लपेट तथा निमंत्रणकर हाथजोडकर (निवसन्तीहभूतानि) इत्यादि मंत्रोंसे अधिवासन करे, पीछे दूसरे दिन उसवृक्षको उखाडकर ले आवे और उसके बहुतसें टुकडे करे, उनको एकत्र चिनकर उसमें कच्चा चूनेका पाषाण गेरके तिलकी नालसे अग्नि प्रज्वलित करे (तिलनालद्वारा अग्नि लगानेसे क्षारमें उत्कृष्ट शक्ति होतीहै)

अथोपशान्तेग्नौ तद्भस्मपृथग्गृह्णीयाद्भस्मशर्कराश्च। अथानेनविधानेन कटुजपलाशाश्वकर्णपारिभद्रकविभीतकारग्वधतिल्वकार्कस्नुह्यपामार्गपाटलानक्तमालवृषकदलीचित्रकपूतीकेन्द्रवक्षास्फोताश्वमारकसप्तच्छदाग्निमन्थगुञ्जाश्चतस्रश्च कोशातकीसमूलफलपत्रशाखा दहेत्।

अर्थ–जब अग्नि शीतल होजावे तब जिस वृक्षकी भस्म करी है वो पृथक् लेवे और भस्मशर्कराको पृथक् ग्रहण करे इसी प्रकार कूडा, ढाक, अश्वकर्ण, (पूर्वमें गंधमुंड इस नामसे प्रसिद्ध पीपलके समान वृक्ष होताहै) देवदारु, बहेडा, अमलतास, तिल्वक, आक, थूहर, ओंगा, पाढल, कंजा, अडूसा, केला, चीता, पूतीकरंज, इन्द्रवृक्ष (कुटज दो प्रकारका होताहै जिसका बडा फल सफेद फूल और चिकने पत्तेहो वो पुरुषसंज्ञक है। और छोटा फल छोटीडंडी, काला तथा लाल पुष्पवाला स्त्रीसंज्ञक होताहै।) सारिवा, कनेर, सतोना, अरनी, घूंघची, और चारप्रकारकी कोशातकी (बडे फलवाली, छोटे फलवाली, पीले फूलकी, और सफेद फूलकी) इन सबको जड पत्ते फल और शाखासहित पत्थरपर भस्म करना चाहिये।

क्षारद्रोणमुदकद्रोणैः षड्भिरालोड्यमूत्रैर्वा यथोक्तैरेकविंशतिवारान्विस्राव्य महतिकटाहेशनैर्दर्व्याविघट्टयन्विपचेत् सयदा भवत्यच्छो रक्तस्तीक्ष्णः पिच्छलश्च तमादाय महतिवस्त्रेपरिस्राव्येतरं विसृज्य च, पुनरग्नावधिश्रयेत्।

अर्थ–क्षारद्रोण (अर्थात् मुष्ककभस्मके दो भाग और कुटजादि भस्मका १ भाग इनको मिलावे उसको क्षारद्रोण कहतेहैं) उस क्षारद्रोणको १ द्रोण लेवे और जल ६ द्रोण लेवे अथवा दुंदुभिस्वनीय अध्यायके लेखके अनुसार गोमूत्र मिलाय २१ वार उसको किसी दूसरे पात्रमें निचोडलेवे, पीछे बडे

भारी लोहके कढावमें उसको औंटावे, धीरे २ कडछीसे चलाताजाय इस-प्रकार पचावे जब निर्मल लाल तीक्ष्ण और पिच्छिल होजावे तब उतारलेवे (परंतु निर्मलादिक गुण जब तीसरा हिस्सा बाकी रहताहै तब होतेहैं) पीछे उसको एक बडे वस्त्रसे छानलेवे, तदनंतर दूसरे लोहपात्रमें भरके फिर अग्नि देवे।

ततएवचक्षारोदकात्कुडवमध्यर्द्धं वापनयेत् । ततःकटशर्कराभस्मशर्कराक्षीरपाकशंखनाभीरग्निवर्णाः कृत्वायसेपात्रे तंस्मिन्नेवक्षारोदके निषिच्य पिष्ट्वा तेनैवद्विद्रोणेऽष्टपलसंमितं शंखनाभ्यादीनां प्रमाणं प्रतिवाप्यसततमप्रमत्तश्चैनमघट्टयन्विपचेत् । सयथा नातिसान्द्रोनातिद्रवश्चभवातितथाप्रयतेत।

अर्थ–उस क्षारोदकमेंसे कुडव ८ पल अथवा १२ पल जलको सुखायदेवे, तदनंतर कटशर्करा (गांगेष्टी) भस्मशर्करा, सीप और शंख इनको अग्निमें लाल करके पूर्वोक्त क्षारके जलमे बुझावे, इस प्रकार तबतक करे कि जबतक उनकी भस्म न होवे। जब भस्म होजावे तब उसी क्षारोदकमें मिलाय देवे, परंतु इस जगे दो द्रोण जलमें आठ पल शंखआदिकी भस्म डालनी चाहिये, कोई कटशर्करादिक प्रत्येकके दो २ पल डालना लिखता है। पीछे निरंतर सावधानीके साथ कलछीसे चलाकर पक्क करे जैसे अत्यंत गाढा और अत्यंत पतला न रहे इस प्रकार क्षारपाक करना उचित है। इसमें केवल शंखनाभ्यादिकही न डाले किंतु औरभी वस्तु डालनी चाहिये उनको लिखते हैं।

श्लक्ष्णंशकृद्दक्षशिखिगृध्रकंककपोतजम्।चतुष्पात्पक्षिपित्तालमनोह्वालवणानिच। परितःसुतरांचातोदर्व्यातमवघट्टयेत् सबाष्पैश्च यदोत्तिष्ठेद्बुद्बुदैर्लेहवद्घनः । अवतार्यततः शीतो यवराशावयोमये। स्थाप्योयंमध्यमः क्षारोनतु पिष्ट्वाक्षिपेन्मृदौ। निर्वाप्यापनयेत्तीक्ष्णेपूर्ववत्प्रातिवापनम्।

अर्थ–मुरगा, मोर, गीध, कंक और कपोत, (पिंडुकिया) इनकी वीठको। पीसके उस क्षारोदकमें डाले गौसे आदिले चौपाए और पक्षीओंके पित्ते,

हरताल, मनसिल, सैंधवादि नोन, इनको पीसकर उसमें डाले। और कलछीसे चारोंतरफसे चलाताजाय जब धूएँकेसाथ बबूले अवलेहके समान गाढे उठनेलगे और वह कलछीसें अवलेहके समान लिपटनेलगे तब शीतल होजावे तब लोहके पात्रमें भरके मुख बंदकर जवकी राशिमें अथवा धानकी राशिमें गाड़देवे यह मध्यम क्षार है। परंतु मृदुक्षारमें पूर्वोक्त औषध पीसकर न डाले किंतु सावतही पटकदेवे। और तीक्ष्णक्षारमें मध्यमक्षारके समान सब पीसकर डालनी चाहिये। औरभी प्रतिवाप औषध लिखतेहैं।

प्रतिवापेयथालाभंदन्तीद्रवन्तीचित्रकलांगलकीपूतिकप्रवालतालपत्रीविडसुवर्चिकाकनकक्षीराहिंगुवचाविषाः समाः श्लक्ष्णचूर्णाःशुक्तिप्रमाणाःप्रतिवापः।

अर्थ-प्रतिवाप (द्रवद्रव्यमें जो द्रव्यांतर पीसके डालीजावे) उसको यथालाभ डाले जैसे कि दंती, द्रवन्ती, चित्रक, कलियारी, पूतिकरंजके पत्ते, मूसली, विड, सज्जी, कनकक्षीरी, हींग, वच, और अतीस, ए सब बराबर ले प्रत्येक आधे २ पल डारे।

सप्तरात्रात्परंतुसः।
योज्यस्तीक्ष्णोऽनिलश्लेष्ममेदोजेष्वर्बुदादिषु।
मध्येष्वेव च मध्योऽन्यपित्तास्रगुदजन्मसु।

अर्थ-इसक्षारको सात रात्रिके पश्चात् कार्यमें लाना चाहिये। इसप्रकार त्रिविध क्षार कहकर अब उनके विषय कहतेहैं। तहां तीक्ष्ण क्षारको वातकफमेदसे उत्पन्न होनेवाले अर्बुदादि रोगोंमें वर्त्ते। और येही अर्बुदादिरोग यदि मध्यबली होवेतो मध्यम क्षार देना चाहिये, और पित्तास्रसे प्रगट अर्शरोगमें मृदुक्षार योजना करे इनमें व्यत्यय न करे। अर्थात् तीक्ष्णरोगोंमें मध्य मृदु न लेवे; और मृदु मध्य रोगोंमेंभी लेखानुसार लेना चाहिये।

बलार्थंक्षीणपानीयेक्षाराम्बुपुनरावपेत्।

अर्थ-यदि क्षारका पानी सूखकर गाढा होजावे तो उसमें बली होनेके अर्थ क्षारविधिसे निकालाहुआ पानी डालना चाहिये।

क्षारके दशगुण।

नातितीक्ष्णो मृदुःश्लक्ष्णःपिच्छलःशीघ्रगःसितः। शिखरी-

सुखनिर्वाप्यो न विष्पंदीन चातिरुक् । क्षारोदशगुणःशस्त्र-
तेजसोरपि कर्मकृत् ।

अर्थ–क्षार अति तीक्ष्ण नहीं है, नअति मृदु है, न अत्यंत अकर्कश है, न बहुत पिच्छल है, शीघ्र फैलनेवाला पिटकाओंको उत्पन्न करनेवाला, सुखपूर्वक कांजीआदिसे शीतल होता है । स्रवणशील नहीं है, न अत्यंत पीडाकर्त्ता है, ए क्षारमें दशगुणहै । सुश्रुत क्षारमें आठ गुण मानतेहैं, इस जगे प्रतिशब्द प्रत्येक तीक्ष्णादिकोंके साथ लगताहै, क्षार, शस्त्रके कर्म (छेदन भेदन आदि) और अग्निकर्मोंकोंभी करनेवालाहै ।

क्षारके दश दोष।

अत्युष्णोऽतिशीतोऽतितीक्ष्णोऽतिमृदुरतितनुरतिघनोऽति-
पिच्छलोऽतिविसर्पी हीनौषधो हीनपाकश्चेति ।

अर्थ--अति उष्ण, अति शीतल, अति तीक्ष्ण, अति मृदु, अति हलका, अति सघन, अति पिच्छल, अत्यंत फैलनेवाला, हीन औषधोंसें बना और हीनपाक, ए क्षारके दश दोष संग्रहमें लिखेहैं। सुश्रुत ९ दोष कहताहै ।

अनुभवद्वारा क्षारके गुण ।

आचूषन्निवसंरंभाद्गात्रमापीडयन्निव । सर्वतोनुसरन्दोषानु-
न्मूलयतिमूलतः । कर्मकृत्वागतरुजःस्वयमेवोपशाम्याति ।

अर्थ–क्षोभसे मानो देहको चूसैंही लेताहै, तथा देहको चारों औरसें मानो पीडितही करताहै । और देहमें सर्वत्र जायकर शस्त्रसाध्य दोषोंको मूलसे उखाडकर पटकदेताहै । तथा अपने दाहादि कर्मोंको करके जब मनुष्यका रोग निवृत्ति होजावे तब विनाही यत्नके शांत होजाताहै ।

क्षारप्रतिसारणीयविधि ।

तत्रक्षारसाध्यव्याधिव्याधितमुपवेश्यानिर्वातातपेदेशेऽसम्बा-
धेग्रोपहरणीयोक्तेनविधानेनोपसंभृतसम्भारंततोऽस्यतमव-
काशंनिरीक्ष्यावघृष्यावलिख्यप्रच्छयित्वाशलाकयाक्षारंपात
यित्वावाक्छतमात्रमुपेक्षेत ।

अर्थ–तहां क्षारकरके साध्य ऐसी व्याधिकरके पीडित मनुष्यको, पवन, और धूपरहित तथा खुलासा स्वच्छस्थानमें स्थितकर, अग्रोपहरणीयाध्यायमें

लिखेअनुसार प्रशस्त तिथिनक्षत्रमुहूर्त्तमें, संपूर्ण यन्त्रशस्त्रक्षाराग्निशलाकादि सामग्री समीप धरके, पश्चात् उस रोगीका अंग देखकर अर्थात् उस रोगीका रोग और जहां क्षार लगानाहो वह स्थानको प्रथम देखे पित्तदूषितस्थानको घिसकर, वातदूषितको छीलकर, कफदूषितस्थानको कुछ कुरेदकर सलाईसे क्षारको लगावे और १००सौं वाक्पर्यंत लगारहनेदेवे (जितने समयमें दीर्घ अक्षर बोलाजावे उतने समयको वाक् कहतेहैं)

सम्यग्दग्धके लक्षण।

तस्मिन्निपतितेव्याधौकृष्णतादग्धलक्षणम्।

अर्थ–क्षारके लगनेसे वह ठौर काली पडजावे तब जानेकी दग्धहोगया।

अभिष्पंदीनिभोज्यानि भोज्यानि क्लेदनायच।

अर्थ–क्षारदग्धस्थानकेक्लेदनार्थ अभिष्पन्दी (उडददहीआदि) पदार्थभोजनको देवे कारणकि क्षारदग्धस्थान गीला होकर उत्तमरीतिसे (शांतिहोता)है-

क्षारके शांतिकरनेकी विधि।

तत्राम्लवर्गःशमनःसर्पिर्मधुकसंयुतः। अथचेत्स्थिरमूलत्वात्क्षारदग्धंनशीर्यते। इदमालेपनंतत्रसमग्रमवचारयेत्।

अर्थ--तहां अम्लवर्ग और घृत सहत मिलाय कर लगानेसे क्षारकी दाहकशक्ति शांतिहोतीहै। कदाचित् स्थिरमूलहोनेसे क्षारदग्ध शीतल न होवे तो यह समग्र लेप करना चाहिये।

लेपकी औषध।

अम्लकांजिकबीजानितिलान्मधुकमेवच। प्रपेष्यसमभागानि तेनैवमनुलेपयेत्। तिलकल्कः समधुकोघृताक्तो व्रणरोपणः। रसेनाम्लेन तीक्ष्णेनवीर्योष्णेनच योजितः।

अर्थ–खटाई, कांजी अथवा कांजीके नीचे जो तरी रहजातीहै, वो लेकर उसमें तिल और मुलहटी ए समान मिलाय पीसकर लेप करे। अथवा तिलकल्कमें मुलहटी और घृत मिलायकर लगानेसे क्षारदग्धका घाव भरजाताहै। तथा तीक्ष्ण, अम्ल और उष्णवीर्य औषध अन्नादिक देने चाहिये।

आग्नेयेनाग्निनातुल्यःकथंक्षारःप्रशाम्यति। एवंचेन्मन्यसेवत्स प्रोच्यमानंनिबोधमे। अम्लवर्ज्यान्रसान्क्षारे सर्वानेव विभावयेत्। कटुकस्तत्र भूयिष्ठोलवणानुरसस्तथा। अम्लेन

सह संयुक्तः सतीक्ष्णोलवणोरसः । माधुर्यंभजतेऽत्यर्थंतीक्ष्ण-भावंविमुच्यते । माधुर्याच्छममाप्नोतिवह्निरद्भिरिवाप्लुतः ।

अर्थ--कदाचित् सुश्रुत प्रश्न करे कि अग्नितुल्य क्षारका वेग आग्नेय तीक्ष्ण-गुणवाली औषधोंसे कैसे शांति होताहै? इसलिये श्रीधन्वंतरि कहते हैं कि, हेवत्स सुश्रुत उक्तशंकाका मैं उत्तर देता हूं तू सुन; अम्लवर्जित सम्पूर्ण रसोंको क्षारमें भावनादेनेसे लवण रस सबमें उत्कृष्ट रहताहै, और कटुरस कुछ इस्से न्यून रहताहै, परंतु वह तीक्ष्ण भी लवणरस अम्ल (खट्टे) रसमें मिलानेसे स्वादिष्ठ होजाताहै । और अपने तीक्ष्ण भावको त्याग देताहै । फिर माधुर्यतासे समान होजाताहै । जैसे जलके डालनेसे अग्नि शांति होजातीहै ।

उत्तम हीन और अतिदग्धके लक्षण ।

तत्र सम्यग्दग्धेविकारोपशमोलाघवमनास्रावश्च । हीनदग्धे तोदकण्डूजाड्यानि व्याधिवृद्धिश्च । अतिदग्धेदाहपाकरागस्रावाङ्गमर्दक्लमपिपासामूर्च्छाःस्युर्मरणं वा । क्षारदग्धव्रणन्तुयथादोषंयथाव्याधिचोपक्रमेत् ।

अर्थ--तहां उत्तम दग्ध होनेसे विकारकी शांति होवे, और देह हलका तथा वह व्याधि चुचाय नहीं । हीनदग्ध होनेसे पीडा खुजली जडता और व्याधिकी वृद्धि होतीहै तथा अतिदग्ध होनेसे दाहहो, वह दग्धस्थान पक जावे, लालहो, स्रवे, अंगटूटे, क्लम, प्यास, मूर्छा, और मरण, ए लक्षण होतेहैं । क्षारदग्ध व्रणको दोषानुसार और यथा रोगके चिकित्सा करे–यद्यपि क्षारदग्धोंके लक्षण प्रथम कह आएहैं तथापि चिकित्सार्थ फिर लिखेगएहैं.

क्षारकृत्यमें वर्जित मनुष्य ।

अथ नैतेक्षारकृत्याः । तद्यथा । दुर्बलबालस्थविरभीरुसर्वाङ्गशूनोदरिरक्तपित्तगर्भिण्यृतुमतीप्रवृद्धज्वरिप्रमेहोरःक्षतक्षीणतृष्णामूर्च्छोपद्रुतक्लीबापवृत्तोद्वृत्तफलयोनयः ।

अर्थ--दो प्रकारकाभी क्षार जिन मनुष्योंके लगाना निषेध है उनको कहते हैं । जैसे दुर्बल, बालक, वृद्ध, डरपोक जिस्का सर्व देह शून्य होयगया हो, उदररोगी, रक्तपित्ती, गर्भिणी, ऋतुमती, अधिक ज्वरवाला, प्रमेह, उरः-

क्षत, क्षीण, तृष्णापीडित, मूर्च्छित, नपुंसक और ऊर्ध्वगत अंड जिसके और स्थानसे ऊर्ध्वगत योनि जिसकी इतने रोगवालेको क्षारकर्म निषेध हैं.

तथा मर्मशिरास्नायुधमनीसन्धितरुणास्थिसेवनीगलनाभीनखान्तरशेफस्स्रोतःस्वल्पमांसेषुचप्रदेशेष्वक्ष्णोश्च न दद्यादन्यत्रवर्त्मरोगात् ॥

अर्थ--व्याधित पुरुषोंका निषेध लिखकर अब प्रदेश विशेषोंको कहते हैं जैसे कि मर्म, शिरा, स्नायु, धमनी, सन्धि, तरुणास्थि (नासिका, कान, नाड, और नेत्रकी हड्डी), सातसेवनी, गला, नाभी, नख, लिंग, स्रोत और जिस जगे अल्प मांस है. तथा पलकोंके सिवाय नेत्ररोगोंमें क्षारकर्म न करे

गुदे विशेषाद्विण्मूत्रसंरोधोतिप्रवर्त्तनम् ।
पुंस्त्वोपघातोमृत्युर्वागुदस्यशातनाद्ध्रुवम् ॥

अर्थ--प्रसंगवश गुदाआदिके अतिदग्ध होनेके लक्षण लिखतेहैं । जैसे कि गुदाके अतिदग्ध होनेसे विशेष करके मलमूत्रका संरोध होवे, कभी मलमूत्रका अति प्रवर्तन होवे, विशेष शब्द कहनेसे पूर्वोक्त रक्तस्रावादिकभी जानने । पुरुषार्थका नाश अथवा गुदाके अति दग्ध होनेसे कदाचित् मरणभी होताहै.

नासायां नासिकावंशदरणाकुंचनोद्भवः ।
भवेच्चविषयाज्ञानं तद्वच्छ्रोत्रादिकेष्वपि ।

अर्थ--नासिकामें अतिदग्ध होनेसे नाकके वांसका गलना, संकोच, और विषयोंका ज्ञान न होना, इसीप्रकार कानआदि अतिदग्ध होनेसे रोग होते हैं ।

क्षारसाध्य रोगोंमें असाध्यत्व.

तत्रक्षारसाध्येष्वपिव्याधिषुशूलगात्रमस्थिशूलिनमन्नद्वेषिणं हृदयसन्धिपीडोपद्रुतं क्षारोनसाधयति ।

अर्थ--तहां क्षारसाध्यभी व्याधियोंमें जिसका देह शून्य होगया हो, जिसके हड्डीमें शूल होता हो, अन्न रुचे नहीं, हृदय और संधियोंकी पीडासें पीडित मनुष्योंको क्षार नैरोग्य नहीं करसकता है ।

विषाग्निशस्त्राशनिमृत्युकल्पक्षारोभवत्यल्पमतिप्रयुक्तः ।
सधीमतासम्यगनुप्रयुक्तो रोगान्निहन्यादचिरेण घोरान् ।

अर्थ–मूढवैद्यका प्रयोग कराहुआ क्षारकर्म विष, अग्नि, शस्त्र और वज्र इनकी मृत्युके समान होता है. यदि वही क्षार विद्वान् वैद्य करके प्रयोग कराहुआ हो तो तत्काल घोर रोगोंको नष्ट करे हैं.

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरे विंशातितमस्तरङ्गः २०

अथातोऽग्निकर्मविधिमध्यायंव्याख्यास्यामः ।

अर्थ–क्षारविधिके अनंतर अब अग्निकर्मविधिनामक अध्यायकों कहेंगे । अग्नि करके जो कर्म करा जावे अथवा अग्निसंबंधी जो कर्म है उसको अग्निकर्म कहते हैं.

अग्निकर्मका माहात्म्य कहते हैं।

क्षारादग्निर्गरीयान् क्रियासुव्याख्यातस्तद्दग्धानां रोगाणाम-पुनर्भावाद्भेषजशस्त्रक्षारैरसाध्यानां तत्साध्यत्वाच्च ।

अर्थ–क्षारगुरुत्वसे अग्निको गुरुतरत्व है अर्थात् क्षारसे अग्नि श्रेष्ठ है. [परंतु यह श्रेष्ठता क्रियामें है किंतु क्षारके गुणोंसे अग्निके गुणोंको श्रेष्ठत्व नहीं है, क्यों कि त्रिदोषघ्न छेद्य, भेद्य, लेख्य करणादिकमें क्षारही श्रेष्ठ है. इस कहनेसे यह दिखाया कि अपने २ कृत्यमें दोनोंको मुख्यता है] अब उक्त अग्निके गुरुत्वसाधक हेतु कहते हैं, जैसे कि अग्निदग्धरोगोंको अपुनर्भाव है अर्थात् जो रोग अग्निकरके दग्ध हुए हैं वो फिर कदाचित् नहीं होते, तथा जो रोग औषध, शस्त्र और क्षार करके असाध्य है वो इस अग्निकर्म करके साध्य है, इसीकारण क्षारसे अग्निकर्मको श्रेष्ठता है ।

अथ दहनोपकरण ।

अथेमानिदहनोपकरणानि । तद्यथा । पिप्पल्यजाशकृद्गो-दन्तशरशलाकाजाम्बवौष्ठेतरलोहाः क्षौद्रगुडस्नेहाश्च ।

अर्थ–अथ अग्निकर्म करनेके उपकरण कहते हैं। जैसे कि पीपल बकरीकी विष्ठा गोदन्त शरशलाका जाम्बवौष्ठसे भिन्न अन्यप्रकारका लोह सहत गुड और स्नेहद्रव्य (घृततैलआदि) ये सब दागनेकी सामग्री है.

अग्न्युपकरणराशित्रयका प्रत्येक विषय दिखाते हैं.

तत्रपिप्पल्यजाशकृद्गोदन्तशरशलाकात्वग्गतानाम् । जा-

म्बवौष्ठेतरलोहानि मांसगतानां क्षौद्रगुडस्नेहाः शिरास्ना-
युसन्ध्यस्थिगतानाम् ।

अर्थ-तहां पीपल बकरीकी मेंगनी, गोदन्त और शरशलाका ए त्वग्गत रोगोंमें ग्राह्य हैं अर्थात् त्वचामें जो वातकफकृत त्वचासुप्त्यादि रोग होते हैं उनमें पीपलआदि द्रव्यसे दागना चाहिये । मांसगतरोगोंमें जाम्बवौष्ठसे इतर लोहकरके दागे और शिरा स्नायु संधि हड्डीगतरोगोंमें सहत गुड स्नेह आदिसे अग्निकर्म करे.

क्योंजी काश्यपमुनीने तो शिरादिकमें अग्निकर्म करनेका निषेध करा है जैसे लिखा है यथा-

न शिरास्नायुसन्ध्यस्थिमर्मस्वपिकथञ्चन ।
दंशस्योत्कर्तनं कार्यं दाहोवाभिषजाऽग्निना ॥

अर्थ-वैद्यको शिरा, स्नायु, संधी, हड्डी, मर्म इनमें लगे हुए दंशका उखाडना तथा अग्निकरके दागना कदाचित् न करना चाहिये। इस वाक्यसे शिरादिकोंमें अग्निकर्म निषेध है फिर इस जगे शिरादिकोंमें अग्निकर्म करना कैसे लिखा है.यह विरोध होता है इसलिये कहते हैं कि, इसजगेभी शिरा, स्नायु, सन्धि, हड्डीके छेद होनेसे जब अत्यंत रुधिर निकलने लगे उसके बंद करनेको लिखा है किंतु शिरादि गतरोगोंके छेदनार्थ नहीं कहा । कारण यह है कि, मांसदाहके होनेसे शिरादिरोगोंको उच्छेद होता है इसमें शौनकका प्रमाण है यथा ।

त्वङ्मांससंश्रितो वायुस्त्वग्दाहेनैवशाम्यति ।
मांसेदग्धेहि शाम्यन्ति शिरास्नाय्वस्थिसंधिजाः ॥ इति ।

अर्थ--त्वचा और मांससंश्रित वायु त्वचाके दाह करनेसेही शांति होती है और शिरा, स्नायु, अस्थि तथा संधिमें होनेवाले रोग मांस दग्ध होनेसे शांति होते हैं.

सापवाद अग्निकर्मका काल कहते हैं.

अत्राग्निकर्मसर्वर्तुषु कुर्य्यादन्यत्रशरद्ग्रीष्माभ्याम् । तत्रा-
प्यात्यधिकेऽग्निकर्मसाध्येव्याधौतत्प्रत्यनीकंविधिंकृत्वा ।

अर्थ--शरद और ग्रीष्म ऋतुको त्यागकर अन्य सर्व ऋतुओंमें अग्निकर्म

कर्त्तव्य है. कदाचित् अतिआवश्यक रोगमें शरद और ग्रीष्म ऋतुमेंही अग्नि कर्म करनेकी आवश्यकता होवे तो उसकी प्रत्यनीक विधि अर्थात् विपरीत विधि (शीतल आच्छादन और शीतकर्त्ता पदार्थोंका भोजनादि) करके फिर अग्निकर्म करना चाहिये।

सर्वाग्निकर्माङ्गविधि।

सर्वव्याधिषु ऋतुषु च पिच्छलमन्नं भुक्तवतः कर्मकुर्वीत मूढगर्भाश्मरीभगंदराशोंमुखरोगेष्वभुक्तवतः।

अर्थ--सर्व प्रकारकी व्याधिमें और सब ऋतुमें पिच्छल अन्न भोजन करके अग्निकर्म करे और मूढगर्भ पथरी, भगंदर, बवासीर और मुखरोग उन्होंमें विनाभोजनके अग्निकर्म करे। इन रोगोंमें भोजनोत्तर कर्म करनेसे ऊर्ध्व अधो वेगद्वारा कर्मका विघात होताहै॥

अग्निकर्ममें एक मत।

तत्रद्विविधमग्निकर्माहुरेके त्वग्दग्धं मांसदग्धश्चइहतु शिरास्नायुसंध्यस्थिष्वपि न प्रतिषिद्धोऽग्निः।

अर्थ--तहां कोई आचार्य द्विविध अग्निकर्म कहते हैं. एक त्वग्दग्ध दुसरा मांसदग्ध परंतु इस ग्रंथका यह सिद्धान्त है कि शिरा, स्नायु, संधि और हड्डियोंमेभी दागना वर्जित नहीं है, परंतु यह आवश्यक व्याधिमेंही जानना.

त्वगादिकोंमें दग्धके लक्षण।

तत्रशब्दप्रादुर्भावो दुर्गंधतात्वक्संकोचश्च त्वग्दग्धे। कपोतवर्णताल्पश्वयथुवेदनाशुष्कसंकुचितव्रणता च मांसदग्धे कृष्णोन्नतव्रणता स्रावसन्निरोधश्चशिरास्नायुदग्धे। रूक्षारुणता कर्कशस्थिरव्रणताच सन्ध्यस्थिदग्धे।

अर्थ--तहां त्वचाके दग्धहोनेसे शब्दका प्रादुर्भाव दुर्गंधका आना और त्वचाका संकोच होता है। मांसदग्ध होनेसे कपोत (पिंडुकियाकासा) वर्ण स्वल्प सूजन पीडा व्रणका सूखना और संकोच होना होवेहै शिरा स्नायु दग्ध होनेसे काले और ऊंचे व्रण और स्रावका न होना। संधि हड्डीके दग्ध होनेसे रूक्ष लाल त्वचाका वर्ण होजावे कर्कश और कठिन व्रणोंका होना ए लक्षण होते हैं।

रोगविशेषमें शरीरविशेषमें दागना ।

तत्रशिरोरोगाधिमन्थयोर्भ्रूललाटशंखप्रदेशेषु दहेत् वर्त्मरोगेष्वार्द्रालक्तकप्रतिच्छन्नां दृष्टिं कृत्वा वर्त्मरोमकूपान्दहेत् त्वङ्मांसशिरास्नायुसन्ध्यस्थिस्थितेऽत्युग्ररुजे वायावुच्छ्रितकठिनसुप्तमांसे व्रणेग्रन्थ्यर्शोऽर्बुदभगन्दरापचीश्लीपदचर्मकीलतिलकालकांत्रवृद्धिसन्धिशिराछेदनादिषु नाडीशोणितातिप्रवृत्तिषु चाग्निकर्मकुर्यात् ।

अर्थ-शिरोरोग अधिमंथ (नेत्रका रोग) इनमें भौंह ललाट और कनपटीको दागना चाहिये।पलकोंके रोगमें पलकोंको और दृष्टिको गीले कपडेसे ढककर पलकोंके रोमकूपोंको दागे।त्वचा, मांस, शिरा, स्नायु, संधी, अस्थि, इनमें वायु करके अत्यंत पीडा होनेसे उच्छ्रित कठिन और सुप्त मांसमें व्रण, गांठ, बवाशीर,अर्बुद, भगंदर, अपची, श्लीपद, चर्मकीलक, तिलकालक, अंत्रवृद्धि, संधिशिरा छेदनादिकोंमें नाडीव्रण, और शोणितकी अतिप्रवृत्तिमें अग्निकर्म करना चाहिये.

दागनेके भेद ।

तत्ररोगाधिष्ठानभेदादग्निकर्मचतुर्धाभिद्यते। तद्यथा। वलयबिन्दुरेखाप्रतिसारणानीतिदहनविशेषाः।

अर्थ-रोगके अधिष्ठान (स्थान) भेद करके अग्निकर्मके चार भेद हैं-जैसे वलय, बिन्दु, रेखा, और प्रतिसारण ए दहनविशेष है ।

रोगस्य संस्थानमतोविदित्वानरस्यमर्माणि बलाबलञ्च ।
व्याधिं चतुर्थञ्च समीक्ष्यसम्यक्ततोऽव्यवस्येद्भिषगाग्निकर्म ॥

अर्थ-रोगका संस्थान (लंबा व चौडा व आदिआकार) मनुष्यके मर्म और रोगीका बलाबल, व्याधि और ऋतु इनको भले प्रकार विचारकर तदनंतर अग्निकर्म करना चाहिये.

सम्यक् दग्धकी चिकित्सा ।

तत्र सम्यग्दग्धे मधुसर्पिर्भ्यामभ्यङ्गः ।

अर्थ-तहां सम्यक् दग्ध होनेपर सहत और घृतका अभ्यंग करना चाहिये,

अग्निकर्म वर्जित मनुष्य ।

अथेमानग्निनापरिहरेत् । पित्तप्रकृतिमन्तःशोणितं भिन्नको-

ष्टमनुद्धृतशल्यं दुर्बलं बालं वृद्धं भीरुमनेकव्रणपीडितम-स्वेद्यांश्च।

अर्थ–इतने मनुष्योंको अग्निकर्म करना वर्जित है पित्त प्रकृतिवाला भीतर रुधिर और भिन्नकोष्ठ तथा अनुद्धृतशल्य (जिस्के भीतर शल्यहो) दुर्बल, बालक, वृद्ध, भयभीत अनेक व्रणोंसे पीडित और जिनको स्वेदन संस्कार-वर्जित हो अथवा जिनके पसीने न आते हो ऐसे मनुष्योंके अग्निकर्म न करे अथवा अस्वेद्य (पांडु प्रमेही रक्तपित्ती और तृषार्त आदि) जानने.

अतऊर्ध्वमितरथा दग्धलक्षणं वक्ष्यामः। तत्रास्निग्धं रूक्षं वा-श्रित्यद्रव्यमग्निर्दहति। अग्निसन्तप्तो हिस्नेहः सूक्ष्मशिरानु-सारित्वात्त्वगादीननुप्रविश्याशुदहति। तस्मात्स्नेहदग्धेऽधिकारुजोभवंति।

अर्थ–अब इसके उपरांत दुष्ट दग्धोंके लक्षण कहेंगे। तहां स्निग्ध द्रव्य (घृतआदि) और रूक्ष द्रव्य (काष्ठ पाषाण लोष्टादि) के आश्रय करके अग्नि, वैद्यके दोषसे दहन करे है। अग्निकरके संतप्त जो चिकनाई है सो सूक्ष्म शिरानुसारित्व होनेसे त्वचाआदिमें प्रवेशहो तत्क्षण पजारता है। इसीसे स्नेहदग्धमें अधिक पीडा होती है.

चतुर्विध अग्निदग्ध।

तत्रप्लुष्टं दुर्दग्धं सम्यग्दग्धमतिदग्धं चेति चतुर्विधमग्निदग्ध-म्। तत्रयद्विवर्णं प्लुष्यतेऽतिमात्रं तत्प्लुष्टम्। यत्रोत्तिष्ठन्ति स्फोटास्तीव्राश्चोषदाहरागपाकवेदनाश्चिराच्चोपशाम्यन्ति त द्दुर्दग्धम्। सम्यग्दग्धमनवगाढं तालफलवर्णं सुसंस्थितं पू-र्वलक्षणयुक्तंच। अतिदग्धे मांसावलंबनं गात्रविश्लेषः शिरा-स्नायुसंध्यास्थिव्यापादनमतिमात्रं ज्वरदाहपिपासामूर्च्छा-श्चोपद्रवाभवन्ति व्रणश्चास्यचिरेण रोहति रूढश्च विवर्णो भवति। तदेतच्चतुर्विधमग्निदग्धलक्षणमात्मकर्मप्रसाधकं भवति।

अर्थ–तहां प्लुष्ट, दुर्दग्ध, सम्यग्दग्ध और अतिदग्ध ए चतुर्विध अग्निदग्ध

है । तहां दग्धस्थानका विवर्ण हो और अत्यंत दाह हो उसको प्लुष्ट कहते हैं। जिसमें तीव्र फोडे प्रगट होवे और खींचनेकीसी पिडा, दाह, राग (रक्तता) पाक और ओषादि दाह होवे तथा बहुत देरमें जो शांति होवे उसको दुर्दग्ध कहते हैं। जो अतिदग्ध लक्षणकरके रहित हो तथा पकेहुए तालफलके समान वर्ण होवे और अत्यंत ऊंचा तथा अत्यंत नीचा इत्यादि दोषरहित हो और जो पूर्व लक्षण (त्वचा, मांस, शिरा, स्नायु,संधी, अस्थि दाहलिंग) युक्त हो उसको सम्यग्दग्ध कहतेहैं। अतिदग्ध होनेके ये लक्षण हैं कि, मांसका अवलंबन, देहका विघट्टन, शिरा, स्नायु, संधी, और अस्थि इनका हिंसन, अत्यंत ज्वर, दाह, प्यास, मूर्च्छा इत्यादि उपद्रव होवे तथा व्रण बहुत दिनमें भरे और भरजावे तबभी वह स्थान विवर्ण हो जावे. यह चतुर्विध अग्निकर्म वैद्यको आत्मकर्म (चिकित्सा) का प्रसाधक होता है.

चिकित्सार्थ विशिष्टदुष्ट दोषोंकी दुष्टी ।

अग्निनाकोपितंरक्तं भृशंजन्तोः प्रकुप्यति । ततस्तेनैववेगेन पित्तमस्याप्युदीर्यते ॥ तुल्यवीर्यंउभेह्येते रसतोद्रव्यतस्तथा । तेनास्यवेदनास्तीव्राः प्रकृत्याचविदह्यते ॥ स्फोटाःशीघ्रं प्रजायन्ते ज्वरस्तृष्णा च वर्द्धते ॥

अर्थ--अग्निकरके कोपित रक्त मनुष्यके निरंतर कुपित होता है, तदनंतर कुपित होता है, तदनंतर उसी अग्नि और रक्तके वेगसे इस प्राणीका पित्त उदीर्ण होता है. ये पित्त और अग्नि दोनों रससे और द्रव्यसे तुल्य वीर्य हैं (अर्थात् दोनों उष्णवीर्य और कटुक है) अतएव अग्निदग्ध मनुष्यके तीव्र पीडा होती है, और स्वतःस्वभाव दाह होता है. तथा उक्त रक्तपित्तके कुपित होनेसे शीघ्र फोडे, और ज्वर होता है और तृषा बढती है.

दग्धकीशांतिकेवास्ते चिकित्सा ।

दग्धस्योपशमार्थायचिकित्सा सम्प्रचक्ष्यते । प्लुष्टस्याग्निप्रतपनं कार्यमुष्णं तथौषधम्॥शरीरेस्विन्नभूयिष्ठे स्विन्नं भवति शोणितम् । प्रकृत्याह्युदकंशीतं स्कन्दयत्यतिशोणितम् ॥ तस्मात्सुखयतिह्युष्णं नतुशीतं कथंचन ।

अर्थ–दग्धके उपशमार्थ (शांतिके अर्थ) चिकित्सा अब कही जाती है, कि जो प्लुष्टदग्ध है उसको अग्निसे तपाना चाहिये और औषधभी गरम देनी

चाहिये अर्थात् लेप पानादिकभी उष्णही करने चाहिये । कदाचित् कोई शंकाकरे कि, अग्निदग्ध उष्णहै उसमें उष्णही क्रिया करना तो हमारी समझमें नहीं आती इसवास्ते कहते हैं कि, शरीर अत्यंत गीला होनेसे रुधिरभी आर्द्र हो जाता है और जल प्रकृतिसेही शीतलहै जब देहकेआर्द्रतासे रुधिर आर्द्र होजाताहै तब चलनेसे रह जाता है. उस रक्तसे सब रक्तके मार्ग रुद्ध हो जाते हैं इसीसे वायु और ऊष्माभी देहकी निकलनेसे बंद हो जाती है अत एव प्लुष्टदग्धमें शूल शोफादिक पीडा होती है, इसीसे ऊष्माके निकलनेको और वातके संचार होनेको उष्णक्रिया कही है और इसीहेतुसे उष्णक्रिया प्लुष्टदग्ध मनुष्यको सुखकारी होती है और शीतल क्रिया नहीं होती

दुर्दग्धकी क्रिया।

शीतमुष्णं च दुर्दग्धे क्रियांकुर्याद्भिषक्पुनः।
घृतालेपनसेकांस्तु शीतेनैवास्यकारयेत्।

अर्थ--दुर्दग्धमें शीतल और उष्ण दोनों क्रिया वैद्यको करनी चाहिये और पीछे घृतका लेप और सेक आदि शीतलही करने चाहिये, इसप्रकार रोगी सुखी होता है. कोई कहता है कि, अति दाहमें शीतल क्रिया करे और उष्णक्रिया कदाचित् न करे.

सम्यग्दग्धकी चिकित्सा।

सम्यग्दग्धेतुगाक्षीरीप्लक्षचन्दनगैरिकैः। सामृतैः सर्पिषा स्निग्धैरालेपं कारयेद्भिषक्॥ ग्राम्यानूपौदकैश्चैनं पिष्टैर्मांसैः प्रलेपयेत्। पित्तविद्रधिवच्चैनं सन्ततोष्माणमाचरेत्॥

अर्थ--सम्यक्दग्धमें वंशलोचन (अथवा कोई तुगाक्षीरीके कहनेसे वंशलोचनके समान पार्थिव द्रव्य विशेष कहते हैं) पाखर, लालचंदन, और गिलोय इन सबको घृतमें मिलाय लेप करे यह लेप पित्तको शांति करता है. अब वातके शांतिकेलिये ग्राम्य (बकरा महिष आदि) अनूप (वाराह आदि) और औदक (मत्स्यकूर्मादिक) इनके पिष्टमांसका लेप तथा पित्तविद्रधिके समान इस सम्यग्दग्धका निरंतर गरम उपचार करे.

अतिदग्धे विशीर्णानि मांसान्युद्धृत्य शीतलाम्।
क्रियां कुर्याद्भिषक्पश्चाच्छालितण्डुलकण्डनैः॥

तिन्दुकीत्वक्कषायैर्वा घृतमिश्रैः प्रलेपयेत्। व्रणं गुडूचीपत्रैर्वा छादयेदथवोदकैः॥ क्रियाञ्च निखिलां कुर्याद्भिषक् पित्तविसर्पवत्॥

अर्थ–अतिदग्धमें बिखरेहुए मांसको निकालकर वैद्य शीतल क्रिया करे पीछे सांठी चावलोंकी कणकी करके तेंदूकी छालके काढेमें घृत मिलाय लेप करे अथवा गिलोयके पत्तोंसें व्रणको आच्छादन करे। अथवा पद्मोत्पलादि पत्रोंकरके आच्छादन करे तथा पित्तकी विसर्पमें जो क्रिया लिखी है वो सब इस अतिदग्धमें कर्तव्य है. * कोई कषाय शब्द करके तिंदुकीका चूर्ण ग्रहण करते हैं * अथवा कषाय जिनसे बनती है ऐसे वृक्षोंके चूर्ण करके लेपविधि कर्तव्य है.

सर्व अग्निदग्धोंके रोपणार्थ चिकित्सा।

मधूच्छिष्टं समधुकं रोध्रं सर्जरसं तथा। मञ्जिष्ठां चन्दनं मूर्वां पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत्। सर्वेषामग्निदग्धानामेतद्रोपणमुत्तमम्।

अर्थ–सहत, मुलहटी, लोध, राल, मजीठ, चंदन, मूर्वा, इनको पीस घृतमें मिलायकर पाचन करे, यह घृत संपूर्ण अग्निदग्धोंके रोपण करनेमें उत्तम प्रयोग है.

स्नेहदग्धकी चिकित्सा।

स्नेहदग्धं क्रियां रूक्षां विशेषेणावचारयेत्।

अर्थ--स्नेहदग्ध (अर्थात् जो घृत तैल आदिसे जलगया हो) उस पुरुषकी रुक्ष चिकित्सा करे उसीप्रकार रूक्षदग्धमें अनुक्तभी स्निग्ध क्रिया कर्तव्य है.

धूमोपहतके लक्षण।

अतऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि धूमोपहतलक्षणम्। श्वसितिक्षौतिचात्यर्थमत्याधमतिकासते। चक्षुषोः परिदाहश्चरागश्चैवोपजायते। सधूमकंनिःश्वसिति घ्रेयमन्यन्नवेत्ति च। तथैव च रसान्सर्वाञ्छ्रुतिश्चास्योपहन्यते। तृष्णादाहज्वरयुतः सीदत्यथ च मूर्च्छति॥धुमोपहत इत्येवम्।

अर्थ–अब इसके उपरांत धूमोपहत (अर्थात् अग्निकर्म करतेसमय कंठनासादिकोंमें धूआं चला जावे उसके) लक्षण कहेंगे. धूमोपहत पुरुष श्वास

ले अत्यंत हिचकी आवे. अफराहो, खांसे, नेत्रोंमें दाह होवे. तथा नेत्र लाल पीले हो बडीबडी श्वास लेवे और धूमोपहत सुगंध, दुर्गंधको नहीं जाने उसीप्रकार उसको किसी प्रकारका जिह्वासे स्वाद न आवे, कानोंसे सुने नहीं, नेत्रोंसे देखे नहीं, तथा तृषा, दाह, ज्वर हो, कर्म करनेमें असमर्थ हो और मूर्च्छित हो; इसप्रकार धूमोपहतके लक्षण जानने.

धूमोपहतकी चिकित्सा।

शृणुतस्यचिकित्सितम्।सर्पिरिक्षुरसंद्राक्षां पयोवाशर्कराम्बु वा। मधुराम्लौ रसौ वापि वमनायप्रदापयेत् । वमनःकोष्ठ-शुद्धिःस्याद्धूमगन्धश्चनश्यति । विधिनानेनशाम्यंति सद्-नक्षवथुज्वराः। दाहमूर्च्छातृडाध्मानःश्वासःकासश्चदारुणः। मधुरैर्लवणाम्लैश्चकटुकैःकवलग्रहैः । सम्यग्गृह्णातीन्द्रिया-र्थान्मनश्चास्यप्रसीदति । शिरोविरेचनंतस्मैदद्याद्योगेन शास्त्रवित् । दृष्टिर्विशुध्यतेचास्यशिरोग्रीवंचदेहिनः । अवि दाहिलघुस्निग्धमाहारंचास्यकल्पयेत् ।

अर्थ--अब धूमोपहतकी चिकित्सा कहतेहैं. घृत ईखका रस अथवा दाख, दूध अथवा मिश्रीका सर्बत अथवा मधुर और खट्टेरस ए वमनके अर्थ देने चाहिये, वमन करानेसे कोठेकी शुद्धि होतीहै और धूमगंध नष्ट होवे। इस विधिके अनुष्ठानसे क्रियोपराम छिक्का, ज्वर, दाह, मूर्च्छा, प्यास, अफरा, श्वास और दारुण खांसी ए सब रोग नष्ट होवे । मधुर, नोनके, खट्टे, और कटुक केवल ग्रहोंकरके रोगी भलेप्रकार सर्व इंद्रियोंके विषय ग्रहण करताहै. और मन प्रसन्न होताहै. तथा शास्त्रवेत्ता वैद्य इस धूमोपहतरोगीको योगके साथ शिरोवि-रेचन देवे. ऐसा करनेसे इस रोगीकी दृष्टि शुद्ध होवे, और शिर तथा ग्रीवा शुद्ध होवे. और इस रोगीको अविदाही हलका चिकना ऐसा आहार देना चाहिये ।

दग्धसदृशोंकी चिकित्सा ।

उष्णवातातपैर्दग्धेशीतःकार्योविधिःसदा। शीतवर्षानिलहत उष्णंस्निग्धंचशस्यते। तदातितेजसादग्धेसिद्धिर्नास्तिकथं-चनं। इन्द्रवज्राग्निदग्धेऽपिजीवति प्रतिकारयेत्॥स्नेहाभ्यङ्ग-परीषेकैःप्रदेहैश्चतथाभिषक् ।

अर्थ-अब दग्धचिकित्साके प्रसंगकरके दग्धके समान जो मनुष्यहै उनकी चिकित्सा कहतेहैं. जिसको गरमीकीऋतुमें उष्ण पवन (लूँ) लगईहो-अथवा गरमीकी तथा शरद्ऋतुसंबंधी धूप लगीहो ऐसे रोगीकी शीतल चिकित्सा कर्त्तव्यहै[1] और जो हिम (बर्फ) और वर्षाकी पवनके मारेहुएहैं. उनका उष्ण और स्निग्ध उपचार कर्त्तव्यहै. और जो अतितेजकरके अर्थात् विजली आदिके मारेहुएहै वो अच्छे नहीं होते. कदाचित् विजलीका मारा तथा उल्कापात माराहुआ मनुष्य जीता रहे तो उसकीभी चिचित्सा स्नेह (घृत तैलादि) परिषेक और प्रदेहकरके कर्त्तव्यहै ।

इतिश्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरे एकाविंशतितमस्तरङ्गः ॥ २१ ॥

अथातो जलौकावचारणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः।

अर्थ-अब जलौकावचारणीय अर्थात् जोख लगाने विधि जिस अध्यायमें उसकी व्याख्या करेंगे ।

जोखोंका विषय।

नृपाढ्यबालस्थविरभीरुदुर्बलनारीसुकुमाराणामनुग्रहार्थंपर-मसुकुमारोऽयंशोणितावसेचनोपायोभिहितोजलौकसः ।

अर्थ-राजामहाराजा, सेठसाहूकार, बाल, वृद्ध, भीरू, दुर्बल, स्त्री और जो सुकुमारहै उनके कल्याणार्थ यह जोख लगाकर रुधिर निकालना परम सुकुमार अर्थात् प्रधान मृदु यत्नहै इस लिखनेका यह तात्पर्यहै कि शृंग तुंबीसें रुधिर निकालना सुकुमार उपायहै और जोखकरके रुधिर निकालना परमसुकुमार उपायहै और फस्त खोलना अति सुकुमारोपायहै ।

अब प्रसंगवश सिंगी और तूंबीके विषयको दिखाते हैं।

तत्रवातपित्तकफदुष्टशोणितं यथासंख्यंशृंगजलौकालाबुभि-रवसेचयेत् स्निग्धशीतरूक्षत्वात्सर्वाणिसर्वैर्वा ।

अर्थ-तहां वातपित्त कफकरके दुष्ट शोणितको यथाक्रम सिंगी, जोख, तुंबीसे निकाले क्योंकि सिंगी, जोख और तुंबी इनको स्निग्ध, शीतल और

---

१ जिस मनुष्यको लूँ मारजावे उसकेलिये हम अपना अनुभव करा यत्न लिखते हैं. यद्यदि यह नुसखा बहुतसे मनुष्योंको याद है तथापि सर्व साधारणोंके हितार्थ लिखतेहैं. कि कच्ची अंबियांका भुरताकर उसमें भुनाजीरा कालीमिर्च और सैंधानिमक डाल पानी मिलाय रसाबनाकर तीन दिन पिलानेसे अवश्य यह रोगशांति होतीहै.

रूक्षत्वहै अतएव इनसे रुधिर निकाले अथवा सर्व प्रकारके दुष्ट रुधिरको सब सिंगी, तुंबी आदिसे निकाले।

वातादिदुष्टतामें सहेतु शृंगाद्यवचारण दिखातेहैं।

उष्णंसमधुरंस्निग्धंगवांशृङ्गंप्रकीर्तितम्। तस्माद्वातोपसृष्टे तुहितंतदवसेचने। शीताधिवासामधुराजलौकावारिसम्भवा। तस्मात्पित्तोपसृष्टेतुहितासात्ववसेचने। अलाबुकटुकंरूक्षं तीक्ष्णंचपरिकीर्तितम्। तस्माच्छ्लेष्मोपसृष्टेतुहितंतदवसेचने।

अर्थ–गौका सींग मधुर,स्निग्ध और गरमहै. अतएव वह वातजनित रोगमें रुधिरनिकालनेकेलिये हितहै। शीतल गृह और मधुर, जलकी जोखहै अतएव पित्तजनित रोगमें रुधिर निकालनेमें हितहै। तुंबी कटुरूक्ष और तीखी है अतएव कफके रोगमें तुंबीद्वारा रुधिर निकालना हितहै।

तत्रप्रच्छितेतनुवस्त्रपटलावनद्धेनशृङ्गेणशोणितमवसेचयेदा-चूषणात्। सान्तर्दीपयाऽलाब्वा।

अर्थ–तहां महीनवस्त्रके पटलकरके आच्छादित सिंगीसे जबतक वह रुधिर खींचे तावत्कालपर्यंत रुधिर निकाले और भीतर दीप्तरोगहै उनका तुंबी-द्वारा रुधिर निकाले। सिंगी और तुंबीका आकार भालुकी संहितामें लिखाहै।

जलायुका वा जलौकसशब्दकी निरुक्ति।

तत्रजलायुकावक्ष्यन्ते। जलमासामायुरितिजलायुका-जल-मासामोकः इतिजलौकसः।

अर्थ–तहां जोखोंको कहतेहैं इसमेंभी जलायुकाकी वा जलौकस शब्दकी निरुक्ति कहतेहैं. जल इनकी आयु होनेसे जोखोंको जलायु कहतेहैं. और जल रहनेका स्थान होनेसे इनका नाम जलौकसहै।

चिकित्सोपयोगी जोखोंकी संख्या।

ताद्वादशतासांसविषाःषट्तावत्यएवनिर्विषाः। तत्रसविषाःकृ-ष्णाकर्बुराअलगर्दा इन्द्रायुधासामुद्रिकागोचन्दनाचेति।

अर्थ–वो जोख बारह प्रकारकी है;उन्होंमें छः विषैलहैं, और छः ही निर्वि-

---

१ विषाणं श्वेतगोबिंदुचक्रं सप्ताङ्गुलायतम्॥ क्षिप्तान्तःपिचुपेशीकं योज्यं वातयुजेऽसृजि। अंगुष्ठमूलवन्मूले छिद्रमग्रेस्य मुद्गवत्। इति अष्टांगुलपरीणाहा चतुरंगुलनालसंमिता सुमुखी कृष्णमृदालिप्ता तनुः श्रेष्ठा रक्तावसेचनेऽलाबुरिति।

ष हैं, तहां विषैलजोखोंके नाम कहतेहैं–कृष्णा, कर्बुरा, अलगर्दा, इन्द्रायुधा, सामुद्रिका, और गोचन्दना ।

विषजोखोंकी आकृति ।

तास्वञ्जनचूर्णवर्णापृथुशिराःकृष्णा । वर्मिमत्स्यवदायताछिन्नोन्नतकुक्षिःकर्बुरा । रोमशा महापार्श्वाकृष्णमुख्यलगर्दा । इन्द्रायुधवदूर्ध्वराजिभिश्चित्रिताइन्द्रायुधा । ईषदसितपीतिकाविचित्रपुष्पाकृतिचित्रासामुद्रिका । गोवृषणवद्दोभागेद्विधाभूताकृतिरणुमुखीगोचन्दनेति ।

अर्थ–तिनमें कज्जलके समान काली और बडे मस्तवाली जोख कृष्णा कहातीहै । वर्मीमछलीके समान लंबी और छिन्न तथा जिसकी कूखभाग कुछ ऊंचेहोवे उसको कर्बुरा कहतेहैं । महापार्श्ववाली जोख जिसके बडे २ बाल हो तथा कालेमुखकी अलगर्दा कहातीहै । इन्द्रधनुषके समान जिसके ऊपर चित्रविचित्ररेखाहोवे उसको इन्द्रायुधा कहते हैं । कुछ काली और पीली विचित्रपुष्पके समान आकृति अर्थात् अनेक प्रकारकी बिन्दुओंसे अंकित और विचित्र सामुद्रिका कहातीहै । जो बैलके अंडसदृश नीचेके भागमें दोभागहोरहीहो और छोटामुखहो उनको गोचन्दना कहतेहैं ।

सविषजोखोंके काटनेसे उपद्रव ।

ताभिर्दष्टेपुरुषे दंशश्वयथुरतिमात्रं कण्डूमूर्च्छाज्वरोदाहश्छर्दिर्मदःसदनमितिलिङ्गानिभवन्ति । तत्रमहागदः पानालेपननस्यकर्मादिषूपयोज्यः । इन्द्रायुधादष्टमसाध्यमित्येताःसविषाःसचिकित्सिताव्याख्याताः ।

अर्थ–उक्त सविष जोखोंके काटनेसे पुरुषके दंशस्थानमें सूजन अत्यंत खुजली, मूर्च्छा, ज्वर, दाह, वमन, मद, अंगोंका रहजाना, ए लक्षण होतेहैं । तहां महागद अर्थात् जोख काटनेसे यदि अधिक रोगवृद्धि होवेतो उसको विषनाशक पान, लेप, नस्य आदि, कर्मोंसे शांति करना चाहिये. इन सविष जोखोंमें इन्द्रायुधानामक जोख असाध्यहै । अर्थात् इसका काटा अच्छा नहींहो इसके लक्षण असाध्य सर्पके काटनेके समान जानने । इसप्रकार विषैल जोख चिकित्सासहित वर्णन करी अब निर्विष जोखोंको कहतेहैं ।

निर्विषजोख।

अथ निर्विषाः कपिला पिङ्गला शङ्कुमुखी मूषिका पुण्डरीकमुखी सावरिकाचेति ।

अर्थ–कपिला, पिंगला, शंकुमुखी, मूषिका, पुण्डरीकमुखी, सावरिका, ए-छः प्रकारकी जोख निर्विषहै ।

प्रत्येककी परीक्षा।

तत्रमनःशिलरञ्जिताभ्यामिवपार्श्वाभ्यांपृष्ठेस्निग्धमुद्गवर्णाकपिला। किञ्चिद्रक्तवृत्तकायापिङ्गाशुगाचपिङ्गला। यकृद्वर्णा शीघ्रपायिनीदीर्घतीक्ष्णमुखीशङ्कुमुखी। मूषिकाकृतिवर्णाऽनिष्टगंधाचमूषिका । मुद्गवर्णापुण्डरीकतुल्यवक्रापुण्डरीकमुखी। स्निग्धापद्मपत्रवर्णाष्टादशाङ्गुलप्रमाणासावरिकासाचपश्वर्थे इत्येताअविषाव्याख्याताः।

अर्थ–तहां मनसिलके रंगसे मानो दोनों पार्श्वरंगेसे हों और पीठस्निग्ध और मूंगके वर्णहो उसको कपिला कहतेहैं। तथा कुछ लाल, गोल, और पीली तथा शीघ्रचलनेवाली जोखको पिंगला कहतेहैं । जिसका यकृत्के अर्थात् नीला और लोहितवर्ण, शीघ्र रुधिर पीनेवाली लंबी और तीखेमुखकी जोखोंको शंकुमुखी कहतेहैं। आकारमें और वर्णमें मूसेके समानहो तथा जिसमें दुर्गंध आतीहो उसको मूषिका कहतेहैं। मूंगके समान हरी और कमलके समानमुखवाली पुंडरीकमुखी कहातीहै। और जो स्निग्ध कमलकेपत्तेके वर्णसदृशवाली वर्ण १८ अठारह अंगुलकी लंबी सावरिका जोख कहलातीहै। यह हाथी घोडे बैल आदि पशुओंके लिये कहीहै । ए छः प्रकारकीजोख निर्विषकही।

निर्विषजोखोंके होनेके स्थान।

तासां यवनपांड्यसह्यपीतनादीनि क्षेत्राणि । तेषुमहाशरीराबलवत्यः शीघ्रपायिन्योमहाशना निर्विषाश्चविशेषेण भवन्ति।

अर्थ–तहां यवन(तुरकिस्तान) पांड्यदेश (देहलीके पश्चिम और कंबोज-

देशके दक्षिणमें जो देशहैं[1]) सह्यदेश (नर्मदाके पार दक्षिणके देश) पीतन (मथुराके इलाकेके देश) इनसे आदिले अन्यदेशोंमें निर्विष जोख होतीहै । इनदेशोंमें प्रगटहोनेवाली जोख बडेदेहकी बलवान्, शीघ्रपीने वाली, महाभोजनवाली ऐसी निर्विष विशेषकरके होतीहै ।

तथासविषनिर्विष जोखकी भूमि ।

तत्रसविषमत्स्यकीटदर्दुरमूत्रपुरीषकोथजाताःकलुषेष्वम्भःसुचसविषाः। पद्मोत्पलनलिनकुमुदसौगन्धिककुवलयपुण्डरीकशैवालकोथजाता विमलेष्वम्भःसुचनिर्विषाः ।

अर्थ-तहां विषैल मछली, कीट (छः बिंदुकाआदि) और विषैल मेंडका इनके मूत्र मल, अथवा इनके सडेहुए देहसे जो प्रगट हुईहो तथा दूषित जलमें विषैल जोख रहतीहै । और पद्म (कुछ सपेद कमल) उत्पल (कुछ नीलाई लिये होताहै) नलिन (किंचित्लालकमल) कुमुद (कमोदनी) सौगंधिक (गर्दभपुष्प कहतेहैं) यह चंद्रोदय होनेपर खिलताहै और अत्यंत सुगंधवाला होताहै । कुवलय (लालकमल) पुंडरीक (सपेदकमल) और शैवाल (सिवारवाकाई) इनके सडनेसेजो जोख प्रगट होतीहै वो निर्विष जाननी ।

शुभजोख ।

क्षेत्रेषुविचरन्त्येताः सलिलेषु सुगंधिषु ।
नचसंकीर्णचारिण्यो नच पङ्कशयाःसुखाः ॥

अर्थ-ए निर्विष जोखसुगंधितजलोंमें और उत्तम क्षेत्रोंमें विचरतीहै । इनमें संकीर्णचारिणी तथा कीचमें रहनेवाली उत्तम नहीं होती ।

इनके पकडनेकी और पालनेकी विधि ।

तासांप्रग्रहणमार्द्रचर्मणान्यैर्वाप्रयोगैर्गृह्णीयात् । अथैनां नवेमहतिघटे सरस्तडागोदकपङ्कमावाप्यनिदध्यात् भक्ष्यार्थंचासामुपहरेच्छैवलंवल्लूरमौदकांश्चकन्दांश्चूर्णीकृत्य शय्यार्थंमौदकानिचपत्राणि। त्र्यहात्त्र्यहाच्चान्यज्जलंभक्ष्यंचदद्यात् सप्तरात्रात्सप्तरात्राच्चघटमन्यंसंक्रामयेत् ।

अर्थ-जोखोंको शरदृतुमें गीले चर्मकरके पकडनी चाहिये, अथवा तत्कालमारेहुए जीवका मांस, पेशी, मक्खन, घृत और दूधमिला भात

---

१ काम्बोजाद्दक्षभागेतु इन्द्रप्रस्थाच्चपश्चिमे । पाण्डचदेशोमहेशानि महागूरत्वकारक इति ।

इत्यादि करके पकडनी चाहिये। इन पकडीहुई जोखोंको नए और कोरे बडे घडेमें सरोवर वा तालावका जल, और कुछ कीच भरके उसमें रखनी चाहिये। और इनके खानेके लिये सिवार (काई) सूखामांस और जलमें होनेवाली वस्तु तथा कंदोंका चूर्ण करके डालना चाहिये। तथा इनके बैठने और सोनेके लिये तृण, तथा जलमें होनेवाले कमलआदिके पत्ते उन घडोंमें डालने चाहियें। दूसरे वा तीसरे दिन उस घडेका जल निकाल नवीन भरना चाहिये और भोजनको उक्तवस्तू डाले, तथा सातवे २ दिन घडेको पलटना चाहिये।

विषैल जोख।

स्थूलमध्याःपरिक्लिष्टाःपृथ्व्योमन्दविचेष्टिताः। अग्राहिण्योऽल्पपायिन्यः सविषाश्चनपूजिताः।

अर्थ–जो बीचसे स्थूल, अन्योन्य मिलीसी दीखे, मोटी, मंदचलनेवाली और जो स्थानको ग्रहण न करे तथा थोडा रुधिर पीवे एसी विषैल जोख त्यागने योग्यहै।

जोख लगानेकी विधि।

अथजलौकाऽवसेकसाध्यव्याधितमुपवेश्य संवेश्य वा विरूक्ष्य-चास्यतमवकाशंमृद्गोमयचूर्णैर्यद्यरुजःस्यात्।

अर्थ–जोख लगानेयोग्य साध्यरोगीको बिठला अथवा सुलायकर यदि इस रोगीके देहमें कोई घाव नहोवे तो जहां जोख लगानी होवे उस जगे मिट्टी गोमयचूर्णसे धोवे, फिर जोख लगावे परंतु घावमें जोख नहीं लगानी चाहिये क्योंकि घावमें जोख लगानेसे अधिक पीडाकी वृद्धि होतीहै।

गृहीताश्वताःसर्षपरजनीकल्कोदकप्रदिग्धगात्रीःसलिलसरक-मध्येमुहूर्तस्थिता विगतक्लमाज्ञात्वा ताभिः रोगं ग्राहयेत्।

अर्थ–पकडीहुई पूर्वोक्त जोखोंको सरसों हलदीके कल्कके जलसे भिगो और जलके पात्रमें दोघडी स्थित करे जब वो विगतक्लम (हरारत रहित) होजावे तब उनको रोगीके अभीष्ट स्थानमें लगावे।

सूक्ष्मशुक्लार्द्रपिचुप्रोतावच्छन्नांकृत्वा मुखमपावृणुयादगृह्णं-त्यैक्षीरबिन्दुं शोणितबिंदुंवादद्याच्छस्त्रपदानिवाकुर्वीतयद्ये-वमपिनगृह्णीयात्तदान्यांग्राहयेत्।

अर्थ–जिससमय जोखोंको लगावे उससमय पतला सपेद और गीले कपडेसे जोखोंको ढकलेवे और उनका मुख खुला रहने देवे फिर लगावे, यदि वो जोख उसस्थानको न पकडे तो उनको दूधकी अथवा रुधिरकी बूंद उसस्थानमें डालकर लगावे, अथवा शस्त्रसे रुधिर निकालकर फिर जोख लगावे, यदि इसप्रकार करनेपरभी वो न लगे तो उसको हटाकर दूसरी लगावे।

जोख लगनेके लक्षण।

यदाचनिविशतेऽश्वखुरवदाननंकृत्वोन्नम्यचस्कन्धं तदाजानीयाद्गृह्णातीति गृह्णन्तीमार्द्रवस्त्रावच्छन्नांधारयेत्सेचयेच्च।

अर्थ–जब जोख लगजातीहै तब घोडेके खुरके सदृश मुखकर और अपने कंधोंको ऊंचे उठाय लेतीहै। इन लक्षणोंसे जाने कि जोख लगगई और रुधिरको पीतीहै। रुधिर पीतीहुईको गीले कपडेसे ढकदेवे और उस कपडेके ऊपर थोडा २ पानी डालता जावे। गीले कपडेके ढकनेसे वो सुखपूर्वक शीघ्र रुधिरको पीतीहै। जोख अपने आत्मप्रभाव करके प्रथम दूषितरुधिरको पीतीहै जैसे हंस दूधजल मिलेमेंसें दूधको पीताहै।

शुद्ध रुधिर पीतीहुई जोखोंके लक्षण।

दंशे तोदकण्डूप्रादुर्भावैर्जानीयाच्छुद्धमियमादत्ते इतिशुद्धमाददानामपनयेत्। अथ शोणितगन्धेननमुञ्चेन्मुखमस्याः सैन्धवचूर्णेनावकिरेत्।

अर्थ--जोख लगीहुई ठौरमें यदि पीडा और खुजली होवेतो जाने कि, अब शुद्ध रुधिर पीतीहै। उसको छुडाय लेना चाहिये। यदि रुधिरकी गंधसे कदाचित न छोडे तो जोखके मुखपर सैंधानिमक लगावे, तो तत्काल छोडदेवे कोई [शोणितगन्धेन] इसजगे [शोणितगर्द्धेनेति] ऐसा पाठ लिखताहै इसका यह अर्थ हुआकि रुधिरकी कांक्षा करके यदि जोख न छोडे तो सैंधानिमक लगावे।

अथपातितां तण्डुलकण्डनप्रदिग्धगात्रीं तैललवणाभ्यक्तमुखींवामहस्ताङ्गुष्ठाङ्गुलीभ्यांगृहीतपुच्छां दक्षिणहस्ताङ्गुष्ठाङ्गुलीभ्यांशनैःशनैरनुलोममनुमार्जयेदामुखाद्वामयेत्तावद्यावत्सम्यग्वान्तलिङ्गानीति।

अर्थ–जब छूटकर जोख गिरपडे उसको चामलकी किनकीमें लपेट तैल, और नोन उसके मुखपर लगाय बाँए हाथके अँगूठे और उंगलीसे उसका पिछला भाग दबाय दहने हाथकी उंगली अंगूठेसे धीरे २ उसको मुखपर्यंत सूते जबतक संपूर्ण रुधिर न निकल जावे ।

सम्यग्वान्तासलिलसरकन्यस्ताभोक्तुकामासतीचरेत् । या सीदति न चेष्टते सा दुर्वान्ता तां पुनः सम्यग्वामयेत्।दुर्वान्तायाव्याधिरसाध्यइन्द्रमदोनामभवति । अथसुवान्तांपूर्ववत्सन्निदध्यात् ।

अर्थ–जो भलेप्रकार रुधिरको वमन कर चुकीहो उसको जलके पात्रमें गेरके उसके भोजनको डाले यदि खानेलगेतो जानेकि अब इस्मेसें रुधिर निकलगया, और जो सुस्त जहां की तहां जलमें रहजावे, कुछ हलनाचलना आदि चेष्टा न करे उसको जानेकि इसमेंसे सम्पूर्ण रुधिर नहीं निकला उसको फिर पकडकर पूर्वोक्तरीतिसे वमन करावे, जो दुर्वांत होतीहै उसके असाध्य इन्द्रमदनामक व्याधि होतीहै । इसकी व्याधीके लक्षण शास्त्रमें नहीं कहे इसीसे त्याग दियेहै । अब जो भले प्रकार वमनकर चुकीहै उसको पूर्वोक्तविधि अर्थात् नवीन घडेमें उत्तम जलभरकर स्थापन करे ।

शोणितावसेचनमें उत्तरकर्म दिखातेहैं ।

शोणितस्य च योगायोगानवेक्ष्यजलौकोव्रणान्मधुनावघट्टयेच्छीताभिरद्भिश्वपरिषेचयेद्बध्नीत वा व्रणंकषायमधुरस्निग्धशीतैश्वप्रदेहैः प्रदिह्यात् ।

अर्थ–रुधिरका योग और अयोग[1] विचारकर जोखके व्रणको सहतसे रोक-

---

१ रुधिरका योग कहिये यथार्थ निकलना, अयोग न्यूनाधिक निकलना कहाताहै, यह योग तीन प्रकारकाहै १ हीनयोग २ अतियोग ३ मिथ्यायोग तहां यथार्थयोगमें सौंवार धुलेहुए घृतका मालिस करावे, अथवा सौंवार धुलेहुए घृतमें रुईके फोहोको भिगोकर धरे, हीनयोगमें सहत लगावे, अतियोग अर्थात् अत्यंत रुधिर निकलता होवे तो शीतल जलका तरडादेवे तो रुधिर निकलता बंद होजावे, और मिथ्यायोगमें अर्थात् यथार्थ रुधिर न निकले तो ऊपर लिखेहुए कषायका लेप करना चाहिये, कषेले काढेका लेप शेष दुष्टरुधिरके शुद्धकरनेके वास्तेहै, मधुरद्रव्यके काढेका लेप अनुमानसे अधिक रुधिर निकलगयाहो उसके बढानेके लिये कहाहै । अन्यआचारी कहतेहैं कि मधुर और कषैले काढेका जो लेप करना कहाहै सो मूर्छादि उपद्रव दूरकरनेके वास्ते लिखाहै ।

रुधिरका जोखकरके निकालनामी मनुष्यके बलप्रमाण दोषबलप्रमाण (अर्थात् वातादि जनितव्याधिके बलप्रमाणके अनुसार करना) तो रुधिरकी उत्तम शुद्धि होवे (अर्थात् जितने रुधिर निकलवानेसैं

देवे, अथवा शीतल जलका तरडा देवे, अथवा उसको बांध देवे, अथवा उस जोख काटनेकी ठौरकी मधुर चिकनी और शीतल कषायसें लेपन करे ।

क्षेत्राणिग्रहणंजातीः पोषणंसावचारणम् ।
जलौकसांचयोवेत्ति तत्साध्यान्सजयेद्गदान् ॥

अर्थ--जो वैद्य जोखोंके क्षेत्र, ग्रहणविधि, जाती, पोषण, और जोख लगानेकी विधिको जानताहै वह जलौकावसेकसाध्य व्याधिको जीतताहै। तहां क्षेत्र यवन पांडयादि जानने ग्रहण (तासां ग्रहणमार्द्रचर्मणा) जाती (सविष औरनिर्विषजानना) पोषण (नवीन बडे घडेमें स्थापन आदि) अवचारण (अथजलौकावसेकसाध्यव्याधितमुपवेश्य इत्यादि) और चकारसे पश्चात्कर्म जनना अर्थात् इतनीवस्तुओंको जो जानताहै वह जोख लगानेसे जो रोग दूरहो सक्तेहैं उनको जीतताहै ।

इति श्रीमदायुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरे द्वाविंशतिस्तरङ्गः ॥ २२ ॥

अथातः शोणितवर्णनीयमध्यायंव्याख्यास्यामः ।

अर्थ--अब शोणित (रुधिर) का वर्णनजिस्में ऐसी अध्यायकी व्याख्या करेंगे.

तत्रपाञ्चभौतिकस्य चतुर्विधस्यषड्रसस्य द्विविधवीर्यस्याष्टविधवीर्यस्य वानेकगुणस्योपयुक्तस्याहारस्यसम्यक्परिणतस्ययस्तेजोभूतःसारःपरमसूक्ष्मःसरसइत्युच्यते ।

अर्थ–रुधिरकी उत्पत्ति रसके अधीनहै, अतएव प्रथम रसका वर्णन कर-

रोगशांति होजावे उतना निकलवावे) तथा रोगाशय जानके रुधिर निकलवावे जैसे तुच्छ रोगमें थोडा रुधिर निकलवावे, और भारीरोगमें रुधिर अधिक निकलवावे, रुधिरको निकाल अर्थात् इसजगे पलोंके अनुमानसे रुधिर निकलवाना चाहिये (इसजगे पकीहुई ७ गुंजाका माषा होताहै, इस हिसाबसे पलकी तोल लेनी चाहिये, और साडेतेरह पलका १ प्रस्थहोताहै) एकएक शिरामेंसे १ एकप्रस्थ रुधिर निकालना चाहिये परंतु इतना रुधिर दोदिनमें निकाले यह उत्तम मात्राहै. और अर्धप्रस्थकी मात्रा मध्यमहै (एक कर्ष और छपलका अर्धप्रस्थ होताहै) इतनाभी रुधिर दो दिनमें निकाले, और कुडवकी मात्रा अधमहै (आठ मासे अधिक तीन पलका १ कुडव होताहै.) इतनाभी रुधिर दो दिनमें निकालना चाहिये, यह कर्ममार्ग प्रसिद्धहै. ।

तेहैं। तहां पांचभौतिक वा चतुर्विध वा षड्रसंयुक्त वा द्विविधवीर्यवाला वा अष्टविधवीर्यवाला अथवा अनेकगुणयुक्त ऐसे आहारका भलेप्रकार परिणामको प्राप्तहोनेसे जो परमसूक्ष्म तेजोभूत सारहोताहै उसको रस ऐसे कहते हैं।

तस्यचहृदयंस्थानं सहृदयाच्चतुर्विंशतिधमनीरनुप्रविश्योर्द्ध्वगादशदशचाधोगामिन्यश्चतस्रस्तिर्यग्गाःकृत्स्नंशरीरमहरहस्तर्पयति वर्द्धयतिधारयतियापयतिजीवयतिचादृष्टहेतुकेनकर्मणा।

अर्थ-उस रसका हृदय स्थानहै, इसीसे वह रस हृदयसे २४ चौवीस धमनी नाडियोंमें प्रवेश होताहै, तहां दश धमनी ऊर्ध्वगामिनीहै, दश अधोगामिनीहै, और चार धमनी तिरछी गमनकरनेवालीहै, इनमें वह रस गमनकरता संपूर्ण देहको नित्य दिनरात तृप्तकरताहै, बढाताहै, धारणकरताहै, प्राप्त करता है और जीवताहै, यह अदृष्टहेतु कर्मकरके संपूर्ण कर्म होताहै अर्थात् इसका कारण नहीं कहसक्ते।

तस्यशरीरमनुधावतोऽनुमानाद्गतिरुपलक्षयितव्या क्षयवृद्धिवैकृतैः।

अर्थ-तहां शरीरमें विचरनेसे उस रुधिरकी क्षयवृद्धिवैकृतिकरके अनुमानसे गति जानीजातीहै।

तस्मिन्सर्वशरीरावयवदोषधातुमलाशयानुसारिणिरसेजिज्ञासा किमयंसौम्यस्तैजसइति।

अर्थ-सर्वशरीरके अवयव और दोष धातु मलाशयानुसारी रसमें यह जाननेकी इच्छा हुई कि यह रस सौम्य (शीतल) है वा तैजस (गरम) है।

अत्रोच्यते सखलुद्रवानुसारीस्नेहनजीवनतर्पणधारणादिभिर्विशेषैःसौम्य इत्यवगम्यते । सखल्वाप्योरसोयकृत्प्लीहानौप्राप्यरागमुपैति।

अर्थ-तहां कहतेहैं कि, उस रसको द्रव (पतला) होनेसे जीवन, तर्पण

१ पृथ्वी तेज वायु जल आकाशके द्रव्यभेदकरके. २ भक्ष्यभोज्यलेह्यचोष्यादि भेदकरके. ३ मधुर अम्लादि भेदकरके. ४ शीतोष्णके भेदकरके. ५ शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, विषद, पिच्छल, मृदु, तीक्ष्णोंके भेदसे. ६ शीतादि द्रवादि गुणभेदसे वीस प्रकारका होनेसे.

और धारण आदि विशेषणोंकरके सौम्य (शीतल) जाना जाताहै सो जल संबंधी रस यकृत् और प्लीहामें जायकर राग (रंग) को प्राप्त होताहै ।

रञ्जितास्तेजसास्त्वापःशरीरस्थेनदेहिनाम् । अव्यापन्नाःप्र-सन्नेनरक्तमित्यभिधीयते । रसादेवस्त्रियारक्तंरजःसंज्ञंप्रवर्तते । तद्वर्षाद्द्वादशादूर्ध्वंयातिपञ्चाशतःक्षयम् ।

अर्थ--देहधारियोंके शरीरस्थ रंजक पित्तकरके रंगको प्राप्तहो अदूषित और स्वच्छ ऐसेजो आप (रस) सो रक्त अर्थात् रुधिर कहातेहैं । उसी रससे स्त्रियोंके रजःसंज्ञक रुधिर होताहै, वह बारहवर्षसें निकलताहै और पंचाश-द्वर्षकी अवस्थामें क्षयको प्राप्तहोवेहै ।

आर्त्तवंशोणितंत्वाग्नेयमग्नीषोमीयत्वाद्गर्भस्यपांचभौतिक-श्चापरेजीवरक्तमाहुराचार्याः ।

अर्थ--आर्तवसंबंधी रुधिर आग्नेयहै अर्थात् गरमहै, क्योंकि गर्भको अग्नीषो-मीयत्वहै अर्थात् स्त्रीका रज गरमहै और पुरुषका वीर्य शीतल इनदोनोंके मिलाप-होनेसे गर्भ रहताहै । कोई आचार्य कहतेहैं कि पांचभौतिक जीवकेतुल्य रुधिरहै ।

रुधिरका पांचभौतिकत्व स्पष्टकरतेहैं ।

विस्रताद्रवतारागःस्यन्दनंलघुतातथा ॥ भूम्यादीनांगुणाह्येते दृश्यन्तेचात्रशोणिते । रसाद्रक्तंततोमांसंमांसान्मेदश्चजाय-ते । मेदसोऽस्थिततोमज्जामज्ज्ञःशुक्रस्यसम्भवः ।

अर्थ- कच्चीगंध पृथ्वीका गुणहै, पतलापन जलकागुणहै, इसमेंजो रंगहै सो अग्निका गुणहै, कुछचलना पवनका गुणहै, और हलकापना आकाशका गुणहै, रससे रुधिर, रुधिरसे मांस, मांससे मेद, मेदासे हड्डी, हड्डीसे मज्जा, मज्जासे शुक्र प्रगट होताहै[१] ।

रसको प्राधान्यता दिखाते है ।

तत्रैषांधातूनामन्नपानरसः प्रीणयिता रसजंपुरुषंविद्याद्रसंर-क्षेत्प्रयत्नतः । अन्नात्पानाच्चमतिमानाचरेच्चाप्यतन्द्रितः ।

अर्थ--उक्त षड्धातुओंको अन्नपानका सारभूत रस पोषणकर्ताहै । यह पुरुष

---

१ कोई शंका करेकि, यदि रससे रुधिर, रुधिरसे मांस आदि प्रगट होताहै, तो पूर्व २ धातुओंकी हानी होनी चाहिये और उत्तर २ धातुओंकी वृद्धि होनी चाहिये, इसलिये

रससे प्रगट होताहै, अतएव बुद्धिमान् पुरुष अन्नसे पान (पीनेके पदार्थोंसे) सावधानीके साथ रसकी रक्षा करे। और अन्नपानका सेवन करे।

रसशब्दकी निरुक्ति।

तत्ररसगतौधातुरहरहर्गच्छतीत्यतोरसः। सखलुत्रीणित्रीणिकलासहस्राणिपञ्चदशचकलाएकैकस्मिन्धातावतिष्ठत एवंमासेनरसःशुक्रीभवतिस्त्रीणाञ्चार्त्तवमिति।

अर्थ–तहां रसशब्द रसगतौ धातुसे सिद्ध होताहै। अर्थात् निरंतर गमन करनेसे इसको रस कहतेहैं। यह रस एकएक धातुमें तीनतीन हजार और पंद्रहकला रहता है। इसप्रकार रस १ महिनेमें शुक्र होताहै। और स्त्रियोंके आर्त्तव (शुक्र) होता है। दशकलाकी एक घडी होतीहै. इसहिसाबसे३०१५ कलाओंके पांच दिनहोते हैं। इसको इसप्रकार समझना चाहिये कि भोजन कराहुआ अन्न एकदिनमें रस होताहै फिर यहरस प्रत्येकधातु (अर्थात् रुधिर, मांस, मेद, हड्डी, मज्जा, और शुक्र) में पांचपांच दिन रहकर भावांतरको प्राप्त होताहै। जैसे पांचदिन रुधिररूप रहकर छट्ठेदिन मांस होताहै, फिर ग्यारवेदिन मेदा होताहै, सोल्हवेदिन हड्डी, इक्कीसवेदिन मज्जा और छब्बीसवेदिन शुक्र होता है। एकमहीनेमें संपूर्णरसका शुक्र होजाताहै। इसजगे आर्त्तवशब्द करके शुक्रकाही ग्रहणहै अर्थात् स्त्रीकेभी १ महिनेमें रस शुक्र

कहतेहैं कि, उन रसादिधातुओंका मलस्थलानुभागविशेषकरके त्रिविध परिणाम होताहै, जैसे अन्नके पचनेसे स्थूलभाग मल और सूक्ष्मभाग रस प्रगटहोताहै इनका जो दूषित भाग रहताहै उस्से मलमूत्र होताहै। कफके स्थूलभागसे रस, सूक्ष्म भागसे रुधिर, अग्निपक्वरक्तसे मल प्रगट होताहै, पित्तके स्थूलभागसे शोणित और सूक्ष्मभागसे मांस बनताहै, उसमें आत्मपावककरके पच्यमान होनेसे नाक कान नेत्रआदिके मल प्रगट होतेहैं उसका स्थूलभाग मांस और सूक्ष्मभाग मेदा प्रगट होतीहै और बाकीका पक्कहोकर स्वेदादिक होतेहैं. स्थूलांशमेद और सूक्ष्मभाग हड्डी तहां मज्जा अपनी अग्निसे पक्कहो नेत्र, पुरीष, और त्वचामें चिकाईरूप मल प्रगट करतीहै. स्थूलभाग-मज्जा सूक्ष्मभाग शुक्र इसके पचनेसे मल प्रगट होताहै और कोई वस्तु नहींहोती; जैसें सोनेको हजारवारतपानेंसे केवलमलही प्रगटहोताहै और कोईवस्तू नहींहोती. इसमें सूक्ष्मभाग ओज जानना. अब उक्तधातुओंके संगृहीत श्लोक कहतेहैं।

---

१ स स्थूलांशमलैः सर्वैर्भिद्यन्तेधातवस्त्रिधा। सस्थूलोंऽशःपरंसूक्ष्मो विण्मलं यांतितन्मलाः। स्वाग्निभिः पच्यमानेषुमलः षट्सु रसादिषु। नशुक्रेपच्यमानेऽपि हेमनीवाक्षयेमलेइति।

होताहै कदाचित् ऐसा न मानोंगे तो स्त्रियोंके छधातुहीं माननी होवेगी, परंतु कोई आचार्य कहतेहैं कि रज रसकेसदृश सातवेंदिन प्रगट होता है, और कोई आचार्य पुनः आर्त्तवग्रहणसे यह कहतेहैंकि एक महिनेमें आर्त्तव होताहै और (स्त्रीणांचार्त्तवम्)इसपदमें जो चकारहै इस्सेशुक्रभीहोताहै ऐसा जानना इसमें पूर्वोक्त प्रमाण जैसे(यदानार्यावुपेयातां वृषस्यंत्यौ कथंचन। मुंचंत्यौशुक्रमन्योन्यमनास्थिस्तत्रजायते)

अष्टादशसहस्राणि संख्याह्यस्मिसन्मुच्चये।
कलानांनवतिः प्रोक्ता स्वतंत्रपरतन्त्रयोः॥

अर्थ–इसग्रंथमें १८०९० अठारहजार और नब्बै कला अर्थात् १ महिना शुक्रहोनेमें कहाहै, यह इसशास्त्र तथा अन्यशास्त्र (औरभ्र गोपुररक्षितकेमत) सेभी है।

दृष्टान्तत्रयकरके शरीरमें रसकी त्रिविधगति दिखातेहैं,–

सशब्दार्चिर्जलसन्तानवदणुनाविशेषेणानुधावत्येवंशरीरं केवलम्।

अर्थ–सो रस शब्दसंतान अग्निसंतान और जलसंतानके सदृश सूक्ष्मप्रकारकरके सर्वदेहमें विचरताहै अर्थात् शब्दसंतानकरके रसको तिर्यग्गामित्व और अर्चि (अग्नि) संतानकेकहनेसे ऊर्ध्वगामित्व तथा जलसंतानके कहनेसे अधोगामित्व सूचनाकरी। कोईआचारी कहताहै कि इन तीनदृष्टांतोंसे मंद, मध्य और तीक्ष्ण अग्नि कहीहैं। अर्थात् शब्दसंतानवत् तीक्ष्णअग्निवालोंके रससंचार करेहै। अग्निसंतानवत् मध्यअग्निवालोंके और जलसंतानवत् मंदाग्निवालोंके रससंचारकरेहै, इससे यह दिखाया कि तीक्ष्ण अग्निवालोंके आठदिनमें रससे शुक्र होजाताहै और मंदाग्निवालोंके एकमहिनेमें परंतु इसमतका खंडन गयदासने अत्यंत कराहै, क्योंकि दीप्ताग्निवालेके कुछ न्यून एकमाहिनेमें शुक्रहोताहै। और मंदाग्निवालेके कुछअधिक एकमासमें, यदि १ महिनेमें रसकाशुक्र होवेतो वाजीकरण औषधोंकेप्रयोगोंको निष्फलत्वहै, इसलिये कहतेहैं।

वाजीकरण्यस्त्वौषधयः स्वबलगुणोत्कर्षाद्विरेचनवदुपयुक्ताः शुक्रं शीघ्रं विरेचयन्ति।

अर्थ–वाजीकरण औषधी (जिनकेसेवनसे पुरुषस्त्रीके भोगनेमें घोडेके स-

मानपुरुषार्थको प्राप्तहोवे) उन्होंके स्वबलाधिक्य तथा स्वगुणाधिक्यसे विरेचनवत् उपयोगकरनेसे शुक्रको तत्काल विरेचन करतीहै । यदि महिनेमें रस शुक्र होताहै तोबालकोंके विना पतनहोनेके भी क्योंनहीदीखे इसलिये कहतेहैं ।

यथाहि पुष्पमुकुलस्थोगन्धोनशक्यमिहास्तीतिवक्तुंनैवनास्तीत्यथवास्ति सतांभावानामभिव्यक्तिरितिकृत्वा केवलं सौक्ष्म्यान्नाभिव्यज्यते सएवगन्धोविवृतपत्रकेशरैः कालान्तरेणाभिव्यक्तिंगच्छत्येवंबालानामपिवयःपरिणामात् शुक्रप्रादुर्भावोभवतिरोमराज्यादयोऽथार्त्तवादयश्च विशेषा नारीणां रजसि चोपचीयमानेशनैःशनैःस्तनगर्भाशययोन्यभिवृद्धिर्भवति ।

अर्थ–जैसे पुष्पकलीकी गंधको कोईभी यह नहीं कहसकता कि इसमें गंधहै अथवा नहींहै, परंतु वास्तविक दृष्टिसे देखोतो उसमें गंध अवश्यहै । इसमें युक्ति कहतेहैं कि जो भाव पूर्वहीहै वोहीपश्चात् हेतुको प्राप्तहोकर प्रगटहोताहै, [जैसे तिलोंसे तैल आदि] परंतु वे अतिसूक्ष्महोनेसे प्रतीत नहीं होते परंतु वही पुष्पके जब पत्र और केशर बढजातीहै तब कालांतरकरके प्रकटहोतीहै इसीप्रकार बालकोंके शुक्र अवश्यहै परंतु अतिसूक्ष्म होनेसे प्रतीत नहीं होताहै, जब उनकी अवस्थाका परिणाम होताहै तब शुक्र प्रगट होताहै; उसीप्रकार डाढी मूंछ आदि प्रगट होतेहैं, और स्त्रियोंके आर्त्तव आदि जानने । स्त्रियोंके बहुधा रजके संग्रहहोनेसे धीरेधीरे स्तन, गर्भाशय, और योनिकी वृद्धिहोतीहै ।

सएवान्नरसोवृद्धानांजरापरिपक्वशरीरत्वान्नप्रीणनोभवति। तएतेशरीरधारणाद्धातवइत्युच्यन्ते तेषांक्षयवृद्धीशोणितनिमित्तेतस्मात्तदधिकृत्यवक्ष्यामः।

अर्थ--वोही अशेषधातुपोषक अन्नकारस वृद्धोंके जरापक्वशरीर होनेसे पोषणकर्त्ता नहींहोता [परंतु ईषत् अर्थात् जीवन्मात्र कर्त्ता होताहै] इन्हीं रसरुधिरआदिके शरीरधारण करनेसे धातु कहतेहैं । उनधातुओंकी क्षयवृद्धि शोणितनिमित्तकरकेहैं, अतएव उस रुधिरकोप्रधानकरके वर्णनकरतेहैं ।

वातपित्तकफदूषितरुधिरकेलक्षण।

तत्र फेनिलमरुणंकृष्णंपरुषंतनुशीघ्रगमस्कन्दि चवातेनदुष्टम्। नीलंपीतंहरितंश्यावंविस्रमनिष्टं पिपीलिकामक्षिकानामस्कन्दिश्चापित्तदुष्टम्। गैरिकोदकप्रतीकाशंस्निग्धंशीतलंबहलंपिच्छलंचिरस्रावि मांसपेशीप्रभंश्लेष्मदुष्टं च।

अर्थ--जो झागदार, लाल, काला, रूखा, धीरे २ चलनेवाला, और जो घनत्वभावको प्राप्त न होवे वो रुधिर वातदूषित जानना और जो नीला, पीला, हरित, काला, अनिष्टदुर्गंधवाला (आमगंधविशिष्ट) मक्खी चेंटी आदिको अप्रिय अर्थात् जिसमें बैठनहीं और घनत्वहीन वो पित्तदूषितरुधिरजानना और जो गेरूकेजलके समान लाल, चिकना, शीतल, सघन, झुलाईदार और देरमें निकले तथा मांसपेशीके समानहो वो रुधिर कफदूषित जानना।

त्रिदोषऔरद्विदोषदूषितरुधिरके लक्षण।

सर्वलक्षणसंयुक्तं कांजिकाभं विषतोदुर्गन्धि च संनिपातदुष्टं पित्तवद्रक्तंनातिकृष्णश्च द्विदोषलिङ्गं संसृष्टम्। जीवशोणितमन्यत्रवक्ष्यामः।

अर्थ–पूर्वोक्त तीनोंदोषोंके लक्षण संयुक्तहो और कांजीकेसमान रंगमें होवे, और दुर्गंधवाला होवे वो रुधिर संनिपातदुष्ट जानना। पित्तकेसमान लाल और अत्यंतकाला नहो वो द्विदोषजदूषितजानना। जीवशोणितके लक्षण आगे कहेंगे।

शुद्धरुधिरके लक्षण।

इन्द्रगोपप्रतीकाशमसंहतमविवर्णं च प्रकृतिस्थं जानीयात् विस्राव्यान्यत्र वक्ष्यामः।

अर्थ--इन्द्रगोप (इन्द्रवधू वा वीरवधूटी) के समान लालरंगका न अत्यंत गाढा न बहुतपतला और अविवर्ण (अर्थात् कपडेमें लगनेसे धोनेपर भी जिसका विवर्ण नहो) ऐसा रुधिर शुद्धजानना। रुधिरनिकालनेकी विधि अष्टविध शस्त्रकर्माध्यायमें लिखआएहैं।

अविस्राव्यमनुष्योंको कहतेहैं।

अथाऽविस्राव्याःसर्वाङ्गशोफः क्षीणस्य चाम्लभोजननिमित्तः पाण्डुरोग्यर्शसोदरिशोषिगर्भिणीनाञ्चश्वयथवः।

अर्थ--सर्वाङ्गसोथवाला, क्षीण, खटाई खानेसे जिसके सूजन हुईहो, पांडुरोगीकी सूजन, बवासीरवालेकी सूजन, उदररोगी, शोषरोगी और गर्भिणी, इनकी सूजनसे रुधिर नहीं काढना चाहिये ।

द्विविधस्रावका वर्णन ।

तत्र शस्त्रविस्रावणंद्विविधं प्रच्छान्नं शिराव्यधनं च । तत्र ऋज्वसंकीर्णं सूक्ष्मंसममनवगाढमनुत्तानमाशुच शस्त्रं पातयेन्मर्मशिरास्नायुसंधीनांचानुपघाति ।

अर्थ--शस्त्रविस्रावण दोप्रकारकाहै एक प्रच्छान्न (त्वक्मांसविद्धकरता) दूसरा शिराव्यधन अर्थात् शिराविधद्वारा जो रुधिरनिकालाजावे वो शिराव्यधन कहलाताहै । तहां नम्रतापूर्वक असंकीर्ण छोटामुखवाला, जिस्में समानरेखाहो, अदूरगातिक अर्थात् उसकी रेखा दूरतक नगईहो, मांसका स्पर्श नकरे, तथा शिरा, स्नायु, और सन्धी, इनको बचायकर बहुतजल्दी हलकेहाथसे शस्त्रपात करना चाहिये ।

रुधिरननिकलनेके कारण ।

तत्रदुर्दिने दुर्विद्धेशीतवातयोरस्विन्नेऽभुक्तवतः
स्कन्नत्वाच्छोणितंनस्रवत्यल्पंवास्रवति ।

अर्थ--दुष्टदिनमें, दुर्विधहोनेमें शीतवातके योगसे विनास्वेदनकरे, विनाभोजनकरे और स्कन्नत्व (अर्थात् भलेप्रकार विद्धनहोनेसे) रुधिर नहीं स्रवे । और स्रवे तो थोडा स्रवताहै ।

मदमूर्च्छाश्रमार्त्तानां वातविण्मूत्रसङ्गिनाम् ।
निद्राभिभूतभीतानां नृणां नासृक्प्रवर्त्तते ।

अर्थ--मद (विषमद्यजविकार) मूर्छित, श्रमसेआर्त्त, जिनके अधोवायु, मल, मूत्रका वेग होरहाहो और निद्राआरहीहो तथा भयलगरहाहो, ऐसे मनुष्योंके रुधिर नहीं निकलताहै ।

दुष्टरुधिरके अवगुण ।

तद्दुष्टं शोणितमनिर्ह्रियमाणं कण्डूशोफरागदाहपाकवेदना जनयेत् ।

अर्थ--दुष्टरुधिर अथवा आर्तवके न निकलनेसे खुजली, सूजन, चकत्ते दाह, पाक, और पीडाको करे हैं ।

अतिरुधिर निकलनेका कारण।

अत्युष्णातिस्विन्नातिविद्धेष्वज्ञैर्विस्रावितमतिप्रवर्त्तते।

अर्थ--अत्यंत गरमीसे अत्यंत स्वेदनकरनेसे अत्यंत विद्ध होनेसे तथा मूर्ख पुरुषके विस्रावकरनेसे रुधिर अत्यंत निकलताहै।

अतिरुधिर निकलनेसे अवगुण।

तदतिप्रवृत्तं शिरोभितापमान्ध्यमधिमन्थं तिमिरप्रादुर्भावं धातुक्षयमाक्षेपकंपक्षाघातमेकाङ्गविकारं तृष्णादाहौहिक्कां कासंश्वासंपांडुरोगंमरणंचापादयति।

अर्थ--रुधिरके अत्यंत निकलनेसे मस्तकशूल, अंधापना, नेत्रदूखना, तिमिररोग, धातुक्षीण, आक्षेपक रोग, पक्षाघात, एकअंगका विकार, प्यास, दाह, हिचकी, खांसी, श्वास, पांडुरोग, और मरण इत्यादि विकार होतेहैं।

उक्तदोषोंमें हेतु कहतेहैं।

तस्मान्नशीतेनात्युष्णे नास्विन्नेनातितापिते।
यवागूंप्रतिपीतस्य शोणितं मोक्षयेद्भिषक्।

अर्थ-पूर्वोक्त दोष होनेके कारण,अत्यंत सरदीमें,तथा न बहुत गरमीमें न बहुत स्वेदितके तथा जो सूर्यादिके तापसे तापितहो ऐसे रोगीका रुधिरमोक्षण नहीं करना, तथा जो यवागू पीचुकाहो उसका रुधिर निकालना चाहिये यवागूकरके इसजगे तिलयवागू जाननी, क्योंकि तिलयवागू सद्यस्नेहनी है। और रुधिरको उत्क्लेदकारी है।

शुद्ध रुधिरके लक्षण।

सम्यग्गत्वायदारक्तं स्वयमेवावतिष्ठते।
शुद्धंतदा विजानीयात्सम्यग्विस्रावितंतुतत्।

अर्थ--दुष्ट रुधिर संपूर्ण उत्तम रीतिसे निकलकर अपने आप बंद होजावे तब जाने कि अब रुधिर शुद्ध है। और उत्तम स्राव हुआ। कोई आचारी अन्यथा व्याख्यान करते हैं[1]।

सम्यग्विस्रावित रुधिरके लक्षण।

लाघवं वेदनाशान्तिर्व्याधेर्वेगपरिक्षयः॥
सम्यग्विस्राविते लिङ्गं प्रसादो मनसस्तथा।

---

१ न चातिवेगदुष्टानां सम्यग्गत्वाविनिःसृतम्। विहाय स्वेदरूपेण न तथा ह्यवतिष्ठते। प्रयत्नमनपेक्ष्यासृक् तदा शुद्धं विनिर्दिशेत्॥ १॥

अर्थ-देहमें हलकापना, पीडाकी शांति, व्याधीके वेगकी शांति और मनका प्रसन्न होना, ये सम्यग्विस्रावितरुधिरके लक्षण है।

रुधिर निकलवानेके गुण।

त्वग्दोषाग्रन्थयःशोफा रोगाःशोणितजाश्चये।
रक्तमोक्षणशीलानां न भवन्ति कदाचन॥

अर्थ-त्वचाके रोग (कुष्ठ, न्यच्छ, नीलिकाआदि) गांठ, सूजन, और रुधिरके विकार, (रक्तगुल्म विद्रधि, विसर्पादि) ये रोग रक्तमोक्षणशीलोंके अर्थात् जे फस्त, जोखआदिसे रुधिर निकलवातेहैं उन्होंके कदाचित् नहीं होते।

अप्रवृत्त रक्तका उपाय।

अथ खल्वप्रवर्त्तमानेरक्ते एलाशीतशिवकुष्ठतगरपाठाभद्रदारुविडंगचित्रकत्रिकटुकागारधूमहरिद्रार्काङ्कुरनक्तमालफलैर्यथालाभं त्रिभिश्चतुर्भिः समस्तैर्वाचूर्णीकृतैः सर्षपतैललवणप्रगाढैर्व्रणमुखमवघर्षयेदेवंसम्यक्प्रवर्त्तते।

अर्थ-यदि फस्त खोलनेसे रुधिर न निकले तो इलायची, कपूर, कूठ, तगर, पाढ, देवदारू, वायविडंग, चित्रक, त्रिकटु, (सोंठ मिरच पीपल) घरका धूंआ, हरदी, आकके पत्ते, बडा कंजाका फल, इनमेंसे उससमय तीन या चार अथवा समस्त औषधोंका चूर्णकर सरसोंका तेल और सैंधा निमक मिलायकर जहां शस्त्रलगायाहो उसजगे उस व्रणके मुखको धीरे २ घिसे इसप्रकार करनेसे रुधिर भलेप्रकार निकलता है।

अतिरुधिरानिकले उसका उपाय।

अथातिप्रवृत्ते रोध्रमधुकप्रियंगुपतंगगैरिकसर्जरसरसाञ्जनशाल्मलीपुष्पशंखशुक्तिमाषयवगोधूमचूर्णैःशनैर्व्रणमुखमवचूर्ण्यांगुल्यग्रेणावपीडयेत्।

अर्थ-फस्त खोलनेपर अथवा अन्यकारणसे रुधिर अधिक निकले तो लोध, पठानी, मुलहटी, फूलप्रियंगु, पतंग, (लाल चंदन) गेरू, राल, सुरमा, सेमरका फूल, शंख, सीप, उडद, जव, गेहूं, इनका चूर्णकर व्रणके मुखपर धीरे२ मालिसकर उँगलीसे दाब देवेतो रुधिर निकलता हुआ बंद होजावे।

सालसर्ज्जार्जुनारिमेदमेषशृंगधवधन्वनत्वग्भिर्वा चूर्णिताभिः

क्षौमेण ध्मापितेन समुद्रफेनलाक्षाचूर्णैर्वायथोक्तैर्व्रणबन्धनद्रव्यैर्गाढं बध्नीयात् । शीताच्छादनभोजनागारैः शीतैःपरिषेकप्रदेहैश्चोपाचरेत् क्षारेणाग्निनावादहेद्यथोक्तव्यधनादनन्तरंवातामेवातिप्रवृत्तांशिरांविध्येत् ।

अर्थ–साल, राल, कोह, अरिमेद, (अरिमंज भाषांतर) मेढासिंगी, धौं धामन, इनकी छालका चूर्णकर और कपडछानकर इसचूर्णको उसव्रणके मुखपर लगावे,अथवा समुद्रफेन और लाखके चूर्णको लगावे,और उंगलीसे दबावेतो रुधिर निकलना बंद होवे पीछे इसव्रणको व्रणके बांधनेके क्षौम,कपास और वस्त्रआदिसे दृढ बांधे । पीछे शीतल भोजन, शीतल ओढना बिछोना, शीतल घर, शीतलही जलकी धारा देना, शीतल प्रदेहआदि करने चाहिये । अथवा क्षार, वा अग्निसे दहन करे जब यथोक्त व्यधन होचुके तब पूर्वोक्त शिराका वेध करे ।

काकोल्यादिक्काथं वा शर्करामधुमधुरंपाययेत् ।

अर्थ–रक्तस्रुतीमें भीतरके विद्ध होनेसे उसका उपाय कहतेहैं कि कांकोल्यादिके काढेमें मिश्री सहत करके मधुर पिवाना चाहिये ।

पथ्य कहते हैं ।

एणहारिणोरभ्रशशमाहिषवराहाणां वा रुधिरंक्षीरयूषरसैः सुस्निग्धैश्चाश्नीयादुपद्रवांश्च यथास्वमुपाचरेत् ।

अर्थ–एण (काला हरिण) हरिण (लाल हरिण) मेंढा, शशा, भैंसा, शूकर, इनका रुधिर रक्तस्रुतिवाले रोगीको पिलाने चाहिये । दूध, और मूंगका यूष तथा मांसरस इनमें घृत मिलायकर यथायोग्य दोषोंमें देना चाहिये । और इसके ऊपर दूधभात खाना चाहिये । बहुत वैद्य घृतप्लुत मोहनभोग (हलुआ) खानेको देतेहैं । कोई कहतेहैं कि, पित्त दुष्टरक्तकी अतिप्रवृत्तिमें क्षीरभोजनको देवे । अथवा पित्तप्रकृतिवालेको दूध देना चाहिये कफदुष्टरक्तकी अतिप्रवृत्तिमें यूषभोजन देवे । अथवा कफप्रकृतिवालेको यूषभोजन देवे वातदुष्टरक्तवाले रोगीको अथवा वातप्रकृतिवालेको मांसरसभोजन देना चाहिये । कोई कहता है कि, मन्द, मध्य, तीक्ष्ण अग्निवाले रोगियोंको क्षिरादि सिक्त ओदन (भात) भोजन देना । और रक्तस्रुतिवाले रोगीके यदि मस्तकशूल आदि रोग होवे तो यथायोग्य चिकित्सा कर्त्तव्य है ।

रक्तस्रावजनित अग्निमांद्यचिकित्सा।

धातुक्षयात्स्रुतेरक्तेमंदःसञ्जायतेनलः। पवनश्चपरंकोपंयाति-यस्मात्प्रयत्नतः। तन्नातिशीतैर्लघुभिः स्निग्धैःशोणितवर्द्धनैः। ईषदम्लैरनम्लैर्वाभोजनैः समुपाचरेत्।

अर्थ–रक्तमोक्षणके अंतमें धातुक्षय होनेसे जठराग्नि मंद होती है, और पवनपरमकोपको प्राप्त होती है इसीसे यत्नपूर्वक ऐसे रोगीका न बहुत शीतल, हलके स्निग्ध, और रुधिरके बढानेवाले, किंचित् खट्टे, अथवा खटाईरहित, ऐसे आहार करके उपचार कर्त्तव्य है।

रुधिर रोकनेके चतुर्विध यत्न।

चतुर्विधं यदेतद्धिरुधिरस्य निवारणम्। सन्धानं स्कंदनंचैव पाचनंदहनंतथा। व्रणंकषायः सन्धत्तेरक्तंस्कन्दयतेहिमम्। तथा सम्पाचयेद्भस्म दाहःसङ्कोचयेच्छिराः। अस्कन्दमानेरुधिरेसन्धानानिप्रयोजयेत्। सन्धानेभ्रश्यमानेतु पाचनैः समुपाचरेत्।

अर्थ–रुधिरका निवारण अर्थात् रोकनेके चार उपाय हैं। जैसे १ संधान, २ स्कंदन, ३ पाचन, और ४ दहन इनमें कसेली (लोध, हरीतकीआदि) औषध व्रणको संधान करती है। शीतल वस्तु रुधिरको गाढा करती है। और भस्म व्रणको पाचन करे है। और दाहकर्म शिराका संकोच करे है। यदि रुधिर शीतल कर्मसे घनीभावको न प्राप्त होवे तो संधान द्रव्योंका प्रयोग करै। यदि संधान करनेपरभी रुधिर न रुके तो पाचनोपचार करने चाहिये (अर्थात् रेसमकी भस्म वा मोरपंखोंकी भस्मआदि भरनी चाहिये।

कल्पैरेतैस्त्रिभिर्वैद्यः प्रयतेतयथाविधि। असिद्धिमत्सुचैतेषु दाहःपरम इष्यते। सशेषदोषेरुधिरेनव्याधिरतिवर्त्तते। सावशेषेततःस्थेयं नतु कुर्यादतिक्रमम्।

अर्थ–उक्तात्रिविध उपायोंसे वैद्य रुधिरको रोके यदि इन तीनों उपायोंके करनेपरभी रुधिर बंद न होवे तब क्षतस्थानको दाह करना चाहिये। थोडा दोष शेष रहा जिस्में ऐसा रुधिर देहमें रुकनेसे रोगोंको नहीं कर्ता है। इसीसे दुष्टरक्त समस्त निःशेष नहीं निकालना चाहिये। किंतु उसकी रक्षा करनी चाहिये इस्से विपरीत करनेसे दुःख होता है।

देहस्यरुधिरंमूलं रुधिरेणैवधार्य्यते । तस्माद्यत्नेनसंरक्ष्यं रक्तंजीवइतिस्थितिः ।

अर्थ-देहका रुधिरही कारण है, और इसी रुधिरकरके यह देह धारण कराजाता है । इसीसे इस रुधिरकी यत्नपूर्वक रक्षा करे क्योंकि रक्त है सोई जीव है ।

शोणितावशेषमें पश्चात्कर्म ।

स्रुतरक्तस्यसेकाद्यैःशीतैःप्रकुपितेऽनिले ।
शोफंसतोदंकोष्णेनसर्पिषापरिषेचयेत् ॥

अर्थ-रक्तस्रावके अंतमें शीतल सेचनादि क्रियाद्वारा वायु कुपित होकर सोथ उत्पन्न करती है उसको किंचित् उष्ण घृत सेचनद्वारा निवारण करनेकी चेष्टा करे ।

इति श्रीमदआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघण्टुरत्नाकरे त्रयोविंशतितमस्तरङ्गः ॥ २३ ॥

अथातोदोषधातुमलक्षयवृद्धिविज्ञानीयाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ-अब दोषधातुमलक्षयवृद्धि विज्ञानीयाध्यायको कहेंगे, तहां दोष (वातपित्तादि) धातु (रसरक्तादि) मल (पुरीषादि) इनका क्षय और वृद्धिका विज्ञान जिस अध्यायमें उसको कहेंगे ।

दोषधातुमलमूलंहिशरीरं तस्मादेतेषांलक्षणमुच्यमानमुपधारय ।

अर्थ-दोष, धातु, मल, मूल यह शरीर है । अतएव इनके लक्षण मैं कहताहूं इनको तुम धारण करो । अर्थात् सावधान होकर सुनो ।

प्रकृतिस्थ वातके लक्षण ।

तत्र प्रस्पन्दनोद्वहनपूरणविरेकधारणलक्षणवायुः पञ्चधाप्रविभक्तःशरीरंधारयति ।

अर्थ-तहां प्रस्पन्दन, उद्वहन, पूरण, विरेक, धारण, लक्षणयुक्त वायु पांच विभागोंमें प्राप्त हो देहको धारण करती है । तिनमें प्रस्पन्दन (शरीरका चलायमान होना) व्यानवायुका कर्म है । उद्वहन (इन्द्रियार्थोंका धारण) उदानवायुका कर्म है । पूरण (आहारद्वारा परिपूर्ण करना) प्राणवायुका कर्म है । विरेक (मलमूत्ररसका पृथक्करण) समान वायुका कर्म है, धारण (शुक्रमूत्रादिकोंके वेगका त्याग और अवेगके समय धारण) ये अपानवायुका कर्म है ।

प्रकृतिस्थपित्तके लक्षण ।

रागपक्त्योजस्तेजोमेधोष्मकृत्पित्तं पंचधाप्रविभक्तमग्निकर्मणानुग्रहंकरोति ।

अर्थ–पित्त-पाचक, रंजक, साधक, आलोचक, और भ्राजक, इन पांच भागोंमें विभक्त होकर राग, पक्ति, ओज, तेज, मेधा, और उष्णताको करे है । और अग्निके कर्म करके शरीरका उपकार करे है । तहां राग (रक्तवर्णताजनन) यह रंजक पित्त करता है। पक्ति (आहारका पचाना) यह पाचक पित्त करता है। ओज (देहमें सुभगता) साधक पित्त करेहैं। तेज (दृष्टी) यह आलोचक पित्त करे है । और ग्रंथपठनकी और धारणकरनेकी शक्तिभी साधकपित्त करे है और ऊष्मा (देहमें गरमीका होना) यह भ्राजक पित्त करता है।

प्रकृतिस्थ कफके कर्म ।

सन्धिसंश्लेषणस्नेहनरोपणपूरणबलस्थैर्यकृच्छ्लेष्मापञ्चधाप्रविभक्त उदककर्मणानुग्रहंकरोति ।

अर्थ–कफ-क्लेदन, अवलंबन, रसन, स्नेहन तौर श्लेष्मण इन भेदोंसे पांच विभागोंमें प्राप्त होकर संधिसंश्लेषण, स्नेहन, रोपण, पूरण, और बलको स्थिर करे है। तथा उदकके कर्म करके देहका पालन करे है।

प्रकृतिस्थ सात धातुओंके सामान्य कर्म ।

रसःप्रीणयतिरक्तपुष्टिंचकरोति । रक्तंवर्णप्रसादंमांसपुष्टिंजीवयतिच। मांसंशरीरपुष्टिमेदसश्च । मेदःस्नेहस्वेदौदृढत्वंपुष्टिमस्थ्नांच । अस्थिदेहधारणंमज्ज्ञःपुष्टिंच।मज्जाप्रीतिंस्नेहंबलंशुक्रपुष्टिंपूरणमस्थ्नाञ्चकरोति । शुक्रंधैर्यच्यवनंप्रीतिंदेहबलंहर्षबीजार्थंच ।

अर्थ–रस-पालन और रुधिरकी पुष्टि करे है । रुधिर-वर्णको उज्ज्वल, मांसकी पुष्टि, और जीवोंको जिवाता है । मांस-शरीरकी पुष्टि और मेदाकी पुष्टी करे है । मेदा-स्नेहन (चिकनाई) पसीने, दृढता, और हड्डीकी पुष्टता करे है । हड्डीकी-देहधारण, और मज्जाकी पुष्टि करे है । मज्जा:स्त्रीमें प्रीति, स्नेह, बल, और शुक्रकी पुष्टि तथा हड्डियोंको पूरण करे है । शुक्रधातु-स्त्रियोंमें धीरज न होना, और प्रीति तथा देहमें बल, हर्ष और बीजके अर्थ है ।

अथ मलोंके प्राकृत कर्म ।

पुरीषमुपस्तम्भं वाय्वग्निधारणञ्च । बस्तिपूरणविक्लेदकृन्मूत्रम् । स्वेदःक्लेदत्वक्सौकुमार्यकृत् । रक्तलक्षणमार्त्तवंगर्भकृच्च । गर्भोगर्भलक्षणं । स्तन्यंस्तनयोरापीनत्वजननंजीवनञ्चेति । तेषांविधिवत्परिरक्षणंकुर्वीत ।

अर्थ-पुरीष (विष्ठा) अवष्टंभ, और वायु अग्निको धारण करे है । बस्तीका पूरण, और विक्लेद, (आर्द्रता) यह मूत्र करता है । पसीने-देह आर्द्र, और त्वचाको सुकुमार करे है । अब उपधातुओंके कर्म कहते हैं । आर्तवमें रुधिरके लक्षण है, और गर्भ करे है । चकारसे रक्तके कर्म जीवनकोभी करे है । गर्भ-गर्भके लक्षण (स्तनोंके मुखपर श्यामता होना इत्यादि) करे है । स्तन्य (स्त्रीका दूध) स्तनोंको पुष्ट करे है और बालकको जीवन देता है । इसीसे उक्त वातादिकोंका विधिपूर्वक रक्षण करना चाहिये ।

क्षीणलक्षण ।

अतऊर्ध्वमेषांक्षीणलक्षणंवक्ष्यामः । क्षयःपुनरेषामतिसंशोधनातिसंशमनवेगविधारणासात्म्यान्नमनस्तापव्यायामानशनातिमैथुनैर्भवति ।

अर्थ-इसके उपरांत उक्त दोष, धातु, मलादिकोंके क्षीणलक्षण कहैंगे । तहां अति संशोधन (वमनविरेचनादि) अत्यंत शमन, वेगोंका धारण, अहृद्य अन्नका भक्षण, मनको पीडा होनेसे, व्यायाम (दंडकसरत) भूखे रहना और अत्यंत मैथुन करनेसे, उक्त दोष धातु मलादिकोंका क्षय अर्थात् क्षीणता होती है । परंतु इनमें वातकी वृद्धि जाननी । कोई आचारी इसपाठको क्षेपक मानते हैं ।

वातादि क्षीण होनेके लक्षण ।

तत्र वातक्षयेमन्दचेष्टताऽल्पवाक्त्वमल्पहर्षोमूढसंज्ञताच । पित्तक्षयेमन्दोष्माग्नितानिष्प्रभत्वंच । श्लेष्मक्षयेरूक्षतान्तर्दाह आमाशयेतराशयशिरसांशून्यतासंधिशैथिल्यं तृष्णा दौर्बल्यं प्रजागरणञ्च। तत्रस्वयोनिवर्द्धनद्रव्याण्येवप्रतीकारः ।

अर्थ-वातक्षीणमनुष्यकी सर्वचेष्टा मंद होती है, मंद बोले, अल्प हर्ष और मूढ संज्ञा होती है । पित्तक्षीण होनेसे मंद गरमी, और मंदाग्नि तथा प्रभा-

हीनताहोवे। कफक्षीण होनेसे देहमें रूखापन देहके भीतर दाह, आमाशय और ऊरू, कंठ, शिर, संधी, और मस्तकमें शून्यता, संधि शिथिल हो जावे, तृषा अधिक, दुर्बलता, और रात्रिमें जागरण करना ए लक्षण होते हैं। इनमें स्वयोनिवर्द्धक वस्तू अर्थात् जो वस्तु जिस जिस दोष क्षीणको पुष्ट करे वोही वो शीतरूक्षादि औषध सेवन करनी चाहिये। परंतु स्वयोनिवर्द्धक कटुकादि औषधोंका सेवन करना वर्जित है। क्योंकि कटुकादि औषध अन्य दोषोंकोभी कुपित करती है।

रसादिक्षीण धातुओंके लक्षण।

रसक्षयेहृत्पीडाकम्पःशून्यतातृष्णा च । शोणितक्षयेत्वक्पारुष्यमम्लशीतप्रार्थनाशिराशैथिल्यञ्च। मांसक्षयेस्फिग्गण्डौष्ठोपस्थोरुवक्षःकक्षापिण्डकोदरग्रीवाशुष्कतारौक्ष्यतोदौगात्राणांसदनंधमनीशैथिल्यञ्च । मेदःक्षयेप्लीहाभिवृद्धिः सन्धिशून्यतारौक्ष्यंमेदुरमांसप्रार्थना च। अस्थिक्षयेऽस्थितोदोदन्तनखभङ्गोरौक्ष्यञ्च। मज्जाक्षयेअल्पशुक्रतापर्वभेदोऽस्थिनिस्तोदोऽस्थिशून्यता च। शुक्रक्षये मेदवृषणवेदनाऽशक्तिर्मैथुनेचिराद्वाप्रसेकः प्रसेकेचाल्परक्तशुक्रदर्शनञ्च। तत्रापिस्वयोनिवर्द्धनद्रव्योपयोगः प्रतीकारः।

अर्थ–मनुष्यकी देहमें रसक्षीण होनेसे हृदयमें पीडा, कम्प, शून्यता, और प्यास ये लक्षण होते हैं। रुधिर क्षीण होनेसे त्वचामें कठोरता, खट्टे रसपर और शीतल वस्तुकी इच्छा होना, तथा शिरा (रग) शिथिल होती हैं। मांस क्षीण होनेसे कूले, गाल, होठ, लिंग, योनि, ऊरू, वक्षस्थल, कूख, पिंडिका (घोटू टकनोका वीच) उदर, और ग्रीवा (नाड) इन्होंका शुष्क होना, देहमें रूखापन, पीडा, देहका जडत्व, और धमनी नाडियोंका शैथिल्य होना ये लक्षण होते हैं। मेदाके क्षीण होनेसे प्लीह(तापतिल्ली)का बढना सन्धियोंमें शून्यता, त्वचामें रूक्षता, चिकनी वस्तु खानेकी और मांस खानेकी इच्छा। अस्थि (हड्डी) के क्षीण होनेसे हड्डियोंमें पीडा दांत और नखका टूटना, तथा रूखापन । मज्जाके क्षीण होनेसे अल्पशुक्रता, गांठोंमें पीडा,

---

१ वातक्षयेशीतरूक्षैर्नत्वन्यैः कटुकादिभिः। पित्तक्षयेपिकटुकैरुष्णैर्नलवणादिभिः। क्षीरादिभिः स्निग्धशीतैःप्रतिकुर्यात्कफक्षये इति।

हड्डीमें पीडा, तथा हड्डियोंमें शून्यता होती है । शुक्रके क्षीण होनेसे लिंग और पोतोंमें पीडा होना, मैथुन करनेकी शक्ति न रहे, यदि स्त्रीसंग कराभी तो बहुत देरमें वीर्य पतन हो, और स्खलित होनेमें अल्प रुधिर वा शुक्र निकलता है । इन सब क्षीण धातुओंका स्वस्वयोनिवर्द्धक औषधपानद्वारा वृद्धि करनी चाहिये ।

मलमूत्रक्षीणके लक्षण ।

पुरीषक्षयेहृदयपार्श्वपीडासशब्दस्य च वायोरूर्ध्वगमनं कुक्षौ संचरणं च । मूत्रक्षये बस्तितोदोऽल्पमूत्रताच । अत्रापिस्वयोनिवर्द्धनद्रव्याण्येवप्रतीकारः ।

अर्थ–मल क्षीण होनेसे हृदय और पसवाडोंमें पीडा हो । शब्दयुक्त वायुका ऊपरको गमन और संचारहोता है । मूत्र क्षीण होनेसे बस्तीमें पडिा अल्प मूत्रका उतरना ए लक्षण होते हैं । इस जगेभी जो वस्तु मलमूत्रको बढावे ऐसी औषध खाना चाहिये ।

उपधातु क्षीणके लक्षण ।

स्वेदक्षयेस्तब्धरोमकूपतात्वक्शोषः स्पर्शवैगुण्यं स्वेदनाशश्च तत्राभ्यंगःस्वेदोपयोगश्च । आर्त्तवक्षयेयथोचितकालादर्शनमल्पतावायोनिवेदना च । तत्रसंशोधनमाग्नेयानांचद्रव्याणांविधिवदुपयोगः । स्तन्यक्षयेस्तनयोर्म्लानतास्तन्यासम्भवोऽल्पतावा तत्रश्लेष्मवर्द्धनद्रव्योपयोगः । गर्भक्षयेगर्भास्पन्दनमनुन्नतकुक्षिताच तत्र प्राप्तबस्तिकालायाः क्षीरबस्तिप्रयोगोमेध्यान्नोपयोगश्चेति ।

अर्थ--इस मनुष्यकी देहमें स्वेद क्षीण होनेसे रोमांचोंका स्तब्ध होना और त्वचाका शुष्क होना तथा स्पर्शहानी और स्वेद (पसीने) न आवे । इस रोगमें उबटना और जैसे पसीने आवे वो चिकित्सा करनी चाहिये । आर्त्तव क्षीण होनेसे आर्त्तवका यथोचित कालमें न निकलना और अल्प निकले तथा योनिमें पडिा होवे । इस रोगमें वमन विरेचनद्वारा शोधन करना चाहिये परंतु कोई आचार्य कहता है कि, आर्त्तव नष्ट होनेमें वमन करावे, विरेचन न करावे क्योंकि विरेचन करानेसे पित्त क्षीण होकर आर्त्तव क्षीण होता है । तथा आग्नेयद्रव्य (तिल, उरद, और मद्य आदि) का सेवनकराना चाहिये ।

स्तनसम्बन्धीदूधके क्षय होनेसे स्तन कुम्हलाये हुयेसे होजावे, और स्तनोंमें दूध न रहे, अथवा थोडा रहे । इस रोगमें कफवर्धक द्रव्य सेवन करना चाहिये । गर्भ क्षीण होनेसे गर्भ (गर्भका बालक) फडके नहीं. और कूखऊंची न होवे तहां अष्टम महीना प्राप्त होनेसे क्षीरबस्तीका करना और पवित्र अन्नका भक्षण हित है ।

अतऊर्ध्वमतिवृद्धानांदोषधातुमलानांलक्षणंवक्ष्यामः ।

अर्थ-अब इसके उपरांत अतिवृद्ध दोष धातुमलोंके लक्षण कहेंगे ।

वृद्धिःपुनरेषांस्वयोनिवर्द्धनाभ्युपसेवनाद्भवति । तत्रवातवृद्धौत्वक्पारुष्यंकार्श्यंकार्ष्ण्यंगात्रस्फुरणमुष्णकामितानिद्रानाशोल्पबलत्वंगाढवर्चस्त्वञ्च । पित्तवृद्धौ पीतावभासतासन्तापःशीतकामित्वमल्पनिद्रतामूर्च्छाबलहानिरिन्द्रियदौर्बल्यंपीतविण्मूत्रनेत्रत्वंच । श्लेष्मवृद्धौशौक्ल्यंशैत्यंस्थैर्यंगौरवमवसादस्तन्द्रानिद्रासन्ध्यास्थिविश्लेषश्च ।

अर्थ-वातादि दोषोंकी वृद्धि इनके स्वयोनिवर्धक द्रव्यसेवनसे होती है । तहां वातवृद्धीके ये लक्षण हैं । त्वचाका कठोर होना, कृश होना, काली होना, देहका फडकना, गरमीकी इच्छा, निद्रानाश, अल्पबल, गाढा दस्त उतरे । पित्तकी अति वृद्धिसे देहमें पिलाई, संताप, शरदीकी इच्छा, थोडी निद्रा, मूर्च्छा बलहानि, इन्द्रियोंका दुर्बल होना, मलमूत्र, और नेत्र पीले होवे। कफकी अति वृद्धि होनेसे देह सपेद हो, शीतल हो, जिकडासा और भारी हो अवसाद (चित्त देह दोनोंमें ग्लानि) तन्द्रा, निद्रा, सन्धी और हाड्डियोंका आपसमें मिलजाना ये लक्षण होते हैं ।

अतिवृद्ध रसादि धातुओंके लक्षण।

रसोतिवृद्धौहृदयोत्क्लेदंप्रसेकंचापादयति । रक्तंरक्ताङ्गाक्षतां शिरापूर्णत्वं च । मांसंस्फिग्गण्डौष्ठोदरस्थोरुबाहुजंघासु वृद्धिं गुरुगात्रताञ्च । मेदःस्निग्धाङ्गतामुदरपार्श्ववृद्धिंकासश्वासादीन्दौर्गन्ध्यञ्च । अस्थिअध्यस्थीन्यधिदन्तांश्च । मज्जासर्वाङ्गनेत्रगौरवम् । शुक्रंशुक्राश्मरीमतिप्रादुर्भावञ्च ।

अर्थ-देहमें रसकी अतिवृद्धि होनेसे हृदयोत्क्लेद, (हल्लास अथवा वमन

होना) तथा मुखसे लार वहे। रुधिरकी-अतिवृद्धिसे देह और नेत्र लाल होवे, तथा रुधिरसे नसोंका परिपूर्ण होना होवे। मांसकी-अतिवृद्धीसे स्फिक् (कूले) गाल, होठ, लिंग, भग, जांघ, बाहु, और पींडरी, इनकी वृद्धि तथा देहका भारी होना होवे। मेदकी-अतिवृद्धिसे देहमें चिकनापना, उदर और पसवाडोंकी वृद्धि, खांसी, श्वास आदिरोग और देहमें दुर्गंध आना ये विकार होते हैं। हड्डीकी अतिवृद्धी होनेसे, हड्डीकी आधिक्यता और दांतोंकी आधिक्यता होती है। चकारसे केश नखकी वृद्धी जाननी। मज्जाकी अति-वृद्धि होनेसे सर्वांग, और नेत्र ए भारी होते हैं। देहमें शुक्रकी अति वृद्धि होनेसे अत्यंत शुक्र और पथरीका प्रादुर्भाव होता है।

अतिवृद्ध मल और उपधातुओंके लक्षण।

पुरीषमाटोपं कुक्षौशूलञ्च। मूत्रं मुहुर्मुहुःप्रवृत्तिबस्तितोदमा-ध्मानञ्च। स्वेदस्त्वचोदौर्गन्ध्यंकंडूं च। आर्त्तवमंगमर्दमति-प्रवृत्तिदौर्बल्यञ्च। स्तन्यंस्तनयोरापीनत्वंमुहुर्मुहुःप्रवृत्तितो-दञ्च। गर्भोजठराभिवृद्धिंशोथञ्च। तेषांयथास्वंसंशोधनंक्षपणं च। क्षयादविरुद्धैःक्रियाविशेषैःप्रकुर्वीत।

अर्थ–पुरीष (मल) के बढनेसे अफरा, और कूखमें शूल होता है। मूत्रके अत्यंत बढनेसे वारंवार मूत्र उतरे, बस्तिस्थानमें पीडा और अफरा होवे। पसीनेके अत्यंत बढनेसे त्वचामें दुर्गंध आवे और खुजली चले। आर्त्तवके अत्यंत बढनेसे अंग टूटे तथा आर्तवकी अत्यंत प्रवृत्ति और दुर्बलता होवे। स्तनसंबंधी दूधके बढनेसे स्तनोंका पुष्ट होना और वारंवार स्तनोंसे दूधका निकलना और पीडा होवे। गर्भके बढनेसे पेटका बढना और सूजन होती है. इन अतिवृद्ध मल और उपधातुओंका जिस २ वस्तुसे शोधन और शमन लिखा है वो करना चाहिये परंतु क्षयसे अर्थात् जिनके सेवनसे उक्त मल उपधातु क्षीण न हो ऐसी क्रिया करनी चाहिये।

पूर्वःपूर्वोऽतिवृद्धत्वाद्वर्द्धयेद्धिपरंपरम्।
तस्मादतिप्रवृद्धानांधातूनांह्रासनंहितम्।

१ तत्र स्त्रयोनिद्रव्याणामवबोधनार्थं धातुमलोपधातुषु श्लोकाः कथ्यन्ते। तद्यथा। यद्यपि पंचभूतानां वाच्यः पाकोद्विधा पुनः। तथाप्यपां प्रधानत्वाद्रसः सौम्योभिधीयते। अतिरिक्ता गुणारक्ते वह्निमासेतु पाथ-वाः। मेदस्यम्बुभुवोर्वह्निपृथिव्यनिलतेजसाम्। मज्जाशुक्रे च सौम्यस्य सूत्रेषु निखिलागणाः। भुवोविश्वार्त्त-वेत्वग्नेः प्रस्वेदस्तन्ययोरपाम्। इतिधातुमलेषूक्ता गुणाःप्राधान्यतःस्थिताः।प्रायेणभूगुणागर्भेस्तोकाद्यनुग्रहइति॥

अर्थ-पूर्वपूर्व कहिये पहिली २ धातुओंके बढनेसे वो परपर कहिये आगेआगेकी धातुओंकी वृद्धि करती है । अर्थात् रसके अत्यंत बढनेसें रुधिरकी और रुधिरके अत्यंत बढनेसे मांसआदिकी वृद्धि होती है । इसीसे अत्यंत बढी हुई धातुओंका ह्रास (समान) करनाही हित है । पूर्वपूर्व कहना केवल उपलक्षणमात्र हैं किंतु आगे २ की बढी हुई धातुभी पिछली धातुकी वृद्धि करे हैं और क्षीण होनेसे हानी करे है । जैसे रुधिर आगेकीधातु पिछलेरसकी इसीप्रकार औरभी जानो ।

मतांतरसें क्षीण वृद्ध धातुओंके लक्षण ।

असात्म्यान्नसदाक्रोधशोकचिंताभयश्रमैः । अतिव्यवायानशनात्यर्थसंशोधनैरपि । वेगानांधारणाच्चापिसाहसादभिघाततः । दोषाणामथधातूनांमलानांचक्षयोभवेत् ॥

अर्थ-धातु, दोष, और मल इनका-शरीरको अहित अन्न, पान, और क्रोध, शोक, चिंता, भय, श्रम, अतिमैथुन, अनशन (उपवास), रेचक, वेगधारण साहस कर्म, और अभिघात, इनसे क्षय होता है ।

वातक्षीणके लक्षण ।

वातक्षयेल्पचेष्टात्वंमंदवाक्त्वंविसंज्ञता ।

अर्थ-वायुके क्षय होनेसे अल्प चेष्टा, मंद २ बोलना, और चेतनाका नाश होता है ।

वातक्षीणवर्द्धन ।

कषायकटुतिक्तानिरूक्षशीतलघूनिच ।
यवमुद्गप्रियंगूंश्चवातक्षीणोभिकांक्षति ।

अर्थ-वातक्षीण रोगी कषेले, चिरपरे, कडुए, रूखे, शीतल हलके, ऐसे अन्नपान तथा यव, मूँग, प्रियंगू, इनकी इच्छा करता है ।

पित्तक्षयके लक्षण ।

पित्तक्षयेऽधिकःश्लेष्मावह्निर्मन्दःप्रभाक्षयः ।

अर्थ-पित्तक्षीण होनेसे कफकी वृद्धि होवे, और अग्नि मंद होकर कांतीका क्षय होय ।

पित्तक्षीणवर्द्धन ।

तिलमाषकुलत्थादिपिष्टान्नविकृतिंतथा । मस्तुसूक्ताम्लतक्राणिकांजिकंचतथादधि । कट्वम्ललवणोष्णानितीक्ष्णंक्रोधं

विदाहिच । समयंदेशमुष्णंचापित्तक्षीणोऽभिकांक्षति ।

अर्थ–पित्तक्षीणरोगी तिल, उरद, कुल्थी, पिष्टान्न, (पीठीके पदार्थ) दहीका तोर कांजीका भेद (सिरका) कांजी, छाछ, दही, कटु, अम्ल, नोनका, तीखा, ऐसे पदार्थोंकी इच्छा करे, क्रोध करे, और विदाही पदार्थ दाह होनेवाला समय, उष्णदेश, और गरमी इनकी इच्छा करता है ।

कफक्षयके लक्षण ।

सन्धयःशिथिलामूर्च्छारौक्ष्यदाहाःकफक्षये ।

अर्थ–कफक्षीण होनेसे संधियोंका शिथिल होना, मूर्च्छा, देहमें रूक्षता और दाह, ये रोग होते हैं ।

कफक्षीणवर्द्धन ।

मधुरास्निग्धशीतानिलवणाम्लगुरूणिच ।
दधिक्षीरंदिवास्वप्नंकफक्षीणोभिकांक्षति ।

अर्थ--कफक्षीण रोगी, मधुर, चिकने, शीतल, खारे, खट्टे, भारी पदार्थ, दही, दूध, और दिनमें सोनेकी इच्छा करे है ।

रसक्षीणके लक्षण ।

हृत्पीडाकण्ठशोषश्चत्वक्शून्यातृट्रसक्षये ।

अर्थ--रसधातुक्षीण होनेसे कंठशोष, त्वचाका बधिरपना, और तृषा ये लक्षण होते हैं ।

रसक्षीणवर्द्धन ।

रसक्षीणोनरः कांक्षत्यम्भोतिशिशिरंमुहुः ।
रात्रिनिद्रांहिमंचन्द्रंभोक्तुंचमधुरंरसम् ।

अर्थ--रसक्षीण रोगी अत्यंत शीतल जल वारंवार पीनेकी, रात्रिनिद्रा, हिम, चंद्र और मीठादही इत्यादि भोगनेकी इच्छा करता है ।

रक्तक्षीण ।

शिराश्लथाहिमाम्लेच्छात्वक्पारुष्यंक्षयेऽसृजः ।

अर्थ–रुधिरके क्षीण होनेसे शिरा शिथिल, तथा शीतल होती है । त्वचा कठोर होती है, तथा अंग खरदरा होवे, और खटाईपर चित्तका चलना ये लक्षण होते हैं ।

रुधिरक्षीणकी वृद्धि ।

इक्षुंमांसरसंमंथंमधुसर्पिर्गुडोदकम् । द्राक्षादाडिमसुक्तानिस-स्नेहलवणानिच । रक्तसिद्धानिमांसानिरक्तक्षीणोऽभिकांक्षति ।

अर्थ–रक्तक्षीण पुरुष ईख, मांसरस, मंथ (खांड, दाख, और ईखका रस मिलाकर जो पदार्थ बनाते हैं उसको मंथ कहते हैं.) सहत, मक्खन, गुड, पानी, दाख, वलायती अनार, सिरका, (अथवा कंद, मूल, फल, स्नेह, और नोन मिलाकर पदार्थ बनाते हैं उसको सुक्त कहते हैं) रक्तसिद्धपदार्थ, और मांस इनकी इच्छा करता है ।

मांसक्षीणके लक्षण ।

गण्डोष्ठकंधरास्कंधवक्षोजठरसन्धिषु । उपस्थप्रोथपि-ण्डीषुशुष्कतागात्ररूक्षता ।तोदोधमन्यःशिथिलाभवेयुर्मांस-संक्षये ।

अर्थ–मांसका क्षय होनेसे गाल, और होठ, नाड, कंधे, वक्षस्थल, पेट, संधी, उपस्थ, कूला और घोंटूटकनेका वीच, इनमें शुष्कपना, देहमें रूखा-पन पीडा, धमनी नाडीनकी शिथिलता ए लक्षण होतेहैं ।

मांसक्षयवर्द्धन ।

अन्नानिदधिसिद्धानिखांडवांश्चबहूनपि ॥
स्थूलक्रव्यादमांसानिमांसक्षीणोभिकांक्षति ॥

अर्थ--मांसक्षीण पुरुष दधिसिद्ध अन्न, (दहीवडा) श्रीखंड (सिखरन) इत्यादि पदार्थोंका अत्यंत सेवन और स्थूल, जड, ऐसे क्रव्यादमांस इनकी इच्छा करे हैं ।

मेदःक्षयलक्षण ।

प्लीहाभिवृद्धिसंधीनांशून्यतातनुरूक्षता ।
प्रार्थनास्निग्धमांसस्यलिंगंस्यान्मेदसःक्षये ।

अर्थ–मेदा (चरबी) क्षय होनेसे प्लीहा (तापतिल्ली) बढे, अंगकी संधी शून्यहो शरीरमें रूक्षता और स्निग्धमांस खानेकी इच्छा ए मेदक्षीणके लक्षण हैं ।

मेदक्षीणवर्द्धन ।

खांडवामधुराम्लादिरससंयोगपाचिताः । मेदःसिद्धानिमां-

सानिग्राम्यानूपौदकानिच । सक्षाराणिविशेषेणमेदःक्षीणोऽभिकांक्षति ।

अर्थ--मेदक्षीण रोगी श्रीखंड (सिखरण) मधुर, खट्टे, इत्यादि रसोंके संयोगसे बनेपदार्थ, मेदसिद्ध मांस, ग्रामके जीवोंका मांस, जलसमीप रहनेवाले जीवोंका मांस जलके जीवोंका मांस, और विशेष करके क्षार मिले मांसोंकी इच्छा करता है ।

अस्थिक्षयके लक्षण ।

अस्थिशूलंतनौरौक्ष्यंनखदंतत्रुटिस्तथा ।

अर्थ-अस्थिक्षय होनेसे हाड दूखे, शरीर रूखा हो जावे, नख दांत ये टूटे ये अस्थिक्षीणके लक्षण है.

अस्थिक्षीणवर्द्धन ।

अस्थिक्षीणस्तथामांसंमज्जास्थिस्नेहसंयुतम् ।

अर्थ-अस्थिक्षीण पुरुष मांस, मज्जा, और हड्डी स्नेहयुक्त अन्नकी इच्छा करताहै ।

मज्जाक्षयके लक्षण ।

शुक्राल्पत्वंपर्वभेदस्तोदःशून्यत्वमस्थिनि ।
लिंगान्येतानिजायंतेनराणांमज्जसंक्षये ।

अर्थ-मज्जाका क्षय होनेसे शुक्र (वीर्य) अल्प हो, संधियोंमें पीडा, हड्डी दूखे, और शून्य होवे, ए लक्षण होते हैं ।

मज्जाक्षीणवर्द्धन ।

स्वाद्वम्लसंयुतंद्रव्यंमज्जाक्षीणोऽभिकांक्षति ।

अर्थ-मज्जाक्षीणपुरुष स्वादु, और खट्टे, रसमिले पदार्थोंकी इच्छा करताहै ।

शुक्रक्षीणके लक्षण ।

शुक्रक्षयेरतेशक्तिर्व्यथाशेफलिमुष्कयोः ।
चिरेणशुक्रसेकःस्यात्सेकेरक्ताल्पशुक्रता ।

अर्थ-शुक्रक्षीण होनेसे मैथुनविषयमें अशक्तता लिंग, और वृषण, (पोते) इनमें पीडा और रतिकालमें बहुत देरमें थोडा शुक्र तथा रुधिर निकले, ऐसे लक्षण होते हैं ।

शुक्रक्षीणाभिवर्द्धन ।

शिखिनःकुक्कुटस्याण्डंहंससारसयोस्तथा ।
ग्राम्यानूपोदकानांचशुक्रक्षीणोभिकांक्षति ।

अर्थ–शुक्रक्षीण पुरुष, मोरके मुरगेके अंडे उसीप्रकार हंस, सारस, इनके अंडे और मांस तथा गामके समीप रहनेवाले (बकरी मेढा आदि) जलके समीप रहनेवाले तथा जलमें रहनेवाले जीवोंके मांस खानेकी इच्छा करताहै ।

ओजक्षयके लक्षण ।

ओजःसंक्षीयतेकोपाच्चिंताशोकश्रमादिभिः । रूक्षतीक्ष्णोष्ण-कटुकैःकर्षणैरपरैरपि । बिभेतिदुर्बलोभीक्ष्णंचिन्तयेद्व्यथितेन्द्रियः । दुश्छायोदुर्मनारूक्षःक्षामःस्यादोजसःक्षये ।

अर्थ–क्रोध, क्षुधा, चिंता, शोक, श्रम, इन करके तथा रूक्ष, तीक्ष्ण, उष्ण, कटु, इनकरके अथवा अन्य कृशकर्त्ता पदार्थोंसे ओजक्षय होनेसे अत्यंत दुर्बलता, भय, चिंता, इन्द्रियोंमें व्यथा, कांतिनाश, कालौच, इत्यादि करके रूक्ष होता है । तथा कृश होवे ए लक्षण होते हैं ।

पुरीषक्षयके लक्षण ।

पुरीषस्यक्षयेपार्श्वेहृदयेचव्यथाभवेत् ।
सशब्दस्यानिलस्योर्द्धगमनंकुक्षिसंवृतिः ।

अर्थ–पुरीष (मल) क्षय होनेसे पसवाडोंमें हृदयमें पीडा हो, सशब्द वायुकी ऊर्ध्वगती और कुक्षि कहिये उदरका संकोच होवे ।

मलक्षीणवर्द्धन ।

यवान्नंयावकान्नंचशाकानिविविधानिच ।
मसूरमाषयूषंचमलक्षीणोऽभिकांक्षति ।

अर्थ–मलक्षीण पुरुष यवके पिष्टान्न तथा यवके बनेपदार्थ, और अनेक प्रकारका शाक मसूर, उरद, इनके यूष इत्यादि पदार्थोंकी इच्छा करता है ।

मूत्रक्षयके लक्षण ।

मूत्रक्षयेऽल्पमूत्रत्वंबस्तौतोदश्चजायते ।

अर्थ–मूत्रक्षीण होनेसे अल्प मूत्र उतरे तथा बस्तीमें दुःख होवे ।

मूत्रक्षीणवर्द्धन ।

पेयमिक्षुरसंक्षीरंसगुडंबदरोदकम् ।
मूत्रक्षीणोऽभिलषतित्रपुसैर्वारुकानिच ।

अर्थ-पेय (शरबतआदि) ईखका रस, दूध, गुड, बेर, जल, खीरा, ककडी, इत्यादि पदार्थोंकी मूत्रक्षीण पुरुष इच्छा करता है ।

स्वेदक्षयके लक्षण ।

स्वेदनाशस्त्वचोरौक्ष्यंचक्षुषोरपिरूक्षता ।
स्तब्धाश्चरोमकूपास्युर्लिंगंस्वेदक्षयेभवेत् ।

अर्थ-स्वेद (पसीनो) का क्षय होनेसे पसीने न आवे, त्वचा और नेत्र रूखे होवे, और रोमांच खडे रहे, ए लक्षण होते हैं ।

स्वेदक्षीणाभिवर्द्धन ।

अभ्यङ्गोद्वर्त्तनेमद्यंनिर्वातशयनासने ।
गुरुप्रावरणंचैवस्वेदक्षीणोभिकांक्षति ।

अर्थ-स्वेदक्षीण पुरुष अभ्यंग उबटने मद्य निर्वातस्थानमें शयन और बैठना एवं भारी ओढनेके इच्छा करता है ।

आर्त्तवक्षयके लक्षण ।

आर्त्तवस्यस्वकालेनाभावस्तस्याल्पताथवा ।
जायतेवेदनायोनौलिंगंस्यादार्त्तवक्षये ।

अर्थ-स्त्रियोंका रजक्षीण होनेसे उचित समयमें रजोदर्शन न होवे । कदाचित् होवे तो अल्प होय, और योनिमें पीडा हो ए लक्षण होते हैं ।

आर्तवक्षीणाभिवर्द्धन ।

कट्वम्ललवणोष्णानिविदाहीनिगुरूणिच ।
फलशाकानुपानानिस्त्रीवांच्छत्यार्त्तवक्षये ।

अर्थ-स्त्रियोंके आर्तव नष्ट होनेसे कटु अम्ल लवण उष्ण दाहक भारी ऐसे अन्न फल शाक और पने आदिकी इच्छा करे हैं ।

स्तन्यक्षयके लक्षण ।

अभावःस्वल्पतावास्याःस्तन्यस्यभवतस्तथा ।
म्लानौपयोधरावेतल्लक्षणंस्तन्यसंक्षये ।

अर्थ-स्त्रियोंके दूध नष्ट होनेसे स्तनोंमें दूध न रहे अथवा अल्प होवे तथा उस स्त्रीके स्तन कुम्हला ऐसे होवे ।

स्तन्यक्षयवर्द्धन।

सुराशाल्यन्नमांसानिगोक्षीरंशर्करान्तथा।
आसवंदधिहृद्यानिस्तन्यक्षीणाभिवांछति।

अर्थ-स्त्रियोंके (स्तन्य) दूध क्षीण होनेसे मद्य सांठी चावल मांस गौका दूध मिश्री आसव और प्रिय ऐसे अन्नादिकोंकी इच्छा करती है।

गर्भक्षयलक्षण

अनुन्नसोभवेत्कुक्षिर्गर्भस्यस्पन्दनंतथा।
इति गर्भक्षयेप्राज्ञैर्लक्षणंसमुदाहृतम्।

अर्थ-गर्भक्षय होनेसे कूख ऊंची नहीं होती तथा कूखमें गर्भ फिरे नहीं इसप्रकार गर्भक्षयके लक्षण पंडितोंने कहे हैं।

गर्भक्षयवर्द्धन।

मृगाजाविवराहाणांगर्भान्वांछतिसंस्कृतान्।
वसाशूल्यप्रकारादीन्भोक्तुंगर्भपरिक्षये।

अर्थ-गर्भक्षय होनेसे हरिण बकरी भेड सूअर इनके गर्भ पाचनादि क्रिया करके तथा वसा शूल्यमांस इत्यादि प्रकार इनके भक्षणकी इच्छा करे हैं।

बललक्षणं बलक्षयलक्षणमतऊर्ध्ववक्ष्यामः।

अर्थ-अब इसके उपरांत बलके लक्षण और बलक्षयलक्षणोंको कहेंगे।

तत्ररसादीनांशुक्रान्तानांधातूनांयत्परंतेजस्तत्ख-
ल्वोजस्तदेवबलमित्युच्यते स्वशास्त्रसिद्धान्तात्।

अर्थ-तहां रससे लेकर शुक्रपर्यंत धातुओंका जो परम उत्कृष्ट तेज है अर्थात् संपूर्ण धातुओंका स्नेह है उसको ओज तथा बल कहते हैं, कोई आचारी सर्व धातुका सार उसको ओज और बल है ऐसा अर्थ करते हैं। यह विवादोक्ती चिकित्साके ऐक्यार्थ है। वास्तवसे बल और ओज पृथक् २ हैं सर्व धातु स्नेहभूत उपचय लक्षणवान्को ओज कहते हैं। इससे देहमें रूप, रस, शूरता, और वीर्यादिक होते हैं। और बलसे बोझेका उठानाआदि कर्म होते हैं। इसी ग्रंथकी प्रथमाध्यायमें कहा है यथा (प्राणिनां पुनर्मूलमाहारो बलवर्णौजसांचेति)

बलके प्राकृत कर्म ।

तत्र बलेनस्थिरोपचितमांसतासर्वचेष्टास्वप्रतिघातःस्वरवर्णप्रसादोबाह्यानामाभ्यन्तराणाञ्चकरणानामात्मकार्यप्रतिपत्तिर्भवति ।

अर्थ-तहां बलकरके मांसका स्थिर होना और एकत्र होना होता है, यह ओजसे होता है। तथा सर्व चेष्टा (अर्थात् देह वाणी मनका व्यापार) निर्विघ्न होना ये बलसे होता है। तथा स्वर वर्णकी निर्मलता यह ओज और बल दोनोंसे होताहै। तथा बाह्य करण (कर्मेन्द्री) और अभ्यन्तरकरण (बुद्धीन्द्रिय) इनके स्वकीय कार्यका अवरोध होता है। कोई कहता है कि, इन बाह्य और अभ्यंतर इन्द्रियोंका चिरानुष्ठान होता है। तहां बाह्यइन्द्री (वाणी, हाथ, पैर, गुदा, लिंग) इनके कार्य वचन, आदान, गमन, विसर्ग, और आनन्द जानने । अभ्यंतरइन्द्री (कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, और नासिका, इनके कर्म (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधग्रहण) जानने इन सबका कारणभूत बल है ।

ओजःसोमात्मकंस्निग्धंशुक्लंशीतंस्थिरंसरम् । विविक्तंमृदुमृत्स्नंचप्राणायतनमुत्तमम् । देहस्यावयवस्तेनव्याप्तोभवति देहिनाम् । तदभावाच्चशीर्यतेशरीराणिशरीरिणाम् ।

अर्थ-ओज सोमात्मक कहिये (सौम्य है) स्निग्ध और श्वेत है[1], शीतवीर्यवाला है, स्थिर है, अर्थात् देहके अवयवोंको स्थिर कर्त्ता है, और फैलनेवाला है, श्रेष्ठ गुणयुक्त, कोमल और पिच्छल है, तथा प्राण (अग्निसोमादिकों) का, उत्तम स्थान है इस ओजसे मनुष्यके देहके संपूर्ण अवयव उत्पन्न होते हैं । और इस ओजके अभावसे मनुष्योंके देह नष्ट होते हैं ।

बलक्षयके कारण ।

अभिघातात्क्षयात्कोपाच्छोकाद्ध्यानाच्छ्रमात्क्षुधः । ओजः संक्षीयतेह्येभ्योधातुग्रहणनिःसृतम् ॥ तेजःसमीरितंतस्माद्विस्रंसयतिदेहिनः ।

---

१ चरकमें लिखा है कि (हृदि तिष्ठति यच्छुद्धं रक्तमीषत्सपीतकम्) इससे प्रतीत होता है कि, ओजमें शुक्ल पीत और लाल तीन वर्ण हैं.

अर्थ--चोट लगनेसे धातुओंके क्षीण होनेसे, क्रोधसे, शोकसे, ध्यानसे, श्रम और भूखे रहना इन कारणोंसे ओजपदार्थका क्षय होवे। इसीसे सर्व धातु परंपरा स्नेहरूप निकला हुआ तेजसंपत्ति वातसे प्रेरित हृदयसे च्युत होता है।

दूषितओजके लक्षण।

तस्यविस्रंसोव्यापत्क्षयइतिलिंगानिव्यापन्नस्यभवन्ति। सन्धिविश्लेषोगात्राणांसदनंदोषच्यवनंक्रियासन्निरोधश्च- विस्रंसे। स्तब्धगुरुगात्रतावातशोफोवर्णभेदोग्लानि स्तन्द्रानिद्राचव्यापन्ने। मूर्च्छामांसक्षयोमोहःप्रलापो- मरणमितिक्षये।

अर्थ--तहां दूषित ओजके विस्रंस, व्यापत, और क्षय, ये तीन लक्षण होते हैं। तहां संधियोंका विभाग, देह जिकडीसी हो जावे, दोषोंका स्वस्थानसे च्यवन, और क्रियाओंका संनिरोध, ये ओजके विस्रंस होनेसे होते हैं। स्तब्ध, ता, अर्थात् घोटुआदिका न मुडना, देहमें भारीपना, वातसोफ, वर्णभेद, ग्लानि, तन्द्रा, निद्रा, ये लक्षण ओजके व्यापन्न होनेसे होतेहैं। मूर्च्छा- मांसक्षय, मोह, प्रलाप, और मरण ये लक्षण ओजके क्षीण होनेसे होते हैं।

त्रयोदोषाबलस्योक्ताव्यापद्विस्रंसनक्षयाः। विश्लेषसादौगा- त्राणांदोषविस्रंसनंश्रमः। अप्राचुर्यं क्रियाणांच बलविस्रंस- लक्षणम्।

अर्थ--बलकी तीन विकृति होती है १ व्यापद् २ विस्रसन ३ क्षय तिनमें गात्रोंका विश्लेष और जिकडजाना, दोषोंका स्वस्थानसे च्यवन; श्रम, क्रियाओं- का संनिरोध, ये बलविस्रंसके लक्षण हैं।

गुरुत्वं स्तब्धतांगेषु ग्लानिर्वर्णस्यभेदनम्।
तन्द्रानिद्रावातशोफोबलव्यापादिलक्षणम्।

अर्थ--देह भारी हो और जिकडीसे होवे, ग्लानि, वर्णकी विकृति, तन्द्रा, निद्रा, वातशोफ, ये बलव्यापदिके लक्षण हैं।

मूर्च्छामांसक्षयोमोहःप्रलापोऽज्ञानमेवच।
पूर्वोक्तानिचलिंगानिमरणं च बलक्षये।

अर्थ--मूर्च्छा, मांसक्षय, मोह, प्रलाप,अज्ञान, और पूर्वोक्त विश्लेषादि चिह्न तथा मरण ये बलक्षयके लक्षण हैं।

चिकित्सा।

तत्रविस्रंसेव्यापन्नेचक्रियाविशेषैरविरुद्धैर्बलमास्थापयेत्।
नष्टसंज्ञमितरश्चवर्जयेत्।

अर्थ-तहां विस्रंस और व्यापदि बलमें अविरुद्ध क्रिया विशेषोंकरके बलस्थापन करे, अर्थात् रसायन वाजीकरणादि क्रिया जो उक्तरोगोंके विरुद्ध न हो वो कर्त्तव्य है, और इतर कहिये क्षीण बलवाले रोगीको त्याग देवे।

बलक्षीणका चिकित्सांतर।

दोषसाम्यकरंयत्तुवह्निसाम्यकरंचयत्।
धातुपुष्टिकरं द्रव्यंबलंतदभिवर्द्धयेत्।

अर्थ--जो दोषोंको समान करे व अग्निको समान करे व धातुको बढावे पुष्टि करे ऐसी द्रव्य बलको बढाती है।

बलवान्के लक्षण।

कृशोपिबलवान्कश्चित्स्थूलोप्यल्पबलोयतः।
तस्माच्चेष्टापटुत्वेनबलवंतं विदुर्बुधाः।

अर्थ-कोई कृश पुरुष भी बलवान् होता है, तथा कोई स्थूल होकर भी अल्पबली होवे है, इसीसे चेष्टाके कुशलत्व करके पंडित बलको जानते हैं।

तेजोप्याग्नेयंक्रमशःपच्यमानानां धातूनामभिनिवृत्तमन्तरस्थंस्नेहजातंवसाख्यं स्त्रीणांविशेषतोभवति।तेनमार्दवसौकुमार्यमृद्वल्परोमतोत्साहदृष्टिस्थितिपक्तिकान्तिदीप्तयोभवन्ति। ततकषायतिक्तशीतरूक्षविष्टंभिवेगविघातव्यवायव्यायामव्याधिकर्षणैश्चविक्रियते।

अर्थ-तेजभी आग्नेय है, क्रमसे धातुओंके पचनेसे उपरांत निवृत्त हो अंतरस्थ स्नेहरूप वसासंज्ञक कहता है। यह विशेष करके स्त्रियोंके होता है, इसीसे नम्रता, सुकुमारता, मृदु और अल्परोमांच, उत्साह, दृष्टिकी स्थिति, पक्ति (पकना) कांति, और दीप्ती होती है।

यह तेज कसेले, तीखे, शीतल, रूखे, विष्टंभी, पदार्थोंके सेवनसे, और मलमूत्रादि वेग विधारणसे अत्यंत मैथुन, व्यायाम, और व्याधिके होंनेसे दूषित होता है।

तस्यापि पारुष्यवर्णभेदतोदनिष्प्रभत्वानि विस्रंसने भवन्ति।

अर्थ-उस तेजके भी विस्रंसन होनेसे कठोरता, वर्णभेद, पीडा, निष्प्रभत्वादि विकृति होती है ।

कार्श्यमन्दाग्नितार्धस्तिर्यक्च्युतिर्व्यापत्तौ ।

अर्थ-तेजकी व्यापत्ती होनेसे मन्दाग्नि, कृशता, ऊपर नीचेको उसका निकलना होताहै ।

दृष्टयग्निबलहान्यनिलप्रकोपमरणानिक्षये ।

अर्थ--तेजके क्षय होनेसे दृष्टी, अग्नि, और बलकी हानि हो वात प्रबल, और मरण होवे ।

चिकित्सा ।

तत्रापिस्नेहपानाभ्यङ्गप्रदेहपरिषेकस्निग्धलघ्वन्नानिक्षयेविदधीत।

अर्थ-इस तेजके क्षीण होनेपर स्नेहपान, अभ्यंग, प्रदेह, परिषेक, चिकना और हलका अन्नआदि तेजवर्द्धक वस्तु सेवन करना चाहिये ।

दोषधातुमलक्षीणोबलक्षीणोपिवानरः ।
स्वयोनिवर्द्धनंयत्तदन्नपानंप्रकांक्षति ॥

अर्थ-दोष, धातु, मलक्षीण, बलक्षीण, पुरुष स्वयोनिवर्द्धन अर्थात् जिस अन्नपानसे जो जो धातु बढती है उसी उसीकी कांक्षा करता है ।

यद्यदाहारजातंहिक्षीणःप्रार्थयतेनरः ।
तस्यतस्यसलाभेतुतंतंक्षयमपोहति ॥

अर्थ--क्षीणपुरुष जिस जिस आहारको इच्छा करे उसको वोही वोही आहार मिलनेसे तत्तत् धातुमलादिककी क्षीणताको दूर करता है ।

असाध्यमाह ।

यस्यधातुक्षयाद्वायुःसंज्ञांकर्म च नाशयेत् ।
प्रक्षीणश्चबलंयस्यनासौशक्यश्चिकित्सितुम् ॥

अर्थ-जिसमनुष्यके धातुक्षीण होनेसे वायु संज्ञा और कर्मका नाश करे, तथा उक्त रोगीका बल क्षीण होगयाहो वह चिकित्सा करने योग्य नहीं है, किंतु त्याज्य है ।

रसनिमित्त ही स्थूल और कृशता तथा मध्यम शरीर होनेका कारण है

फिर वह एकही रस परस्पर विरोधी स्थूलता और कृशताको किसप्रकार करता है; इसलिये कहते हैं।

रसनिमित्तमेवस्थौल्यंकार्श्यञ्च तत्र श्लेष्मलाहारसेविनोऽध्यशनशीलस्याव्यायामिनोदिवास्वप्नरतस्यचामएवान्नरसो मधुरतरश्चशरीरमनुक्रामन्नतिस्नेहान्मेदोजनयति तदातिस्थौल्यमापादयति।

अर्थ–स्थूलता और कृशताका निमित्त रस है । तहां कफकारी पदार्थोंके सेवनसे अध्यशनशील (भोजनके ऊपर फिर शीघ्रभोजन करना)और देहसे परिश्रम न करे दिनमें शयन करनेवाला ऐसे पुरुषके कच्चाही मधुरतर रस शरीरमें विचरता हुआ अति स्नेह होनेसे मेदाको प्रगट करे है । वह मेदा मनुष्यको अत्यंत [१] स्थूल करती है।

अति स्थूलताके दोष।

तमतिस्थूलंक्षुद्रश्वासपिपासाक्षुत्स्वप्नस्वेदगात्रदौर्गन्ध्यकथनगात्रसादगद्गदत्वानिक्षिप्रमेवाविशन्तिसौकुमार्य्यान्मेदसः सर्वक्रियास्वसमर्थः कफमेदोनिरुद्धमार्गत्वाच्चाऽल्पव्यवायो भवत्यावृतमार्गत्वादेवंशेषाधातवोनाप्यायंतेऽत्यर्थमतोऽल्पप्राणोभवति । प्रमेहपिडकाज्वरभगंदरविद्रधिवातविकाराणामन्यतमंप्राप्यपंचत्वमुपयातिसर्वएव चास्यरोगाबलवन्तोभवन्त्यावृतमार्गत्वात्स्रोतसामतस्तस्योत्पत्तिहेतुंपरिहरेत्।

अर्थ–उस अतिस्थूल पुरुषके क्षुद्रश्वास, प्यास, क्षुधा, निद्रा, पसीने, देहमें दुर्गंध, सोतेसमय कंठमें घरघरं शब्द, (अथवा अकस्मात् श्वासका

[१] कदाचित् कोई शंका करे कि, जो मेदस्वी पुरुष दीप्ताग्निवाले हैं उनके कच्चा रस कैसे रहता है इसवास्ते कहते हैं कि, दीप्ताग्निवालोंकेभी अध्यशनदोषसे कच्चाही रस प्रगट होता है, कदाचित् वादी शंका करे कि यदि आप कच्चा मानते हो तो फिर उसकी रससंज्ञा नहीं हो सकती इसलिये कहते हैं कि, यद्यपि जठराग्नि करके रस प्रगट होगया परंतु जबतक धातुओंकी अग्निसे पक्क नहीं हो तबतक कच्चाही कहाता है ।

रुकना) अंगोंका रह जाना, और गद्गद वाणी इत्यादि रोग शीघ्र इसकी देहमें प्राप्त होते हैं। मेदको सुकुमार होनेसे यह मेदस्वी पुरुष सर्व क्रियामें असमर्थ और कफमेदसे संपूर्ण पवनादि संचारके मार्ग रुकनेसे अल्पमैथुनी होताहै, और मार्गोंके रुकनेसे शेषधातु पुष्ट नहीं होती इसीसे यह प्राणी अल्पप्राण होता है।तथा प्रमेह पिडका, ज्वर, भगंदर, विद्रधि, वातके विकार इनमेंसे कोईसा रोग होकर मरणको प्राप्त होवे। और मेदस्वी पुरुषके मार्गोंके रुकनेसे तथा छिद्रोंके रुकनेसे सर्व रोग बलवान् होते हैं, इसीसे मेदकी उत्पत्तिको दूर करे अर्थात् जैसे मेद प्रगट न होवे सो उपाय करना चाहिये।

उत्पन्नमेदकी चिकित्सा।

उत्पन्नेतु शिलाजतुगुग्गुलुगोमूत्रत्रिफलालोहरजोरसाञ्जनमधुयवमुद्गकोरदूषकश्यामाकोद्दालकादीनांविरूक्षणच्छेदनीयानां च द्रव्याणांविधिवदुपयोगोव्यायामोलेखनबस्त्युपयोगश्चेति।

अर्थ–यदि मेदरोग प्रगट होवे तो शिलाजीत, गूगल, गोमूत्र, त्रिफला, लोहभस्म, रसोत, सहत, जव, मूंग, कोदो, सामखिया, उद्दालक (वनकोदो) इत्यादिकोंका सेवन, तथा विलक्षण (मेदनाशक) और छेदनीय (स्रोतोंको शुद्धकर्त्ता) द्रव्योंका विधिपूर्वक सेवन दंडकसरत और लेखनबस्तीका सेवन करना चाहिये।

कार्श्यरोग होनेके कारण।

तत्र पुनर्वातलाहारसेविनोऽतिव्यायामव्यवायाध्ययनभयशोकध्यानरात्रिजागरणपिपासाक्षुत्कषायाल्पाशनप्रभृतिभिरुपशोषितोरसधातुःशरीरमनुक्रामन्नल्पत्वान्नप्रीणयातितस्मादतिकार्श्यंचभवति।

अर्थ–रूक्ष आहार सेवनसे तथा अत्यंत व्यायाम; अत्यंत मैथुन, अत्यंत पढना, अत्यंत भय, शोकसे, अत्यंत ध्यान, (एकाग्र चित्त करके किसीकार्यकी तरफ लगाना) रात्रिमें जागरण अत्यंत प्यास रोकनेसे, क्षुधाके रोकनेसे, कषेली वस्तुके सेवनसे, और बहुत अल्प भोजन आदि कारणोंसे रस धातु सूखकर शरीरमें गमन न करनेसे अल्पताके कारण शरीरको पुष्ट नहीं करे (अर्थात् किंचित् पुष्ट करे है) इसीसे धातुशोषीपुरुषके अति कार्श्यता होती है।

---

१ त्रिफलाक्वाथगोमूत्रक्षौद्रक्षारसमन्विताः। उषकादिप्रतीवापाबस्तयोलेखनाः स्मृताः।

अतिकार्श्यके उपद्रव ।

सोतिकृशः क्षुत्पिपासाशीतोष्णवातातपवर्षभारादानेष्वसहिष्णुः वातरोगप्रायोऽल्पप्राणश्चक्रियासुभवतिश्वासकासशोषप्लीहोदराग्निसादगुल्मरक्तपित्तानामन्यतमंप्राप्यमरणमुपयातिसर्वएवचास्यरोगाबलवन्तोभवन्त्यल्पप्राणत्वादतस्तस्योत्पत्तिहेतुंपरिहरेत् ।

अर्थ–अत्यंत कृश मनुष्य भूख, प्यास, सरदी, गरमी, पवन, वर्षा, भार इनको नहीं सहसके । उसके प्रायःवातके रोग बहुत होते हैं और वह अल्पप्राण तथा संपूर्ण क्रियामें असमर्थ होता है । तथा श्वास, खांसी, शोष, तापतिल्ली, उदर, मंदाग्नि; गुल्मरोग, और रक्तपित्त इनमें कोईसा रोग होकर मृत्युको प्राप्त होवे । कृशपुरुष अल्पप्राण होनेसे इनके संपूर्ण रोग बलवान् होतेहैं। इसीसे इस कार्श्यरोगकी जैसे उत्पत्ति न होवे ऐसा उपाय करना चाहिये ।

चिकित्सा ।

उत्पन्नेतु पयस्याश्वगंधाविदारीगन्धाशतावरीबलातिबलानागबलानां समधुराणामन्यासाश्चौषधीनामुपयोगः क्षीरदधिघृतमांसशालिषष्टिकयवगोधूमानांचदिवास्वप्नब्रह्मचर्याव्यायामबृंहणबस्त्युपयोगश्चेति ।

अर्थ--कृशता उत्पन्न होनेपर क्षीरकांकोली, असगंध, विदारीकंद, कचूर, शतावर, बला, नागबला और अतिबला इनके काढेमें सहत मिलायकर अथवा अन्य औषधीके काढेमे सहत मिलाकर पीना चाहिये । तथा दूध, दही, घी, मांस, चावल, सांठीचावल, जव, गेहूं, दिनमें निद्रा ब्रह्मचर्य, परिश्रम न करना, और बृंहणबस्तीका सेवन करना कृश मनुष्यको हित है ।

मध्यम देह ।

यः पुनरुभयसाधारणान्युपसेवेत तस्यान्नरसःशरीरमनुक्रामन् समान्धातूनुपचिनोतिसमधातुत्वान्मध्यशरीरीभवति सर्वक्रियासुसमर्थःक्षुत्पिपासाशीतोष्णवर्षातपसहोबलवांश्च स सततमनुपालयितव्यइति ।

अर्थ–जो उभयसाधारण अर्थात् न बहुत रूक्ष और न बहुत स्निग्ध

पदार्थोंका सेवन करता है. उसके अन्नरस शरीरमें विचरताहुआ समान धातुओंको करे हैं, वह मनुष्य समानधातु होनेसे मध्यशरीरवाला (न बहुत स्थूल न बहुत कृश) होता है। और वह सर्व क्रिया (कायिक वाचिक मानसिक) करनेमें समर्थ होता है। भूख, प्यास, शरदी, गरमी, वर्षा, धूपआदिका सहनेवाला होता है इसीसे इस मध्यम शरीरका सर्वथा पालन करना चाहिये अर्थात् जैसे अत्यंतस्थूल और कृश न होवे सो उपाय करे।

मध्यदेहकी प्रशंसा।

अत्यंतगर्हितावेतौसदास्थूलकृशौनरौ।
श्रेष्ठोमध्यशरीरस्तुकृशःस्थूलात्तुपूजितः।

अर्थ–स्थूल, और कृश ए दोनों सदैव निंदित है, इनसे मध्यमदेहवाला उत्तम है, परंतु अतिस्थूलसे कृश मनुष्य उत्तम कहाहै।

दोषोंको धातुमलक्षयकारकत्व।

दोषःप्रकुपितोधातून्क्षपयत्यात्मतेजसा।
इद्धःस्वतेजसावह्निरुखागतमिवोदकम्।

अर्थ–कुपितदोष अपने तेजकरके धातुओंको क्षीणकरेहैं जैसे स्थालीगत जलको अपने तेजकरके बढी अग्नि सुखाती है। इस जगे धातुका तो उपलक्षण है किंतु मलादिकोंकोभी दोषही क्षीण करतेहैं। तहां पित्त, उष्णत्वसे धातुक्षीण करेहै वात शोषणहेतुसे और कफमार्गावरोधकत्वसे धातुक्षीण करता है।

दोषधातुमलादिमानकी अनवस्थिति।

वैलक्षण्याच्छरीराणामस्थायित्वात्तथैवच।
दोषधातुमलानांतु परिमाणंनविद्यते।

अर्थ–शरीरोंके विलक्षण[1] और अस्थायी[2] होनेसे दोष धातु और मलादि-

---

१ विलक्षणता दिखाते हैं। जैसे वातादिप्रकृति रसरक्तादिभारसहन दीर्घकृशादिदेहके भेदकरके विलक्षण है।

२ अस्थायीकहनेसे यह प्रयोजन है कि, काल दोप्रकारका है एक नित्यग और दुसरा आवस्थिक तहाँ नित्यगकालमें प्रातःकाल कफ कुपित होता है। मध्यान्हमें पित्त और सायंकालमें वात कुपित होता है। और प्रत्यह आह्निकचर्यादि भेदकरके तथा हेमंतमें कफसंचय होताहै। ग्रीष्ममें वायु और शरदऋतुमें पित्त। उसीप्रकार आवस्थिक काल जानना। जैसे बाल्यअवस्थामें कफ बढताहै, तथा बाल्यअवस्थामें शुक्र अल्प होताहै। युवावस्थामें पित्त, और वृद्धावस्थामें बादी संचित होती है। इसीसे शरीरको अस्थायित्व कहाहै।

कोंका परिमाण नहींहै। कोई किसी किसीका प्रमाण कहताहै सबका प्रमाण नहीं होवे।

यदि आप पलादिमान न मानोंगे तो विनामानके समानता कैसे जानीजावेगी इसलिये कहते हैं।

एषांसमत्वंयच्चापिभिषग्भिरवधार्यते।
नतत्स्वास्थ्यादृतेशक्यंवक्तुमन्येनहेतुना।

अर्थ-इनदोषोंका समानत्व वैद्य विना स्वास्थ्यताके अन्य किसीप्रकारसे नहीं जानसकता अर्थात् नैरोग्यतासेही दोषोंकी समानता मालूम हो सकती है सोभी वैद्योंकोही हो सकतीहै, अन्यको नहीं।

अनुमानसे समानताका निर्णय।

दोषादीनांत्वसमतामनुमानेनलक्षयेत्।
अप्रसन्नेन्द्रियंवीक्ष्यपुरुषंकुशलोभिषक्।

अर्थ-कुशलवैद्य-पुरुषको अप्रसन्नेन्द्रियवान् देखकर उसके देहमें दोषादिकोंकी असमानता अनुमानसे जाने। अर्थात् उसरोगीमनुष्यका वर्ण, चेष्टा देख धात्वादिकोंके क्षयवृद्धिका निश्चयकरना चाहिये।

स्वस्थके लक्षण।

समदोषःसमाग्निश्चसमधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाःस्वस्थइत्याभिधीयते।

अर्थ-जिसके देहमें दोष, अग्नि, धातु, मल, और क्रिया ए समान हों तथा, आत्मा, इन्द्री, और मन, जिसके प्रसन्नहो उसको स्वस्थ अर्थात् नैरोग्य कहतेहैं।

तथा स्वस्थका पालन कहतेहैं।

स्वस्थस्यरक्षणंकुर्यादस्वस्थस्यतुबुद्धिमान्। क्षपयेद्बृंहयेच्चापिदोषधातुमलान्भिषक् ॥ तावद्यावदरोगःस्यान्नरोरोगसमन्वितः।

---

१ यद्यपि दोषसाम्यकेकहनेसेही अग्न्यादिकोंको समानत्व प्रतीतहोगई फिर पृथक् क्यों कहे इसका समाधान श्रीमाधवने इसप्रकार कराहै।

" लब्धाश्चसमदोषत्वेसमाग्नित्वादयस्तथा। पृथगुक्ताः किमर्थं ते भक्तमेतन्निरर्थकम् ॥१॥ समाधानमाह-दोषेभ्यस्तेयतोभिन्नाःपृथगुक्ताअतस्तुते। प्रकृत्या तादृशाः केचिदत्यर्थं वानदूषितम् ॥२॥

अर्थ--बुद्धिमान्वैद्य स्वस्थपुरुषकी रोगोंसे रक्षाकरे और अस्वस्थ (रोगी) के दोषधातुमलादिकोंको घटावे बढावे, जबतक रोगीमनुष्य रोगरहित न होवे ।

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरे चतुर्विंशतितमस्तरंगः ॥ २४ ॥

अथदोषवर्णनीयाध्यायंव्याख्यास्यामः ।

अर्थ--अब दोषवर्णनीयाध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

वातपित्तश्लेष्माणएवदेहसम्भवहेतवःतैरव्यापन्नैरधोमध्योर्ध्वसन्निविष्टैःशरीरमिदंधार्यतेऽगारमिवस्थूणाभिस्तिसृभिरतश्च त्रिस्थूणमाहुरेके ।

अर्थ--वात, पित्त, और कफ इन्होंका साधारण नाम दोष, येही तीनों दोष देहोत्पत्तिके कारण हैं। येही अविकृत होकर यथाक्रम देहके अधोभाग मध्यभाग और ऊर्ध्वभागमें स्थितहोकर देहको धारण करतेहैं । जैसे तीनखम्भेसे घर खडारहताहै । उसीप्रकार इन तीनोंदोषोंसे यहदेह खडाहै। इसीकारण इस देहको कोई आचार्य त्रिस्थूण कहतेहैं ।

तएवच व्यापन्नाःप्रलयहेतवस्तदेभिरेवशोणितचतुर्थैः सम्भवस्थितिप्रलयेष्वप्यविरहितंशरीरंभवति ।

अर्थ--इन्हीं दोषोंके विकृतहोनेसे देह नष्ट होवे, येही तीनों दोष और रुधिर ए चारों पदार्थ देहके उत्पन्न स्थिति और नाशके सर्वसमय अविकृत वा विकृतभावसे शरीरमें परिवर्तनकरते रहतेहैं ।

नर्त्तेदेहःकफादस्तिनपित्तान्नचमारुतात् ।
शोणितादपिवा नित्यं देहएतैस्तुधार्यते ।

अर्थ--यहदेह विनाकफ-विनापित्त-विनावात और विनारुधिरके नहींहै किंतु इन चारों वस्तुओंसे यह देह धारण करीजातीहै ।

वातपित्त और कफशब्दकी व्युत्पत्ति ।

तत्र वा गतिगन्धनयोरितिधातुः तप सन्तापेश्लिषआलिङ्गने एतेषांकृद्विहितैःप्रत्ययैर्वातःपित्तं श्लेष्मेतिच रूपाणि भवन्ति ।

अर्थ--तहां वा गतिगंधनयोः तपसंतापे और श्लिषआलिंगने इनधातुओंसे कृदंतविहितप्रत्यय लानेसे क्रमपूर्वक वात, पित्त, और श्लेष्मा ये रूप होतेहैं ।

दोषोंकी संख्या ।

वायुःपित्तंकफश्चेतित्रयोदोषाः समासतः ।
विकृताविकृतादेहंघ्नन्तितेवर्द्धयन्ति च ।

अर्थ--वात पित्त और कफ ए संक्षेपसे[1] तीन दोष हैं, ये विकारको प्राप्त हो देहको नष्ट करतेहैं, और अविकृत कहिये निर्विकार होनेसे देहको बढातेहैं। तीन दोषके कहनेसे यह प्रयोजनहै कि इनसे व्यतिरिक्त चतुर्थ दोष नहींहै। बहुतसे आचार्य रुधिरकोभी दोषोंमें गिनते हैं। सो असत्‌है कारण कि वातादि दोषही इस रुधिरको दूषित करते हैं।

तेव्यापिनोऽपिहृन्नाभ्योरधोमध्योर्ध्वसंश्रयाः ।
वयोहोरात्रिभुक्तानांतेन्तमध्यादिगाःक्रमात् ।

अर्थ–वे दोष यद्यपि सर्वत्रव्यापीभीहैं तोभी विशेषकरके हृदय और नाभी इनके नीचे मध्यमें और ऊपर रहतेहैं। तथा अवस्था, दिन, रात्रि, और भोजनका काल इनके अन्त, मध्य, और आदिमें गमन करतेहैं इसका अभिप्राय यह है कि, नाभीके नीचे वायुका स्थानहै। हृदय और नाभीके मध्यमें पित्तका और हृदयके ऊपर कफका स्थानहै। उसी प्रकार पुरुषकी पिछली अवस्था अर्थात् वृद्धावस्था वायुकोप होनेका काल है मध्यअवस्था पित्तका और प्रथमअर्थात् बाल्यअवस्था कफकुपितहोनेका काल है। उसीप्रकार दिनका अंत्यभाग, वातका मध्यभाग पित्तका और प्रथमभाग कफका उसीप्रकार रात्रिका अंत्यभाग वातका मध्यभाग पित्तका और प्रथमभाग कफका है उसीप्रकार भोजनके पचनेके समय वातका काल. मध्यमें अर्थात् विदाहावस्थापित्तका और भोजनकी पूर्वअवस्था जिसमें आहार मधुरभावको प्राप्त होताहै वह कफकोपका काल है। ए तीनों अवस्था[2] अपने अपने कर्मको दिखातीहै।

दोषशब्दकी निरुक्ति ।

धातवश्चमलाश्चापिदुष्यन्त्येभिर्यतस्ततः ।
वातपित्तकफाएते त्रयोदोषा इतिस्मृताः ॥

अर्थ–धातु मलआदिके दूषित करनेसे वात पित्त और कफ ये तीनोंको दोष ऐसे कहाते हैं।

---

१ विस्तरतस्तु संसर्गसन्निपातक्षयसमतादिभेदभिन्नास्तारतम्यपरिकल्पनयावकल्प्यमानाआनंत्यं यान्ति ।

२ फेनीभूतंकफंयातं विदाहादम्लतां ततः । पित्तमामाशयात्कुर्याञ्च्यवमानंच्युतंपुनः । अग्निनाशोषितंपक्वं पिंडितंकटुमारुतम् ॥ इति ।

तेधातवोपिविद्वद्भिर्गदितादेहधारणात् ।

अर्थ–इन्हीं दोषोंको देह धारण करनेसे पंडितजन धातुभी कहते हैं। इसमें सुश्रुतका प्रमाण ।

विसर्गादानविक्षेपैःसोमसूर्यानिलायथा ।
धारयन्तिजगद्देहंकफपित्तानिलास्तथा ।

अर्थ–जैसे चंद्र सूर्य और पवन विसर्ग (त्यागना) आदान (ग्रहण) और विक्षेप (इतस्ततो चालन) करनेसे जगत्को धारण करतेहैं, उसी प्रकार कफ पित्त और वायु इस देहको धारण करते हैं अर्थात् जैसे चन्द्र जगत्में आर्द्रता करता है, सूर्य उस आर्द्रताको खींचता है, और पवन उसको इतस्ततो चालन करे हैं उसी प्रकार कफ पित्त और वात इस देहमें कार्य करते हैं ।

मलाश्चतेरसादीनां मलिनीकरणान्मताः ।

अर्थ–रसरक्तादि शुक्रान्तोंको मालिन (दूषित) करनेसे उन दोषोंको मल ऐसा कहतेहैं ।

वायुको श्रेष्ठत्व ।

स्वयंभूरेषभगवान्वायुरित्यभिशब्दितः । स्वातंत्र्यान्नित्यभावाच्च सर्वगत्वात्तथैवच ॥ सर्वेषामेवसर्वात्मासर्वलोकनमस्कृतः । स्थित्युत्पत्तिविनाशेषुभूतानामेषकारणम् ।

अर्थ–यह स्वयंभू अर्थात् स्वयं होनेवाला, भगवान् वायु इसप्रकार कहाताहै, इसको स्वतंत्र नित्यभाव, और सबमें सर्वगतहोनेसे तथा सबकी आत्मा होनेसे यह पवन सर्वलोकनमस्कृत है । तथा प्राणीनके स्थिति, उत्पत्ति और विनाशका यही कारण है ।

अव्यक्तोव्यक्तकर्मा च रूक्षःशीतोलघुःखरः । तिर्यग्गोद्विगुणश्चैव रजोबहुलएव च ॥ अचिंत्यवीर्योदोषाणां नेता रोगसमूहराट् । आशुकारी मुहुश्चारीपक्वाधानगुदालयः ॥ देहे विचरतस्तस्य लक्षणानिनिबोधमे ॥

अर्थ–अव्यक्त (देहरहित) है, और व्यक्तकर्मा अर्थात् देह धारियोंकेसे कार्यको करेहै, रूखा है, शीतल है, हलका है, और तीक्ष्ण है, तिरछागमन

करनेवाला, दोगुण (रजोगुण और तमोगुण) वालाहै, इसमें रजोगुण बहुल है, अचिंत्यवीर्य, दोषोंका नेता (स्थानान्तरमें प्राप्त करनेवाला) रोगसमूहोंका राजा, शीघ्रकर्त्ता, वारंवार संचार करनेवाला, पक्काशय, और गुदा इनमें निवास करनेवाला, इसप्रकार देहमें विचरनेवाले वायुके लक्षणोंको सुनो ।

अविकृत वायुके कर्म ।

उत्साहोच्छ्वासनिश्वासचेष्टावेगप्रवर्त्तनैः । सम्यग्गत्याचधातूनामिन्द्रियाणांचपाटवैः ॥ अनुगृह्णात्यविकृतोहृदयेन्द्रियचित्तधृक् ।

अर्थ--उत्साह, उच्छास (ऊर्ध्वश्वास) और श्वास, चेष्टा (हलना चलना) वेग (मलमूत्रादि) का प्रवृत्त करना, उत्तम गतिसे धातु और इन्द्रियोंमें कुशलता, हृदय और चित्तको धारण करता इत्यादि गुणविशिष्ट अविकृतपवन अर्थात् जो विकारको न प्राप्त हुई आहो वह जानना ।

अन्यच्च ।

रजोगुणमयः सूक्ष्मःशीतोरूक्षोलघुश्चलः । खरोमृदुर्योगवाहीसंयोगादुभयार्थकृत् ॥ दाहकृत्तेजसायुक्तःशीतकृत्सोमसंश्रयात् । विभागकरणाद्वायुः प्रधानंदोषसंग्रहे ।

अर्थ–रजोगुणवाला, सूक्ष्म, शीतल, हलका, चलायमान, खर, मृदु योग, वाही (जिसके साथमिले उसीकेसे गुण करे) संयोगसे दोनों कार्यकरता, तेजकेसाथ दाहकरे और शीतलकेसाथ मिलनेसे शरदीको करता है (जैसे ज्येष्ठ वैशाखमें सूर्यकी तप्तकिरणके साथ मिलनेसैं ऐसाहोजाता है कि कदाचित् लूं देहमें लगजावेतो तत्काल मनुष्य विकलता और मरणको प्राप्त होवे, और पौषमाघमें ऐसा शीतल होजाता है कि, निर्बलपुरुष पक्षी पशु वनस्पति आदिका प्राणहारक होता है) और विभाग अर्थात् पृथक् पृथक् करनेसे दोषोंमें वायुको प्रधानताहै ।

वातके स्थान ।

पक्काधानंकटीसक्थीश्रोतोऽस्थिस्पर्शनेन्द्रियम् ।
स्थानंवातस्यतत्रापिपक्काधानंविशेषतः ।

अर्थ-पक्काधान, कमर, जांघ, छिद्र, हड्डी, और स्पर्शनेन्द्रिय, ये वातके स्थान हैं। इनमेंभी पक्काशय विशेष करके है।

पंचपवनोंके नाम।

उदानस्तदनुप्राणःसमानोऽपानएव च।
व्यानश्चैतानिनामानिवायोःस्थानप्रभेदतः।

अर्थ-उदान, प्राण, समान, अपान, और व्यान, ए स्थानभेदसे वायुके नाम कहे हैं।

उनके कर्म।

उदानोनामयस्तूर्ध्वमुपैतिपवनोत्तमः। तेनभाषितगीतादिप्रवृत्तिःकुपितस्तु सः॥ ऊर्ध्वजत्रुगतान्रोगान्विदधातिविशेषतः॥१॥योवायुःप्राणनामासौमुखंगच्छतिदेहधृक्। सोऽन्नंप्रवेशयत्यन्तः प्राणांश्चाप्यवलम्बते। प्रायशःकुरुतेदुष्टोहिक्काश्वासादिकान्गदान्॥ २॥ आमपक्काशयचरः समानोवह्निसञ्ज्ञकः। सोऽन्नंपचतितज्जांश्चविशेषान्विविनक्तिहि॥ सदुष्टोवह्निमान्द्यातिसारगुल्मान्करोतिहि॥ ३॥ पक्काशयालयोऽपानकालेकर्षतिचाप्ययम्। समीरणः शकृन्मूत्रशुक्रगर्भार्त्तवान्यधः॥ ४॥ क्रुद्धस्तुकुरुतेरोगान्घोरान्वस्तिगुदाश्रयान्। शुक्रदोषप्रमेहांश्चव्यानापानप्रकोपजान्॥ ५॥ कृत्स्नदेहचरोव्यानोरससंवाहनोद्यतः। स्वेदाऽसृक्स्त्रावणश्चापिपंचधाचेष्टयत्यापि॥ ६॥ गत्यपक्षेपणोत्क्षेपनिमेषोन्मेषणादिकाः। प्रायःसर्वाःक्रियास्तस्मिन्प्रतिबद्धाःशरीरिणाम्।

अर्थ-जो पवनोंमें उत्तम उदाननामक पवन है सो ऊपरके देशमें अर्थात् कंठमें विचरे है। इससे गाना, बोलना आदि कर्म होते हैं। यदि यह पवन कुपित होवे तो कंठसे ऊपरके और हँसलीके रोगोंको करे है।

जो प्राणनामक वायु है वो प्राणियोंके मुखमें गमनकरती है। वह भोजनकरेहुए अन्नको भीतरप्रवेशकरती है। और प्राणोंको अवलंबनकरे है। यह कुपित होकर हिचकी श्वासादि रोगोंको करे है।

आमाशयमें विचरनेवाला वह्निसंज्ञक समानपवन अन्नको पचाता है और तज्जन्य अर्थात् अन्नसे प्रगट रस मल मूत्रादिकोंको पृथक् पृथक् करे है यह दुष्टहोकर मंदाग्नि, अतिसार, गोला, आदिरोगोंकी करे है।

पक्वाशयमें विचरनेवाला अपानसंज्ञक पवन यथासमय अधो वायु, मल, मूत्र, शुक्र, गर्भ, और आर्त्तवको खींचकर बाहर गेरता है। यह कुपितहोकर घोरबस्ति, गुदाश्रय रोगोंको शुक्रदोष और प्रमेह तथा व्यान अपानप्रकोपज रोगोंको करे है।

सर्वदेहमें विचरनेवाला व्यानपवन रसको बहता है और स्वेद (पसीने) रुधिरका स्राव करे हैं। तथा गमन, अपक्षेपण (अंगोंका नीचेनवाना) उत्क्षेप (अंगोंका ऊपरउठाना) निमेष (नेत्रोंका मींचना) और उन्मेषण (नेत्रोंका खोलना) येपांचप्रकारकी चेष्टा करेहैं। आदिशब्दसे जंभाई, अन्नका आस्वादन, और विशोधनादि, कर्मकोभी करेहै। प्रायः मनुष्योंकी संपूर्णक्रिया इस वायुके अधीन है।

वातकी पंचविध चेष्टा।

प्रस्पन्दनञ्चोद्वहनंपूरणंचविरेचनम्।
धारणंचेतिपंचैताश्चेष्टाःप्रोक्तानभस्वतः।

अर्थ-प्रस्पंदन, उद्वहन, पूरण, विरेचन, और धारण, ये पवनकी पांच चेष्टा हैं।

क्रुद्धःसकुरुतेरोगान्प्रायशः सर्वदेहगान्।
युगपत्कुपिताएतेदेहंभिन्द्युरसंशयम्।

अर्थ-यदि व्यानपवन कुपितहोवे तो सर्वदेहमें होनेवाले रोगोंको करेहै, यदि ये पांचोंपवन एकही समयमें कुपितहोवे तो निश्चय देहका नाशकरे।

अथ पित्तस्य स्वरूपमाह।

पित्तमुष्णंद्रवंपीतंनीलंसत्वगुणोत्तरम्।
सरंकटुलघुस्निग्धंतीक्ष्णमम्लंतुपाकतः।

अर्थ-पित्त गरम, पतला, पीत (आमरहित) नील (आमसहित) सतोगुणप्रधान, सर (दस्तावर) कटु, लघु, स्निग्ध, और तीक्ष्ण है। पाकसे खट्टा होजाताहै।

एक पित्त वातके सदृश नाम स्थान और कर्मभेदकरके पांचप्रकारका है

उनपित्तोंके नाम ।

पाचकंरञ्जकञ्चापिसाधकालोचकेतथा ।
भ्राजकंचेतिपित्तस्यनामानिस्थानभेदतः ।

अर्थ--पाचक, रंजक साधक, आलोचक, और भ्राजक ए पित्तके स्थानभेदसे पांच नाम हैं ।

पाचकादिकोंके स्थान ।

अग्न्याशयेयकृत्प्लीहौ हृदयेलोचनद्वये ।
त्वचिसर्वशरीरेषुपित्तंनिवसतिक्रमात् ।

अर्थ--अग्न्याशय, यकृत्प्लीहा, हृदय, दोनोंनेत्र, और सर्वदेहकी त्वचामें क्रमसे पांचों पित रहतेहैं । अर्थात् अग्न्याशयमें पाचकपित्त रहताहै । यकृत् और प्लीहामें रंजक, हृदयमें साधक, दोनोंनेत्रोंमें आलोचक और देहकी सर्वत्वचामें भ्राजकपित्त रहताहै ।

उनके कर्म ।

पाचकंपचतेभुक्तंशेषाग्निबलवर्द्धनम् ।
रसमूत्रपुरीषाणिविरेचयतिनित्यशः ।

अर्थ--पाचकपित्त आमपक्वाशयके मध्यमें स्थितहो भक्ष्य, भोज्य, चर्व्य लेह्य, चुष्य, और पेय ये छःप्रकारके आहारको पचाताहै । और रस मलमूत्रादिकोंको न्यारा न्यारा करताहै । वो अग्न्याशयमें स्थितपाचकपित्त अपनीआत्मशक्तिकरके रसका रंगना, हृदयस्थ कफके अंधकारका दूरकरना, रूपग्रहण, प्रभाप्रकाशन, अभ्यंगलेपनादि और पाचनआदि अग्निके कर्मकरके शेष पित्तके स्थानोंको पोषण करेहैं । और शेषअग्नि पृथिव्यादि महाभूतोंकी है उनके बलको बढाताहै ।

पंचमहाभूतोंकी अग्निमें चरकका प्रमाण ।

भौमाप्याग्नेयवायव्याःपञ्चोष्माणःसनाभसाइति ।

अर्थ--पृथ्वी, जल, अग्नि, वायव्य और आकाश ए पांच तत्त्वोंकी पांच अग्नि हैं ।

वाग्भटका प्रमाण ।

दोषधातुमलादीनामूष्मेत्यात्रेयशासनम् ।

अर्थ--दोष धातु और मलादिकोंकी ऊष्माहै वही अग्नि है यह आत्रेयऋषिकी आज्ञाहै ।

इसीसे पूर्वोक्त पाचकपित्त रसादिधातुगत सप्त अग्नियोंके बलको बढाताहै इसमें दृष्टान्तहै कि जैसे घरमें धरेहुए रत्नभी समीपमें खद्योतके समान प्रकाशकरनेवाले होतेहैं यदि उनपर दीपकका प्रकाश पडे तो दूरतक प्रकाशकरनेवाले होतेहैं । उसीप्रकार अग्न्याशयस्थ पाचकअग्निके तेजकरके संपूर्णअग्नि बलवानहोतीहैं ।

इसमें वाग्भटका प्रमाण ।

अन्नस्यपक्तासर्वेषांपक्तॄणामधिकोमतः ।
तन्मूलास्तेहितद्वृद्धिक्षयवृद्धिक्षयात्मकाइति ।

अर्थ--अन्नके पचानेवाला अग्नि सर्वअग्नियोंमें अधिकहै क्योंकि अन्य अग्नियोंके क्षयवृद्धि होनेका कारण यही अग्नि है ।

शिष्य--पित्तसे अग्नि पृथक्है कि पित्तही अग्नि है इससंदेहको आप दूर करो.

गुरु--पित्तको उष्णादिगुणसे आहारका पाचन, रंजन, दर्शनादि कर्म करनेसे पित्तही अग्नि है । पित्तसे पृथक् अन्य अग्नि नहीं है । अतएव अग्निरूप पित्तकीही स्थानभेदसे पाचक, रंजक, साधक, आलोचक और भ्राजकसंज्ञाहै । इसमें--

वाग्भटका प्रमाण ।

पाचकंतिलमानंस्यात्काठिन्यान्नस्यदोषता ।
अनुगृह्णात्यविकृतंपित्तंपाकोष्मदर्शनैः ॥
क्षुत्तृड्रुचिप्रभामेधाधीशौर्यतनुमार्दवैः ।
पित्तंपंचात्मकंतच्चपक्वामाशयमध्यगम् ॥
पंचभूतात्मकत्वेपियत्तैजसगुणोदयम् ।
त्यक्तद्रवत्वंपाकादिकर्मणानलशब्दितम् ॥
पचत्यन्नंविभजतेसारकिट्टौपृथक्पृथक् ।
तत्रस्थमेवपित्तानांशेषाणामप्यनुग्रहम् ॥
करोतिबलदानेनपाचकंनामतत्स्मृतम् ।

अर्थ–पाचक पित्त तिलके समानहै, अन्नकी यह कठोरताको दूरकरताहै, अविकृतहोनेसे पाक, ऊष्मा, और दर्शन करके पित्तोंको अनुगृहीत करताहै । तथा क्षुधा, तृषा, रुचि, प्रभा, मेधा, धी, शूरता, और देहके मृदुता करके उक्तपित्तोंको अनुग्रह करताहै । पंचात्मकपित्त पक्वाशय और आमाशयके

बीचमें स्थितहै; पंचभूतात्मकत्वभी होनेपर तैजस अर्थात् तेजगुणके आधिक्यतासे द्रवत्वगुणरहित और कठिनहोकर तथा सहकारिकारणोंकरके पाचनक्रिया आदिसे अनलशब्दवाच्य जो पित्तहै उसीको पाचकपित्त कहतेहैं. यह पाचकपित्त अन्नको पचाताहै, तथा सारकिट्ट (मलमूत्रादिकों) को पृथक् पृथक् करेहैं । तथा आमाशय और पक्काशयके बीचस्थितहो शेष जो रंजकादि धातुस्थपित्तहै उनपर बलदानदेनेकरके उपकार करेहैं । इसीसे इसको पाचकापित्त कहतेहैं इसमें डेढ श्लोक प्रथम वाग्भटका नहींहै ।

शिष्य–यदि पित्त और अग्निका अभेदहै तो घृत पित्तको कैसे शांतिकरताहै, और अग्निको दीप्तकरताहै । तथा मछली पित्तको करेहै, परंतु अग्निको दीप्त नहीं करतीहै । और पित्ताधिक्यसे तीक्ष्णाग्नि होतीहै, यह वार्त्ता फिर कैसे बनेगी तथा " समदोषःसमाग्निश्च " यहभी नहीं बनसके, तथा " द्रवं स्निग्धमधोगंच पित्तं वह्निरतोन्यथा " अर्थात् पित्त पतलाहै, चिकनाहै, और नीचेको गमनकरनेवालाहै, तथा अग्नि इस्से विपरीतहै अर्थात् घन, रूक्ष है, और ऊर्द्धगमनशीलहै । इत्यादि वाक्योंकी कैसे गति होगी ।

गुरु--इसका उत्तर यह है कि, पित्त निरंतर अग्निके रहनेका स्थान है, जैसे ग्रंथान्तरोंमें लिखाहै.

अग्निर्भिन्नगुणैर्युक्तःपित्तंभिन्नगुणैस्तथा ।
द्रवंस्निग्धमधोगंचपित्तंवह्निरतोऽन्यथा ॥
तस्मात्तेजोमयंपित्तं पित्तोष्मायःसशक्तिमान् ।
ससञ्चरतिकुक्षिस्थः सर्वतोधमनीमुखैः ॥
सकायाग्निःसकायोष्मासपक्तासचजीवनम् ।
अनन्यगतिरित्येवंदेहेकायाग्निरुच्यते ॥

अर्थ–अग्निके पृथक् गुणहै और पित्तके गुण भिन्नहै, जैसे द्रवस्निग्ध और अधोगमनवाला पित्तहै, और अग्निकेगुण इस्से विपरीतहै अतएव पित्त तेजोमय है, और पित्तकी शक्तिमान् जो ऊष्मा सो कूखमें स्थितहो धमनीके द्वारा सर्वत्र संचारकरेहै । उसीको कायाग्नि कायोष्मा, पक्ता, जीवन, और अनन्यगति, ऐसेदेहमें उसीपित्तकी ऊष्माके अनेक नामहैं ।

अन्यच्च ।

वामपार्श्वाश्रितंनाभेःकिञ्चित्सोमस्यमण्डलम् ।
तन्मध्येमंडलंसौर्य्यं तन्मध्येऽग्निर्व्यवस्थितः ॥

जरायुमात्रप्रच्छन्नःकाचकोशस्थदीपवत् ।

अर्थ–नाभीके किंचित् वामपार्श्वमें चंद्रमंडलहै, उसके बीचमें सूर्य और उसके बीचमें अग्नि व्यवस्थित है वह जरायुमात्रसे ढकीहुईहै, जैसे कांचकी फानूसमें दीपक होताहै ।

तथाच मधुकोषे ।

द्रवतेजःसमुदायात्मकस्यापि पित्तस्यतेजोभागोऽग्निरिति तेनपित्तमप्यग्निवन्मन्यते अतितापितायोगोलकवत् । परमार्थस्तु अग्निःपित्ताद्भिन्नएवेतिसिद्धान्तः ।

अर्थ–द्रवतेज समूहात्मक पित्तका तेजोभाग अग्नि कहाताहै, इसीसे पित्तभी अग्निके समान मानाजाताहै । जैसे अति तपायाहुआ लोहका गोला अग्निही मानाजाताहै । परंतु वास्तवसे विचारा जायतो अग्नि पित्तसे पृथक् है । यह प्रमाण रसप्रदीपमें इसप्रकार लिखा है ।

जाठरोभगवानग्निरीश्वरोऽन्नस्यपाचकः।सौक्ष्म्याद्रसानाददानो विवेक्तुंनैवशक्यते॥नाभौमध्येशरीरस्यविशेषात्सोममण्डलम् । सोममंडलमध्यस्थंविद्यात्सूर्यस्यमंडलम् । प्रदीपवत्तत्रनृणां स्थितोमध्येहुताशनः । सूर्योदिवियथातिष्ठंस्तेजोयुक्तैर्गभस्तिभिः॥ विशोषयतिसर्वाणिपल्वलानिसरांसि च । तद्वच्छरीरिणांभुक्तंज्वलनोनाभिमाश्रितः ॥ मयूखैःपचतेक्षिप्रंनानाव्यञ्जनसंस्कृतम् । स्थूलकायेषुसत्वेषुयवमात्रप्रमाणतः ॥ ह्रस्वकायेषुसत्वेषुतिलमात्रोस्तिसर्वथा । कृमिकीटपतंगेषु वालमात्रोऽवतिष्ठते ॥

अर्थ–जठरसंबन्धी अग्नि भगवान् ईश्वर अन्नका पाचक रसोंका ग्रहणकरताहुआ अतिसूक्ष्महोनेसे उसको नहीं जानसकतेहैं । शरीरके मध्यनाभिमें विशेष चंद्रमंडलहै । सोममंडलके बीचमें सूर्यमंडलहै तहां दीपककेतुल्य मध्यमें अग्निस्थितहै । जैसे तेजवान् किरणोंकरके सूर्य आकाशमें स्थित होकर तालतलैयाआदिके जलका शोषण करेहैं । उसीप्रकार मनुष्योंके नाभिमें रहनेवाला अग्नि अनेकप्रकारके सिद्धकरेहुए पदार्थोंको अपनी किरणोंसे पचाताहै । जो छोटीदेहवाले प्राणी हैं, उनके तिलके समान अग्निहै, और जो हाथी-

आदि बडी देहवाले जीव हैं, उनके जबकेतुल्य मोटी अग्नि रहतीहै । तथा कृमि, कीट, और पतंगआदि बहुतछोटेजीवोंके बालके बराबर अग्नि वास करेहैं इनसेभी जो छोटे हैं उनके इस्सेभी छोटीअग्नि रहतीहै ।

प्रकृतमनुसरामः ।

रंजकंनामयत्पित्तंतद्रसंशोणितंनयेत् । यत्तुसाधकसंज्ञंतत्कुर्याद्बुद्धिधृतिंस्मृतिम् ॥ यदालोचकसंज्ञंतद्रूपग्रहणकारणम् । भ्राजकंकान्तिकारीस्याल्लेपाभ्यंगादिपाचकम् ।

अर्थ-बीचमें झगडेको कहकर अब फिर उन्हीं शेषपित्तोंका वर्णनकरतेहैं । तहां रंजकपित्त आहारजन्य रसको रुधिरकरताहै । और साधकपित्त बुद्धि, धृति मेधा और स्मृतिको करताहै । तथा आलोचकनामकपित्त नेत्रोंमें रहकर रूप (कालापीलाआदि) को ग्रहणकरताहै । और भ्राजकपित्त त्वचामें स्थितहोकर कान्तिको करेहैं तथा देहमें करेहुए लेप, उबटना आदिको पचाताहै ।

अथ कफका स्वरूप ।

श्लेष्माश्वेतोगुरुःस्निग्धःपिच्छलःशीतलस्तथा ।
तमोगुणाधिकःस्वादुर्विदग्धोलवणोभवेत् ।

अर्थ-कफका रंग सपेद है, भारी चिकना, और पिच्छल (मलाईके सदृश) है, शीतलहै, इस्में तमोगुण आधिक्यहै, और स्वादुहै, विदग्ध अर्थात् अधकच्चारहनेसे खारी होताहै ।

एक कफ वातपित्तके सदृश नाम स्थान और कर्मभेदकरके पांचप्रकारकाहै ।

कफके नाम ।

कफस्यैतानिनामानिक्लेदनश्चावलंबनः ।
रसनःस्नेहनश्चापिश्लेष्मणःस्थानभेदतः ।

अर्थ-स्थानभेदसे कफके इतने नामहैं जैसे, क्लेदन, अवलंबन, रसन, स्नेहन, और श्लेष्मण ।

क्लेदनादिकफोंके स्थान ।

आमाशयेथहृदयेकंठेशिरसिसन्धिषु ।
स्थानेष्वेषुमनुष्याणांश्लेष्मातिष्ठत्यनुक्रमात् ।

अर्थ--आमाशय, हृदय, कंठ, शिर और सन्धि इनस्थानोंमें मनुष्योंके क्रमपूर्वक कफ वास करताहै ।

[एषु स्थानेषु] इस बहुवचनधरनेका यह प्रयोजनहै कि, सकलदेहव्यापी दोषोंकेभी पांचपांच ही स्थानहैं । इस बाहुल्याभिप्रायसे बहुवचन धराहै ।

कफोंके कर्म ।

क्लेदनःक्लेदयत्यन्नमात्मशक्त्यापरानपि ।
अनुगृह्णातिचश्लेष्मस्थानान्युदककर्मणाम् ।

अर्थ--आमाशयस्थ क्लेदनसंज्ञककफ भोजनकरेहुए अन्नको आर्द्र करताहै इसीसे इकट्ठाअन्न भेदको प्राप्तहोताहै, और अपने अंशकरके हृदयादिस्थानोंमें प्राप्तहोकर उसीउसीजगे हृदयावलंबन, त्रिकसंधारण, रसग्रहण, समस्तेन्द्रियतर्पण, और सन्धिसंश्लेषण, आदि कार्योंको उदककर्मकरके उपकार करेहैं ।

अवलंबनकफके कार्य ।

रसयुक्तात्मवीर्येणहृदयस्थावलंबनम् ।
त्रिकसंधारणंचापिविदधात्यवलंबनः ।

अर्थ--हृदयमें स्थित अवलंबनसंज्ञक कफ अपने आत्मवीर्य करके हृदयका अवलंबन और त्रिक (शिर और दोनोंभुजाकी सन्धि) को संधारण करता है ।

रसनकफके कार्य ।

उभावपिततःसौम्यौतिष्ठतश्चांतिकेयतः ।
यतोरसान्विजानातिरसनारसनौसमौ ।

अर्थ–रसना जीभ और रसन (रसनकफ) ए दोनों सौम्यहै, तथा दोनों समीप रहतेहैं, और इन्हींसे रसोंको जानताहै, अतएव रसना और रसनकफ सदृश है ।

स्नेहनकफके कार्य ।

स्नेहनःस्नेहदानेनसमस्तेन्द्रियतर्पणः ।
श्लेष्मणःसर्वसन्धीनांसंश्लेषंविदधात्यसौ ।

अर्थ–स्नेहनकफ स्नेहदान करके संपूर्ण इन्द्रियोंको तर्पण करताहै । और श्लेष्मणनामक कफ सर्व सन्धीनको आपसमें संश्लेष कहिये मिलाता है अर्थात् इसीकफसे जोड जहांके तहां मिलेहुएहैं ।

इतिप्रायेणदोषाणांस्थानान्यविकृतात्मनाम् ।
व्यापिनामपिजानीयात्कर्माणि च पृथक्पृथक् ।

अर्थ–इसप्रकार अविकृतदोषोंके स्थान कहेहैं इसीप्रकार व्यापीदोषोंके स्थान और कर्म वैद्यजाने अर्थात् उक्तस्थान और कर्म स्वस्थानस्थितदोषोंके कहे इसीप्रकार सकलशरीर चारी दोषोंके स्थान और कर्म वैद्य जाने।

प्रसंगवशरुधिरके स्थान।

शोणितस्यस्थानंयकृत्प्लीहानौतच्चप्रागभिहितं
तत्रस्थमेवशोणितस्थानानामनुग्रहंकरोति।

अर्थ–रुधिरके यकृत् और प्लीह स्थानहै, यह शोणितवर्णनीयाध्यायमें कह आएहैं। वह रुधिर उसजगे स्थितहो शेष रुधिरके स्थानोंको अनुग्रह अर्थात् पोषण करेहैं।

अनुष्णशीतंमधुरंस्निग्धंरक्तंचवर्णतः।
शोणितंगुरुविस्रंस्याद्विदाहश्चास्यपित्तवत्।

अर्थ--रुधिर–अनुष्ण, शीतल, मीठा चिकना, लाल रंगका, भारी, अनिष्ट गंधवालाहै। और यह पित्तके तुल्य विदाह करताहै।

एतानिखलुदोषस्थानान्येषुसंचीयंतेदोषाः। प्राक्संचयहेतुरुक्तः।

अर्थ--ये दोषोंके स्थान कहेहैं, इनमें दोषोंका संचय होता है। दोषोंके संचय होनेका कारण प्रथम ऋतुचर्याध्यायमें कहआएहैं, परंतु इसग्रंथमें ऋतुचर्या आगे कहेंगे।

तत्रसंचितानांदोषाणांस्तब्धपूर्णकोष्ठतापित्तावभासतामंदोष्णताचाङ्गानाम् गौरवमालस्यं चयकारणविद्वेषश्चेतिलिङ्गानिभवंति तत्रप्रथमःक्रियाकालः।

अर्थ- संचितदोषोंके ए लक्षण होतेहैं। पेटका स्तब्ध और पूर्ण होना, पीलाईका दीखना, अंगोंमें मंदगरमी, गौरव, आलस्य, चयकारणसे द्वेष अर्थात् जिसवस्तुके खानेलगानेसे जो दोष कुपित होवे उससे उसी वस्तुमें इच्छा नहीं रहती, तहां प्रथमक्रियाकालजानना।

अतऊर्द्ध्वंप्रकोपणानिवक्ष्यामः।

अर्थ–अब इसके उपरांत दोषोंके प्रकोपोंको कहेंगे।

वातकोपके कारण।

तत्रबलवद्विग्रहातिव्यायामव्यवायाध्ययनप्रपतनप्रधावनप्रपीडनाभिघातलंघनप्लवनतरणरात्रिजागरणभारहरणगजतु-

रङ्गरथपदातिचर्याकटुकषायतिक्तरुक्षलघुशीतवीर्यशुष्कशा-
कवल्लूरवरकोद्दालककोरदूषश्यामाकनीवारमुद्गमसूराढकी-
हरेणुकलायनिष्पावानशनविषमाशनाध्यशनवातमूत्रपुरी-
षशुक्रच्छर्दिक्षवथूद्गारबाष्पवेगविघातादिभिर्विशेषैर्वायुःप्र-
कोपमापद्यते ।

अर्थ--बलवानसे विरोध (युद्धादि) करनेसे, अत्यंत कसरत करनेसे, अति-मैथुनसे, अत्यंत पढनेसे, गिरनेसे, दौडनेसे, दबनेसे, चोट लगनेसे, लंघन करनेसे उछलने कूदनेसे, नदीमें तैरनेसे, रात्रिमें जागनेसे, बोझको लेजानेसे, हाथी, घोडा, रथमें बैठकर डोलनेसे, पैरोंसेही डोलना, तथा कटु, कषेले, तिक्त, रूक्ष, हलके, शीतद्रव्य, सूखे शाक, सूखा मांस,वरक (धान्यविशेष) वन, कोदो, कोदोधान्य, सामखिया, नीवार (मुनिअन्न) मूंग, मसूर, अरहर, हरेणु (वाटाना इति दक्षिणे प्रसिद्धः) मटर, सैम, इत्यादि सकलद्रव्योंके खानेसे उपवास, विषमाशन (कभी थोडा, कभी बहुत, कभी जल्दी कभी अवेरी अथवा अजीर्णमें भोजन) इसीप्रकार अधोवायु, मूत्र, मल, शुक्र, वमन, छींक, डकार, और आंसु, इन सबके उपस्थितवेगके रोकनेसे इत्यादिकारणोंसे वायु कुपित होता है ।

सशीताभ्रप्रवातेषुघर्मान्तेचविशेषतः ।
प्रत्यूषस्यपराह्णेतुजीर्णेन्नेचप्रकुप्यति ।

अर्थ--वहवायु, शीतकालमें बद्दलहोनेपर वायुके चलनेके समय वर्षाकालमें, प्रत्यूष (प्रातःकाल जिससमय गौ छोडीजातीहै) अपराह्ण और अन्नपरिपाक होनेके उपरांत कुपित होताहै ।

पित्तकोपके कारण ।

क्रोधशोकभयायासोपवासविधग्धमैथुनोपगमनकट्वम्ललव-
णतीक्ष्णोष्णलघुविदाहितिलतैलपिण्याककुलत्थसर्षपातसी-
हरितशाकगोधामत्स्याजाविकमांसदधितक्रकूर्चिकामस्तु-
सौवीरकसुराविकाराम्लफलकट्वरार्कप्रभृतिभिःपित्तंप्रकोपमा-
पद्यते ।

अर्थ-क्रोध, शोक, भय, श्रमजनककर्म, उपवास, अग्निदाह, मैथुन, दौड-करना, कटु, अम्ल, नोनका, और तीखा, गरम, हलका, विदाहीपदार्थ, तिल-तेल, खल, कुलथी सरसो, अलसी, हराशाक, गोह, मछली, बकरी, मेढा, इनके मांस खानेसे दही और तक्रकूर्चिका (जो छाछ और दूधके पकानेसे बनतीहै) दहीका जल, सौवीर (कांजी मद्यके विकार, खट्टाफल, कट्वर (जिसमेंसे मक्खन न निकालाहो ऐसी छाछ) और सूर्यकिरण इत्यादि पदार्थोंके सेवनसे पित्त कुपित होताहै ।

तदुष्णैरुष्णकालेचमेघान्तेचविशेषतः ।
मध्याह्नेचार्धरात्रेचजीर्यत्यन्नेचकुप्यति ।

अर्थ-उष्णद्रव्यका, उष्णकालमें, शरदृऋतुमें मध्याह्नमें, अर्धरात्रमें, और भुक्तअन्नके समय पित्त कुपित होताहै ।

कफकोपकारण।

दिवास्वप्नव्यायामालसमधुराम्ललवणशीतस्निग्धगुरुपिच्छिलाभिष्यन्दिहायनकयवकनैषधोत्कटमाषमहामाषगोधूमतिलपिष्टविकृतिदधिदुग्धकृसरपायसेक्षुविकारानुपोदकमांसवसाबिसमृणालकशेरुकशृंगाटमधुरवल्लीफलसमशनाध्यशनप्रभृतिभिःश्लेष्माप्रकोपमापद्यते ।

अर्थ-दिनमें सोनेसे, परिश्रम नकरना, आलस्य, मधुर, अम्ल, लवणरस, शीतल, स्निग्ध, गुरु, पिच्छल, और अभिष्यंदीद्रव्य, हायनक, (व्रीहिविशेष) यव, नैषध (धासविशेष) तज, उडद, बडेउडद, गेंहू, तिल, पिष्ट (मेदाआदि) दही, दूध, खिचडी, पायस (खीर) ईखकेविकार अर्थात् गुडआदि, उसीप्रकार अनूपदेशमें और जलमें रहनेवाले जीवोंका मांस, और वसा, कमलकी डंडी, कसेरु, सिंघाडे, मिष्ट, वेलके फल, (खरबूजा, तरबूज, पेठाआदि) अधिकभोजन, अजीर्णमें भोजन, इत्यादि कफकोपके कारण जानने ।

सशीतैःशीतकालेचवसन्तेचविशेषतः ।
पूर्वाह्नेचप्रदोषेचभुक्तमात्रेप्रकुप्यति ।

अर्थ--शीतलद्रव्यद्वारा, शीतलकाल, वसंतकाल, पूर्वाह्न, और प्रदोषमें तथा आहारके करतेही कफ कुपित होताहै ।

रुधिरकोपके कारण।

पित्तप्रकोपकारणैरेवचाभीक्ष्णं द्रवस्निग्धगुरुभिश्चाहारैर्दिवा स्वप्नक्रोधानलातपश्रमाभिघाताजीर्णविरुद्धाध्यशनप्रभृतिभिरसृक्प्रकोपमापद्यते।

अर्थ--जिन जिन कारणोंसे पित्त कुपित होताहै उसी २ कारणोंसे रुधिरभी कुपित होताहै। उसीप्रकार निरंतर द्रव, स्निग्ध और भारी द्रव्यके भोजन करनेसे दिवानिद्रा, क्रोध, अग्निसंताप, धूप, परिश्रम, अभिघात, अजीर्ण, विरुद्धद्रव्यभोजन तथा अजीर्णमें भोजन, इत्यादि कारणोंसे रुधिर कुपित होता है।

यस्माद्रक्तंविनादोषैर्नकदाचित्प्रकुप्यति।
तस्मात्तस्ययथादोषं कालंविद्यात्प्रकोपणे।

अर्थ–विनादोषोंके कदाचित् रुधिर कुपित नहीं होता, अतएव उस रुधिरका यथा दोषके सदृश कुपित होनेका काल जानना।

कुपितदोषोंके लक्षण।

तेषांप्रकोपात्कोष्ठतोदसंचरणाम्लिकापिपासापरिदाहान्नद्वेषहृदयोत्क्लेदाश्चजायन्ते तत्रद्वितीयक्रियाकालः।

अर्थ--उक्तदोषोंके कुपित होनेसे कोठेमें पीडा, खट्टीडकारका आना, प्यास, देहमें दाह, अन्नमें अरुचि, तथा वमनकीसी भ्रांति, ए सब लक्षण उपस्थित होते हैं। यह अवस्था चिकित्साका दूसरा काल है।

अतऊर्ध्वं प्रसरं वक्ष्यामः।

अर्थ–अब दोषोंके प्रसर अर्थात् कुपितदोष संपूर्णोंका स्वस्थानसे स्थानांतरगमनका विषय लिखा जाता है।

दोषोंके प्रसर।

तेषामेभिरातङ्कविशेषैःप्रकुपितानांपर्य्युषिताकिण्वोदकपिष्टसमवायइवोद्रिक्तानांप्रसरोभवतितेषांवायुर्गतिमत्त्वात्प्रसरणहेतुः सत्यप्यचैतन्येसहिरजोभूयिष्ठोरजश्चप्रवर्त्तकंसर्वभावानाम्।

अर्थ–वात्तापित्त और कफ इनका पूर्वोक्तवलवत् विग्रहादिकारणोंकरके कुपितहो अत्यंत बढकर वेगकरते हैं इसमें दृष्टांत है कि, जैसै सुराबीज (मद्यके

बनानेकी औषध) जल और पिष्टकहिये तंदुलपिष्ट इनके संयोगद्वारा अन्यो न्यगुणानुप्रवेशकरके जैसे मध्यमें प्रसरणगुण प्रगट होता है उसीप्रकार दुष्ट- हेतुके संयोग होनेसे वातादिकोंकी वृद्धि अर्थात् वेग होताहै । उनमें वायुको गतिमान् होनेसे मुख्य प्रसरणका हेतु वायुहीहै । यद्यपि चैतन्यता रहितभी वायुको रजोगुणबहुल होनेसे सर्वपदार्थोंका रजोगुण प्रवर्त्तक है सो रजो गुण पवनमें रहताहै ।

यथामहानुदकसंचयोऽतिवृद्धःसेतुमवदार्यापरेणोदकेन व्यामिश्रःसर्वतःप्रधावति एवंदोषाःकदाचिदेकशोद्विशःसमस्ताः शोणितसहितावानेकधाप्रसरन्ति ।

अर्थ–दोषोंके प्रसारमें दूसरा दृष्टांत देकर समझातेहैं कि जैसे बडाभारी जलका संचय अत्यंत बढकर सेतु (बंध) को तोडकर दूसरे जलसे मिलकर चारोंतर्फ विचरताहै । उसीप्रकार वातादिदोष कदाचित् एक, दो, वा समस्त तथा रुधिरकके संयुक्तहो अनेप्रकारसे विचरतेहैं ।

तद्यथा॥वातः-पित्तं-श्लेष्मा-शोणितं-वातपित्ते-वातश्लेष्माणौ-पित्तश्लेष्माणौ-वातशोणिते-पित्तशोणिते-श्लेष्मशोणिते-वातपित्तशोणितानि-वातश्लेष्मशोणितानि-पित्तश्लेष्मशोणितानि-वातपित्तकफा-वातपित्तकफशोणितानि-इत्येवंपञ्चदशधाप्रसरन्ति ।

अर्थ–जैसे, १ वात, २ पित्त, ३ कफ, ४ शोणित, ५ वातपित्त ६ वातश्लेष्म, ७ पित्तश्लेष्म, ८ वातशोणित, ९ पित्तशोणित, १० श्लेष्मशोणित, ११ वातपित्तशोणित, १२ वातश्लेष्मशोणित, १३ पित्तश्लेष्मशोणित, १४ वातपित्तकफ, १५ वातपित्तकफ और शोणित इत्यादि, १५ प्रकारके प्रस्तार होतेहैं ।

कृत्स्नेऽर्धेवयवेवापियत्राङ्गेकुपितोभृशम् ।
दोषोविकारंनभसिमेघवत्तत्रवर्षति ।

अर्थ–वातादिदोष संपूर्ण अथवा आधे अंगके किसी अवयवमें कुपित होनेसे विकारकी वर्षा करतेहैं । अर्थात् रोगोंको प्रगट करतेहैं जैसे आकाशमें मेघ वर्षतेहैं ।

नात्यर्थंकुपितश्चापिलीनोमार्गेषुतिष्ठति ।
निष्प्रत्यनीकः कालेनहेतुमासाद्यकुप्यति ।

अर्थ-अब कहतेहैं कि प्रभूतदोषभी अल्पकोपहोनेसे विकारकर्त्ता नहीं होताहै जैसे कि जो दोष अत्यंत कुपित नहीं वह मार्गोंके एकदेशमें स्थित रहताहै, वही दोष कालकरके निष्क्रियहो हेतुप्राप्तहोकर कुपित होताहै ।

तत्र वायोः पित्तस्थानगतस्य पित्तवत्प्रतीकारः पित्तस्यकफस्थानगतस्यकफवत् कफस्यचवातस्थानगतस्यवातवत् एषक्रियाविभागः ।

अर्थ-प्रसर होकर दोषोंको अन्यस्थानगत होनेसे दोषस्थानवत् प्रतीकार करना चाहिये यह कहते हैं, जैसे कि वायुको पित्तस्थानगत होनेसे पित्तके समान चिकित्सा करनी चाहिये । पित्तको कफस्थानगत होनेसे कफके समान और कफको वातस्थानगत होनेसे वातवत् चिकित्सा कर्त्तव्यहै । इसका निष्कृष्टार्थ यह है कि जबतक जो दोष अपने स्थानपर स्थित है तबतक जिस दोषकी जो चिकित्सा कही है सो कर्त्तव्य है, परंतु वेही दोष अपने स्थानको त्यागकर दूसरेके स्थानमें जाते हैं तब उनकी जिसके स्थानमें गए उसके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये ।

एवं प्रकुपितानां प्रसरतां च वायोर्विमार्गगमनाटोपौ । उषाचोषपरिदाहधूमायनानिपित्तस्य । अरोचकाविपाकांगसादच्छर्दिश्चेतिश्लेष्मणोलिंगानिभवंतितत्र तृतीयः क्रियाकालः ॥

अर्थ-इसप्रकार प्रकुपित और प्रसरणवाले दोषोंमें प्रकुपित और प्रसरणवायुका विमार्गगमन अर्थात् गुदा, कंठ आदिस्थानोंको छोड दूसरे मार्ग होकर निकलना तथा पीडासहित पेटका फूलना ए लक्षण होते हैं । तथा ओष (अंगके एकदेशमें दाह) चोष (चूसनेकीसी पीडा) दाह, और धूआंकीसी वमनकरना ए कुपित और प्रसरणशील पित्तके लक्षण हैं । अरुचि, भुक्तअन्नका अपाक, अंगग्लानि, और वमन ए कुपित और प्रसरणशील कफके

---

१ प्रकोप और प्रसरणमें क्या भेदहै यह कहतेहैं, जैसे-घृतको औटानेसे प्रथम अग्निलगनेसे घीचलायमान होताहै उस चलायमानअवस्थाको प्रकोप कहतेहैं, और उसी धीमें अत्यंत अग्निके लगनेसे झागरूप हो उफनकर बाहरकी तर्फ जब वेगसे चलताहै. उस अवस्थाको प्रसरण कहतेहैं. यही प्रकोप और प्रसरणमें भेदहै.

लक्षण होते हैं । तहां क्रियाका तीसरा काल जानना । दोषोंका प्रसर जानना वैद्यको अतिआवश्य है परंतु आजकल इस सूक्ष्मवस्तुको कौन जानसकता है क्योंकि आजकलके वैद्योंको स्थूलदोषोंकी तो परीक्षा होही नहीं सकती फिर प्रसर जानना तो एक बडी दुर्लभ बात है ।

अतऊर्ध्वंस्थानसंश्रयंवक्ष्यामः । एवंकुपितास्तांस्ताञ्छरीरप्रदेशानागत्यतांस्तान्व्याधीञ्जनयंति । तेयदोदरसंनिवेशं कुर्वन्तितदागुल्मविद्रध्युदराग्निसङ्गानाहविषूचिकातीसारप्रभृतीञ्जनयन्ति । बस्तिगताः प्रमेहाश्मरीमूत्राघातमूत्रदोषप्रभृतीन् । मेढ्रगतानिरुद्धप्रकाशोपदंशशूकदोषप्रभृतीन् । गुदगताभगन्दरार्शःप्रभृतीन् । वृषणगतावृद्धिः । ऊर्ध्वजत्रुगतास्तूर्ध्वजान् । त्वङ्मासशोणितस्थाः क्षुद्ररोगान्कुष्ठानि विसर्पांश्च । मेदोगताःग्रन्थ्यपच्यर्बुदगलगण्डालजीप्रभृतीन् । अस्थिगताविद्रध्यनुशयीप्रभृतीन् । पादगताःश्लीपदवातशोणितवातकण्टकप्रभृतीन् । सर्वाङ्गगताज्वरसर्वाङ्गरोगप्रभृतीन् ॥

अर्थ–अब इसके उपरांत सर्व दोषोंके स्थानसंश्रयको कहेंगे । इस प्रकार कुपितदोष देहके जिस प्रदेशमें आनकर स्थितहों उसी उसी अंगकी व्याधियोंको प्रगट करते हैं । जब उक्तदोष उदरमें आनकर प्राप्त होते हैं तब गुल्मरोग, विद्रधि, उदररोग, मंदाग्नि, अनाह, विषूचिका, अतिसारआदि रोगोंको करते हैं । बस्तीमें प्रात होनेसे प्रमेह, पथरी, मूत्राघात, और मूत्रदोषआदि रोगोंको करे हैं । मेढ्रगत होनेसे निरुद्धप्रकाश, उपदंश, (गरमी) और शूकदोषआदि रोगोंको करे हैं । गुदामें प्राप्त होकर भगंदर, बवासीर, आदिको करे हैं । वृषण (अंडकोश) गत होकर अंडवृद्धिरोग करते हैं । ऊर्ध्वजत्रुगत होनेसे ग्रीवामूलके रोगोंको करे हैं । त्वचा मांस रुधिरगत होनेसे क्षुद्ररोग कुष्ठ विसर्प आदि रोग होते हैं मेदोगत होकर ग्रन्थी (गांठ) अपची, अर्बुद, गलगंड, और अलजी प्रभृतिरोगोंको करे हैं । अस्थिगत होनेसे विद्रधि अनुशयी आदिरोगोंको करे हैं । पादगत होकर श्लीपद, वातशोणित और वातकंटक आदि रोगोंको करे हैं । और उक्तदोष सर्वांगगत होनेसे ज्वर और सर्वांगरोग आदिको प्रगट करते हैं ।

तेषामेवमभिनिविष्टानांपूर्वरूपप्रादुर्भावस्तत्प्रतिरोगंवक्ष्यामः। तत्रपूर्वरूपगतेषुचतुर्थःक्रियाकालः ।

अर्थ–इसप्रकार उनदोषोंका देहके विशेष २ स्थानमें आश्रय करनेसे व्याधिका पूर्वरूप जो प्रगट होता है। वो रोग २ के प्रति पृथक् २ कहेंगे । किंतु प्रति दोषका चयादिलक्षणके सदृश नहीं कहेंगे । इसप्रकार पूर्वरूप ज्ञान होनेपर क्रियाका चतुर्थकाल जानना ।

अतऊर्ध्वंव्याधिदर्शनंवक्ष्यामः । शोफार्बुदग्रन्थिविद्रधिविसर्पप्रभृतीनांप्रव्यक्तलक्षणता ज्वरातिसारप्रभृतीनाञ्च। तत्र पंचमक्रियाकालः ॥

अर्थ–अब इसके उपरांत व्याधिदर्शन अर्थात् व्याधिका पूर्वरूप अवस्थासे पररूप शोफादि ज्वरादिकोंके प्रगट लक्षण कहते हैं। जैसे शोफ, अर्बुद, ग्रन्थि (गांठ) विद्रधि और विसर्प-आदि व्याधिके तथा ज्वर और अतिसार प्रभृतिरोगोंके लक्षण समस्त प्रकृष्टरूपसे व्यक्त होते हैं इस अवस्थाको व्याधिका रूप कहतेहैं । यह चिकित्साका पंचमकाल है ।

अतऊर्ध्वमेतेषामवदीर्णानांव्रणभावमापन्नानां षष्ठः क्रियाकालः ॥ ज्वरातिसारप्रभृतीनांचदीर्घकालानुबन्धः । तत्रप्रतिक्रियमाणेऽसाध्यतामुपयान्ति ।

अर्थ--अब इसके उपरांत उक्तअवस्थाके परउक्तशोथादिरोग विदीर्ण होकर क्षत (घाव) होय है यह क्रियाका छटा कालहै । ज्वर और अतिसार आदिरोग दीर्घकालपर्यंत स्थित रहते है। यदि इस समयमें चिकित्सा न करीजावे तो समस्त रोग असाध्य हो जाते हैं ।

सञ्चयञ्चप्रकोपञ्चप्रसरंस्थानसंश्रयम् ।
व्यक्तिभेदं च योवेत्तिदोषाणांसभवेद्भिषक् ।

अर्थ--जो दोषोंका संचय, प्रकोप, प्रसर, स्थानसंश्रय (व्याधिकी पूर्वरूपावस्था) और व्यक्ति (व्याधिका रूपदर्शन) भेदको जानता है। वही वैद्य होता है ।

संचयेऽपहृतादोषालभन्तेनोत्तरागतिः ।
तेतूत्तरासुगतिषुभवंतिबलवत्तराः ॥

अर्थ–प्रथम प्रतीकारात्पत्व और पश्चात् प्रतिकारबाहुल्य दिखाते हैं । यदि दोषोंके संचय होनेपर अपहरण कराजाय तो वे दोष उत्तरगतिको नहीं प्राप्त होते हैं । अर्थात् बहुत दोषसंचय होगया हो उसमें शोधन करे और मध्यदोषमें लंघनपाचन करावे और अल्पदोषमें संशमनादि ओषधी देनी चाहिये । यदि आलस्यवश वे दोष उत्तरगतिको प्राप्त हो जावे तो बली हो जाते हैं ।

सर्वैर्भावैस्त्रिभिर्वापिद्वाभ्यामेकेनवापुनः ।
संसर्गेकुपितःक्रुद्धंदोषंदोषोऽनुधावति ॥

अर्थ–संपूर्ण भाव (रूक्षोष्णस्निग्धादि) करके तथा तीन वा दो अथवा एक दोषके संसर्ग करके कुपित दोष प्रकुपित दोषका अनुगामी अर्थात् प्रधानदोषका मार्गानुगामी होता है. इसकरके सर्वभावक्रुद्ध प्रधानभूतव्यक्त लिंगको अनुबन्ध्य दोष कहतेहैं । इस अनुबन्ध्यदोषकी चिकित्सा करनी चाहिये इसके शांति होनेसे अप्रधान अनुबंधभूतदोषकी शांति स्वयं होजाती है । और जिस समय सर्व भाव करके दोष कुपित होतेहैं तब सबही प्रधानभूत और अनुबंधभूत कहाते हैं इस प्रकारके सन्निपातावस्थामें होतेहैं । अन्यआचार्य भावशब्दकरके रसगुण वीर्य विपाक चार भाव मानते हैं । द्रव्य गुण कर्म ये तीन भाव हैं ऐसे चरकके व्याख्याकरनेवाले भट्टारक और हरिश्चन्द्रप्रभृति कहतेहैं । कोई कहतेहैं कि रूक्ष, लघु, विशद, विष्टंभ, ये वातके भागहैं । तीक्ष्ण, द्रव, पूती, नील, पीत ये पित्तके हैं । और शीत, गुरु, पिच्छल, स्निग्धादि कफके भाग जानने । तहां वातादि यदि सर्वभाग वा तीन, दो, एक भागकरके कुपितहोवे तो उतनेही उससे विपरीतभागोंकरके चिकित्सा कर्त्तव्यहै । जैसे कफके क्षीणहोनेसे बलवान्से विग्रहादि करनेपर यदि वातका रूक्षभाग कुपित होवे तो स्निग्ध एकही भाग उस वातके विरोधीकरके चिकित्सा कर्तव्यहै । यदि रूक्षशीत दोभाग कुपित होवे तो उसके विपरीत रूक्ष और उष्ण दो भागोंकरके चिकित्साकरे । इसीप्रकार सर्वभागोंसे जानना ।

---

१ दोषसंचयका हरण करना कुछ कठिन नहीं है परंतु फिरभी हम देखते हैं तो वैद्य यह नहीं विचारते कि, इस रोगीके देहमें अल्पसंचय है. वा मध्य अथवा अत्यंत है सबको लंघन और गरमजल पीना बताते हैं और हकीमलोग तथा डॉक्टर सबको जुल्लाब और भोजन बताय देतेहैं. परंतु यह नहीं जानते कि, अत्यंतसंचयमें जुल्लाबआदि शोधन देना और मध्यमसंचयमें लंघनादिकराने और अल्पदोषसंचयमें पाचनादि औषध देनी रोगीका भाग्य, उनको ता अपने पैसे लेनेसे प्रयोजन, है परंतु उनको यह महान् अधर्म है.

[संसर्गे] इस कहनेसे दोषद्वयका संयोग जानना। इसको इसप्रकार समझना कि, जब क्रुद्धदोष कुपितदोषके प्रति जाताहै तब संसर्ग होताहै। वह संसर्ग दोप्रकारकाहै, पहला प्रकृतिसमवेत दूसरा विकृतिविषमसमवेत कहाताहै।

जिससमय वातपित्तका संसर्ग होताहै उससमय शोषणात्मक स्वभावसदृश पित्तकरके वायु समवेतसमहै इसीसे प्रकृतिसमवेत संसर्ग कहातेहैं। और जिससमय पित्तकफका संयोग होताहै उससमय पित्त उष्ण शीतलकफकरके युक्त होताहै वह कफ उष्णपित्तके स्वभावसे विपरीतहै अतएव विपरीतसमवेतहै इसीसे विकृतिविषमसमसमवेत कहाताहै। इसश्लोकका संप्राप्तिरूपनिदानमें अधिक काम पडताहै।

संसर्गसन्निपातकी चिकित्सा।

संसर्गेयोगरीयान्स्यादुपक्रम्यसवैभवेत्।
शेषदोषविरोधेनसन्निपातेतथैवच ॥

अर्थ--संसर्गमें जो दोष बली होवे उसकी चिकित्सा कर्तव्य है। परंतु इसप्रकार चिकित्सा करे कि जैसे अन्यदोष कुपित न होवे। और इसीप्रकार सन्निपातमेंभी चिकित्सा कर्त्तव्यहै। कदाचित् ऐसा कहोगे तो " शमयेत्पित्तमेवादौज्वरेषु समवायिषु। दुर्निवारतमन्तद्धिज्वरार्त्तेषु विशेषतः॥ " अर्थात् समवायीज्वरोंमें प्रथम पित्तका शमन कर्त्तव्यहै। क्योंकि पित्तही दुर्निवारहै। और ज्वरार्त्तमें तो विशेष ध्यान देना चाहिये तथा और जगेभी लिखाहै कि, "समवायेहि दोषाणां पूर्वपित्तमुपाचरेत्। ज्वरेचैवातिसारेच सर्वत्रान्यत्रमारुतमिति " अर्थात् दोषोंके समूहमें प्रथम पित्तकी चिकित्सा करे ज्वरमें तथा अतिसारआदि सर्वरोगमें यह विधि है परंतु वातमें नहीं है अर्थात् वातके रोगमें प्रथम वातकी चिकित्सा कर्त्तव्यहै। यह बात कैसे सिद्ध होगी? इस बातको कहतेहैं कि, यह जो नियम कराहै सो समसन्निपातमें जानना अन्यत्र यह नियम नहींहै। अर्थात् विषमसन्निपातमें जो दोष प्रबल होवे उसीका पूर्व यत्न करना चाहिये।

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरे पंचविंशतितमस्तरंगः २५

अथातऋतुचर्याध्यायंव्याख्यास्यामः।

अर्थ–अब ऋतुचर्याध्यायकी व्याख्या करेंगे--ऋतुऋतुका आचरण जिसमें

उसको ऋतुचर्या कहतेहैं, कोई आचारी चरधातुको गति और भक्षण अर्थ होनेसे उसका यह अर्थ करतेहैं कि, ऋतुओंकी चर्याकहिये आहार विहारकी व्याख्या करतेहैं। इसजगे ऋतुचर्याध्याय कहनेसे यह संबंध है कि, पिछाडी दोषवर्णनीयाध्यायमें यह कहआएहैं कि, इन दोषोंके संचय होनेका कारण आगे कहेंगे, अतएव अब ऋतुचर्याध्यायका वर्णन करतेहैं।

प्रथमकालका वर्णन।

कालोहिनामभगवान् स्वयंभूरनादिमध्यनिधनोऽत्ररसव्यापत्सम्पत्तीजीवितमरणे च मनुष्याणामायत्तेससूक्ष्ममपिकलांनलीयत इतिकालः संकलयति कालयतिवाभूतानीतिकालः।

अर्थ–तहां जिसके अंगभूत छःओं ऋतु हैं, उसकालको प्रथम स्वगुणकर्म निरुक्ति करके दिखातेहैं। जैसे कि--कालनामसे प्रसिद्ध भगवान् स्वयंभू (स्वयंहोनेवाला) और आदि, मध्य, अंत, करके रहित है। इसप्रकार स्वधर्मकरके कालको कहकर कर्म करके चिकित्सोपयोगता कहतेहैं कि, मधुरादिरसोंका द्रव्योंमें न होना और होना, तथा मनुष्योंका जीवन, मरण इसीकालके आधीन है यह काल आपने सूक्ष्मभागकोभी लीन नहीं करता, क्योंकि गतिमान् है अथवा सर्वप्राणीमात्रका संहार कर एक राशी करता है इसीसे इसको काल कहतेहैं। अथवा प्राणियोंको सुखदुःखकरके योजना करताहै इसीसे इसको काल कहतेहैं। अथवा संपूर्णप्राणिमात्रको मृत्युके समीप प्राप्तकरे इसीसे इसको काल कहतेहैं।

शिष्य–एककालसे जीवन मरण और व्यापत् संपत्ति कैसे होतीहै? क्योंकि जीवनमरण परस्पर विरुद्ध है एकही अग्निसे शीत और उष्णता नहीं होसकती। अथवा एक दीपकसे प्रकाश और अंधकारभी नहीं बनसकते।

गुरु–तुम्हारा कहना ठीकहै परंतु कालशब्दकरके इसजगे कालत्वोपाधि शीतादिभेदभिन्नशिशिरादि ऋतु जाननी। उसको उत्तम मिथ्याकरके अन्योन्यविरुद्धकार्य होना संभव होसकताहै, इसीसे जीवितमरण कालके आधीन जो कहा यह निर्दोष है।

तस्यसंवत्सरात्मनोभगवानादित्योगतिविशेषेणाक्षिनिमेषकाष्ठाकलामुहूर्त्ताहोरात्रपक्षमासर्त्वयनसंवत्सरयुगप्रविभागं करोति।

अर्थ–उस संवत्सरस्वरूप कालके भगवान् आदित्य अपनी गतिविशेषकरके अक्षिनिमेष, काष्ठा, कला, मुहूर्त, अहोरात्रि, पक्षि,मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, और युगादि प्रविभाग अर्थात् टुकडे करेहैं । इसजगे सूर्यका तो उपलक्षण मात्र है किंतु चंद्रमाभी उदयास्तादि होनेसे कालके पृथक् पृथक् विभाग करताहै ।

संवत्सरनिमेषादिकोंको कहतेहैं ।

तत्र लघ्वक्षरोच्चारणमात्रोऽक्षिनिमेषः । पञ्चदशाक्षिनिमेषाःकाष्ठा । त्रिंशत्काष्ठाःकला । विंशतिकलोमुहूर्त्तःकलादशभागश्च । त्रिंशन्मुहूर्त्तमहोरात्रम् । पञ्चदशाहोरात्राणिपक्षः । सचद्विविधःशुक्लःकृष्णश्च । तौमासः ॥

अर्थ–तहां जितने समयमें लघु अक्षरका उच्चारणहोवे उस समयको अक्षिनिमेष वा निमेष कहतेहैं । १५ अक्षिनिमेषकी १ काष्ठा होतीहै,[परंतु कोई १८ निमेषकी काष्ठा कहताहै] ३० काष्ठाकी १ कला होतीहै, [१॥ काष्ठाकी १ विपल होतीहै और २० विपलकी १ कला होतीहै] २० कला और कलाके वीसवे भागका अर्थात् २० $\frac{1}{1}$ का मुहूर्त्त होताहै, [३ कलाका १ पल और १० पलोंका १ क्षण होताहै] ३० मुहूर्त्तका १ अहोरात्रि अर्थात् दिनरात्रि होताहै, [६ क्षणकी १ घडी और दोघडीका १ मुहूर्त्त और ३० मुहूर्त्तका एक अहोरात्रि] १५ अहोरात्रका १ पक्ष, सो दोप्रकारका है । एकशुक्ल और दूसरा कृष्णपक्ष [अहोरात्रिका आठवाँ भाग १ प्रहर होताहै । और तीस अहोरात्रिका १ मास (महीना) होताहै[१] ।]

ऋतुकथन ।

तत्र माघादयोद्वादशमासा द्विमासकमृतुंकृत्वाषड्ऋतवोभवन्तितेशिशिरवसन्तग्रीष्मवर्षाशरद्धेमन्ताः ।

---

१ कालोवैभगवान् साक्षात्स्वयंभूर्नवयौवने । आदिमध्यान्तराहितः सचसूक्ष्मो महानपि १ सूक्ष्मः कालो निमेषादिः कल्पादिश्चमहानिति । कथितोमुनिभिः कांते तत्त्वज्ञैः सूक्ष्मबुद्धिभिः २ लघ्वक्षरसमुच्चारं कालंप्राहुर्निमेषकम् । अष्टादशनिमेषैस्तु काष्ठास्यान्नवयौवने. ३ सार्द्धैकयातयाकांते विपलंपरिकीर्त्तितम् । कलानिधिमुखि प्रोक्ता कलाविंशतिकैश्चतैः ४ तिसृभिश्चकलाभिश्चपलमेकं भवेत्प्रिये । तथैवमृगशावाक्षि पलानांदशभिः क्षणः ५ क्षणैः षड्भिर्घटीमाहुः प्रियेताभ्यां मुहूर्त्तकम् । अहोरात्रंचतैस्त्रिंशन्मितैरंबुजलोचने ६ अहोरात्राष्टमोभावः प्रहरः परिकीर्त्तितः ।

अर्थ–तहां माघसे आदिले बारहमहिनोंसे दो दो महिनोंकी ऋतुकरके छः ऋतु होतेहै। वो शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, और हेमंत जानने।

ऋतुओंके पृथक् पृथक् विभाग।

तेषांतपस्तपस्यौशिशिरः-मधुमाधवौवसन्तः-शुचिशुक्रौग्रीष्मः-नभोनभस्यौवर्षा-इषोर्जौशरत्-सहसहस्यौहेमन्तःइति।

अर्थ–तिनमें माघ फाल्गुन यह शिशिरऋतुहै, चैत्र वैशाख वसंत, ज्यष्ठ आषाढ ग्रीष्म, श्रावण भाद्रपद ये वर्षा, आश्विन कार्त्तिक शरद, और मार्गशिर तथा पौष ये दो महिने हेमंतऋतु कहातेहैं। कोई आचार्य कहते हैं कि, यह ऋतुव्यवहार गंगाके उत्तरके देशोंमेंही है। क्योंकि जैसे चेरापूजी जो आसामके मुल्कमेंहै उसजगे आठ आठ महिने पर्यंत वर्षा होतीहै, और इतनी वर्षा होतीहै कि, ऐसी अन्य किसी मुल्कमें न होतीहोगी। उसी प्रकार उत्तरखंडमें बर्फान्देशमें सदैव शरदी पडतीहै, उसी प्रकार आफ्रिकाके मुल्कमें तथा हवसके मुल्कमें अत्यंत गरमी पडतीहै इसकारण यह ऋतुव्यवहार प्रायः गंगाके उत्तरके देशोंमें अधिक है। परंतु गयदास आचारीने इसबातका अत्यंत खंडन कराहै।

तएतेशीतोष्णवर्षलक्षणाश्चन्द्रादित्ययोःकालविभागकरत्वादयनेद्वेभवतोदक्षिणमुत्तरञ्च।

अर्थ–तहां ये ऋतु शरदी, गरमी, और वर्षाके लक्षणोंकरके जानीजाती है, [इनमें वायुकरके शरदी, सूर्यकरके गरमी, और चंद्रमाकरके वर्षा होती है, कोई और वर्षा दोनों चंद्रकरके होतीहै ऐसा कहतेहैं] इनउक्तशीतोष्णवर्षालक्षणऋतुओंसे चंद्र और सूर्यके कालविभाग करनेसे दो अयन होतेहैं एक उत्तरायण दूसरा दक्षिणायन।

तयोर्दक्षिणंवर्षाशरद्धेमन्तास्तेषु भगवानाप्यायतेसोमोऽम्ललवणमधुराश्चरसाबलवन्तोभवन्त्युत्तरोत्तरञ्चसर्वप्राणिनांबलमभिवर्द्धते।

अर्थ–उन दोनों अयनोंमें वर्षा शरद और हेमन्त इन तीन ऋतुका दक्षिणायन होताहै, इसमें भगवान् चन्द्रमाका बल क्रमसे बढताहै, तथा अम्ल (खट्टा) लवण, और मधुर ये तीनों रस क्रमपूर्वक बली होतेहैं। तथा संपूर्ण प्राणियोंका

बल उत्तरोत्तर बढताहै[1] इन तीनों ऋतुओंको विसर्गकाल कहतेहैं । यह चरकमें लिखाहै । इस ऋतुको सौम्यहोनेसे चंद्र बली होताहै क्योंकि तदाश्रित रात्रियोंको बडी होनेसे, और सूर्य क्षीण होताहै क्योंकि तदाश्रित दिन घटतेहैं, इसकालमें मेघोंकी वर्षा, पवन और शीतलताके प्रभावसे पृथ्वीका ताप शांत होजाताहै । अथवा शीतल कहना तो उपलक्षण मात्र है किंतु यह विसर्गकाल मृदु और स्निग्ध होनेसे पृथ्वी शांति होतीहै ।

उत्तरश्चशिशिरवसन्तग्रीष्मास्तेषुभगवानाप्यायतेऽर्कस्तिक्तकषायकटुकाश्चरसाबलवन्तोभवन्त्युत्तरोत्तरश्चसर्वप्राणिनांबलमपहीयते ।

अर्थ–शिशिर, वसन्त, और ग्रीष्म इन तीन ऋतुका उत्तरायण होताहै, इन ऋतुओंमें भगवान् सूर्यका बल क्रमसे बढताहै, तथा तिक्त, कषाय और कटुरस बली होतेहैं । और संपूर्ण प्राणियोंका बल क्रमसे घटताहै। इस उत्तरायणको आदानकाल कहतेहैं और वाग्भट लिखताहै कि, इस आदानकालमें सूर्य उत्तरगोलार्द्धावलंबी होनेसे सूर्य और पवन अत्यंत तीक्ष्ण, उष्ण, और रूखे होकर पृथ्वीके सौम्य (शीतल) गुणोंको नाश करतेहैं । इसीसे आदानकाल आग्नेय जानना ।

शीतेऽग्र्यंवृष्टिघर्मेऽल्पंबलंमध्यन्तुशेषयोः ।

अर्थ–हेमंत शिशिर ऋतुमें मनुष्योंमें उत्तमबल होताहै । और वर्षा ग्रीष्मकालमें अल्पबल होताहै बाकी शरद और वसंत ऋतुमें मध्यमबल रहताहै. [उत्तरायणसे दक्षिणायनकाल श्रेष्ठ है क्योंकि उत्तरायण ऋतु बलनाशक है और दक्षिणायन बलकारी है ।]

शीतांशुःक्लेदयत्युर्वींविवस्वाञ्शोषयत्यपि ।
तावुभावपिसंश्रित्यवायुःपालयतिप्रजाः ।

---

१ उत्तरोत्तरकहनेका यह प्रयोजनहै कि, दक्षिणायनमें चंद्रमाका और मनुष्योंका बल क्रमसे बढताहै जैसे वर्षाऋतुकी अपेक्षा शरद्ऋतुमें और शरद्ऋतुकी अपेक्षा हेमंतऋतुमें बल विशेष बढताहै तथा वर्षाऋतुमें अम्लरसका शरदऋतुमें लवणरसका और हेमंतऋतुमें मिष्टरसका बल बढताहै इसीप्रकार उत्तरायणमें सूर्यका क्रमसे बल बढताहै और मनुष्योंका बल क्षीण होताजाताहै जैसे शिशिरकी अपेक्षा वसंतमें और वसंतकी अपेक्षा ग्रीष्मऋतुमें सूर्यका बल बढताहै और मनुष्योंके बलका ह्रास होताहै क्योंकि जैसे जैसे सूर्यका तेज प्रबल होताजाताहै तैसेही तैसे गरमी अधिक बढतीहै जैसे जैसे गरमी बढे उसी उसी क्रमसे मनुष्य हीनबल होजातेहैं ।

अर्थ–चंद्र पृथ्वीको आर्द्र करताहै। सूर्य उसको सुखाता है। और चंद्रसूर्य दोनोंका आश्रय लेकर पवन प्रजाका पालन करता है। पवन चंद्रके आश्रयसे पुष्टता करे है, और सूर्यके आश्रयसे शुष्क करेहै, तदनंतर रसाभिनिवृत्ति होनेसे प्रजाको बढावे है।

अथखल्वयनेद्वेयुगपत्संवत्सरोभवति तेतुपंचयुगमितिसंज्ञां लभन्ते। स एषनिमेषादियुगपर्यन्तः कालश्चक्रवत्परिवर्त्तमानःकालचक्रमुच्यतइत्येके।

अर्थ–दो अयनोंका १ संवत्सर (वर्ष) होता है, और ५ वर्षका एक युग होता है। यह युगोंकी पारिभाषिकी संज्ञा है। [अन्यशास्त्रोंके मतसे ४३२०००० तेतालीस लाख और बीसहजार वर्षोंका एक युग होता है। ऐसे हजारयुगोंका ब्रह्मदेवका दिवस होता है,] वास्तवसे येही सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग सत्य है, इसी निमेषादियुगपर्यंत कालको चक्रवत्परिवर्त्तमान अर्थात् चक्रके सदृश फिरनेसे कोई आचारी कालचक्र ऐसा कहते हैं।

आयुर्वेदशास्त्रकेमतसे ऋतुवर्णन।

इहतुवर्षाशरद्धेमन्तवसन्तग्रीष्मप्रावृषः षडृतवोभवन्तिदोषोपचयप्रकोपोपशमनिमित्तम्।

अर्थ–इस अध्यायमें दोषोंके संचय प्रकोप और उपशमके निमित्त वर्षा, शरद, हेमन्त, वसन्त, ग्रीष्म, प्रावृष ये छःऋतु होते हैं।

छःऋतुओंके मासपरत्वनाम।

तेतुभाद्रपदाद्येनद्विमासिकेनव्याख्याताः। तद्यथा। भाद्रपदाश्वयुजौवर्षा। कार्त्तिकमार्गशीर्षौशरद्। पौषमाघौहेमन्तः। फाल्गुनचैत्रौवसन्तः। वैशाखज्येष्ठौग्रीष्मः। आषाढश्रावणौप्रावृडिति।

अर्थ–वो छःऋतु भाद्रपदादि दोदो महिनेकरके होती है, जैसे भाद्रपद और आश्विनकी वर्षाऋतु, कार्तिक मार्गशिरकी शरद, पौषमाघकी हेमंत, फाल्गुन चैत्रकी वसंत, वैशाखज्येष्ठकी ग्रीष्म, और आषाढश्रावण महिनेकी प्रावृट् ऋतु होती है। दोषोंके चय कोप और शमन इन्हीं ऋतुओंके अनुसार होते हैं। अतएव वैद्यको उचित है कि, यदि वमनविरेचन देवे तो इन्हींऋतु-

ओंके अनुसार देवे पूर्वक्रम आयुर्वेदशास्त्रमें मंतव्य नहीं है । इस मतमें प्रावृड्ऋतु कही है और शिशिरऋतुको इन्हींके अन्तर्गत मानी है ।

यथा ।

गंगायादक्षिणेदेशेवृष्टेर्बहुलभावतः । उभौमुनिभिराख्यातौ प्रावृड्वर्षाभिदावृतू । तस्याएवोत्तरेदेशेहिमप्रचुरभावतः । एतावुभौसमाख्यातौहेमन्तशिशिरावृतू ।

अर्थ--गंगाके दक्षिणदेशोंमें अत्यन्तवर्षा होनेसे मुनीश्वर प्रावृट् और वर्षाऋतु कहतेहैं । और गंगाके उत्तरदेशोंमें अत्यन्त शरदी पडनेसे इन्हीं दोनों ऋतुओंको हेमन्त और शिशिरऋतु कहीहै ।

अब पित्तादिदोषोंका संचय और प्रकोपोंका वर्षादि ऋतुओंमें सहेतुक होना दिखाते है ।

तत्रवर्षास्वोषधयस्तरुण्योऽल्पवीर्याआपश्चाप्रसन्नाःक्षितिमलप्रायास्ताउपयुज्यमानानभसिमेघावृतेजलप्रक्लिन्नायांभूमौक्लिन्नदेहानांप्राणिनांशीतवातविष्टब्धाग्नीनांविदह्यन्ते विदाहात्पित्तसञ्चयमापादयन्ति ससञ्चयःशरदिप्रविरलमेघेवियत्यपशुष्यति पङ्केऽर्ककिरणप्रविलापितःपैत्तिकान्व्याधीञ्जनयति ।

अर्थ--तहां वर्षाऋतुमें औषधी (गेहूं, जव, चनाआदि) तरुण और हीनवीर्य होतीहैं[१] । जल दूषित अर्थात् गदले होतेहैं । पृथ्वी मलप्राय (तृण, पर्ण, रसकषायादि मलबहुल) अर्थात् सर्वत्र पत्ते तिनका कीच कादोंसे दूषित होती है । ऐसे दूषित औषध जल और पृथ्वीके सेवन करनेसे तथा आकाशमेघ (बद्दल) करके व्याप्तहों वर्षाके जलसे आर्द्र पृथ्वीमें आर्द्र देहवाले प्राणियोंके शीत करके कुपितवात उसकरके मंदवेग जठराग्नि होतीहै । ऐसी मंदाग्निके प्रभावसे वर्षाऋतुमें भोजन करेहुए अन्नजल विदाहको प्राप्त होतेहैं ।

---

१ शिष्य–वर्षाऋतुमें गेहूं चना चावल आदि पुराने होते हैं. फिर आप तरुण अर्थात् अभिनव कैसे कहत हो ।

गुरु–तुम्हारा कहना ठीक है परंतु गेहूं चना चावलआदिके भीतर सूक्ष्मजल प्रवेश होनेसे नम्र हो ऊगनवाले होकर कुछ शक्ती बढकर पुराने होनेपरभी तरुण अर्थात् नए कहलाते हैं और शाकादितो नवीन सेवन करनेमें आतेही हैं, और जल भी नए होनेके कारण दूषित होते हैं.

अर्थात् अम्लपाकहोताहै, उस अम्लपाकहोनेसे पित्त इकट्ठा होताहै, अथवा स्वस्थानमें बढ़ताहै, संचीयमानभी पित्त शीतलऋतुहोनेके कारण वर्षाहीमें कुपित नहीं होता किंतु वह पित्तका संचय शरदऋतुमें क्वचित् क्वचित् मेघ रहनेसे और आकाश शुष्कहोनेसे तथा सूर्यकी किरणोंकरके पृथ्वीकी कीच शुष्कहोनेपर पित्तजनित व्याधियोंको उत्पन्न करेहैं ।

ताएवौषधयःकालपरिणामात्परिणतवीर्याबलवत्योहेमन्तेभवन्त्यापश्च प्रसन्नाः स्निग्धाअत्यर्थंगुर्व्यस्ताउपयुज्यमानामन्दकिरणत्वाद्भानोः सतुषारपवनोपस्ताम्भितदेहानांदेहिनामविदग्धाःस्नेहाच्छैत्याद्गौरवादुपलेपाच्चश्लेष्मणः सञ्चयमापादयन्ति ।

अर्थ--वेही पूर्वोक्त गेहूं चना चावल आदि औषधी हेमंतऋतुमें कालके परिपाकहोनेसे परिणतवीर्य (अर्थात् शक्तिसंपन्न) और बलवान्होतीहैं, तथा जल स्वच्छ चिकने और भारी होतेहैं (पृथ्वीके मल निवृत्तहोनेसे जल स्वच्छ होतेहैं कोई ऐसाकहतेहैं.) इस हेमंतऋतुमें उक्त औषध और जलके खानेपीनेसे उससमय सूर्यकी मंदकिरण होनेसे तथा तुषार (हिम) सहितपवनकरके स्तंभितदेह जिनकी ऐसे मनुष्योंके अविदग्धअन्न, चिकने, शीतल, भारी, और उपलेपी होनेसे कफका संचय करतेहैं परंतु यह कफ इसीहेमंतऋतुमें कुपित नहीं होता ।

स सञ्चयोवसन्तेऽर्करश्मिप्रविलापित ईषत्स्तब्धदेहानां देहिनांश्लैष्मिकान्व्याधीञ्जनयति ।

अर्थ–वह कफका संचय वसंतऋतुमें सूर्यकी किरणोंसे पिगलकर किंचित् स्तब्धदेहवाले प्राणियोंके कफकी व्याधियोंको प्रगट करेहैं ।

ताएवौषधयोनिदाघेनिस्साराभूक्षाअतिमात्रंलघ्व्योभवन्त्यापश्चताउपयुज्यमानाःसूर्यप्रतापोपशोषितदेहानांदेहिनांरौक्ष्याल्लघुत्वाद्वैशद्याच्चवायोःसञ्चयमापादयन्ति ।

अर्थ–वोही पूर्वोक्त गेहूं चावल आदि औषधि ग्रीष्मऋतुमें निस्सार (दुर्बलवीर्य) रूक्ष और अत्यंत हलके होतेहैं।तथा जलभी निस्सार रूक्ष और हलके होतेहैं

ऐसे औषध और जलके खानेपीनेसे उसकालमें सूर्यप्रताप करके उपशोषित देह जिन्होंकी ऐसे प्राणियोंके रूक्ष, लघु, और विशद गुणप्राबल्य होनेके कारण वायुका संचय होता है।

यद्यपि शीतलवायुका उष्ण (ग्रीष्मसमयमें) संचय नहीं होना चाहिये परंतु संपूर्ण वातके गुणोंमें रौक्ष्यगुण प्रधानहै अतएव औषधियोंको अत्यन्त रूक्ष होनेसे रूक्षवायुका ग्रीष्मऋतुमेंभी संचय होताहै।

स सञ्चयःप्रावृषिचात्यर्थजलोपक्लिन्नायां भूमौक्लिन्नदेहानांप्राणिनांशीतवातवर्षेरितोवातिकान्व्याधीञ्जनयति । एवमेषदोषाणांसंचयप्रकोपहेतुरुक्तः।

अर्थ–यह वातका संचय प्रावृषिऋतुमें अत्यन्त जलसे आर्द्र देहवाले पुरुषोंके शीतवात और वर्षाका प्रेरित वातके रोग प्रगट करेहैं।

इसप्रकार यह दोषोंका संचय और कोपका हेतु कहा है।

प्रकोपमें यथाअवसर संशोधनकरना यह कहतेहैं।

तत्रवर्षाहेमंतग्रीष्मेषुसञ्चितानांदोषाणांशरद्वसन्तप्रावृट्सु चप्रकुपितानांनिर्हरणं कर्त्तव्यम् ।

अर्थ–तहां वर्षा हेमंत और ग्रीष्मऋतुओंमें संचितहुए दोष शरदादि ऋतुओंमें कुपित होतेहैं, अतएव उन्होंका शरद्, वसंत, और प्रावृट्ऋतुमें वमनविरेचनद्वारा निर्हरण (शोधन) करना चाहिये।

तत्रपैत्तिकानांव्याधीनामुपशमोहेमन्ते श्लैष्मिकाणांनिदाघे वातिकानांघनात्यये स्वभावत एव। त एते सञ्चयप्रकोपोपशमाव्याख्याताः ॥

अर्थ–पैत्तिकव्याधियोंकी शांति हेमंतऋतुमें । कफजनितरोगोंकी शांति ग्रीष्मऋतुमें । और वातजनितरोगोंकी शांति शरदऋतुमें स्वयंही होजाती है। यह संचय प्रकोप और उपशम कहे हैं।

छःओं ऋतुओंका एक दिनमें परिवर्त्तन।

तत्रपूर्वाह्णेवसन्तस्यालिङ्गं-मध्याह्नेग्रीष्मस्य- अपराह्णेप्रावृषः-प्रदोषेवार्षिकं-शारदमर्द्धरात्रे-प्रत्युषसिहेमन्तमुपलक्षयेत् ।

एवमहोरात्रमपिवर्षमिवशीतोष्णवर्षलक्षणंदोषोपचयप्रकोपोपशमैर्जानीयात् ॥

अर्थ-अब दिनरात्रिमें छःओं ऋतु वर्त्ततीहै,यह कहते हैं तहां दिनके पूर्वाह्णमें वसंतके लक्षण होतेहैं, मध्याह्नमें ग्रीष्मऋतुके, अपराह्ण अर्थात् दिनके अंत्यभागमें प्रावृट्ऋतुके, प्रदोषमें वर्षाके अर्धरात्रिमें शरदऋतुके, और प्रत्यूष (चारघडीके तडके) हेमन्तऋतुके चिह्न होतेहैं, इसप्रकार अहोरात्र (दिनरात्रि) मेंभी वर्षके समान शीत उष्ण वर्षाके लक्षण दोषोंके संचय प्रकोप और शमनकरके जानने चाहिये ।

अव्यापन्नऋतुओंके गुण ।

तत्राव्यापन्नेष्वृतुष्वव्यापन्नाओषधयोभवन्त्यापश्चताउपयुज्यमानाःप्राणायुर्बलवीर्यौजस्कर्योभवन्ति ।तेषांव्यापदोऽदृष्टकारिता ।

अर्थ-तहां अदूषितऋतुओंमें दोषरहित औषधी (गेहूं चावलआदि) और जल होतेहैं । ऐसे अन्नजलके सेवन करनेसे प्राण, आयु, बल, वीर्य और ओजको वृद्धि कर्त्ता होताहै । उन ऋतुओंका दूषित होना अर्थात् शीत, उष्ण, वायु, वर्षाका विपरीत होना अदृष्टकारितहै । अर्थात् संपूर्ण मनुष्योंके अधर्मसे होताहै ऐसा जानना, कोई अदृष्टकरके ईश्वरका ग्रहण करतेहैं अर्थात् ईश्वरकी इच्छासे होतीहै ।

व्यापन्नऋतुओंको अवगुण ।

शीतवातवर्षाणिखलुविपरीतान्योषधीर्व्यापादयन्त्यापश्चतासामुपयोगाद्विविधरोगप्रादुर्भावोमरकोवाभवेदिति ।

अर्थ-शरदी, गर्मी और वर्षाके विपरीत होनेसे अर्थात् हीन मिथ्या अति युक्त होनेसे औषधी और जल दूषित होतेहैं उन औषधी और जलके सेवन करनेसे अनेकप्रकारके रोग और महामारी आदि उत्पन्न होतेहै ।

मताान्तरम् ।

तत्रशीतोष्णवर्षाणांहीनमिथ्याधिकेनच । जलानामौषधादीनांविपरीतोगुणोभवेत् ॥ १ ॥ तस्योपरोधाद्विविधरोगाणांचाशुसम्भवः । तस्माद्वैद्यैर्बुद्धिमद्भिःसम्यगृतुषुसं-

ग्रहम् ॥ २ ॥ अपांवाद्यौषधीनां च कारयेच्चप्रयोजयेत् । अनुत्पत्तौयतंतेयेतेवैद्यास्तेचमंत्रिणः ॥ ३ ॥ विपाकंकोविजानातिगदानांविपदामपि ।

अर्थ–तहां शीत, उष्ण और वर्षाके हीन मिथ्या और अधिक होनेसे जल और औषधादिकोंमें विपरीत गुण होतेहैं । अर्थात् जो गुणकारी औषधी होती है वो अवगुणकारी होजातीहै, उन औषधादिके सेवनसे अनेक प्रकारके रोगोंकी तत्काल उत्पत्ति होती है । अतएव वैद्यको उचितहै कि, उत्तम ऋतुओंमें जल और बाहरकी औषधियोंका संग्रहकरलेना चाहिये । जो रोग और विपत्ति आनेके पूर्वही यत्न करतेहैं वोही वैद्य और मंत्री कहातेहैं क्योंकि रोग और विपत्ति आनेके समयको कौन जानताहै । अर्थात् वैद्यको तो उचित है कि जिसवर्षमें उत्तमऋतु होवे उसी समयमें सब औषधोंका और जलका संग्रहकर रक्खे और राजाके मंत्रीको उचित है कि, जब-तक कोई शत्रु प्रगट नहो उस्से पूर्वही सेनाआदिका प्रबंध अच्छीरीतिसे करे।

दूषितऋतुओंकी चिकित्सा।

तत्राव्यापन्नानामोषधीनामपाञ्चोपयोगः ॥

अर्थ–दूषितऋतुओंमें शुद्धअन्न जलका सेवन करना चाहिये। चकारसे पवनका ग्रहणहै अर्थात् दुष्टऋतुमें शुद्धपवनका अवश्य सेवन करना चाहिये।

कदाचिदव्यापन्नेष्वप्यृतुषु कृत्याभिशापरक्षःक्रोधाधर्मैरुपध्वस्यन्तेजनपदाः ।

अर्थ–कभी कभी उत्तम ऋतुओंमेंभी कृत्या (मंत्रसे उत्पन्नराक्षसीविशेष) अभिशाप (गुरू, मातापिता, ब्राह्मण सिद्ध आदिके शापसे) राक्षसोंके क्रोध और अधर्म इन करके लोक पीडित होतेहैं ।

विषौषधीपुष्पगन्धेनवायुनोपनीतेनाक्रम्यतेयोदेशस्तत्रदोषप्रकृत्यविशेषेण कासश्वासवमथुप्रतिश्यायशिरोरुग्ज्वरैरुपतप्यन्ते ग्रहनक्षत्रचरितैर्वा गृहदारशयनासनयानवाहनमणिरत्नोपकरणगर्हितलक्षणनिमित्तप्रादुर्भावैर्वा ।

अर्थ–जिस देशमें विषैल औषधकी पुष्पगन्धको पवन लेजायकर प्राप्त करती है उस जगे दोषप्रकृतिके विनाभी लोक खांसी, श्वास, वमन, मस्तक-

पीडा, और ज्वरसे तपायमान होतेहैं। कोई आचार्य "कासश्वासप्रतिश्याय-गन्धाज्ञानभ्रमशिरोरुग्ज्वरमसूरिकाभिरुपतप्यंते" ऐसा पाठ लिखकर व्याख्या करते हैं। कि,श्वास लेनेसे जो नाकके छिद्रद्वारा विषैल पवन जातीहै उस्से खांसी श्वास प्रतिश्याय (सरेकमा) गंधका ज्ञान न होना, भ्रम, और मस्तकपीडा आदि रोग होते हैं। और वही विषैल पवन त्वचामें लगनेसे ज्वर, शीतलआदिके रोग होते है। तथा शनैश्चरादि दुष्ट ग्रहोंको दुष्टस्थानमें स्थित होनेसें और अश्विन्यादि नक्षत्रोंके उल्कापातादि चरित्रसें जन्मनक्षत्रादि विद्ध होनेसे। तथा घर, स्त्री, शय्या, सिंहासन वा चोकीमूढा-आदि यान (रथ वग्घी घोडा हाथी पालकी नालकी पिन्नसआदि) मणि (स्फटिकादि) रत्न (हीरा पन्ना माणिक आदि) उपकरण (कलस, घडा, पीढा, सूप थाली आदि) इन सबके दुष्ट लक्षणरूप कारणकरके उत्पत्ति जिन्होंकी ऐसी व्याधियों करके लोक पीडित होते हैं।

प्रमाणान्तर।

कालोदेशोजलोवायुश्चैतेदुष्टाविलक्षणाः। कुर्युर्जनपदध्वंस-मेकरूपेणयक्ष्मणा॥ कोर्थःसर्वेषांशीतज्वरादिरूपेणेत्यर्थः। राजाधर्मंपरित्यज्ययदाधर्मंप्रवर्त्तयेत्। अधर्ममनुवर्त्ततेतद्दे-शपुरवासिनः॥ उत्क्रान्तधर्ममर्यादांप्रजांवायद्युपेक्षते। सरा-जंतंजनपदंसंत्यजन्तीहदेवताः। उत्क्रान्तधर्ममर्यादां तांप्र-जांत्यक्तजीविताम्। विध्वंसयंतिविकृताःकालदेशांबुमारुताः॥

अर्थ–काल, देश, जल और वायु ये विलक्षणतासे दुष्टहो लोकोंको एकरूप यक्ष्माकरके अर्थात् शीतज्वरादिरूपकरके पीडितकरतेहैं। जिससमय राजा धर्मको त्यागके अधर्मको प्रवृत्त करताहै। उससमय उसके देश और पुरवासी प्रजा धर्ममर्यादाको उल्लंघन करतीहै, जब इसप्रकार राजा और प्रजा दोनों अधर्मी होजातेहैं, तब उस राज और जनपदोंको देवता त्याग देतेहैं, अर्थात् ग्रामदेव, और कुलदेव त्याग देतेहैं, उस समय उन अधर्मीप्रजाओंको काल, देश, जल, और पवन विध्वंस करतेहैं।

कालकी दुष्टि।

ग्रहनक्षत्रसंस्थानप्रमाणजनवैकृतौ। तयोरधर्मात्संप्राप्तेकालो व्याप्यद्यतेध्रुवम् ॥ कालःसंवत्सरःशीतोघर्मवर्षश्चलक्षणम्।

सहीनातिविपर्य्यस्तस्वलिंगोदुष्टउच्यते ॥ शीतेतिवातता-
शीतमथवास्याविपर्ययः । तथाचोष्णेचवर्षेच कालव्याप-
दिलक्षणम् ॥

अर्थ–अधर्मसे ग्रह, नक्षत्रोंके स्थान प्रमाण और जनोंकी विकृती होनेसे काल दूषित होताहै, वह संवत्सरात्मककाल शरदी, गरमी और वर्षालक्षणात्मक होताहै फिर वह काल अपने लक्षणोंसे हीन, अत्यंत और विपरीत होनेसे दुष्ट कहलाताहै, शीतकालमें अत्यंत पवन वा अत्यंत शीत अथवा शरदीमें गरमीकाहोना दुष्टता कहातीहै इसी प्रकार गरमी और वर्षाऋतुके दुष्टलक्षण जानने।

देशदुष्टके लक्षण।

प्रकृत्याविकृतस्पर्शगंधवर्णरसाश्रयः। तृणोलुपलतागुल्मजा-
लव्रततिसंकुलः॥मक्षिकादंशमशककृमिकीटाद्युपद्रुतः। शु-
काखुशलभोलूकश्मशानिकमृगद्विजैः॥ पीडितोवातनिर्घा-
तकंपोल्काशनिवृष्टिभिः॥निःश्रीकपुष्पोपवनोनष्टसस्यौषधी-
फलः॥ संशुष्कोदीर्घसंक्षुब्धघोरस्वनजलाशयः। नीलि-
कादिभिराच्छन्नोवाप्यादीनांवचोद्गमः॥ घोरनादाक्रमिर्वायु-
र्मेघच्छन्ननभस्तलः। अकालपुष्पफलवान्गर्भादद्भुतदर्शनः॥
निस्तन्यइवनिःश्रीकस्तपोद्भ्रांतमृगद्विजः । अजस्रसंभ्रमा-
द्भ्रान्तउत्कृष्टश्वगणोभृशम् ॥ भैरवाद्भुतसंत्रासीरुदितानि-
ष्टनिस्वनः । द्विपादीनांवचोत्पत्तिरश्वादीनांद्विधालकाः ॥
प्रासादानांप्रपातश्चअकस्माच्चैवजायते। त्रासश्चगोवृषादीना-
मश्वानांचपलायनम् ॥ भवेद्धर्मार्जवादीनांनाशःसत्यौज-
सांतथा। उत्पातैस्तद्विधैश्चान्यैःप्रदुष्टोदेशउच्यते।

अर्थ–जिससमय गंध वर्ण, रसाश्रयवस्तुओंका प्रकृतिकरके विपरीतस्पर्श हो (अर्थात् सुगंधवस्तुओंमें दुर्गंध और दुर्गंधवालीवस्तुओंमें सुगंधी आवे, उत्तमरंग दुष्ट और दुष्ट रंग उत्तम प्रतीत होवे, उसी प्रकार कटु कषेले रस मिष्ट और मिष्टरस कटु प्रतीत हो) तृण, उलूप (लताका भेद) लता,

गुल्म (जवासे आदि) जाल, और वेल इनसे जो व्याप्त हो, तथा मक्खी, डास, मच्छर, कृमि, कीट, आदिसे उपद्रवयुक्त हो, तोता, मूसे, टीडी, घूघू, तथा श्मशानमें रहनेवाले मृग (स्यारिया विज्जू भिढहा, जरखआदि) और पक्षी (गीध, कंक, कुई, वाझ, शिकरा, चील काकआदि) इनकरके पीडित तथा पवन (आंधी भभूरा आदि) भूचाल, उल्का, अशनि (वज्रपात) और वर्षा इन करके पीडित, तथा शोभारहित पुष्प जिन्होंमें ऐसे उपवन वागबगीचे नष्टसस्य (दूब) औषधी (गेहूं चना चावल आदि) और वृक्ष फलहीन हो, सूखे और अत्यंत क्षुभित तथा घोर शब्द करनेवाले और नीलिका आदि (शिवारआदि) से आच्छादित जलाशय होते हैं । बावडी, कूआ, आदिका गूंजना घोर शब्दके करनेवाली और कृमिसंयुक्त पवन होवे, आकाश नित्यप्रति बादलोंसे ढका रहे, कुसमय वृक्षोंमें फलफूलोंका प्रकट होना (अर्थात् जो वृक्ष शरदीमें फले फूले वो गरमीमें फलफूलयुक्त होने लगे और जो चातुर्मास्यमें फलने फूलनेवाले हैं वो शर्दीगर्मीमें फलफूल देने लगे) गर्भोंसे अद्भुत बालक प्रगट हो (अर्थात् नेत्र खुले, हँसते हुए, दांतयुक्त, दो मूडके, छः उंगलीके दो जुडे हुए,विना मस्तकके, तथा मनुष्यके बकरी घोडा, सर्पके तुल्य बालक प्रगट हो, घोडेके गधेकासा, गधेके घोडेकासा, वा बकरीकासा बच्चा होना इत्यादि औरभी जानने) दूधरहित और शोभारहित अत्यंत गर्मीसे पीडित पशु (गौ, भैंस, मृग, ससे, व्याघ्रादि) और पक्षी, हो, तथा पक्षी और पशुओंके झुंड निरंतर संभ्रमसे भ्रांत हो घोर और अद्भुत त्रासयुक्त रुदन करे और अशुभ वाणी बोले हाथीआदि पशुओंका बोलना, और घोडोंआदिको द्विधालक होना अकस्मात् पक्के और दृढ मकानका गिर पडना, गौ बैल आदिको त्रासका होना तथा घोडा हाथी आदि अपने स्थानको त्यागकर भागना तथा धर्म, नम्रता, आदिका और सत्य तथा ओजका नाश होना, उसीप्रकारके अन्य उत्पात होनेसे दुष्ट देश कहता है। अर्थात् जिस देशमें ऐसे उत्पातहोने लगे तब जान लेवे कि अब यह देश दुष्ट हो गया ।

दुष्टजलके लक्षण ।

स्वभावविरसस्पर्शगन्धवर्णरसोदितम् । आगंतुभिःकृमिक्लेद-पैच्छिल्यैश्चाप्युपद्रुतम्।परित्यक्तंजलचरैरकस्माद्वापिसेवितम्। पातस्तटद्रुमानां च क्षीयमाणंजलाशयम् । अनारोग्यकरं चाम्बुप्राणिनां दुष्टमुच्यते ।

अर्थ–जो जलके रस, स्पर्श, गंध, और वर्ण कहे हैं वो स्वभावसे हीन होवे; (अर्थात् स्वाद खारी हो दुष्टस्पर्श कहिये जिसके शरीरमें स्पर्श होतेही खुजली चल उठे, चकत्ते पडजावे, दुर्गंध आतीहो और दीखनेमें बुरा मालुम हो) तथा गिरकर कोई पशुपक्षी मरगया हो कीडे पडगये हो, पत्ते, तिनका-मिट्टी, पत्थरसे अट रहा हो, गाढा हो वा ऊपर मलाईसी जम रही हो, इत्यादि उपद्रवयुक्त हो, और जिसको जलचर (चकवा चकवी, सारस, जल मुरगा, बतक, और कछुआ, मेडक आदि) त्यागगए हो अथवा जिसमें कोई जलचर नहीं रहताथा उसमें अकस्मात् रहने लगे (मच्छी मरजावे) तटके वृक्ष गिरपडे वा जलाशय शुष्क होगया हो ऐसा मनुष्योंको रोगका करनेवाला दुष्टजल कहाता है।

दुष्टपवनके लक्षण।

वित्रासकःकुण्डलिकश्चण्डघोरजवस्वनः। अतिशीतोष्णरूक्षोतिपरुषोऽतिबलःखरः। असात्म्यगंधसिकतापांशुधूमरजोवहः। अथर्त्तुविपरीतश्चप्रदुष्टोवायुरुच्यते।

अर्थ–जो पवन त्रासदायक, भभूरेके रूपमें, प्रचंड घोरवेग और शब्दवाला, अत्यंत शीतल, अतिउष्ण, अतिरूक्ष, अतिकठोर, अत्यंत बलवान् और खर, दुष्टगंध, रेत, और धूल, तथा धूआँ आदिको बहनेवाला और ऋतुविपरीत पवन दुष्टकहाताहै।

ऋतुकालप्रदेशेनवायुर्मुह्यतिवायुना।सलिलंसलिलेनोर्वीतैःसर्वैश्चोद्भिदोगणः।कालदेशाम्बुमरुतांदुष्टानांधर्मसंक्षये।एषांदुःपरिहार्यत्वात्पूर्वःपूर्वोभवेद्बली। अकालमृत्युतस्तस्मात्संरक्षेज्जीवितंबुधः। रसवीर्यविहीनानामौषधीनांचवर्जनम्। सम्यगृतुप्रभूतानांगृहीतानां च सेवनम्। जलानामौषधीनांच व्रतचर्यांचकारयेत्।

अर्थ–ऋतुकाल और प्रदेशकरके पवन पवनसे दूषित होतीहै, और जल जलसे तथा पवनजलसे पृथ्वी दूषितहोतीहै। और ऋतु, काल, प्रदेश,पवन, जल और पृथ्वीके दूषित होनेसे उद्भिदगण (वृक्षौषधादि) दूषितहोतेहैं। इसप्रकार काल, देश, जल और पवन दूषितोंका धर्म क्षीण होनेसे ये दुःख परिहार्य अर्थात् यत्नरहितहो पूर्वपूर्वसे उत्तर उत्तर बली होतेहैं अर्थात् कालसे देश प्रबल, देशसे जल, और जलसे अधिक बली रोगकारक पवन

होतीहै। अतएव बुद्धिमान् पुरुषको उचितहै कि, अकालमृत्युसे अपनेजीवनकी रक्षाकरे, इसप्रकार कि, रस वीर्य विहीन औषधोंका परित्याग करना और उत्तमऋतुमें होनेवाले और उत्तम ऋतुगृहीत औषध जल आदिका सेवनकरना और व्रतचर्याआदिके करनेसे देह रक्षाकरे।

अवऋतुव्यापदादिकृत रोगोंकी चिकित्सा।

तत्रस्थानपरित्यागशांतिकर्मप्रायश्चित्तमङ्गलजपहोमोपहारेज्याञ्जलिनमस्कारतपोनियमदयादानदीक्षाभ्युपगमदेवताब्राह्मणगुरुपरैर्भवितव्यमेवंसाधुभवति।

अर्थ-अब दूषित ऋतुकृत रोगोंकी सामान्य रीतिसे चिकित्सा कहते है। तहां जिस स्थानमें रोगादि उपद्रव होतेहो उसको त्याग दूसरे स्थानमें चला जाना शांतिकर्म (इन्द्रीन्को जीतना अर्थात् जिससमय महामारी आदि रोग होवे उससमय खरबूजा तरबूज आदि दूषित वस्तु नखाना, बहुत स्त्रीसंग न करना, दुष्टशब्द न सुनना, इत्यादि इन्द्रियोंके व्यापारोंको न करे) अथवा वेदोक्तमंत्रोंसे ग्रहशांति आदि करे। प्रायश्चित्त (कर्मविपाककी रीतिसे चांद्रायणादि व्रत करना) अथवा प्रायनाम तपकाहै और चित्तनाम निश्चय को कहतेहैं। इन दोनों तप और निश्चयको एकत्रकरनेको प्रायश्चित्त कहते हैं। मंगल (उत्तम औषधीऔर मणि आदिका धारण करना) जप (ओंकार और व्याहृतिपूर्वक गायत्री मंत्रका जप करना वा वेदोक्त मृत्युंजयादि मंत्रोंका जाप करना परंतु दुष्ट रचित मद्यमांसभक्षण जिनमें ऐसे तंत्रोक्त मंत्र कदाचित् न जपने) होम (हवन) उपहार (देव ब्राह्मणादिकोंके अर्थ गौ, घोडा पाक आदि देना) कोई नास्तिक अधर्मी शूद्र पशुबलिदान कहतेहैं परंतु ऐसी वार्त्ताको मनमेंभी चिंतवन न करना क्योंकि "अहिंसा परमोधर्मः" ऐसी वेदकी आज्ञाहै[1]

---

१ कदाचित् कोई कहे कि, वेदमें गोमेध, अश्वमेधादि यज्ञोंमें प्रत्यक्षहिंसाकरना लिखाहै उनसे हमारा यही कथनहै कि, वेद ईश्वरकी आज्ञाहै, वह ईश्वर हमारी तुम्हारी तरह अज्ञानी नहींहै कि, कहीं तो चोरी करना उत्तम लिखे और कहीं उसको वर्जित करे, कदाचित् कोई कहे कि, यज्ञकी हिंसा नहीं कहलाती और जो जीव माराजाता है उसको अक्षय स्वर्ग होताहै. तो फिर यज्ञकर्त्ता यह अलब्धपद अपने पिताको वा भाईपुत्रको मारके क्यों नहीं देता. हा च्छी ऐसे पामरोंसे भाषण कदाचित् न करना चाहिये। कहीं कहीं भक्तमालआदि ग्रंथोंमें लिखाहै कि, भक्तचोरी अन्याईकरके भी वैष्णव और भगवान्की सेवा करे परंतु यह आज्ञा उन्हीं दुष्टोंकीहै. ईश्वर अवश्य ऐसे दुष्टोंको घोरनरकमें गेरेगा इसजगे ग्रंथ बढनेके भयसे हमने इतनाही लिखाहै.

इज्या (यज्ञकरना) अंजली (भक्तिपूर्वक हाथ जोडना) नमस्कार (देवगुरुब्राह्मणोंको मनदेहवाणीसे प्रणाम करना) तप प्रसिद्धहै, नियम (शास्त्रोक्तमौनादि) दया (सर्वजीवोंका हित इच्छा करना) दान यथाशक्ति अनाथोंको देना परंतु हृष्टपुष्ट बकवृत्ति और बिडालवृत्तिवालोंको देना वर्जितहै) दीक्षा (गुरूसे सेवापूर्वक गायत्र्यादिमंत्रोंको ग्रहण करना) अभ्युपगम (गुरु आदिके सत् वाक्योंको अंगीकार करना) तथा देवता ब्राह्मण और गुरु इनकी सेवा करना, इत्यादि सर्वकर्मकरनेसे ऋतुजनित महामारी आदि उपद्रवोंकी शांति होतीहै।

इसके अनंतर अब वसन्तआदिऋतुओंका वर्णन और उनमें आहार विहार आदि का वर्णन कराजाताहै। तहां प्रथम-

हेमन्तऋतुवर्णनम्।

यत्र तुषारगिरिविनिर्गतजनितजाड्यजनपदसंदीपितहुताशनधूमधूलीधूसरदर्पितखड्गकुञ्जरमहिषमेषवायसमथ लोध्रप्रियङ्गुपुन्नागपुष्पराजिविराजितदमनकमरुबकरससमुत्थितबहलपरिमलपवनरमणीयोद्यानः स हेमन्त इति जानीयात्।

अर्थ-जिस ऋतुमें हिमालयपर्वतसे प्रगट (हिम) करके जडताको प्राप्त ऐसे जनपदों करके संदीपित हुताशनकी धूम और धूलीकरके धूसर आकाश तथा गैंडा, हाथी, भैंसे, मेंढा, कौआ ये हर्षितहों, तथा लोध, प्रियंगु, पुन्नागपुष्पोंकी पंक्तिसे शोभित और दौनामरुआके रससे प्रगट अत्यंत सुगंधी जिसमें मिलीं ऐसी पवन उसकरके रमणीय उद्यान कहिये बागबगीचे जिसमें उसको हेमंत ऋतु जाननी।

गद्यकरके कहे अर्थको पुनः पद्यकरके कहतेहैं।

वायुर्वात्युत्तरः शीतो रजोधूमाकुलादिशः।
छन्नस्तुषारैः सविता हिमानद्धा जलाशयाः॥
दर्पिता ध्वांक्षखड्गाह्वमहिषोरभ्रकुञ्जराः।
[विस्तीर्णशालिकेदारा नीलधान्योज्ज्वलामही।]
लोध्रप्रियंगुपुन्नागाः[1] पुष्पिता हिमसाह्वये।

---

१ धूमधूम्रा रजोमन्दास्तुषाराविलमंडलाः। दिगादित्या मरुच्छैत्यादुत्तरो रोमहर्षणः।
लोध्रप्रियंगुपुन्नागलवल्यः कुसुमोज्ज्वलाः। दृप्ता गजाजमहिषवाजिवायसशूकराः॥
इति पाठांतरम्।

अर्थ–हेमंतऋतुमें अत्यंतशीतलरोमांचोंको प्रगटकरता उत्तरका पवन चलताहै रज और धूएँसे व्याप्त अर्थात् धूसरी दिशा होतीहै, तुषार (कोहल) से आच्छादित सूर्यमंडल होताहै तथा जलाशय (नदी तालाब आदि) हिम (बर्फ) से ढकेहुए होतेहैं, ध्वांक्ष (कौआ) खड्गाह्व (गेंडा) भैंसा, उरभ्र (मेंढा) और कुंजर (हाथी) ये इस हेमंतऋतुमें हर्षित होतेहैं, [तथा शूकर, घोडा, और बकरी येभी हर्षित होतीहैं] खेतोंमें बढेहुए चावल तथा नील-धान्यों (गेहूंचनाआदि) से शोभित पृथ्वी होतीहै, लोध प्रियंगु, पुन्नाग, [और लवली] ये वृक्ष पुष्पित कहिये फूलते हैं।

हेमंतऋतुकी उत्तमता वर्णन।

दीर्घप्रचारसुरता किल यत्र रात्रिः
सुशीतलं वारि विना च यत्नात्।
यः प्रेयसीकुचयुगं परिरभ्य शेते
स्वर्गोऽपि तस्य हृदये तृणवद्विभाति ॥ १ ॥

अर्थ--जिस हेमंतऋतुमें बहुकालपर्यंत मैथुन योग्यरात्रि, और विनायत्नके शीतल जल रहताहै, ऐसे समयमें अपनी प्रियाके दोनों स्तनोंको आलिंगनकर जो शयन करताहै उस पुरुषको स्वर्गसुखभी तृणके समान प्रतीत होताहै।

पृथुजघनकुचाभिर्यौवनोन्मादनीभिर्नवमृगमदमिश्रैः
कुंकुमैश्चर्चिताभिः। भवतिशिशिरशान्तिःस्त्रीभिरालिंगिता-
भिर्निशिनिशिपुरुषाणां जन्मसाफल्यभाजाम् ॥

अर्थ--जोबनमदमाँती पुष्टहै जंघा और छाती नव कस्तूरीमिली केशर जिन्होंने लगायरक्खी ऐसी नवबालाको दुसालामें दबकाय जो पुरुष आलिंगनकर शीतके पालाके कसालाको नित्यप्रति रात्रियोंमें दूर करतेहैं उन्हींका जन्म सफलहै।

हेमन्तेबहुदोषाढ्येद्वौगुणौसर्वसंमतौ।
अयत्नशीतलंवारिसुरतंस्वेदवर्जितम् ॥

अर्थ--अनेक दोषयुक्त हेमंतऋतुमें दो गुण सर्व संमतहै, जैसे कि, एक तो विनायत्नके शीतलजल रहताहै, और पसीनेरहित स्त्रीसंग होताहै।

हेमन्तेदधिदुग्धसर्पिरशनामाञ्जिष्ठवासोभृतः
काश्मीरद्रवलिप्तचारुवपुषःखिन्नाविचित्रैरतैः ॥
वृत्तोरुस्तनकामिनीजनकृताश्लेषागृहाभ्यन्तरे
ताम्बूलीदलपूगपूरितमुखाधन्याःसुखंशेरते ॥

अर्थ–दही, दूध, घृतका भोजन और लालरंगके वस्त्र धारण कर, केशरकी कीचसे देहको लिप्तकर चित्रविचित्र रतिकरके थकित और गोलहै स्तन जंघा जिन्होंकी ऐसी कामिनीयोंने घरोंके भीतर कीनाहै आलिंगन जिन्होंका तथा पान सुपारीका बीडासे पूरितहै मुख जिन्होंका ऐसे बडभागी पुरुष इस हेमंतऋतुमें सुखपूर्वक शयन करतेहैं[1] ।

हेमन्तऋतुकी चर्या ।

बलिनः शीतसंरोधाद्धेमन्तेप्रबलोऽनलः । भवत्यल्पेंधनो धातुःसपचेद्वायुनेरितः ॥ अतोहिमेऽस्मिन्सेवेतस्वाद्वम्ललवणात्रसान् ।

अर्थ–बलीपुरुषके हेमंतऋतुमें शीतके प्रभावसे संरोधको प्राप्तहो जठराग्नि प्रबल होताहै, यदि इससमयमें इसको भोजनादि इंधन न प्राप्त होवे तो यह वातप्रेरित रसरक्तादि धातुओंको पचाताहै अतएव इसऋतुमें स्वादु, अम्ल, (खट्टे) और लवणरसोंका सेवन करना चाहिये ।

प्रमाणांतर ।

उष्माबहिः प्रतिहतोहिमशीतवातैरंतःशरीरविवरंप्रतिपद्यमानः । स्वस्थानपिंडितवपुर्भवतिप्रचण्डःशीतेऽनिलानलहरोविधिरिष्यतेतः ।

अर्थ--हिमशीत और वायुकरके बाहर आनेवाली गरमी रुककर शरीरके भीतर छिद्रमें प्राप्तहो अपने स्थानमें पिंडितहो प्रचंड होतीहै, अतएव इस हेमंतऋतुमें पवन और अग्निके हरणकारक विधि कहीहै । अर्थात् बादीदूरहो और प्रबल अग्नि शांतहो ।

---

१ अपि दिनमणिरेष क्लेशितः शीतसंघैरथनिशिनिजभार्यंगाढमालिंग्यदोर्भ्याम् । स्वपितिपुनरुदेतुंसालसाङ्गस्तु तस्मात्किमुन भवतुदीर्घा हैमिनीयामिनीयम् ॥ १ ॥ तुषारजालैः पिहितानियत्रशष्पाणिनीराणिमुखानिभानुः । प्रातःप्रसन्नानिकरैःकरोतिदिशांवधूनामिव खण्डितानाम् ॥ २ ॥ प्रियंगुपुन्नागकलोध्ररेणुव्रजैर्नभो वातिहिमाद्रिवायुः । आच्छादयन्धूमवितानलीढं विद्याहृतुं तं हिमनामधेयम् ॥ ३ ॥

दैर्घ्यान्निशानामेतर्हिप्रातरेवबुभुक्षितः।
अवश्यकार्यंसंभाव्ययथोक्तंशीलयेदनु।

अर्थ–इस हेमंतकालमें रात्रियोंको बडीहोनेसे प्रातःकाल क्षुधित मनुष्यको अवश्यकार्य (मलमूत्रोत्सर्गादि तथा दिनचर्योक्त कामोंसे) निवृत्तहो प्रथम भोजन करना चाहिये, भोजनकरे पश्चात् तैलाभ्यंगादि कर्म करे क्योंकि भूखेमनुष्यको प्रथम भोजन करना फिर अन्यकार्य करने चाहिये, जैसे लिखाहै--

आहारकालेसंप्राप्तेयोनभुंक्तेबुभुक्षितः।
तस्यसीदतिकायाग्निर्निरिंधनइवानलः॥

अर्थ--क्षुधावान् पुरुष भोजनके समयमें भोजन न करे तो उसकी जठराग्नि नष्ट होती है जैसे विना इंधनक अग्नि नष्ट होतीहै इसीसे लिखाहै "शतं विहाय भोक्तव्यम्"

शिष्य–अन्यकालमेंभी भूखेको भोजन करना कहा है अतएव उक्तश्लोकमें बुभुक्षितशब्द न धरना चाहिये।

गुरु–इसजगे बुभुक्षितशब्द जो धरा है सो ठीक है क्योंकि और कालमें जठराग्नि अग्निके छायानुकारी होतीहै, अतएव जठराग्निका उपचार अग्निके समान करे। जैसे लिखा है--

मुहुर्मुहुरजीर्णेपिभोज्यान्यस्योपहारयेत्।
निरन्धनोन्तरंलब्ध्वायथैनंनविपादयेत्॥

अर्थ--वारंवार अजीर्णमेंभी भोजन देवे क्योंकि जैसे विनाइंधनके अंतरको प्राप्तहो अग्नि नष्ट होजाती है उसीप्रकार कदाचित् जठराग्नि नष्ट न होजावे।

वातघ्नतैलैरभ्यङ्गंमूर्ध्नितैलविमर्दनम्।

वातघ्न (नारायण प्रसारणीविषगर्भादि) तैलोंको देहमें मालिस करना तदनंतर मस्तकमें तेल लगाना परंतु अभ्यंगके पश्चात् मस्तकमें तेल लगाना अनुचित है क्योंकि मस्तक उत्तमांग है अतएव प्रथम मस्तकमें तेल डालना चाहिये, यह प्रयोगपारिजातग्रंथमें लिखा है।

मस्तकाभ्यङ्गशेषेणक्वचिन्नोद्वर्त्तयेत्तनुम्।
पुण्यहानिरलक्ष्मीःस्यात्तस्मात्तत्परिवर्जयेत्॥

अर्थ-अर्थात् मस्तक अभ्यंगसे जो तेल बाकी रहै उसको देहमें नहीं लगाना चाहिये क्योंकि मस्तकशेष तेलको देहमें लगानेसें पुण्यकी हानि और अलक्ष्मी होतीहै इसीसे न लगावे इस प्रमाणसे यह सिद्ध हुआकि प्रथम मस्तकमें लगावे परंतु उसके शेषको देहमें न लगावे ।

नियुद्धंकुशलैःसार्द्धंपादाघातंचयुक्तितः ।

अर्थ--इस हेमंतऋतुमें कुश्ती लड़नेके दावपेंच जाननेवाले कुशल पुरुषोंके साथ कुश्ती लडे, और दंड कसरत करे; परंतु अर्धशक्ति पर्यंत करे [अर्धशक्तिके लक्षण आगे दिनचर्यामें कहेंगे] दंड कसरत और कुश्तीका लडना तैलमालिसके पूर्व करना उचित है । इसमें प्रमाण ।

पादाघातस्तैलयुक्तोदीपनोदेहपुष्टिकृत् ।
शुक्रौजस्तेजसांवृद्धिकरःश्रोत्रविशोधनः ॥
दृष्टिकोद्धर्षणंवर्ण्यकंडूकोष्ठमलापहः ।

अर्थ-तैलकी मालिसयुक्त दंडकसरतका करना दीपन है, देहको पुष्ट करे शुक्र ओज और तेजकी वृद्धि तथा कर्णोंको शुद्ध करे हैं नेत्रोंकी ज्योतको बढावे देहका वर्ण उत्तम करे खुजली और कोष्ठमलको दूर करे है ।

कषायापहृतस्नेहस्ततःस्नातोयथाविधि ।
कुंकुमेनसदर्पेणप्रदिग्धोऽगुरुधूपितः ॥

अर्थ-तेलकी चिकनाईको कषाय (लोधआदिके उवटनों) से दूर कर तदनंतर शास्त्रोक्तविधिसे स्नान करे, फिर कस्तूरी मिली केशरको देहमें लगावे, और अगरकी धूनी लेनी चाहिये ।

व्यायामादौतदन्तेचकल्कंवामुद्गमाषजम् ।

अर्थ-दंडकसरतके प्रथम वा अंतमें मूंगका अथवा उरदोंके कल्कका सेवन करना चाहिये ।

रसान्स्निग्धान्बलंपुष्टं गौडमच्छसुरांसुराम् ।
गोधूमपिष्टमाषेक्षुक्षीरोत्थविकृतीःशुभाः ॥

अर्थ--स्निग्ध मांसरस तथा पुष्टमांस भक्षण करे, गौड सुरा (जो गुडसे वनतीहै) अच्छसुरा (सुरामंड) और सुरा (मदिरा) इनका सेवन करे; तथा गेहूंके पदार्थ (पूडी, कचौरी, मठरीआदि) पिष्ट (पिट्ठीके पदार्थ पकोटी चीलेआदि) उडदके पदार्थ (पापड वडीआदि) ईखके पदार्थ (मिश्री

लड्डू बतासेआदि) और दूधके (दही मक्खन बर्फी पेडा खडी मलाई-आदि) इन सब पदार्थोंका सेवन करना चाहिये।

प्रमाणांतर।

औदकानूपमांसानिगोरसंनवमोदनम्। गोधूमतिलमाषेक्षुवि-कारान्विविधान्रसान्।भुंजीतपश्चात्साधूनिमधूनिचापिबेन्नरः। [नवमन्नं वसां तैलं शौचकार्येसुखोदकम्] तैलाभ्यंगश्चाशि-रसःसशरीरस्यमर्दनम्।

अर्थ-जलके जीवोंका मांस, जलके समीप रहनेवाले पक्षियोंका मांस, गोरस, नवीन भात, गेहूं, तिल, उडद, और ईखके विकार एवं अनेक प्रकारके रसोंका भोजन करे, तहां तिलके विकार (गजक, तिलकुटा, तिलवरी आदि) फिर भोजनके पश्चात् उत्तम मद्योंको पीवे, [नवीन अन्न, वसा तैलका सेवन और शौचकर्ममें सुखोदक लेना चाहिये]मस्तकमें तेल लगाना और सब देहमें मालिस करना।

लघूष्णमम्बरंसेव्यं चन्दनागुरुधूपितम्। तथाच। प्रावारा-जिनकौशेयप्रवेणीकौचवास्तृतम्। उष्णस्वभावैर्लघुभिः प्रावृतःशयनंभजेत्॥

अर्थ-लघु (हलके) और गरम तथा चंदन अगरकी धूनीसे धूपित वस्त्र धारण करने चाहिये। वाग्भट लिखते हैं कि प्रावार (सौडतोसक रिजाई दगला गद्दाआदि) अजिन (मृगचर्म व्याघ्रचर्मआदि) कौशेय (रेसमी कपडा पीतांबर आदि) प्रवेणी (सूचीवाण नामसे प्रसिद्ध) कौचवस्त्र (जो पशुमात्रके रोमसे बने ऐसे साल धुस्सा बनात कंबलआदि) वस्त्रोंका और उष्ण स्वभाववाले और हलके ऐसे पडदोंसे आच्छादित ऐसे मकानमें शयन करे।

युक्त्यार्ककिरणान्स्वेदं पादत्राणं च सर्वदा।

अर्थ-युक्तिपूर्वक सूर्यकी किरण, और पसीनेलेवे, अर्थात् अत्यंत धूमखानेसे और पसीने लेनेसे ग्लानी आदि रोगोंको करे है, तथा पैरोंमें जोडीतो सदैव रखनी चाहिये,पादत्राणनाम करके मोजे और खडाऊ आदिकाभी ग्रहण है।

सेवनंसूर्यरश्मीनांहुताशस्यचमात्रया। यथारुचिस्तुकिरणा-न्निर्धूमंचहुताशनम्॥ पृष्ठतोऽर्कंनिषेवेतजठरेणहुताशन-म्। नात्युष्णशीतसलिलैः शौचंकुर्यात्प्रयत्नतः।

अर्थ–सूर्यकी किरण, और अग्निका सेवन करे यथारुचि धूप और धूआँरहित अग्निका सेवन करना चाहिये, सूर्यकी किरणोंको पीठ करके सेवन करे, और अग्निको पेटके आगे धरके तापे, तथा अत्यंत गरम और न अत्यंत शीतल ऐसे जलसे शौचादि विधि करनी चाहिये ।

पीवरोरुस्तनश्रोण्यः समदाःप्रमदाः प्रियाः ।
हरंतिशीतमुष्णांग्यो धूपकुंकुमयौवनैः ॥
अंगारतापसंतप्तगर्भभूवेश्मचारिणः ।
शीतपारुष्यजनितोनदोषोजातुजायते ॥

अर्थ–पुष्ट है उरू स्तन और श्रोणीभाग जिन्होंके तथा जोबनमदमाती वा मद्य पीनेसे मदमाती, और अगरआदिकी धूनीसे तथा कुंकुम लेपसे तथा सहज जोबनकी अग्निसे उष्ण है शरीर जिन्होंके ऐसी प्यारी नारी शीतकी लाचारीको दूर करतीहै । तथा प्रज्वलित अंगीठीके तापसे संतप्त है भीतरकी पृथ्वी और मकान ऐसे मकानमें रहनेवाले पुरुषको कठोर शीतजनित दुःख कदाचित् बाधा नहीं करे । अतएव [ऐसे निर्वात और अगर मृगमद धूपित उष्ण घरमें रहना चाहिये, जैसे लिखा है"अलंनिर्वातशयनं भजेदगरधूपितम्"

ग्रंथांतरके मतसै हेमंतचर्या ।

शिवःशिवाऽब्धिजाफलंहरीतकीगुडान्विता बिभीतमज्जकाद्रकंजयाचविश्वभेषजम्॥लवङ्गमाम्रमाममब्जलोचनेकपित्थकं कणाशताह्विकाचमेथिकाऽरविन्दबीजकम् ॥ १ ॥
पयोदनादमारिषोमरीचधान्यबाल्हिकं घृतंचपायसंसुराजशाशहारिणानिवै । फलानिशर्त्तिराब्दरावतैत्तराणिचाङ्गने पटोलकंरसोनकोहिताअमीहिमाह्वये ॥ २ ॥

अर्थ–आमरे, हरड, बेलफल, गुडयुक्तहरड, बहेडेकीमिंगी, अदरख, भांग, सोंठ, लोंग, कच्ची अँबिया, कैथ, पीपर, सौंफ, मेथी, कमलगट्टा, चौंलाईका और मारिशकासाग, कालीमिरच, धनियां, हींग, घृत, दूधकी खीर, मद्य, और बकरा, ससा, हरिण, लवा, मोर, तीतर, इनके मांस, तथा परवलका साग, और लहसन, ए पदार्थ हेमंतऋतुमें हितावह होतेहैं ।

सैन्धवमेलाचित्रकशाकं जातिफलं चशूदधितक्रम् ।
शूरणकंद्राक्षामपिकान्ते कुण्डलिकामान्याचहिमाह्वे ॥ ३ ॥

अर्थ--सैंधानिमक, इलायची, चीतेकी छाल, जायफल, चूकाका साग, दही, छाछ, जमीकंद, दाख और जलेबी, ये पदार्थ हेमंतऋतुमें पथ्यकारकहैं।

कौशेयास्तरणेशयनं च श्यामास्त्रीसुरतंशुचिगंधम्।
ताम्बूलंबहुभोजनमिष्टं हेमन्तेहितमाहुरितीदम् ॥

अर्थ--रेशमी वस्त्रोंके विछैयेपर शयनकरना, सुंदर सोलहवर्षकी स्त्रीसे संभोग, सुगंध, बीडा, इच्छित बहु भोजन, ये हेमंतऋतुमें पथ्यकर हैं।

पक्वं कालिङ्गं त्रपुसं च पक्वं कोशातकीवास्तुकमुद्गतैलम्।
क्षुद्राझषाश्छागपयोऽग्निसेवा हेमंतकेऽमी सुहिताश्चनित्यम्॥

अर्थ–पकातरबूज, खीरा तोरई, वथुआ, मूंग, तेल, छोटी मछली, बकरी-का दूध, और अग्निसे तापना ये सब हेमन्तऋतुमें हितकारकहै।

क्वाथलीक्वथितासुभ्रुजम्बीरं दाडिमीफलम्।
जीवनं नैर्झरं दिव्यं वाप्यं कौप्यं च सारसम् ॥
व्यायामं जीर्णगोधूमाः षष्टिकारक्तशालयः।
हेमन्तेऽमीहिताबाले पीनोत्तुङ्गपयोधरे ॥

अर्थ–मूलीआदि सागकी कथली, जंभीरी, विलायती अनार [अंगूर, सेव, अखरोट,] झरनेका, वर्षाका, बावडीका, कूएका, तथा तालावका पानी, कसरत करना, पुरानेगेहूं, और सांठीका तथा लाल चावलोंका भात, ये हेमंतऋतुमें हितकारकहैं।

प्रातर्भोज्यंनवंचान्नमम्लं घर्मतिलश्रमान्।
अभ्यंगंचप्रशंसंतिहेमंतेभिषगुत्तमाः ॥

अर्थ–प्रातःकाल भोजन, नवीन अन्न, खट्टेपदार्थ, सूर्यके किरण, तिल, परिश्रम, और अंगमें तेल लगाना ये हेमंतमें हितकारक हैं। ऐसे उत्तमवैद्य कहते हैं। हेमंतऋतुमें सोंठका चूर्ण मिलाकर हरडसेवन करनी चाहिये।

---

१ हेमंतकालेलवणंरसाम्लंस्निग्धंदधिक्षारकदुष्णभोज्यम्। सर्पिर्युतंभोजनकं समांसं तीक्ष्णाग्निपानानिरसं भजेत १ हरीतकीशुंठियुताचसेव्यासंलेपनंचागुरुकुंकुमाभ्याम्। स्याद्वह्निसेवा सततं मनोज्ञास्त्रीकामिनीपीनकुचाचसेव्या २ कठोरपीनस्तनभारनम्रा सुमध्यमाचञ्चलखंजनाक्षी। हेमंतकालेरमितानयेन वृथागतंतस्यनरस्य जीवनम् ३ हेमंतेहिमकरबिंबचारुमुख्या रामायामृदुभुजपंजरेशयानाः। येकालं परमसुखंनयंति तेषां शीतांकिं लगतिजगत्प्रकंपकारि ४

हेमंतऋतुमें अपथ्य ।

हेमन्तःशीतलः स्निग्धःस्वादुर्जठरवह्निकृत् ।
अतिशीतास्ततत्याज्याः पदार्थानवयौवने ।

अर्थ-हेमंतऋतु यह, शीतल, स्निग्ध, स्वादु, तथा जठराग्नि प्रदीप्तकरनेवाला है, इसीसे इसमें अतिशीतल पदार्थसेवन वर्जित है ।

कसेरुंनाडिकाशाकंशृंगाटंकदलीफलम् । आलुकं खाखसंमाषा राजकोषातकीप्रिये । नादेयंपाल्वलंनीरंकैदारंमाहिषंपयः । राजमाषायवामेषस्यामिषं च मकुष्टकम् । दिवानिद्रापुराणान्नंकुभोजनमभोजनम् । लघुपाकिचशैत्यान्नं शीतनीरावगाहनम् । प्रवातंनियताहारमुदमंथंहिमागमे । कषायकटुतिक्तानिरूक्षाणिचलघूनिच । वर्जयेच्छीतसंस्पर्शाञ्शीतान्युपवनानिच । वह्निसंतप्तहेमाभे हेमन्तेऽमूनिसंत्यजेत् ॥

अर्थ-कसेरू, नाडीका साग, सिंघाडे, केलाकी फली, आलू, खसखस, उडद, गलकातोरई, नदीका, छोटे तलाव (तलैया) का, तथा खेतोंका पानी, भैंसकादूध, वडे, उडद, जौ, मेंढेका मांस, मदर, दिनकी निद्रा, पुराना अन्न, निंदित भोजन, लंघन, लघुपाकि और शीतल अन्न तथा शीतलजलसे स्नान, पवनका खाना, एक समयका भोजन, सत्तुआदि, एवं कषेले, कडुए, तीखे, रूक्ष और हलके पदार्थ, यथा शीतलवस्तूका स्पर्श करना, और शीतल बगीचे अर्थात् जिनबगीचोंमें धूप न आतीहो इत्यादि सर्व वस्तुओंका सेवन हेमंतऋतुमें वर्जित है ।

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरे हेमंततौ पथ्यापथ्यवर्णनं समाप्तम् ॥

शिशिरचर्यामाह ।

शिशिरेशीतमधिकं वातवृष्टयाकुलादिशः ।
शेषंहेमन्तवत्सर्वं विज्ञेयंलक्षणंबुधैः ॥

अर्थ-शिशिरऋतुमें शीत अधिक होता है, और वात तथा वृष्टी (अकालवर्षा) करके दिशा व्याप्त होती है, शेष सर्व लक्षण हेमंतके समान जानने ।

शिशिरके गुण।

बहुलशिशिरवातात्किञ्चिदुद्भूतसस्या भवतिवसुमतीयंपक्वसस्यैस्तुपीता। कथमपितुहिनंस्याल्लिंगवैशेषिकंस्यात् पवनकफविकारोजायतेशैशिरेच।

अर्थ–अत्यंत शिशिरवातसे, किंचित् घास उठरही तथा यह पृथ्वी पकेतृणोंसे पीली होती है तथा कुहल (बर्फका भेद) अधिक होता है, तथा इसऋतुमें वातकफके विकार प्रगट होते हैं यह आत्रेयमें लिखा है।

ग्रन्थान्तरोंके मतसे वर्णन।

यत्र शीताद्भयंभवतिचन्द्रचरणनिचयरुचिरतरतुषारसंकुशलसलिलाशयोयःसशिशिर इतिविजानीयात्।

अर्थ--जिसऋतुमें शीतसे भयहो तथा उज्ज्वलचन्द्रकिरणोंसे प्रगट तुषारसंकुल जलाशय जिसमें उसको शिशिरऋतु जानना।

सर्वं हिमोक्तं शिशिरेप्रयोज्यंपथ्याकणातुल्यतमाचसेव्या।
आभुज्यसेवेतजलंसुखोष्णंकान्तायुतोवासगृहेवसेत्तु ॥
वाराहबन्धान्सुकृतान्प्रलेहान्स्यात्सूरणं वैवटकाश्चभक्ष्याः।
पिष्टान्नमन्नंवरभोजनानिसेवेतसर्वाणितिशीतकाले।

अर्थ–जो हेमंतऋतुमें वस्तु वर्णन करीहै, वो सब शिशिरऋतुमें देनी चाहिये, और इसऋतुमें पीपलका चूर्ण मिलायकर हरड सेवन करनी, बँधेहुए वाराहकेमांस और उत्तमरीतसे बने ऐसे प्रलेह, तथा जमींकंदका साग वडी [मगौरी पापड पकोडी गुलगुले-चीले आदि] पिष्टान्न(मेदाके पदार्थ) और उत्तमभोजन [बरफी, पेडा, खुरचन, मलाई, मोहनभोग, मोहनथाल, मेवावाटी, खासापूडी आदि] ये सर्व पदार्थ शीतकालमें सेवन करने चाहिये।

क्षेमेन्द्रात्।

सार्द्रकार्द्रासुसंधानासवाह्लीकासुसैंधवा।
सस्नेहाकामिनीचेयंकृशराशिशिरेहिता।

अर्थ–अदरखके साथ पानीका आचार, (आमका, लिसोडेका, टैंटीका, छुहारा, अचारी, आदि) तथा हींग और सैंधानिमक मिले घृतप्लुत पदार्थ,

---

१ यत्रामृतद्युतिकरव्रजसंनिकाशैर्व्याप्तादिशश्च विदिशश्च तुषारजालैः। रुद्धंनभश्चसमुदीक्ष्यततोभियेव वह्नेर्दिशंसभजतेशिशिरे विवस्वान्।

तथा प्रीतिकेसाथ कामिनी और खिचडी ये सब वस्तू शिशिरऋतुमें हितहै. खीचडीमेंभी अदरख हींग आदि मसाले पडेहो तथा ताजा घृत खूबपडाहो और दही पापडभीहो क्योंकि किसीने कहाहै [इसखिचडीके चारयार, घी पापड और दही अचार] अथवा धनुर्मासमें जो चनाकीदाल, चावल, मेवा, घी मिश्री, और दूध मिलाकर खिचडी बनतीहै वो सेवन करनी चाहिये ।

मत्तेभकुम्भपरिणाहिनिकुङ्कुमार्द्रकान्तापयोधरतटेरतिभार-खिन्ने । वक्षोनिधायभुजपञ्जरमध्यवर्त्तीधन्यःक्षपांक्षपयति क्षणवत्सधन्यः ।

अर्थ–मतवारे हाथीके कुंभस्थलको तिरस्कृत करनेवाले केशरसे आर्द्र और रतिभारसे थकित ऐसे कान्ताके स्तनोंको दोनो भुजपंजरोंके मध्यमें ले छातीसे छाती मिलाय जो पुरुष रात्रिको क्षणवत् व्यतीत करतेहैं वो धन्यहैं ।

मन्दं मन्दं दिनान्तेज्वलतिहुतवहःपृष्ठतःपार्श्वतो वा धन्यो लोकस्तरुण्याःस्तनजघनपरीरंभसंभोगसंगी । उच्चैस्तूली-विलासंसुललितशयनंक्वापितैलंसुगन्धंताम्बूलंतप्तभोज्यंतरु णिविरचितंवासरेशैशिरेऽस्मिन् ।

अर्थ–सायंकालमें मंद मंद अग्नि प्रज्वलित आगे पीछे होरहीहै ऐसे समयमें धन्य पुरुष तरुणीके स्तन जघनका आलिंगनकर संभोग करतेहैं, ऊँचे ऊँचें रुईके गद्दोंपर विलास और सुन्दरशयन तथा कहीं तैलकी मालिस, कहीं अत्तरोंसे तरवतरहोना, बीडेका चबाना और नवीना स्त्रीके बनाए गरमागरम भोजन इस शिशिरऋतुमें हितावह होतेहैं, [तरुणिविरचितं] के कहनेसे यह प्रयोजनहै कि, इसऋतुमें वृद्धास्त्रीके बनाए पदार्थ हितकारक नहीं होतेहैं।

इति शिशिरऋतुचर्या समाप्ता ।

---

१ शीतार्त्ता इवसंकुचान्तिदिवसानैवाम्बरं शर्वरी नायंमुञ्चतिकिञ्चिदेव हुतभुक् कोणंगतो भास्करःत्वश्चानङ्ग-हुताशभाजिहृदये सीमान्तिनीनांगतो नास्माकं वसनं न चाग्नियुवतीराजन् क्वयामोवयम्॥ १॥कस्यचित्कवेर्नर-पतिसंमुखे इत्थमुक्तिः । प्रावरणैरङ्गारैर्गर्भगृहे स्तनतटैश्चदयितानाम् संतर्जितमाढ्यानां निपततिशीतं दरिद्रस्य ॥ २ ॥ द्वारंगृहस्यपिहितंशयनस्य पार्श्वेवह्निर्ज्वलत्युपरि तूलपटोगरीयान् । अङ्गानुकूलमनुरागवशंकलत्रमित्थं करोति किमसौ स्वपतस्तुषारः ॥ ३ ॥ पीनोत्तुङ्गपयोधराः परिलसत्संपूर्णचन्द्राननाः कान्तानैवगृहे गृहेनचद्दढं जात्यंनकाश्मीरजम् । ताम्बूलं न च तलिका नचपटी तैलंनगन्धाविलं सद्योगोघृतपाचितान्नवटकाः शीतंकथं गम्यते ॥ ४ ॥ अद्यशीतं वरीवर्त्ति सरीसर्त्तिसमीरणः। अपत्नीकोमरीमर्त्ति तरीतर्त्तिकुचोष्मवान् ॥ ५ ॥

वसन्तऋतुवर्णनम् ।

यत्रबकुलतिलकनवमल्लिकाकुरबकमुचकुंदसमूहसमुत्थसद्राक्षामोदान्मत्तकोकिलकूजितान्याकर्ण्यमकरकेतुशरनिकरपुञ्जजर्ज्जरीकृतविरहिणीसंघातोमुहुर्मुहुर्मोहमुपैति अपिचमलयाचलवातचलितचूतमञ्जरीनिचयनिपतितरेणुरञ्जितशरीरषट्पदकुलकोलाहलाकुलितवनान्तोयः सवसन्तइतिविजानीयात् ।

अर्थ–जिस ऋतुमें बकुल (मौलसरी) तिलक वृक्ष, चमेली, कुरुबक, (लालपुष्पका कोरांटा) मुचकुंद, इनपुष्पोंसे प्रगट तथा दाखकी सुगंधी करके मतवारी कोयलोंका कूजना उसके सुननेसे प्रगट कामदेवके बाणसमूहसे जर्ज्जरीकृत विरहिणियोंके समूह वारंवार मोहको प्राप्तहोतेहैं, तथा मलयाचलकी शीतल मंद सुगंध पवन करके चलायमान आम्रमंजरीके समूहसे पतित रेणु उसकरके रंगेहुए शरीरजिन्होंके ऐसी भ्रमरावलीके कोलाहल तिसकरके आकुलित वनान्त जिसमें उसको वसंत ऋतु जाननी ।

दिशोवसन्तेविमलाःकाननैरुपशोभिताः । किंशुकाम्भोजबकुलचूताशोकादिपुष्पितैः ॥ कोकिलाषट्पदगणैरुपगीता मनोहराः । दक्षिणानिलसंवीताःसुमुखाःपल्लवोज्ज्वलाः ॥

अर्थ–वसंतऋतुमें दिशा रमणिय और वनोंकरके शोभित होतीहै, किंशुक (केसू-वा-टेसू) कमल, बकुल (मौलसरी) आम, और अशोक आदिपुष्पोंसे पुष्पित होतीहै, कोकिल, और भौंराओंके झुंडोंसे शब्दायमान मनके हरण करनेवाली होतीहै, दक्षिणकी पवनकरके व्याप्त और सुंदर अवकाशवाली तथा नवीन लहलहाती पातियोंसे अर्थात् नए पत्तोंकरके शृंगारवाली ऐसी दिशा होतीहै ।

मल्लीवल्लीसमूहेसमुदितकुसुमामोदमत्तालिमालामूर्च्छाझंकारनादाकुलपथिकजनोव्याकुलप्रोषितास्त्री॥माकन्दानन्दमाद्यन्मधुरपिककुलालापदर्पोमनोजःप्राप्तःकांतोवसन्तस्त्रिभुवनविजयी प्राणबन्धुःस्मरस्य ॥

अर्थ—मल्ली (चमेली) की वेलोंके समूहोंमें खिलेहुए फूलोंकी गंधसे मतवारी भौरोंकी पंक्ती उनके मूर्छित झंकार शब्दकरके आकुल पथिकजन तथा व्याकुलहै प्रोषितास्त्री (जिनके पति परदेशमेंहो) और आम्रके फूलनेसे उत्पन्न आनन्द तिसकरके मतवाले और प्यारे ऐसे कोकिलोंके झुंड उनके बोलनेसे दर्पित कामदेव जिसमें और कामदेवका प्राणबन्धु ऐसा त्रिलोकीको जीतनेवाला यह वसंतऋतु प्राप्त हुआहै।

आत्रेयः।

मुदितकोकिलकूजितकाननं मदनशोचितकिंशुकशोभितम्। कुसुमसौरभरञ्जितभूधरंक्वणितमत्तमधुव्रतलालसम्। मकरकेतनवाससमाकुलंमुदितमेवसमस्तमिदंजगत। मलयमारुततुर्यगुणान्वितं कफकरोहिवसन्तऋतुर्भवेत्॥

अर्थ—मुदित कोकिलोंकरके कूजित और मदन शोचित ऐसे पलासके पुष्पोंकरके शोभित वन, पुष्पोंकी वाससे वासितहै पर्वत तथा गुंजार करनेवाले भौराओंसे व्याप्त तथा कामदेवके वासकरके समाकुल और यह संपूर्ण जगत् हर्षित, शीतल, मंद, सुगंध, और अनुकूल ऐसे चतुर्विध गुणयुक्त मलयाचलकी पवन जिसमें ऐसा कफकर्त्ता वसंतऋतु जानना।

कदलीदलनीलकोकिलाभिःकृतकोलाहलकाकलिप्रपंचः। मलयानिलमत्तवारणस्थोमदनश्चात्रचकारजैत्रयात्राम्॥

अर्थ—कदलीदलसदृश नीलकोकिलाओंकरके करा कोलाहल काकलीप्रपंच, तथा मलयाचलकी पवनरूप मतवारे हाथीपर स्थित ऐसा कामदेव आज इस वसंतऋतुके प्रारंभमें दिग्विजय यात्राको पधारेहै।जैसे राजाकी चढाईमें सेना घोरशब्द करतीहै, ऐसे मदननरेशके पधारनेमें कोकिला शब्द कररहाहै और जैसे राजा मतवाले हाथीपर विराजमान होताहै, ऐसे कामदेव नरपति मलयाचल पवनरूप हस्तीपर बैठाहै। इस श्लोकमें रूपकालंकार दिखायाहै।

---

१ वारस्त्रीववनस्थलीनवनवांशोभांवभारान्वहं पान्थान्पीडयतिस्मतस्करइवक्रूरैः शरैर्मन्मथः। शृङ्गारः सगुणक्षमापतिरिवप्राप्तः प्रतिष्ठांपरां रात्रिःस्वीकुरुतेस्ममुग्धललनालज्जेवकार्श्यंक्रमात् १ पान्थानांप्रमदाइवप्रातिदिनंदैन्यंह्वदिन्योययुर्दृश्यन्तेस्मदिगम्बराइववनेपत्रोज्झिताःपादपाः। निःश्वासाइवदुःसहाविरहिणंवातावबुः सर्वतः पार्यंपाय्यमिवप्रियाधररसंपाथःपपुःप्राणिनः॥ २॥

वाग्भटः ।

कफश्चितोहिशिशिरे वसन्तेऽर्कांशुतापितः ।
हत्वाग्निंकुरुतेरोगानतस्तंत्वरयाजयेत् ॥ ११ ॥

अर्थ–शिशिरऋतुमें संचितहुआ कफ वसन्तऋतुमें सूर्यकीकिरणोंसे तापित जलके समान पतला हो जठराग्निको नष्टकर अनेक रोगोंको प्रगट करताहै, अतएव इस दुष्टकफको शीघ्रजीते ।

कफनाशकयत्न ।

तीक्ष्णैर्वमननस्याद्यैर्लघुरूक्षैश्चभोजनैः।व्यायामोद्वर्त्तनाघातै-र्जित्वाश्लेष्माणमुल्बणम् । स्नातोऽनुलिप्तःकर्पूरचन्दनागरु-कुंकुमैः । पुराणयवगोधूमक्षौद्रजाङ्गलशूल्यभुक् । सहका-ररसोन्मिश्रानास्वाद्यप्रिययार्पितान् । प्रियास्यसङ्गसुरभी-न्प्रियानेत्रोत्पलाङ्कितान् । सौमनस्यकृतोहृद्यान्वयस्यैःस-हितःपिबेत् । निर्गदानासवारिष्टसीधुमार्द्वीकमाधवान् ॥

अर्थ--प्रवल कफको तीक्ष्ण वमन, नस्य, विरेचनादि करके तथा लघु और रूक्ष भोजन करके एवं व्यायाम उद्वर्तन और कुश्ती लडने करके जीते ।

तदनंतर (कफजीतनेके पश्चात्) स्नानकर कपूर, केसर, अगर, मिले चंदनको लगावे, और पुराने जौ, गेहूं, सहत, जंगलीजीवोंका भुना मांसको भक्षण करे तदनंतर जिनमें अमरस मिलाहो और अपनी प्राणप्यारीने कुछपीकर दीनेहो तथा प्रियाके मुखलगनेसे सुगंधितहो, तथा प्रियाके नेत्रकमलोंकरके शोभित, चित्तको प्रसन्न करता, और हृदयको हितकारी ऐसे आसव, अरिष्ट, सीधु, मार्द्वीक, और माधवको बराबरके मित्रोंके साथ पीवे । आसव उसको कहतेहैं जो औषधोंके चुआनेसे बनताहै । सीधु ईखके रससे बनताहै अरिष्ट उसे कहतेहैं कि जो अधिक मादकद्रव्योंसे तथा मदिरासे बनताहै । मार्द्वीक उसे कहतेहैं कि, जो दाख अंगूर आदिसे बनताहै । और माधव उसे कहतेहैं जो सहतके संस्कारसे बनतीहै ।

शृङ्गवेराम्बुसाराम्बुमध्वम्बुजलदाम्बुवा ।

अर्थ–तथा शुंठीका औंटायाहुआ जल तथा खैरसार चंदन आदि सारको मिलाकर औंटाया जल तथा सहत मिला जल वा नागरमोथा डालकर औंटाया जलको पीवे ।

दक्षिणानिलशीतेषु परितोजलवाहिषु।अदृष्टनष्टसूर्येषु मणि-
कुट्टिमकान्तिषु ॥ परपुष्टविघुष्टेषुकामकर्मान्तभूमिषु । वि-
चित्रपुष्पवृक्षेषु काननेषुसुगन्धिषु।गोष्ठीकथाभिश्चित्राभिर्म-
ध्याह्नंगमयेत्सुधीः ॥

अर्थ--दक्षिणकी पवन करके शीतल, जिनमें चारोंतरफ जलोंके धरोरा बह- रहे, कहीं वृक्षोंकी छायासे सूर्यकी झांई मारे और कही अत्यंत वृक्ष संघट्ट होनेसे सर्वथा न दीखताहो तथा हीरा पन्ना आदिके जारी झरोखावाले महलोंकी पृथ्वीसे शोभित और कोयल कूक रहीहो तथा रमण करनेके निमित्त स्थान जिन- में हो और चित्रविचित्र पुष्प खिलरहें हो तथा झुकझुक झूमझूम भूमिको चूम रहे वृक्षोंकरके शोभित और क्रीडा कथा करके चित्रित ऐसे बागबगीचोंमें स्थित हो मध्यान्हको व्यतीत करे ।

तथा च वैद्यसारसंग्रहे ।

रूक्षं कषायंकटुकंचतिक्तंताम्बूलकर्पूरमनोज्ञवेषम् ।
क्षौद्रेणपथ्यासहसेवनीया स्नेहेनतिष्ठेद्वनितासहायः ॥

अर्थ–रूखे, कषेले, तीखे और कडुए रस, एवं पान, कपूर, तथा सहतमि- ला हरडका चूर्ण सेवन करना चाहिये । उज्ज्वल वेष रखना, और प्रीत सहित स्त्रीके साथ रहना चाहिये ।

गीतान्तरेचविधिवत्सुरतंनिषेव्यंदोलाविलासशयनेहरिणेक्ष-
णाभिः। संवाहितोरणझणत्करहस्ततालैर्धन्यःस्वहर्म्यसमये
विचिनोतिनिद्राम् ।

अर्थ–प्रथम गान सुने पश्चात् गानके विधिपूर्वक स्त्रीसंग करे, तथा स्त्रीके साथ झूलना और शयनमें चलायमान और शब्दायमान हस्तताल जिसके ऐसी स्त्री करके इस वसंतऋतुमें धन्यपुरुष अपने महलोंमें निद्राको लेते हैं।

स्निग्धश्चन्दनकुंकुमप्रभृतिभिःकर्पूरसंमिश्रितैःशय्यां
धूपितधौतवस्त्ररचितामास्थायरम्येगृहे । गाढालिङ्ग-
नचुम्बनादिरचितैः संवर्द्धयन्मन्मथंसेवेत्तांप्रमदांवसन्त-
समयेश्लेष्मक्षयार्थंपुमान् ॥

अर्थ--कपूरमिश्रित चंदन और कुंकुम आदिसे स्निग्ध, अगरकी धूनीसे धूपित और उज्ज्वल दूधके झागसदृश सपेदवस्त्रोंसे रचित शय्या ऐसे रमणीक घरमें स्थित हो तथा गाढ आलिंगन चुंबनादि व्यवहारोंसे कामोद्दीपन करताहुआ वसंतऋतुमें कफक्षयके अर्थ पुरुष स्त्रीका सेवन करे इस ऋतुमें स्त्रीके साथ जलविहारभी करना चाहिये क्योंकि लिखा है "व्यायामःपयसः क्रीडा प्रियाभिः परिचेष्टतेति"

ग्रंथान्तरेपि ।

उद्वर्त्तनं वान्तिविरेकनस्यान्येयेप्रियेचंक्रमणंव्यवायम् ।
व्यायाममेणाक्षिवसन्तकालेबालेहितान्याहुरमूनिवैद्याः ॥

अर्थ–हेबाले! अंगमें उवटना करना, वमन करना, रेचन, नस्यकर्म। डोलना, फिरना, मैथुन, कसरत करना, ये कर्म वसन्तऋतुमें हितकारक है।

काश्मीरकृष्णागरुचन्दनैश्चकृतोविलेपोविहितोहिताय ।
अभ्यानिशावासकमातुलानीकटुत्रयंग्रंथिकमश्वगंधा ॥
यवानिकाजीरकमार्द्रकञ्चपुनर्नवामूलकपोतिकापि ।
कूष्मांडकंरामठमेथिकेच हितायतुम्बीत्रपुसंसुपक्कम् ॥

अर्थ–केशर, कृष्णागरु, और चंदन इनको एकत्र घिसके लेप करना, त्रिफला, हलदी, अडूसा, भांग, त्रिकुटा (सोंठ, मिरच, पीपल) पीपरामूल, असगंध, अजमायन, जीरा, अदरख, पुनर्नवा (सांठ) (इसको पूनेके जिलेमें सुपारीकी भाजी ऐसा कहते है) मूली, पोईका साग, पेठा, हींग, मेथी, तूंबा और पकाहुआ खीरा ये पदार्थ वसंतऋतुमें हितावह है।

दुग्धिका वास्तुकः कांचनारोद्भवः कुड्मलःस्याद्धितायै-
व नृणां प्रिये। तंडुलीयःपटोलस्तथा सूरणो मारिषःकारवे-
ल्लं च कोशातकी ॥

अर्थ–उसीप्रकार बडी छोटी दुद्धी, वथुआ, कचनारकी कली, चौंलाई, परवल, जमींकंद, मरसेका साग, करेले और घीया ये पदार्थ वसन्तऋतुमें हितकारी है।

---

१ यत्रागस्त्यहारित्प्रवृत्तपवनव्याधूतचूतव्रजारामोद्दामपरागपुञ्जपिहितंव्योमानिशंराजते । छत्रंरेणुचयैरिवस्मरविभोर्यात्रोद्धतैरिच्छतो जेतुंसर्वजगन्ति सस्मरसखोज्ञेयोवसन्तोदयः ॥ १ ॥

मागधीक्षौद्रयुक्तातथापूतनाजांगलानांपलंषष्टिकासर्षपाः ।
वाजिमन्थोमकुष्ठोयवोमुद्गकोवर्त्तुलश्चाढकीकोद्रवाःस्युर्हिताः ॥

अर्थ-सहतयुक्त पीपल तथा सहतयुक्त हरड,जंगली जीवोंका मांस, सांठीचावल,सरसो, चने,मटर,जौं, मूँग,केलाई, अरहर, और कोदों येभीहितकारक हैं।

तृणधान्यंवरारोहेमसूरीरक्तशालयः । राजिकाजुर्णलीचंचूशिग्रुःपक्वंकलिङ्गकम् ॥ वृन्ताकंशिग्रुपुष्पाणिरसोनंरसिकाप्रिये । लघुरूक्षंकटूष्णंयद्धितंतत्कुसुमागमे ॥

अर्थ-तृणधान्यकहिये सामखिया, पसाई, इत्यादि, मसूर, लाल चावल, राई, ज्वार, चूकाका साग, सहजना, पका तरबूज, बैंगन, सहजनेके फूल, लहसन, और जो लघु, रूक्ष, कटु और उष्ण पदार्थहैं वोभी सब हितकारीहैं।

रसस्तीक्ष्णःकषायश्चक्षारश्चारुष्करंतथा । स्वेदनंधूमपानं चगंडूषः प्रतिसारणम् ॥ प्रावरणंप्रधमनं हस्त्यश्वैर्गमनंभृशम् । नियुद्धं माक्षिकंमद्यंजीर्णमुष्णंगवांपयः ॥ ताम्बूलमञ्जनंलाजाश्चिंताजागरणंश्रमः । वसंतेचगणोगुण्योवासंतीसुमकोमले ॥

अर्थ--तीक्ष्ण, कषेले, और क्षार ये रस, भिलाए, स्वेदन कहिये पसीने निकालना, धूम्रपान, (हुक्कापीना) गंडूषविधि (कुरले करना) प्रतिसारणकर्म, आवरण कहिये सोड, रिजाई पडदा आदि, प्रधमन (नस्यविशेष) हाथी, घोडा इनपर सवारी करना, कुश्ती लडना, सहत, पुराना मद, गरमागरम गौका दूध, तांबूल, नेत्रोंमें अंजन करना, खीलोको खाना; चिंताकरना, रात्रिमें जागना, श्रम करना, ये वसंतऋतुमें हितकारी है ।

पानीयंनैर्झरं वाप्यं कौप्यं हंसोदकंवरम् । गोधूमाश्चेत्समश्रीयात्तदावर्षोषितानपि ॥ कफामयहरीख्यातातत्राप्यंगारकर्कटी । नटीवानन्ददानाटयेतालान्तेचलकुण्डला ॥

अर्थ-झरनेका वा बावडीका-व-कूएका पानी हंसोदक पुराने गेहूं गेहूंकी अंगाकर वेश्याका नृत्य देखना ये वसंतऋतुमें पथ्य हैं ।

व्योषक्षारयुतंतक्रं क्वथिताक्वाथलीतथा । शशाजहरिणंमांसं तैत्तिरंवार्त्तिकंवरम् ॥ गृहचटकस्यचमांसंनीरदरावस्यचामि

षंमत्स्याः ॥ नादेयास्ताडागाश्चौंड्याःश्रेष्टाश्चमत्स्यकाः क्षुद्राः ॥

अर्थ--त्रिकुटा और जवाखारयुक्त छाछ, कढी, उसीप्रकार सागयुक्त कढी (कथलीतिप्रसिद्ध) ससा,हरिण, बकरा, तीतर, लवा, घरकाचिडा, मोर, इनके मांस, और नदी, तालाव, इत्यादिकोंमें उत्पन्नहोनेवाले मत्स्य, और छोटी मछली ये वसंतकालमें हितकारकहैं।

स्नातःकवोष्णनीरैराभूषितोनिजकान्तया ।
सार्द्धंगत्वोपवनेपश्येद्रमेच्चतत्रैवानिर्जनेदेशे ॥

अर्थ–मंदोष्णजलसे स्नानकरके वस्त्रालंकारसे भूषितहो अपनीप्रियाके साथ बगीचेमें जायकर क्रीडाकरे इति ।

वसन्तमें अपथ्य ।

नाडिकापोदिकाराजकोशातकीमाषदध्यालुकानीक्षुशृङ्गाटकौ । राजमाषांश्चनीवारकुल्माषकान्होलकंमेषमांसंत्यजेत्कौक्कुटम् ॥

अर्थ–अब वसंतऋतुमें जो अपथ्य वस्तु है उनको कहते हैं, जैसे नाडीका साग, पोईका साग, गलका तोरई, उडद, दही, आलू, ईख, सिंघाडे, बडेउरद, समापसाईके चावल, घूंगरा, होला, मेंढा, और मुरगेका मांस ये वस्तु वसंऋतुमें त्याज्य हैं ।

कृशरापृथुकेक्षुविकारमयेमाहिषीभवदुग्धमुरोजघने ।
वटकानपिमाषकृतांश्चपलाण्डुमितीह वसन्तउशंत्यहितम् ॥

अर्थ--कृशरा (तिल और चावलमिली अथवा दालचावलमिली खिचडी) चिरवा ईखके विकार (खांडमिश्री आदि) भैंसका दूध, उडदके वडा, प्याज, ये पदार्थ वसंतऋतुमें अहित हैं ।

अम्लंस्निग्धं दिवास्वापंदुर्जरंभोजनंप्रिये ।
त्याज्यमाहुरयेवैद्यावसंततौहितेप्सुभिः ॥

अर्थ--खट्टे पदार्थ, तथा स्निग्ध पदार्थ, दिनमें निद्रा, दुर्जर भोजन, ये वसंतऋतुमें सेवन न करे कोई शीतल, मीठे पदार्थकोभी त्यागना कहता है । इति ॥

इति वस तर्तुचर्या ॥

अथ ग्रीष्मऋतुचर्या ॥

तीव्रतरदिनकरसंजातसंतापसंतापितशरीरपान्थसार्थसंसेवितमार्गपादपच्छायोविपुलपिपासाविधुरमृगयूथमरुस्थलीस्थानपरुषतरविचलितमारुतानिकटतटिनीतटतरुपत्रनिकरकलुषितसलिलाशयोयः सनिदाघइतिविजानीयात् ।

अर्थ–तीव्रतर सूर्यसे प्रगट संतापसे संतापित शरीर ऐसे पथिकोंके समूहों करके संसेवित मार्गके वृक्षोंकी छाया तथा अत्यंतपिपासासे व्याकुल मृगोंके यूथ जिनमें ऐसे मरुस्थली स्थान (मारवाडके देश) अत्यंत कठोर विचलित पवन जिसकरके नदीतटके वृक्ष तिनके समूहकरके कलुषित (दूषित) सलिलाशय जिसमें उसको निदाघ अर्थात् ग्रीष्मऋतु कहते हैं ।

ग्रीष्मेतीक्ष्णांशुरादित्योमारुतोनैर्ऋतोऽसुखः । भूस्तप्तासरितस्तन्व्योदिशःप्रज्वलिताइव[1]॥ भ्रान्तचक्राह्वयुगलाःपयःपानाकुलामृगाः ॥ ध्वस्तवीरुत्तृणलताविकीर्णाङ्कित [क्षिति] पादपाः ॥ बहवोमारुतावर्त्ताःपत्राम्बरविभूषिताः । वसंतस्य वियोगेन तापसाइव शोभिताः ॥

अर्थ–ग्रीष्मऋतुमें सूर्य तीखीकिरणवाला होता है, और दुखदाई पवन नैर्ऋत्यकोणका चलता है, पृथ्वी तप्त और नदी सूखकर प्रवाहरहित होजातीहै । दिशा प्रज्वलितसी होजातीहै । चकवा चकवी जलाशयके ढूँढनेको पृथक् पृथक् दिशामें विचरने लगते हैं, जल पीनेको व्याकुल मृगमंडली जिसमें तथा वीरुध (गुल्म) तृण और लता सूखकर गिरजाते हैं । और बडे बडे वृक्ष पत्ररहित होजातेहैं, अथवा मारे आँधीके पत्र टूटकर गिरनेसे पृथ्वी पत्रोंसे आच्छादित होजाती है, और बहुतसे वृक्ष, आंधी भभूरेके पत्ररूप वस्त्रोंसे व्याप्त हो ऐसी शोभा देतेहैं मानो वसंतऋतुके वियोगसे तपस्वी बनबैठे है [तथा मारे आँधीके बडेबडे वृक्ष उखडके पृथ्वीमें गिरपडते हैं, और आक तथा जवासे आदि वृक्ष यौवनअवस्थाको प्राप्त होते हैं]

वाग्भटः ।

तीक्ष्णांशुरतितीक्ष्णांशुर्ग्रीष्मेसाक्षिपतीवयत ।

---

१ यत्रप्रचंडतरचंडकरप्रतापः संशोषितद्रुमलतातृणवारिपूरः ।
उज्जृम्भतेपवनवेगविकीर्णरेणुच्छन्नाभवंति च दिशः सनिदाघकालः ॥ १ ॥

प्रत्यहंक्षीयतेश्लेष्मातेनवायुश्ववर्द्धते ॥

अर्थ--ग्रीष्मऋतुमें सूर्य तीक्ष्णकिरणवाला होकर जगत्की चिकनाईको दूर करता है अतएव नित्यप्रति कफक्षीण होता है, और वातकी वृद्धि होती है।

अतोस्मिन्पटुकट्वम्लव्यायामार्ककरांस्त्यजेत् ।भजेन्मधुरमेवान्नंलघुस्निग्धंहिमंद्रवम् । सुशीततोयैःसिक्ताङ्गोलिह्यात्सक्तून्सशर्करान् ।

अर्थ–इसीसे इस ग्रीष्मऋतुमें नोनके, चरपरे, खट्टे रसोंको और दंडकसरत, तथा सूर्यकी धूपका सेवन त्याज्य है, इसऋतुमें मधुर अन्न, लघु, चिकने, शीतल, और पतले पदार्थ सेवन करे, शीतल जलसे स्नान कर मिश्री मिले सत्तुओंको भोजन करे ।

कुन्देन्दुधवलंशालिमश्नीयाज्जाङ्गलैःपलैः ।
पिबेद्रसं नातिघनंरसालां रागखांडवौ[1] ॥
पानकंपंचसारं वा नवमृद्भाजनेस्थितम् ।
मोचचोचदलैर्युक्तं साम्लंमृन्मयशुक्तिभिः ॥

अर्थ–कुन्दपुष्प और चंद्रके समान उज्ज्वल चावलोंका भात जंगली जीवोंके मांसके साथ भक्षण करे, और जो बहुत गाढे न हो ऐसे मांसरस पीवे, रसाला (सिखरन) और रागखांडव (मुरब्बा) पानक (पने) और पंचसारक (जो दाखखजूरआदिसे बनता है) इनको नवीन मट्टीके पात्रमें स्थितकर तथा केला और फनसके पत्रकरके युक्त और कुछ तिंतडीककी खटाईसे मिश्रितोंको मट्टीकी सराई सरोकोंसे पीवे (अथवा चीनीके पात्रमें करके पीवे)

पाटलावासितंचाम्भःसकर्पूरंसुशीतलम्।
शशांककिरणान्भक्ष्यान्रजन्यांभक्षयन्पिबेत् ॥
ससितंमाहिषंक्षीरं चन्द्रनक्षत्रशीतलम् ।

अर्थ–चन्द्रमाकी चांदनीके सेवन करता हुआ कपूरसंयुक्त शीत गुलाबज-

---

१ सितामध्वादिमधुरारागास्तत्राच्छकान्तयः । तेसाम्लाःखांडवालेह्याःपेयाश्चांशुकगालिताः । स्वाद्वम्लपटुकट्वाद्याः प्रलेहास्तत्रखाण्डवाः । गुडदाडिममांसाद्यारागाश्चांशुकगालि ताः । हृद्यावृष्यारुचिकराग्राहिणोरागखांडवा इति । तथा । द्राक्षामधुकखर्जूरकाश्मर्यः सपरूषकाः । तुल्यांशैःकल्पितंपूतंशीतंकर्पूरवासितम् । पानकं पंचसाराख्यं दाहतृष्णानिवर्त्तकम् । अन्यत्रचोक्तम् । यथा । गुडदाडिमादियुक्ताविज्ञेयारागखांडवः । त्रिजातमरिचाद्यैस्तु संस्कृ ताः पानकास्तथा ॥ इति ।

लोंको अथवा पाढरपुष्पवासित[१] जलोंको पीवे, तथा रात्रिमें कर्पूरमिश्रित तरावट करनेवाले पदार्थोंको भक्षण कर (व्यारूकरके) मिश्रि मिला चंद्र और तारागणोंकरके शीतल अर्थात् रात्रिमें शीतल करनेको धराहुआ ऐसा भैंसका दूध पीवे ।

अभ्रंकषमहाशालतालरुद्धोष्णरश्मिषु । वनेषुमाधवीश्लिष्ट-द्राक्षास्तबकशालिषु ॥ सुगंधाहिमपानीयसिच्यमानपटालेके। कायमानेचितेचूतप्रवालफललुम्बिभिः॥कदलीदलकह्लार मृणालकमलोत्पलैः। कल्पितेकोमलैस्तल्पेसहसत्कुसुमल्लवे । मध्यंदिनेऽर्कतापार्त्तः स्वप्याद्धारागृहेऽथवा । पुस्तस्त्रीस्तनहस्तस्यप्रवृत्तोशीरवारिणि ॥

अर्थ-आकाशको स्पर्श करनेवाले ऐसे बडे २ शाल और ताल वृक्षोंकरके रुकी सूर्यकी गरम किरण जिन्होंमें तथा द्राक्ष (अंगूर) के गुच्छोंमे लिपटरही माधवीकी लता तिनकरके श्लाघा करने योग्य बनोंमें और वांसकी लकडी आदिसे बना छपरखट अर्थात् बंगला जिसके चारोंतरफ सुगंधित और शीतल गुलाबजलसे छिडके हुए वस्त्रोंके पडदोंसे शोभित और आमके नवीन पत्ते और आमके गुच्छे जिसमें चारोंतरफ लटक रहे तथा केलाके पत्ता (केलाका गाभा) कल्हार (सुगंधित कमल) मृणाल (कमलकंद) कमल और उत्पल (कमोदनी) इनके कोमल पत्तोंसे रची शय्या, तथा खिले हुए फूलोंके घमले जिन्में धरे हुए और पुत्तलियोंके स्तन, हाथ, और मुखसें खस सुगंधित फुहारे छूट रहे ऐसे धाराघरमें सूर्य तापसे आर्त्त मनुष्यको मध्याह्नमें शयन करना चाहिये ।

निशाकरकराकीर्णे सौधपृष्ठेनिशासुच । आसना स्वस्थचित्तस्यचन्दनार्द्रस्यमालिनः ॥ विवृत्तकामतंत्रस्यसुसूक्ष्मतनुवाससः । जलार्द्रास्तालवृन्तानिविस्तृताः पद्मिनीपुटाः ॥ उत्क्षेपाश्चमृदूत्क्षेपाजलवर्षिहिमानिलाःकर्पूरमल्लिकामालाहाराःसहरिचन्दनाः । मनोहरकलालापाःशिश-

---

१ सुगंधितजलकरणविधिः । परिपेलवयातुल्यागुग्गुलुर्मुस्तकाः खलु । चूर्णिताःशशिनोपेतानवभाजनधूपनम् । कुष्ठमुस्तकसंयुक्तैः पेलवोशीरवालकैः । मृदितामृत्सुपिष्टैस्तैः खदिराङ्गारपाचिताः । सहकाररसाभ्यक्ताश्चम्पकोत्पलवालकैः । पद्मकुञ्जककुंदैश्चयथालाभाधिवासिताः । श्रेष्ठःसलिलवासोयंस्मृतः सर्वर्तुकोबुधैः॥ १॥

वःसारिकाःशुकाः । मृणालवलयाःकान्ताः प्रोत्फुल्लकमलोज्ज्वलाः । जंगमा इवपद्मिन्योहरन्तिदयिताःक्लमम् ॥

अर्थ--चन्द्रमाकी किरणोंसे व्याप्त ऐसे महलोंकी छतपर रात्रिमें निवास करना चाहिये, तथा चंदनसे आर्द्र और माला धारण कर रक्खी, कामतंत्र अर्थात् क्रीडासे निवृत्त बहुत पतले और उज्ज्वल वस्त्र (मलमलआदि) को धारण करनेवाला जलसे आर्द्र ऐसे मोरपंखके बने तालवृंतके जिनका नम्र उत्क्षेप अर्थात् हिलातेही तुरत मुडजावे जलकी फुहार जिनसे झरे और अतिशीतल पवन निकले ऐसे पंखोंसे पवन करी जावे, कपूरकी माला, चमेलीकी माला, हरिचंदन मिले मोतियोंके हीरा पन्ना आदिके, हारोंको धारण करना, चुरानेवाले मीठे शब्द और ध्वनि जिनकी ऐसे बालक, तोता, मैना आदिका बोलना, और कमलके अतिकोमल तंतूओंके भूषण जिनके ऐसी रमणीय और प्रफुल्लित कमलको उज्ज्वलताकरके तिरस्कार करनेवाली तथा जंगम अर्थात् विचरनेवाली मानो कमलनी है ऐसी स्त्री, ये सर्व पदार्थ स्वस्थचित्तपुरुषके क्लमको हरण करतेहैं । क्लमके लक्षण शारीरकी चतुर्थाध्यायमें लिख आएहैं ।

तथा च वैद्यसारसंग्रहे ।

सरांसिवापीसरितोवनानिस्रक्चन्दनं शीतगृहं च सेव्यम् ।
गुडेनपथ्यासहसेवनीयामन्थः प्रयोज्यःकिलघर्मकाले ॥

अर्थ--सरोवर, बावडी, नदी, वन, फूल, माला, चंदन और शीतल घर, (तहखाने आदि) और गुडकेसाथ हरडका चूर्ण, तथा मंथ ए सब वस्तू ग्रीष्मऋतुमें सेवन करनी चाहिये ।

मन्थ ।

सक्तवःसर्पिषाभ्यक्ताःशीतोदकपरिप्लुताः ।
नातिद्रवानातिसान्द्रामन्थइत्यभिधीयते ॥

अर्थ–घृतमिले और शीतल जलसे परिप्लुत न बहुत द्रव न अत्यंत गाढे सत्तुओंको मंथ ऐसा कहतेहैं ।

स्रोतोनिदाघसमयेसितसूक्ष्मवासो हेमाह्वचम्पकनिपीडितकेशपाशः। श्रीखंडतोभमृगनाभिविकुंठिताङ्गोधन्यःक्षपांक्षपयेतक्षणलब्धनिद्रः ॥ अतिशिशिरपयोभिःक्षालितेसौधपृष्ठे सुरभिकुसुमयुक्तांसम्यगास्थायशय्याम् । शशधरकिरणो-

घैर्मारुतैश्चप्रसक्तैः प्रशमितपरितापोऽग्लानियोग्यंशयीत ॥

अर्थ–देहके छिद्रोंमें जिससमय गरमी प्रवेश करतीहै उससमय सपेद और महीन वस्त्रको धारण करे सौनजुही और चंपाके फूलसे गुँथा केशपाश जिसका तथा कस्तूरिका चंदनसे लिप्त अंग जिसका ऐसा पुरुष इस ग्रीष्म ऋतुमें क्षणमात्र लब्धनिद्रहो रात्रिको व्यतीत करताहै वह धन्यहै । अति-शीतल जलसे धुलेहुए महलोंकी छत जिनमें ऐसे सपेदीसें पुतेहुए महलोंके ऊपर सुगंधित फूलोंकी सज्या विछी और चंद्रमाकी चांदनी जिसका स्पर्शकरे और जहां किसीप्रकारकी ग्लानि आती न हो ऐसी शय्यापर दूरहुआहै ताप जिसका ऐसे पुरुषको शयन करना चाहिये ।

वर्जयेल्लवणाम्लोष्णंकटुव्यायाममैथुनम् । धारयेदुरसाहा-रंसूक्ष्मवस्त्रधरोभवेत् ॥ प्राप्तेमध्याह्नसमयेउशीरस्योपवीज-नम्। शयीतभूगृहंगच्छेदथवारुचिरंवनम् ॥

अर्थ–इस ग्रीष्मऋतुमें नोनका, खट्टा, गरम और चरपरा पदार्थ भोजन नहीं करनाचाहिये हृदयपर फूलोंके और मोती आदिके हार धारणकरे।मल-मलआदि बहुतपतले वस्त्रोंको पहने, मध्याह्न समयमें आर्द्र खसके पंखे ले तहखानोंमें अथवा वनमें जायकर शयन करे ।

मद्यंनपेयं पेयं वा स्वल्पंसुबहुवारि वा ।
अन्यथाशोफशैथिल्यदाहमोहान्करोतितत् ॥

अर्थ–इस ग्रीष्मऋतुमें मद्य नहीं पीना चाहिये यदि वातकफकी प्रकृति-वाला वातक्षयार्थ पीवेभी तो अल्पपीवे और कफपित्तकी प्रकृतिवाला कफ नाशनार्थ बहुतसा जलमिलाय कर पीवे इस विधिके विपरीत पीनेसे सूजन, शिथिलता दाह मोह, आदिको करताहै ।

ग्रन्थान्तरेच ।

शालयः षष्टिकाग्रीष्मकालेयवाजुर्णलीमुद्गनीवारगोधूमकाः ।
वर्तुलश्चाढकीकोद्रवावल्लकाः खंडिकाःस्युर्हितावैमसूरीप्रिये ॥

अर्थ–शाली चावलोंका और साठीचावलोंका भात, जव, ज्वार, मूंग, नीवार, गोधूम, मटर, अरहर, कोदों, चौरा, मटरकी दाल, और मसूर ये पदार्थ ग्रीष्मकालमें हितकारकहैं ।

---

१ गीष्मेगृह्णन्मयूखैरखिलजलमयं चण्डधामा निकामं नित्यं दाहोपशांत्यै प्रभवतिहिविधिश्चित्तजन्मात्ति जन्मा । दंपत्योश्चन्दनाद्यैरुपचितवपुषोः शीततुल्ये सुतल्पे कर्पूराम्भःसुसिक्तव्यजनपरिलसद्वायुरायुःस्वरूपः॥१॥

कालिङ्गं स्यादपक्कं त्रपुसमपितथाकर्कटीचाप्यपक्काकूष्मां-
डंकारवेल्लंघनकुचरुचिरेवास्तुकोमेघनादः । चञ्चूतुम्बीपटो-
लंदधिमधुरमयेशर्करामिश्रितंवै तद्वत्तक्रंसिताढ्यंनवनलिन-
करेग्रीष्मकालेहिताःस्युः ॥

अर्थ—कच्चा तरबूज, कच्ची ककडी, कच्चे खीरे, पेठा, करेले वथुआ, चौंलाई, चूका, घीया, परवल, शर्करा मिला गाढा और मलाईवाला मीठा दही, उसीप्रकार मिश्रीमिली छाछ, ये पदार्थ ग्रीष्मऋतुमें पथ्यहैं ।

प्रियेकोशातकीश्रेष्ठामारिषश्चाप्युपोदिका ।
ग्रीष्मर्त्तौसुहितौबालेशृङ्गाटककसेरुकौ ।

अर्थ—गलका तोरई, मारिषका साग, पोईका साग, सिँघाडे, और कसेरू, ये पदार्थ ग्रीष्मऋतुमें हितकारीहैं ।

पानीयंनैर्झरंवाप्यंकौप्यंश्रेष्ठंनिदाघके ।
सिताचेक्षुगणोबालेपूजितस्तद्रसोऽपि च ॥

अर्थ—झरनेका, बावडीका, तथा कूएका, जल । मिश्री, वा बारीक खांड, ईख, ईखका रस, ये ग्रीष्मऋतुमें हितकारक है ।

स्याद्रसालारसालेहिताग्रीष्मके पायसंपूपसंयावकौलप्सिका ।
मोदकाः फेनिकाछागकंहारिणं शाशकंवार्त्तिरंतैत्तरंचामिषम् ॥
गृहचटकभवंमांसंमायूरंवैकपोतकस्यापि। घृतपूरोऽतिहितः
स्यादयिविधुवदनेनिदाघकेनित्यम् ॥

अर्थ—सिखरन, खीर, मालपूआ, सेमई, लप्सी, लड्डू फेनी, ये पदार्थ और बकरा, हरिण, ससा, लवा, तित्तर, घरकाचिडा, मोर, कबूतर इनके मांस, और घेवर, ये पदार्थ ग्रीष्मऋतुमें हितकारीहैं ।

क्षुद्रमस्यावराग्रीष्मेनादेयाश्चतडागजाः । हितोमांसरसः
सकुर्मधुरश्चरसःप्रिये ॥ सेविकाःसितयासार्द्धंभक्षिताःसुहिता
मताः । शृतशीतंपयोनीरंशीतलंपानकंहितम् ॥

अर्थ—छोटी मछली, तथा नदीकी और तालावकी मछली, मांसरस, उसी

प्रकार सत्तू, तथा मिष्टरस चिनीमिले सेव, औटा और शीतल दूध, तथा शीतल, जल, और पने ये पदार्थ ग्रीष्मकालमें हितकारी होतेहैं ।

चन्द्रपादादिवास्वप्नंचन्दनंतरणंचके। लघुस्निग्धंद्रवंपथ्यंकायस्थासगुडाहिता ॥ उशीरैश्छादितंगेहंसिक्तैर्नीरैः सुगन्धिभिः । शीतलंचतरुच्छायाद्राक्षाचोशीरवीजनम् ॥ दुग्धांधश्चप्रसूनानिबालायाअधरामृतम् । हितान्याहुरयेबालेग्रीष्मेवेद्याइमानिहि ॥

अर्थ-चांदनी, दिनमें सोना, चंदन लगाना, जलमें तैरना, लघु स्निग्ध और पतले ऐसे पदार्थोंका सेवन, गुडयुक्त हरडका भक्षण, सुगंधित जलसे छिडके खसके पडदोंसे आच्छादित घरमें रहना, शीतल पदार्थ वृक्षोंकी छाया, दाख, खसके पंखे, दूध, भात, फूल और १६ वर्षकी अवस्थावाली स्त्रीका अधरामृत ये ग्रीष्मऋतुमें हितकारकहै ।

ग्रीष्मऋतुमें अपथ्य ।

क्षाराम्लकटुघर्माणिमद्यंतीक्ष्णंपटुप्रिये । लघूष्णतिलतैलानित्याज्यान्याहुर्भिषग्वराः ॥ वृन्ताकंचकलिंगश्चपक्वंशिग्रुश्चगृजनंमाषाः।निष्पावकंगुकृशराभयशुक्क्रोधाइमेऽहिताग्रीष्मे॥

अर्थ-क्षार, खट्टा, चरपरा, सूर्यकी धूप, मद्य, तीक्ष्णपदार्थ, नोन, लघु-तथा गरमपदार्थ, और तिलोंका तेल, ये पदार्थ ग्रीष्मकालमें त्याज्यहैं बैंगन, पके तरबूज, सहजना, लहसन, उरद, चौरा, कांगनी, खिचडी, ये पदार्थ और भय शोक तथा क्रोध ये ग्रीष्ममे अहितकारक हैं ।

सर्षपाराजिकामस्तुवटकामाषसंभवाः । क्वथितामेषमांसंच विदग्धान्नं च मैथुनम् ॥ उपवासोपगमनमायासोदाधिपिण्याकमतसिकाकान्ते । कथितंवाइदमहितबाले अयिगोधापिशितमपथ्यंस्यात् ॥

अर्थ-हे कान्ते सरसो, राई, दहीका तोर, उडदके बडे, कढी, मेंढका मांस, जराहुआ अन्न, मैथुन, उपवास, रस्ता चलना, परिश्रम, दही, तिल आदिकी खल, अलसी, और गोहका मांस, ये पदार्थ ग्रीष्मऋतुमें अहित कारक होतेहैं ।

उन्निद्रतामग्निसेवांत्यजेत्तीव्रंसमीरणम् ।
सूर्यतप्तजलस्नानंग्रीष्मकालेघटस्तनि ॥

अर्थ--रात्रिमें जागना अग्निसे तापना, अत्यंत पवन, और सूर्यकिरणसे तप्त जलसे स्नान ये सब वस्तु ग्रीष्मऋतुमें अहितकारक हैं ।

इति श्रीबृहन्निघण्टुरत्नाकरे ग्रीष्मचर्य्यावर्णनम् ।

अथ वर्षाचर्य्यावर्णनम् ।

अभिनवतमालपल्लवनीलजलधरध्वनितमुदितमयूरसंघट्ट-विस्तारस्वमुखरितकाननगहनकेतकिकदम्बकुसुमनिचया-तिशयसुगंधरमणीयमारुतसंदीपितमदनदावानलदाहवेद-नाविधुरितविरहिजननिकरोगगनतलपतितविपुलसलिल-परिपूर्णवहलजलकल्लोलसंघट्टघटितसंवाहिनीसंघातोयःसव-र्षाइतिविजानीयात् ।

अर्थ–अभिनव श्यामतमालके पल्लव (पत्र) वत् नीलजलधर (बद्दल) की ध्वनिसे मुदित मोर संघट्ट (समूह) विस्तार करके शब्दायमान कानन गहन तथा केतकी, कदंब, कुसुमो (फूल) के अतिशय समूह सुगंधसे रमणीय मारुत तिस करके संदीपित काम दावानलके दाह वेदनाविधुर विरही जनोंके पुंज तथा गगनतलसे पतित विपुल जलकरके परिपूर्ण अत्यंत जलकल्लोल संघट्ट घटित संवाहिनी (नदियोंके) समूह जिसमें उसको वर्षाऋतु जाननी ।

प्रावृष्यम्बरमानद्धं पश्चिमानलकर्षितैः । अम्बुदैर्विद्युदुद्योत-प्रस्तुतैस्तुमुलस्वनैः ॥ कोमलश्यामशष्पाढ्याशक्रगोपो-ज्ज्वलामही । कदम्बनीपकुटजसर्जकेतकिभूषिता ॥

अर्थ–सुश्रुतके मतसे प्रथम प्रावृट्ऋतुका वर्णन करते हैं, प्रावृट्ऋतुमें पश्चिमकी पवन करके कर्षित विजली जिन्में चमक रही जलको त्यागकर रहे और अत्यंत तुमुल गर्जनाके करनेवाले ऐसे बादलोंकरके आकाश व्याप्त होता है । तथा कोमल श्याम (हरी) घाससे व्याप्त, और इन्द्रधूटी (वीरबहूटी) करके उज्ज्वल पृथ्वी होती है कदंब नीप (धूलीकदंब) कुडा, रालके वृक्ष, और केतकी इनके पुष्पोंसे भूषित पृथ्वी होती है ।

कुर्वद्भिश्चातकान्हृष्टान्हंसान्मानसगामिनः ॥ भीमसंतमस प्रायेपथिदुर्गमकर्दमे॥जघनोद्वहनक्लान्ताः प्रमृष्टासारमंडलाः। तडित्प्रभाहृतालोकनिर्मीलनयनोत्पलाः ॥ गर्जितध्वनिना-त्रस्तहृदयाश्चाभिसारिकाः। भेकाकपोतसंकाशैर्मेघैरुच्चाम्बु-भूषणैः॥ जितहंसावलीकांतिबलाकापंक्तिसारितैः। केकागर्भ-गलोद्ग्रीवनृत्यबर्हिणवीक्षितैः।

अर्थ–चात्रिकोंको प्रसन्नकरती और हंसोंको मानससरोवर जानेवाले करती घोर अंधकारप्राय जगत् तथा मार्ग कीच पानी करके दुर्गम अर्थात् चलने योग्य नहीं, और जघनके उद्वहनसे थकित तथा ऊज्ज्वल आसार (धाराओंका पडना) जिसमें तथा बिजलीकी प्रभासे हरण करा देखना जिसमें अतएव निमीलित है नयनोत्पल जिसमें तथा गरजनकी ध्वनिकरके त्रासित हृदय जिनके ऐसी अभिसारिका स्त्री और मंडूक, कबूतरोंके सदृश चित्रविचित्र रंगके मेघउच्च और जलकरके भूषित जिसमें तथा बलाका (बगलाओंकी) पंक्तिके आकाशमें उडनेसे जीती है हंसपंक्ति जिसमें तथा मधुरध्वनि और उच्चग्रीव तथा नाचतेहुए मोरोंकरके वीक्षित ऐसी यह प्रावृट् ऋतु हैं।

गर्जद्भीमाम्बुवाहःक्षणरुचिरुचिराचुम्बिचंचद्दिगन्तः
कामंकूजत्कलापीनिशितरुशिखरद्योतखद्योतपोतः ।
धारासम्पातजातश्रवणसुखलसद्भेकभेरीनिनादः
प्रावृट्कालागमोऽयंकुसमशरसुहृद्भृंगसंगीतसंगी ॥

अर्थ–भयंकर बादलोंकी गर्जनक्षणरुचि करके सुंदर, तथा बिजलीकी चमक करके आचुम्बित है दिशाओंके प्रान्त जिसमें, यथेष्ट मोरोंका बोलना और रात्रिमें वृक्षोंके ऊपर प्रकाशित है खद्योत (पटवीजनाओंके) झुंड जिसमें, धाराओंके पडनेसे प्रगट श्रवणसुखवाले दादुर, भेरी शब्द जिसमें और भोंराओंका संगीतसंगी-हेमित्र! यह कामदेवका परमसुहृद प्रावृट्कालका आगम है ।

वर्षाऋतुवर्णन ।

तत्रवर्षासुनद्यम्भःपुरोभग्नतटद्रुमाः । वाप्यःप्रोत्फुल्लकुमुद-नीलोत्पलविराजिताः ॥ भूरव्यक्तस्थलश्वभ्रा बहुसस्योप-शोभिता । नातिगर्जन्स्रवन्मेघनिरुद्धार्कग्रहंनभः ॥

अर्थ–तहांवर्षाऋतुमें अत्यंत जलके प्रवाहसे उखाडे और बहाए तटके वृक्ष जिन्होंने ऐसी नदी होती है,प्रफुल्लित कमोदनी और नीलकमल जिन्होंमें ऐसी बावडी [तालाव तलैयाआदि] होती है अदृश्यस्थलगर्भा पृथ्वी होजाती है । अर्थात् बडे बडे कुवा गड्ढे जलसे ढगढे जाते हैं और बहुत हरित घाससे हतहो शोभित होती है अत्यंत गर्जनारहित ऐसे वर्षनेवाले मेघोंसे आच्छादित सूर्य और तारागणवाला आकाश होता है ।

सघनवारिदवारिसमाकुलाविमलसत्प्रवरोदकपूजिताः ।
समदवातकराहिदिशोदशप्रमुदिताःक्रमिकीटभृतामही ॥
नीलशस्यहरितोज्ज्वलामही स्वलपका सलिलसंप्लुतामही ।
इन्द्रगोपकविराजराजिता पंचभूषणविभूषिताबहु ॥

अर्थ–सघन बादलोंके जल करके समाकुल और विमल प्रवरोदक करके पूजित मदसहित वातकारी दशोदिशा और क्रमी कीटको धारण करनेवाली पृथ्वी होती है । तथा हरीदूबसे हरित और उज्ज्वल तथा कहीं कहीं विना जलके संप्लुत पृथ्वी होती है एवं इन्द्रगोप (वीरबहूटी) के शोभासे शोभित और पंचमूषण विभूषित होती हैं ।

उन्मत्तभूतांकुरभूधरंस्याद्रिजेवनंवामधुरंविकूजत् ।
मृगामयूराजलदस्यघोषाः सर्वेपिजीवाजलमाप्नुवंति॥

अर्थ--उन्मत्त भूत और अंकुर जिसमें ऐसा पर्वत तथा मृग, मोर बादलोंकी गर्जना सुनकर मधुर बोलरहै तिनसे वन शोभित होरहा इस वर्षाऋतुमें संपूर्ण जीव जलको प्राप्त होते हैं ।

केकीकूजतिकानने च सरसीम्लानाम्बुपूर्णातथा-
हंसामानसमाव्रजंतिकमलानिम्लानतांयान्ति च ।
गर्ज्जन्मेघमहीध्रकन्दरदरीशस्यावृताश्यामला
भात्येवंपवनस्यकोपनकरीवर्षाऋतुश्रेयसी ॥

अर्थ–वनमें मीठीध्वनिसे मोर बोलरहा है सरोवर गदले जलसे परिपूर्ण और हंस मानस सरोवरको गमन करते हैं कमलकुम्हलाएसे होजाते हैं गर्जित मेघके ध्वनिसें पर्वतकी कंदरा और गुफाओंमें प्रतिध्वनि होरहीहै ।

१ यत्रव्योमचित्तं चयैर्जलमुचांभूमिर्नवैः शाद्वलैः क्वापिक्वापितु नूतनाम्बुदजलच्छन्नोच्चानिम्नस्थली । भेकैः पक्वपलाण्डुखण्डरुचिभिस्तोयाशयाः सेविता नीपैः सर्वदिशश्च सोस्तुजगतो हर्षायवर्षागमः ॥ १ ॥

पृथ्वी घाससे हरी इसप्रकार वातके कोप करनेवाली कल्याणकारी यह वर्षा-ऋतु शोभा देती है।

किंचिद्गर्भोद्भवानिस्युःशस्यानिदृढतांशनैः। शिलीन्ध्रच्छत्र-संयुक्ताभूरव्यक्तजलस्थला ॥ कदंबनीपकुटजसर्जकेतकिभू-षिता। एवंगुणसमायुक्ताभातिवर्षाऋतुःशुभा ॥

अर्थ—गर्भसे उद्भव मनुष्य और घास धीरे धीरे दृढताको प्राप्त होते हैं, शिलीन्ध्रछत्र (छतोना जो वर्षाऋतुमें काष्ठके फूलनेसे प्रगट होता है) तिसकरके संयुक्त और अप्रकटजलस्थला पृथ्वी होती है। कदंब, नीप, (जलकदंब) कुटज, रालके वृक्ष और केतकी इनके पुष्पोंसे भूषित होते हैं ऐसे गुणयुक्त वर्षाऋतु अतिशुभ नहींहै किंतु मध्यम है क्योंकि वर्षाऋतुमें सर्व कार्य रुकजाते हैं।

प्रावृषि पथ्यम्।

गोधूमाः षष्टिकामाषाः कुलित्था रक्तशालयः।राजिकाप्रावृषिश्रेष्ठाऽतसीसिद्धार्थ इत्यपि॥कूष्माण्डंत्रपुसंपक्कंतथापक्कं कलिंगकम्। कोशातकीचवृन्ताकंवास्तुकोमारिषोपि च॥ चञ्चूपटोलौलशुनः पलांडुःससैन्धवंतक्रमुपोदिकाच।मद्यंसिताशिग्ररयेरसालाचौंड्यंप्रियेसारसमम्बुपथ्यम्।

अर्थ—गेहूं, सांठीचावल, उरद, कुलथी, लालचावल, राई, अलसी, सरसो, पकापेठा, और खीरा, तथा पकातरबूज, गलकातोरई, बैंगन, वास्तुक, मारिषका साग, चूका, परवल, लहसन, प्याज, सैंधानिमक मिली छाछ, पोईका साग, मद्य, चीनी, सेहजना, सिखरन, ये पदार्थ तथा चौंड्य, और सरोवरका जल पीना प्रावृट्ऋतुमें पथ्य हैं।

सगुडंदधिचेक्षुगणंकृशराघृतपूरकपायसकंसघृतम्। कथिता हरिणाजकपोतपलंशशतित्तिरवार्त्तिरमांसमपि। लप्सिका-फेनिकेपूपसंयावकौमोदकंचामिषंकौकुटंकाच्छपम्। क्षुद्रमत्स्यान्हितान्प्रावृषि प्रेयसिप्राहुरंभोजनेत्रेभिषक्सत्तमाः॥

अर्थ—गुडमिला दही, ईख, खिचडी, घेवर, घृतपडी दूधकी खीर, और हरिण, बकरा, कबूतर, ससा, तीतर, बटेर, इनके मांस, लापसी, फेनी, माल-

पूआ, सेमई, लड्डू, मुरगेका मांस, कछुएका मांस, छोटी मछली, ये प्रावृट् ऋतुमें हितकारी हैं।

अपथ्यानि।

आमांकर्कटिकांतुंबीमामंचत्रपुसंयवान् । राजकोशातकींना-डींडिंडिशंकारवेल्लकम् ॥ कर्कोटकंचपालक्याशृङ्गाटंचकसेरुकम् । आलुकंमाहिषंक्षीरं प्रावृट्कालेविवर्जयेत्॥निष्पावं वर्त्तुलंकंगुंराजमाषंमकुष्टकम् । त्रिपुटांश्चणकान्मुद्गान्मसूरीमाढकींत्यजेत् ॥

अर्थ-कच्चीकाकडी, सपेदधीया, कच्चाखीरा, जौं, धीयातोरई, नाडीका साग, ढेंडस, करेले, बनकरेले, पालक, सिंघाडे, कसेरू, आलू, भैंसका दूध, ये पदार्थ प्रावृट्कालमें त्याज्यहै। तथा चौरा, वर्त्तुल, कांगनी, राजमास, मोंठ, त्रिपुट (मटर) चना, मूंग, मसूर, और अरहरकीदाल, ये पदार्थ प्रावृट्कालमें सेवन न करे।

वल्लूरंकोद्रवाञ्श्यामेश्यामाकंजुर्णलीमपि । नीवारंलंघनंचैव कुल्माषानापिवर्जयेत् ॥ अतिव्यवायमेणाक्षिबलवद्विग्रहंतथा ॥ अतिव्यायामकंचैवाध्यशनंपरिवर्जयेत् ॥

अर्थ-सूखा मांस, कोदों, सामखिया, ज्वार, पसाई, अर्ध पक्व यव, लंघन, कुल्माष, ये पदार्थ और अत्यंत मैथुन बली पुरुषसे विरोध अत्यंत व्यायाम और अध्यशन ये प्रावृट्ऋतुमें वर्जितहैं।

प्रधावनंप्रतपनमभिघातंप्रपीडनम् । प्लवनं तरणंरात्रिजागरं विषमाशनम् ॥ भारप्रहरणं वातमूत्रवर्चोनिरोधनम् । क्षवथूद्गारबाष्पाणां निरोधंछर्दिशुक्रयोः ॥ शीतवीर्यकषायं च कटुतिक्तलवूनिच । रूक्षं च शुष्कशाकंच वर्जयेत्प्रावृषिप्रिये ॥ मायूरमामिषंचर्यांगजाश्वरथपत्रकैः । एतानिवर्जयेन्नित्यं प्रावृट्कालेशुभानने ॥

अर्थ-वेगसे दौडना, तापना, ऊँचेसे कुलाँच मारना, जिस कार्यसे धक्का लगे ऐसा करना, देहको पीडाहो ऐसा कार्य करना, जलमें तैरना, उझलना कूदना, रात्रिमें जागना, अनियमित भोजन करना, बोझालेकर चलना,

अधोवायु और मलमूत्र छींक, डकार, आंसू, वमन और शुक्र, इनके वेगको रोकना, शीतल, कषेले चरपरा, कडुए हलके, और रूक्ष, तथा सूखे साग इनको तथा मोरका मांस भक्षण, और हाथी, घोडा, और रथ, इनमें सवारी करना ये सर्व वस्तु प्रावृट् ऋतुमें वर्जित कहीहै।

वर्षासुगेहं निचितंसुयुक्तंपानेजलं सारसमावृतं वा।
स्यात्पञ्चकोलंसततं च सेव्यं तैलंतिलानामपियोजनीयम्॥
स्निग्धंतथाम्लंपिशितं च सेव्यंपथ्याचसेव्यासहसैंधवेन।
धूपप्रयुक्तंशयनं च कुर्यादुद्वर्तनं कौंकुमकंरजन्या॥

अर्थ–वर्षाऋतुमें अनेकप्रकारके पदार्थोंसे चित्रविचित्र उत्तम भवनमें रहना चाहिये। और पीनेको जलढके हुए सरोवर या बावडीका पीना चाहिये। पंचकोल और तिलका तेल सेवन तथा चिकना, खट्टा पदार्थ, मांस, और सैंधानिमकमिला हरडका चूर्ण सेवन करना चाहिये। तथा अगर मृगमद-आदिकी धूनी रक्खीहो ऐसे स्थानमें शयनकरना तथा हलदी और केशरकी देहमें मालिस करना उचितहै।

मानंविधायपरिहृत्यपराङ्मुखीभिः कादम्बिनीसमयगर्जित-कातराभिः। आलिङ्गितोऽतिरभसातुरकामिनीभिर्धन्यः स्वहर्म्यसमयेविचिनोतिनिद्राम्॥

अर्थ–मानकरके विमुख माननी अपने प्यारेको परित्यागकरके बैठी फिर मेघमालके उमडघुमड कर गर्जनसे कातर (कायर) ऐसी कामिनियोंने आतुर होकर शीघ्र आलिंगन करा इसप्रकार अपनी प्यारीनको छातीसे छातीको लगाय इस वर्षाऋतुमें अपने महलोंमें निद्रा लेतेहैं वो धन्यहै।

जलधरजलधारासीकराणामगम्यं
शिशिरपवनपृथ्वीबाष्पसंसर्गयुक्तम्॥
धवलनिलयपृष्टंनित्यमारुह्यातिष्ठे-
दगरुसुरभिवस्त्रप्रावृताङ्गोमनुष्यः॥

अर्थ–जलधर जलधाराके वोछार (जो कणकासे उडतेहैं) जहां जाने न पावे एवं शीतलपवन, और वाफके संसर्गयुक्त पृथ्वी होतीहै, अतएव उज्ज्वल महलोंके ऊपर रहना चाहिये। तथा मनुष्यको अगरकरके सुगंधित वस्त्रोंसे अंगोंको ढका रखना चाहिये।

आदानग्लानवपुषामग्निःसन्नोपिसीदति । वर्षासुदोषैर्दुष्य-न्तितेम्बुलम्बाम्बुदेऽम्बरे ॥ सतुषारेणमरुतासहसाशीतलेन च । भूबाष्पेणाम्लपाकेनमलिनेनचवारिणा ॥ वह्निनैवचम-न्देनतेष्वित्यन्योऽन्यदूषिषु । भजेत्साधारणं सर्वमूष्मणस्तेज-नंचयत् ॥

अर्थ--आदान कालके परिवर्त्तनसे ग्लानयुक्त देह जिन्होंके ऐसे पुरुषोंके अग्नि मंदहोकर शांति होतीहै, वर्षाऋतुमें जब मेघ जलके भारसे लंबायमान होतेहैं उस समय दोषदूषित होतेहैं, अतएव अग्निशांति होतीहै तथा सतुषार पवनका एकसाथही शीतल होनेसे अभ्यंतरवायु दूषित होतीहै, तथा पृथ्वीकी गरमीके निकलनेसे और जलोंके अम्लपाक होनेसे पित्त दूषित होताहै, तथा जलोंके गदले होनेसे (अर्थात् लूतादि तंतु मलमूत्रादिके मिलापसे वर्षाका जल दूषित होताहै, और कालके स्वभावसे) मंदाग्निकरके कफ दूषित होता-है, इसप्रकार इस वर्षाऋतुमें वातपित्त कफ एकही कालमें परस्पर दूषित होतेहैं । इसीसे अन्योन्य दूषितहोनेवाले दोषोंके एकही साथ प्रशमनकर्त्ता सब साधारण वस्तु और जो जठराग्निको प्रबल कर्ता पदार्थहै उनका सेवन करे, इसमेंभी अग्निदीपन करना मुख्यहै[1] ।

आस्थापनंशुद्धतनुर्जीर्णधान्यंरसान्कृतान् । जाङ्गलंपिशि-तंयूषान्मध्वरिष्टंचिरंतनम् ॥ मस्तुसौवर्चलाढ्यं वा पंचको लावचूर्णितम् ॥ दिव्यंकौपंशृतंचाम्भोभोजनंत्वतिदुर्दिने ॥ व्यक्ताम्ललवणस्नेहं संशुष्कंक्षौद्रवल्लघु ।

अर्थ–वमन विरेचनादिसे शुद्धदेह जिसका ऐसा पुरुष आस्थापन (निरू-हण बस्तीका) सेवन करे तथा पुराने यव गेहूं आदि धान्य, स्नेह शुंठ्यादि युत मांसरसोंका तथा जंगली हरिण ससे आदिके मांसका, यूषोंका, तथा पुराने मधु और अरिष्ट (मद्यके भेद) कालानिमक और पंचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, और सोंठका चूर्ण) मिली छाछ, आकाशसे वर्षा और कूआका ओटाहुआ जल इतनी वस्तुओंका सेवन वर्षाऋतुमें करे तथा जिसदिन बादलोंसे आकाश घिराहो उसदिन खट्टेनोनके और

---

१ शान्तेग्नौम्रियतेयुक्तेचिरंजवित्यनामयः । रोगीस्याद्विकृतेमूलमग्निस्तस्मान्निरुच्यते इति ।

चिकिने ऐसे भोजन प्रधान जिसमें तथा शुष्क और सहतमिले तथा हलके ऐसे पदार्थ सेवन करने चाहिये।

अपादचारीसुरभिः सततंधूपिताम्बरः।
हर्म्यपृष्ठेवसेद्बाष्पशीतशीकरवर्जिते ॥

अर्थ-इस वर्षाऋतुमें मनुष्य पैरोंसे न विचरै किंतु सवारीमें बैठकर आवेजाय, सुंदर गंधयुक्त जलसे स्नानशीतलहो, सुगंधित वस्त्रोंको धारण कर्ता, तथा भाप, शीत और शीकर (बोछार) रहित ऐसे महलोंके ऊपरले भागमें रहना चाहिये।

नदीजलोदमन्थाहःस्वप्नायासातपांस्त्यजेत्।

अर्थ--नदियोंका जल, जलमें भीगे और घृतमिले सत्तू (किंतु तक्रादिसंयोगसे सत्तूखाने चाहिये) निद्रापरिश्रम और धूपमें डोलना त्यागदे।

ग्रन्थान्तरेतु।

अयेबालेभजेन्नारींप्रौढांमेघेसुगर्जति। कायस्थांद्राविडींगौरीं रसालांनवयौवने ॥ शिवमुष्णोदकंस्नानंघृतपानंपरूषकम्। चारमज्जादनंद्राक्षांप्रशंसंतिविचक्षणाः ॥

अर्थ-वर्षाऋतुमें जिससमय मेघ गर्जनाकरे उसी समय प्रौढास्त्रीसे रमण करना, हरड, इलायची। हलदी, और सिखरनका सेवन करना, तथा आमला गरमजलसे स्नान, घृतपीना, फालसें चिरोंजी और दाख इनका सेवन हितहै।

भजेच्छिवांगुडेनसैंधवंयथेष्टभोजनम्। पटोलमौद्भिदंजलं कपित्थदाडिमीफले ॥ उपोदिकापलांडुनारिकेलतैलसट्टकान्। सितोपलामयेशरत्सरोजलोचनेप्रिये ॥

अर्थ-हे प्रिये वर्षाऋतुमें गुडयुक्त हरडका सेवन, सैंधव नोन, यथेष्ट भोजन परवल औद्भिद जल, कैथ, अनार, पोईका साग, काँदे, सट्टक, गिरीका तेल मिश्री, ये पदार्थ सेवन करने चाहिये।

शृतंदुग्धंचधान्याकमग्निसेवाचवास्तुकः। पद्मबीजंचखर्जूरं बीजपूरश्चमारिषः ॥ मद्वाकोशातकीचश्रुसुपक्वंकरमर्दकम्। तूतमञ्जीरकंपक्वंसुपक्वंबदरीफलम्॥आम्रमामंतथापक्वंनारिके-

लंगवांपयः । दुग्धमाज्यंजलंदिव्यंपनसःकदलीफलम्॥दधि-कोशातकीखंडंतक्रगोधूममुद्गकाः । पायसंलप्सिकापूपः षष्टिकारक्तशालयः। कुंडिलीपोलिकाफेनीमोदकास्तैत्त-रंपलम् । वार्त्तिकंहारिणंशाशंछागंचैवामिषंवरम् ॥ क्षुद्रम-त्स्यास्तथाहर्म्येशयनंललनोत्तमे । मनुष्याणांहितायैतेवर्ष-र्तौस्युरहर्निशम् ॥

अर्थ–गरमकरा दूध, धनियां, अग्निके पास देह सेकना, वथुएका साग, कमलगट्टा, खजूर, विजोरा, मारिष साग, गलकातोरई, चूकाका साग, पकेहुए करोंदा, सहतूत, अंजीर, पके बेर, कच्चा आम, वा पकाआम, नारि-यल, गौका दूध, बकरीका दूध, वर्षाका जल, पनस, गहर, दही तोरई, खांड, छाछ, गेहूं, मूँग, दूधकी खीर, लप्सी, पूआ, सांठीचावल लाल चावल, जलेबी, पूरी, फेनी, लड्डू, तीतरका, बटेरका, हरिण, शशा, बकरी इनका मांस, छोटीमछली, और घरमें शयनकरना, ये वर्षाऋतुमें हितकारक जानने ।

वर्षाऋतुमें अपथ्य ।

गोजिह्वांडिंडिसंचामंमनसंचिर्भटंगुडम् । मकुष्टंकर्कटींपक्वां भंगांचित्रफलंतथा ॥ वृन्ताकंत्रपुसंपक्वंपक्वंचापिकलिंगकम् । तौषारंपाल्वलंनीरंकैदारंतटिनीभवम् ॥ दिवानिद्रांचमायूरं मांसंपौर्वसमीरणम् । वृष्टिघर्मश्रमान्रूक्षंशीतंचैवाशनंप्रिये । वर्जयेदरविन्दाक्षिवर्षर्तौमनुजोऽनिशम् ।

अर्थ–गोभी, ढेंडस, कच्चा पनस, चिर्भट (चिरवा) गुड, मोठ, पकी काकडी (फूट) भांग. चित्रफल, (सैंध) बैंगन, पके आर्याकी फूट, पका तरबूज, तुषारका किंवा छोटी तलैयाका पानी, खेतका पानी नदीका पानी, दिनमें सोना, मोरका मांस, पूर्वकी पवन, वर्षामें खडा रहना, धूपमें खडा रहना, परिश्रम करना, रूखा और शीतल पदार्थका भोजन ये वर्षाऋतुमें वर्जितहै ।

इति श्रीबृहन्निघंटुरत्नाकरे वर्षर्तुवर्णनं समाप्तम् ॥

शरदृतुवर्णनम् ।

उद्यच्चण्डचण्डतरकिरणनिकरपरिशुष्ककर्दमनिचयविगत-धाराधरसंरोधशशधरधामधवलितसकलभुवनतलविरलज-लकल्लोलकंपितकमलकुमुदकह्लारमनोरमतडागभूषितत लोयःसशरदितिविजानीयात् ।

अर्थ—उदित चंड सूर्यकी चंडतर किरणसमूहोंकरके शुष्ककर्दम (कीच) के स्थल और दूरहुआहै धाराधर (बादलोंका) संरोध अतएव चंद्रमाकी चांदनीसे धवलित सकल भुवनतल कहीं कहीं जलकल्लोलसे कंपित कमल, कुमुद, कह्लार करके मनोहर तालाव तिनकरके भूषित पृथ्वी जिसमें उसको शरद्[1]ऋतु जानना ।

बभ्रुरुष्णःशरद्यर्कःश्वेताभ्रविमलंनभः।तथासरांस्यम्बुरुहैर्भा-न्तिहंसांसघट्टितैः॥ पङ्कशुष्कद्रुमाकीर्णानिम्नोन्नतसमेषुभूः । बालसप्ताह्वबन्धूककाशासनविराजिताः ॥

अर्थ—शरदऋतुमें सूर्य पीला और उष्ण होताहै, आकाश सपेद बादलयुक्त और स्वच्छ होताहै, तथा सरोवर हंसोंके स्कंधोंसे चालित कमलोंकरके शोभित होतीहै, निम्नोन्नत अर्थात् उँची नीची पृथ्वी क्रमसे कीच और वृक्षोंसे व्याप्त होतीहै, तथा वृक्षोंमें बमईके करनेवाली छोटी चैंटी (कीडी) होती है, पीयाबासा, सतवन, बंधूक (बादली वा मजनिया) कांस और असन (साल) इन वृक्षोंकरके शोभित होता है, अर्थात् इतने वृक्ष शरदऋ-तुमें प्रफुल्लित होते हैं ।

मेघाःसूर्यशिलासमानरुचयोह्यल्पस्वनाः सारसाहंसालीजल-जालिमण्डितजलंपद्माकरंशोभनम्।तीव्रस्तिग्ममयूखइन्दुवि-मलासानन्दनीकौमुदीचित्राघर्मविपक्वतोयसरसीस्यान्निर्मलं पुष्करम् ।

अर्थ--शरदऋतुमें मेघ सूर्यमणिके समान उज्ज्वल कांतिवाले होते हैं, और

---

१ यत्रोज्ज्वलाजलमुचोलसदिन्दुबिंबतारंनभोविकचनीरजकैरवाणि । नीराणिमानससमानिसतांविभांति स्वच्छानिकाशकुसुमानि च साशरत्स्यात् ॥

अल्पशब्द करनेवाले सारस होते हैं । तथा हंसोंकी पंक्ती और कमलोंकरके सरोवर शोभित होताहै, तथा तीव्रकिरणवाले चंद्रमाकी आनंददायक चांदनी होतीहै, और चित्रा नक्षत्रगत सूर्यकी गरमीकरके पक्व जलवाले सरोवर तथा निर्मल आकाश होताहै ।

दर्शयन्तिशरन्नद्योपुलिनानिशनैःशनैः ।
नवसङ्गमसव्रीडाजघनानीवयोषितः ॥

अर्थ–शरदऋतु नदियोंके पुलिनोंको धीरे धीरे दिखातीहै, उसकी उपमा श्रीवाल्मीक महर्षि देतेहैं कि, जैसै नवीन संगममें लज्जायुता स्त्री अपने प्राणप्यारेको धीरे धीरे जंघा दिखलातीहै ।

संशुष्यत्पङ्कशङ्काखरकिरणरुचाफुल्लराजीवराजीराजत्कह्लारवल्लीकुसुमचयमिलद्वासनावासिताशा।दुग्धाम्भोधेस्तरङ्गद्युतिरिवविकसत्काशपुष्पप्रकाशंचञ्चच्चन्द्रांशुशोभासकलजनमुदेशारदीरात्रिरेषा ।

अर्थ--तीव्र किरणोंकरके दूर हुईहै कीचकी शंका तथा प्रफुल्लित कमलोंकी पंक्ति तथा कह्लार (सुगंधवान् कमल) और चमेलीके पुष्पसमूहकी सुगंधसे सुगंधित दिशा विदिशा जिसमें तथा क्षीरसमुद्रकी तरंगके सदृश फूले-हुए काशपुष्पोंका प्रकाश जिसमें और चंचल चंद्रमाकी चांदनीकी शोभा जिसमें ऐसी संपूर्ण मनुष्योंको हर्षके देनेवाली यह शरदसंबंधी रात्रि है ।

पित्तेनसान्द्रंरुधिरंशरत्सुवृद्धिंसमागच्छातिसूर्यरश्मिभिः ।
तदाशुरक्तंपरिमोक्षणीयंपानेजलंसारसमुद्दिशन्ति ॥ १ ॥
भोज्याःसदालोहितशालिमुद्गागव्यंघृतंचंद्रकराश्चसेव्याः ।
इक्षोर्विकारामरिचैश्चभक्ष्याःपथ्यासिताढ्याकिलसेवनीया ॥ २ ॥
स्थितिःप्रवर्तेरजनीषुकार्याघर्मश्च नित्यंपरिवर्जनीयः । छाया
च सेव्याहरितद्रुमाणां श्रमं नकुर्यात्प्रयतोमनुष्यः ॥ ३ ॥

अर्थ--पित्तकरके गाढा रुधिर शरदऋतुमें सूर्यकी किरणोंकरके वृद्धिको प्राप्त होता है, अतएव शीघ्र रुधिरमोक्षण अर्थात् फस्तखोलनी चाहिये, और इसऋतुमें सरोवरका जल पीना चाहिये । लाल चावल, मूंग, गौका घी, ईखके विकार (गुड मिश्री बूराबतासेआदि) और मिरचमिले पदार्थ भोजन

करना चाहिये। तथा मिश्रीमिला हरडका चूर्ण सेवन करना और चंद्रमाकी चांदनी सेवन करनी चाहिये। मेरी समझमें आता है कि, यही कारण शरद रात्रिको ठाकुर शरदमें बैठारनेका है। रात्रिमें छएहुए मकानमें स्थिति करना और धूप न खानी चाहिये, तथा हरित वृक्षोंकी छाया सेवन करनी तथा इसऋतुमें परिश्रम करना चाहिये।

भूयान्नरःशरदिचन्दनलिप्तगात्रः स्त्री शर्कराक्वथितदुग्धयुताचसेव्या। कर्पूरपूगपरिपूर्णमुखींचकान्तामाचुम्ब्यशीतलकुचांपरिरभ्यशेते ॥

अर्थ- शरदऋतुमें मनुष्यको चंदन लगाय मिश्री मिला औटाया दूध पीकर स्त्रीसेवन करना तथा कर्पूर सुपारीयुक्त बिडा जिसने चबाय रक्खा ऐसा प्यारीके मुखका चुंबन कर और शीतल कुचोंका आलिंगन कर शयन करना चाहिये।

चन्दनोशीरकर्पूरमुक्तास्रग्वसनोज्ज्वलः।
सौधेषुसौधधवलांचन्द्रिकारजनीमुखे ॥
श्यामारामारतंशस्तंसेव्याक्षौद्रहरीतकी।
स्नानपानावगाहेषुहितमंशूदकंहितम् ॥

अर्थ--चंदन, खस, कपूर, मोती, फूलोंकी माल और वस्त्र इनकरके उज्ज्वल हो, ऐसे उज्ज्वल घरकी छत्तपर प्रदोषमें चांदनीका सेवन करे (अन्य समय न करे) तथा १६ वर्षकी स्त्रीसे रमण करना तथा सहत और हरडका सेवन करना तथा स्नान और पानमें हंसोदकका सेवन करना हित है।

हंसोदकके लक्षणगुण।

तप्तंतप्तांशुकिरणैःशीतंशीतांशुरश्मिभिः। समंतादप्यहोरात्रमगस्त्योदयनिर्विषम् ॥ शुचिहंसोदकंनामनिर्मलंमलजिज्जलम्। नाभिष्यंदिनवारूक्षंपानादिष्वमृतोपमम् ॥

अर्थ--सूर्यकी किरणोंसे सबदिन तप्त हुआ हो और चंद्रमाकी किरणोंसे सर्व रात्रि शीतल हुआ हो तथा अगस्त्योदयसे निर्विष हुआ हो और जो पवित्र हो उस निर्मल और मल (वातकफ) को जीतनेवाले जलको हंसोदक कहते हैं, यह अभिष्यन्दि और रूक्ष नहीं हैं। पीनेमें आदिशब्दसे स्नानादिकमें अमृतके तुल्य हैं यह विधि वर्षाके जलमें है कूआ बावडी आदिके जलमें नहीं हैं।

सितायुक्ताशिवाबालेसितायुक्तःशिवोऽपि च। गुडयुक्ताच कायस्थाधान्याकंसैन्धवंशिवः ॥ गोजिह्वापद्मबीजानिमृणालंगोस्तनीघृतम्।नालिकेरंहितायस्युःशरत्कालेदिवानिशम् ॥

अर्थ-खांडके साथ हरडका चूर्ण अथवा खांडके साथ आमलोंका चूर्ण गुडयुक्त हरड, धनिया, सैंधानिमक, आमले, गोभी, कमलगट्टे, भसेडे, मनुक्का, घृत, नारियल ये पदार्थ शरदऋतुमें हितकारी हैं।

रसालांतथामंरसालंकपित्थं कलिंगंतथैवामकंतण्डुलीयम्। पटोलंपलाण्डुंसितामाजदुग्धंशरद्याहुरेतानिवैद्याहिताय ॥ वास्तुकोपोदिकानाडिकामारिषाः पायसंपानकंशालयः षष्टिकाः। कुण्डलीफेनिकाजम्बुरम्भाफलंस्युःशरद्यङ्गनेमानवानांमुदे ॥

अर्थ-सिखरन, हरेआम, कैथ, हरातरबूज, चौलाई, परवल, कांदे, खांड, बकरीका दूध, बथुआ पोईका साग, नाडीका साग, मारिष, दूधकी खीर, पने, शाली और सांठीचावल, जलेबी फेनी, जामून, केलाकी गहर ये पदार्थ शरदऋतुमें हितावह हैं।

चञ्चूकोशातकीबालेशृङ्गाटंदाडिमीफलम्।मातुलुंगोप्ययेकान्तेशरद्येतेहितावहाः ॥ कसेरुकंजलंदिव्यंतौषारंसारसंप्रिये। हंसोदकंचगोधूमाःसोमालीहारिणंपलम् ॥ वार्त्तिरंतैत्तरंमांसंशाशमाजंचरेचनम्। क्षुद्रमत्स्याःशरत्कालेहितायस्युरहर्निशम् ॥

अर्थ-चूकेका साग, तोरई, सिंघाडे, अनार, विजोरा, कसेरू, वर्षाका जल बर्फका पानी, सरोवरका पानी, और हंसोदक, गेहूं, सुहारीनामक पक्वान्न, तथा हरिण, लवा, तीतर, ससा, और बकरा, इन्होंका मांस तथा छोटी मछली, ये पदार्थ और जुलाबलेना, शरदऋतुमें हितकारी है।

कषायकंस्वादुरसंचशीतलंपटुप्रियेसाब्जसरोऽवगाहनम्। लघुप्रियंभोजनमम्बुजाक्षिकेशरद्ययेजाङ्गलमामिषंहितम् ॥

अर्थ-कसेला, स्वाद, शीतल, नमकीन, ऐसे रस, कमलयुक्त सरोवरमें

स्नान, और लघु प्रियकर्ता ऐसे भोजन, तथा जंगली पक्षियोंकी मांसभक्षण ये शरदऋतुमें हितकारक है।

विश्रामंसुहृदां गणेषुमधुरावाचः सुमाल्यंप्रियेनादेयंसलिलं तथाबलवतः शस्तंशिरामोक्षणम्। लोलाक्षि प्रमदोत्तमेहितकराण्याहुःसुवैद्यानृणांसन्नामोंऽघ्रिसरोजयोरिवहरेःप्राणप्रिये सन्मते ॥

अर्थ--सुहृदोंमें रहना, मधुर वाक्य, सुंदर फूलोंकी माला, नदीका पानी और बलवान्की फस्त खोलकर रुधिर निकालना, ये शरदऋतुमें हितकारक है।

शरदि अहितानि।

शरदुष्णापित्तकर्त्रीनृणांमध्यबलावहा। तस्मात्पित्तकरंसर्वं त्यजेन्नित्यंप्रयत्नतः॥ पिप्पलीमरिचंभंगांशतपुष्पांरसोनकम्। चिर्भटंरामठंतक्रंवृन्ताकंकृशरां दधि॥ क्वथितंसार्षपंतैलंमद्यंचित्रफलंतथा। अम्लंतीक्ष्णंकटूष्णंचातपंव्यायामकं गुडम्॥ दिवानिद्रातिसुरतंमाषान्नंरात्रिजागरम्। मत्स्यंक्रोधं त्यजेद्यत्नाच्छरद्यम्बुरुहेक्षणे॥

अर्थ--शरदऋतुमें, गरम, पित्तकर्त्ता, और मध्यम बलदायक है, अतएव इसमें पित्तकारक वस्तुओंका त्याग करना चाहिये, जैसै—पीपल, मिरच, भाँग, सौंफ, लहसन, चिर्भट, हींग, छाछ, बैंगन, खिचडी, दही, कढी, सिरसोंका तेल, मद्य, चित्रफल, खट्टा, चरपरा, कडुआ, गरम, धूपमें डोलना, कसरत करना, गुड, दिनमें सोना,अति मैथुन,उरदके पदार्थ, रात्रिमें जागना, बडी मछली, और क्रोध ये शरदऋतुमें यत्नपूर्वक त्याज्य है।

पक्वंकलिङ्गं त्रपुसं च पक्वं त्यजेत्तथाकर्कटिकांचपक्वाम्। मांसंप्रिये मेषमयूरयोश्चशरद्ययेकुंडलशोभितास्ये ॥

अर्थ—पका तरबूज, खीरा, ककडी और मोर, तथा मेंढा इनका मांस शरदऋतुमें वर्जित है।

इति श्रीबृहन्निघण्टुरत्नाकरे शरदृतुचर्य्या समाप्ता।

संक्षेपसे ऋतुचर्या ।

शीतेवर्षासुचाद्यांस्त्रीन्वसन्तेऽन्त्यान्रसान्भजेत् । स्वादुं निदाघेशरदिस्वादुतिक्तकषायकान् ॥ शरद्वसन्तयोरूक्षंशीतंघर्मघनान्तयोः । अन्नपानं समासेनविपरीतमतोऽन्यदा । नित्यंसर्वरसाभ्यासःस्वस्वाधिक्यमृतावृतौ ।

अर्थ–हेमंत शिशिर और वर्षामें आद्यरसों [मधुर, अम्ल, और लवण] का सेवन करना और वसंत ऋतुमें तिक्त कटु और कषेले रस सेवन करने चाहिये । ग्रीष्मऋतुमें मिष्टरस और शरदऋतुमें स्वादु तिक्त और कषायरस सेवन करने चाहिये । शरद वसंत ऋतुमें रूक्ष अन्नपान सेवन करे । इस्से विपरीत अर्थात् स्निग्ध पदार्थ हेमंत शिशिर ग्रीष्म और वर्षाऋतुमें सेवन करे । तथा शीतल अन्न पान ग्रीष्म और वर्षाकालमें तथा इस्से विपरीत अर्थात् उष्ण पदार्थ हेमन्त शिशिर वर्षा और वसंत ऋतुमें सेवन करने चाहिये ।इस मनुष्यको चाहिये कि, सब रसोंका अभ्यास सदैव रक्खे, परंतु ऋतुऋतुमें जो वस्तु सेवन करना लिखा है वह उसीउसी ऋतुमें अधिक सेवन करना ऐसा जानना, परंतु यह नियम समधातु और साधारणदेशमें जानना, किंतु जांगलदेश अनूपदेश और विषमधातुवाले पुरुषके प्रति यह नियम नहीं है । विषमधातुवाले पुरुषको धातु साम्यता करनेके अर्थ देश देहके अनुसार अनुक्त ऋतुकेभी आहाराचार कर्तव्य है ।

ऋतुसंधिमें कर्त्तव्य ।

ऋत्वोरन्त्यादिसप्ताहावृतुसंधिरितिस्मृतः । तत्रपूर्वोविधिस्त्याज्यःसेवनीयोऽपरःक्रमात् ॥ असात्म्यजाहिरोगाःस्युः सहसात्यागशीलनात् ।

अर्थ–ऋतु (शिशिर, वसंत, और ग्रीष्म वर्षा आदि) के आदि अंतके सात सात दिन जो होते हैं वो ऋतुसंधि कहाती है, इस ऋतुसंधीमें प्रथम ऋतुकी विधिक्रमसे त्याग करे और आगेकी ऋतुमें जो विधि लिखी है उसका क्रमसे सेवन करना चाहिये क्योंकि सहसा विधित्यागकरनेसे असात्म्यजरोग प्रगट होते हैं ।

ग्रन्थान्तरेच ।

चयप्रकोपोपशमादोषाणांहिद्वयोरपि । सन्धौसाधारणावत्स

भविष्यद्वर्त्तमानयोः ॥ ऋतुसंधौतुदोषाणांबहुधापरिकल्पना । एवंप्रकाराव्याख्यातुंविधिंवक्ष्याम्यतःपरम् ॥ ह्रासयेदल्पशोऽभ्यस्तंवर्त्तमानर्त्तुकंविधिम् ॥ भविष्यद्धेतुकश्चापि यतेताभ्यासकारणात् । यावदभ्यासयेत्पूर्वंतावत्तंसभजेत्परम् ॥ स्यूरोगास्त्यागयोगाभ्यांसहसासात्म्यसेवनात् । तस्माद्यथोक्तमभ्यस्येदृतुसन्धिविधिंनरः ॥

अर्थ—हे वत्स ! भविष्यत् और वर्त्तमान अर्थात् आनेवाली और वर्तमान दोनों ऋतुओंकी संधियोंमें दोषोंके चय प्रकोप और शान्ति साधारण रीतिसैं होते हैं । फिर ऋतुसंधिमें दोषोंकी अनेक परिकल्पना होतीहै अब इसके उपरांत अन्यविधि कहते हैं मनुष्यकों चाहिये कि जब ऋतुसंधि आवे तबहीसे वर्त्तमान ऋतुकी अभ्यास करीहुई विधिको धीरेधीरे घटावे और आनेवाली ऋतुकी विधिका थोडाथोडा अभ्यासके अर्थ साधन करे । जबतक आगेकी विधिका अभ्यास करे तबतक पिछलीविधिका सेवन करता रहे क्योंकि सहसा असात्म्य सेवनसे त्याग और योग करके रोग प्रगट होते हैं अतएव मनुष्यको उचित है कि यथोक्त ऋतुसंधिकी विधिको अभ्यास करना चाहिये ।

स्वगुणैरतियुक्तेषुविपरीतेषुवापुनः । विषमेष्वपिवादोषाःकुप्यन्त्यृतुषुदेहिनाम् ॥ हरेद्वसन्तेश्लेष्माणं पित्तंशरदिनिर्हरेत् । वर्षासुशमयेद्वायुं प्राग्विकारसमुच्छ्रयात् ॥

अर्थ—ऋतुओंके जो जो गुण कहे हैं उन्होंके अत्यंत होनेसे (जैसे हेमंत और शिशिरऋतुमें अत्यंत शरदी पडना गरमीयोंमें अत्यंत गरमी और वर्षामें अत्यंत वर्षाका होना इत्यादि) तथा ऋतुके विपरीत गुण होनेसे (जैसे शरदीकी ऋतुमें गरमी और गरमियोंमें शरदी पडना इत्यादि) तथा ऋतुओंकी विषमता होनेसे (जैसे वर्षाके लक्षण शरदमें शरद ऋतुके लक्षण हेमंतऋतुमें इत्यादि) इन अत्यंत विपरीत और विषमलक्षण होनेसे मनुष्योंके वात पित्त कफ दोष कुपित होते हैं तहां ऋतुओंके स्वगुणातियोगसे छः व्यापत्ति (व्याधि) होतीहै । तथा विपरीत होनेसे छः और ऋतुओंके विषम होनेसेभी छः व्यापत्ति होती है इसप्रकार ऋतुओंकी १८ व्यापत्ती कहीहै ।

वसंतऋतुमें कफको शरदऋतुमें पित्तको और वर्षाऋतुमें वादीको वमन विरेचनादिद्वारा शमन कर्त्तव्य है। परंतु यह विधि जबतक कोई ऋतुविकार न उत्पन्न हो उससे पूर्वही करना चाहिये।

देशपरत्वविकार।

मत्स्याम्लभोजिनःप्राच्यांनित्यंचानूपसेविनः । श्लीपदो-गलगण्डश्चप्रायस्तेषुभवन्तिहि ॥ १ ॥ निम्नतो-यगतान्मस्यान्भक्षयन्तिसमुद्रजान् । प्रायशःकुष्ठि-नस्तेनमनुष्यादाक्षिणात्यजाः ॥ २ ॥ तैलाम्लभोजिनोनि-त्यंगोधूमविदलाशिनः । भूयिष्ठमर्शसास्तेनखञ्जाश्चावन्ति-जानराः ॥ ३ ॥ मांसकामाःसुराकामाःस्त्रीकामाः साहसे रताःमागधास्तेनभूयिष्ठंदृश्यन्तेराजयक्ष्मिणः ॥ ४ ॥ ती-क्ष्णान्नानिनिषेवन्तेबाल्हीकास्तुविशेषतः । अभिष्यन्दीनि मांसानितथाधान्योदकानि च ॥ ५ ॥ प्रकृत्याचाप्यभिष्य-न्दान्सेवन्तेमानुषाःसदा । तेनबाल्हीकदेशेषुप्रायोव्याधिर्ब-लासकः ॥ ६ ॥ नानादेशस्वभावायेनानाहारास्तथैवच । नानाचारानैकसत्त्वाधार्मिणोऽधर्मिणस्तथा ॥ ७ ॥ तेषांसा-त्म्यं च सत्वं च ऋतुकालंचलक्षयेत् । भैषज्यन्तुततःकुर्या-द्दैवंविज्ञायदेहिनाम् ॥ ८ ॥ यस्यदेहस्ययत्सात्म्यं यच्चास्य चरितंभवेत । तेनभेषजसंयुक्तंभैषज्यमुपकल्पयेत् ॥ ९ ॥ आरोग्यंतेनवर्णौजोबलंवीर्यं च जायते। वर्जनादृतुसाम्यानां कृशोनित्यंसुदुर्बलः ॥ १० ॥ नित्यंरोगाभिभूतश्चपुमान्सा-त्म्यविवर्ज्जनात् । तस्मात्सात्म्यंनिषेवेतअसात्म्यंपरिवर्ज्ज-येत् ॥ ११ ॥ सात्म्यसेवीजितक्रोधीनित्यंचापिजितेन्द्रियः। जीर्णभोजीमितःस्वप्नःसुखंजीवत्यनामयः ॥ १२ ॥ ऋतवः प्राग्विनिर्दिष्टाबलयोगस्वभावतः । तेषुगर्भानिषिक्तास्तुत-थारूपास्तथायुषः ॥ १३ ॥ तान्विज्ञायततोबुद्ध्याप्रश-

स्तान्निन्दितानपि । ततोऽस्याहारसंयुक्तं भेषजंवावचारयेत् ॥ १४ ॥ ततोस्यारोगतादेहेबलंवीर्यंचवर्द्धते ।

अर्थ–पूरवके देश (बंगालगडियाआदि)में मनुष्य नित्य अनूपदेशमें रहनेसे और नित्य मछलीको खाते है, अतएव उन्होंके प्रायःश्लीपद (पीलपाउ) और गलगंड (घेंघा)का रोग बहुत होता है । दक्षिणदेश (मुंबई मुंदराज आदि प्रान्त)के मनुष्य जलके नीचे रहनेवाले समुद्रके मच्छोंको भक्षण करते हैं अतएव उन्होंके प्राय कुष्ठका रोग बहुधा होता है । अवन्तीदेश (मालवा मेवाडआदि) में मनुष्य तेल खटाई मिरच गेंहूं दाल आदिका अत्यंत सेवन करते हैं अतएव उनके बवासीर और खंज (पैरोंका रोग) बहुधा होता है । मगधदेश (गया पटनाआदि)के मनुष्य मांस, मद्य, स्त्रीका सेवन और साहसी होते हैं अतएव उन्होंके प्रायः खईका रोग बहुत होता है । बाल्हीकदेशके मनुष्य तीक्ष्ण अन्नपानका सेवन करते हैं तथा अभिष्यंदी (दही आदि) मांस, धान्योदक, तथा प्रकृति करके अभिष्यंदी पदार्थोंका सेवन करनेसे उनके बलासक रोग होता है । विविध देशोंमें विविध स्वभावके और अनेकप्रकारके आहार आचार अनेक प्रकार सत्ववाले कोई धर्मशील और कोई अधर्मी होते हैं उन्होंके सात्म्य (आत्माके अनुकूल पदार्थ) सत्व और ऋतुकालको विचार फिर वैद्यको चिकित्सा करनी चाहिये । जिस मनुष्यको जो आत्माके अनुकूल पदार्थहो और जैसा उसका चरित्रहो उसको उसीके साथ औषध मिलाकर देवे जैसे पूरवके मनुष्य मछली भात खाते हैं तो उनको उसीके साथ औषध देवे जो अत्यंत मद्यपीताहै उसको मद्यके साथ भांगपीनेवालेको भांगके साथ मांस खानेवाले को मांसके साथ अफीम खानेवालेको अफीमके साथ औषध देनी चाहिये।अर्थात् जो मनुष्य जिस वस्तुका सदैव सेवन करता है उसको वह वस्तु प्रथम देकर फिर औषध देवे या उसीमें मिलाकर देनी चाहिये । इसप्रकार करनेसे आरोग्य, वर्ण, ओज, बल और वीर्यकी वृद्धि होती है । अतएव ऋतुसात्म्य और आत्मसात्म्यके परित्याग करनेसे मनुष्य कृश, दुर्बल, और नित्य रोगग्रस्त रहता है । इसीसे मनुष्यको उचित है कि आत्मसात्म्य और ऋतुसात्म्यका सेवनकरे तथा असात्म्यवस्तुका परित्याग करे । जो मनुष्य सात्म्यवस्तुका सेवन करता, क्रोध जीतनेवाला, नित्य जिह्वा उपस्थआदि इन्द्रियोंका जीतनेवाला है, जीर्णभोजी अर्थात् पूर्वभुक्त आहार पचनेके उपरांत भोजन करनेवाला और अनुमानकी निद्रालेनेवाला है वह रोगरहित सुखपू-

र्वक पूर्णआयुको प्राप्त होता है बलयोगस्वभावसे पूर्व कहीहुई ऋतुओंमें जो गर्भस्थापना हुए है उन गर्भोंसे उन्ही ऋतुओंके अनुसार रूप और आयुष्य-वाले बालक प्रगट होते हैं । अतएव वैद्यको उचित है कि उनमनुष्यका उत्तम और निंदित रूप आयु बलको जानकर उसीके अनुसार आहारके साथ औषधी देनी चाहिये । इसप्रकार आहार विहार सेवन करनेसे इस मनुष्यको नैरोग्यता और देहमें बलवीर्यकी वृद्धि होती है ।

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघण्टुरत्नाकरे ऋतुचर्यावर्णनं नाम षट्विंशतितमस्तरंगः २६

अथातो दिनचर्याध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ–ऋतुचर्याध्याय कहनेके अनंतर अब दिनचर्याध्यायको कहतेहैं । दिनदिनमें जो आचरण कराजावे उसको दिनचर्या कहतेहैं ।

मानवोयेनविधिनास्वस्थस्तिष्ठतिसर्वदा । तमेवकारयेद्वैद्यो यतःस्वास्थ्यंसदीप्सितम् ॥ १ ॥ दिनचर्यांनिशाचर्यांमृतु-चर्यांयथोदिताम्।विहरन्पुरुषःस्वस्थःसदातिष्ठतिनान्यथा॥२॥

अर्थ--वैद्यको उचितहै कि मनुष्य जिसरीतिसे सर्वकाल स्वस्थरहे ऐसा उपचार करना चाहिये क्योंकि निरोगता सर्व प्राणियोंको सदैव वांछितहै । अतएव दिनचर्या रात्रिचर्या ऋतुचर्या इनमें जैसा जैसा कर्म कहाहै तैसा तैसा आचरण करनेसे सर्वकाल स्वस्थ रहताहै ।

स्वस्थके लक्षण ।

समदोषःसमाग्निश्चसमधातुबलक्रियः ।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाःस्वस्थइत्यभिधीयते ॥ ३ ॥

अर्थ–दोष, अग्नि, धातु, बल, और कर्म ये जिसके समान हो तथा इन्द्री-मन देह ये प्रसन्न हो उसको स्वस्थ कहतेहैं । कदाचित् कोई शंका करे कि दोष धातु आदिका समानता किसप्रकार जाने इसलिये कहतेहैं ।

यत्समत्वंहिंदोषाणांभिषग्भिरवधार्यते ।
नतत्स्वास्थ्यंविनावक्तुंशक्यमन्येनहेतुना ॥ ४ ॥

अर्थ--जिसको वैद्य दोषसमत्व कहते हैं, वह शरीरस्वास्थ्यके विना दूसरे कारण करके कहनेमें नहीं आता अतएव निरोगी पुरुषकोही दोषसमत्व कहसकते हैं ।

प्रातःकृत्य।

ब्राह्मेमुहूर्त्तेबुद्ध्येतस्वस्थोरक्षार्थमायुषः ।
तत्रसर्वाघशान्त्यर्थंस्मरेच्चमधुसूदनम् ॥

अर्थ—प्राणीको उचित है कि रात्रिकी चार घडी बाकी रहनेपर उठकर आयुके रक्षणार्थ तथा संपूर्ण पातकनाशनार्थ मधुरिपू जो विष्णु तिनका स्मरण करना चाहिये ।

प्रातःस्मरणीयमाह व्यासः ।

महर्षिर्भगवान्व्यासःकृत्वेमांसंहितांपुरा ।
श्लोकैश्चतुर्भिर्धर्मात्मापुत्रमध्यापयच्छुकम् ॥ १ ॥
मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च ।
संसारेष्वनुभूतानियांतियास्यन्तिचापरे ॥ २ ॥
शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च ।
दिवसेदिवसेमूढमाविशन्तिनपण्डितम् ॥ ३ ॥
ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोतिमे ।
धर्मादर्थश्चकामश्चसकिमर्थंनसेव्यते ॥ ४ ॥
नजातुकामान्नभयान्नलोभाद्धर्मंत्यजेज्जीवितस्यापिहेतोः ।
धर्मोनित्यःसुखदुःखेत्वनित्येजीवोनित्योहेतुरस्यत्वनित्यः ॥५॥
इमांभारतसावित्रींप्रातः प्रातःपठेत्तुयः ।
सभारतफलंप्राप्यपरंब्रह्माधिगच्छति ॥ ६ ॥

अर्थ—महर्षि भगवान् व्यास पूर्व इस चतुःश्लोकी संहिताको बनाके धर्मात्मा शुकपुत्रको पढाते हुए । यह बात अनुभव करीहुई कि हजारों मातापिता और सैंकडो पुत्र स्त्री इससंसारसे गए और आगे जायँगे अर्थात् पूर्वजन्म और इसजन्मके गए तथा जो शेष है अथवा आगे होनेवाले जन्मके जो मातापिता और स्त्रीपुत्रादि है वो जायँगे [यह निश्चय है इस्से उचित है कि इनमें मोह नहीं करना] शोकके स्थान हजार और भयके स्थान सैंकडों हैं । वो दिनदिनमें मूढ पुरुषको प्राप्त होते हैं पंडितको नहीं होते, अर्थात् हजारोंवार्त्ता ऐसी हैं जिनसे यह मनुष्य शोकाकुल होता है और सैंकडों वार्ताओंसे भयको प्राप्त होता है परंतु यह मूर्खोंके वास्ते है पंडितजनोंको न

किसीबातका शोक और न किसीसे डर है क्योंकि पंडित पुरुष शोक भय होनेके कारणोंको अच्छीरीतिसे मिथ्या जानते हैं ॥ ३ ॥ श्रीव्यासभगवान् कहते हैं कि मैं ऊंचे हाथ उठाकर पुकारता हूं परंतु कोई नहीं सुनता मैं कहताहूं कि भाईहो धर्मकरो, धर्मसे धनकी प्राप्ति होवेगी और धनसे संपूर्ण कामना होती है । अतएव धर्मको क्यों नहीं सेवन करते हो अर्थात् धनकामनाकी जड धर्म है अतएव उसीका सेवन सर्वप्राणियोंको कर्त्तव्य है । इस मनुष्यको कामसे भयसे लोभसे और जीवनके लिये धर्मपरित्याग नहीं करना चाहिये क्योंकि धर्म नित्य है और सुखदुःख अनित्य है तथा जीव नित्य है और इसके हेतु (अर्थात् जिनसे यह देह बना है) सो अनित्य है ॥ ४ ॥ ५ ॥ इस भारतसावित्रीको जो मनुष्य नित्य प्रातःकाल उठकर पाठ करता है वो संपूर्ण भारतके पाठका फल प्राप्त हो देहान्तमें परब्रह्मको प्राप्त होता है ।

कस्यचित् ।

स्मृतेसकलकल्याणभाजनंयत्रजायते । पुरुषस्तमजंनित्यंव्रजामिशरणंहरिम् ॥ १ ॥ पुण्यश्लोकोनलोराजापुण्यश्लोकोयुधिष्ठिरः । पुण्यश्लोकाचवैदेही पुण्यश्लोकोजनार्दनः ॥ २ ॥ अश्वत्थामाबलिर्व्यासोहनूमांश्चविभीषणः।कृपःपरशुरामश्चसप्तैते चिरजीविनः ॥ ३ ॥ सप्तैतान्संस्मरेन्नित्यंमार्कण्डेयमथाष्टमम्।जीवेद्वर्षशतंसोपिसर्वव्याधिविवर्जितः॥ ४ ॥ अहल्याद्रौपदीसीता तारामन्दोदरीतथा । पञ्चकंनास्मरेन्नित्यंमहापातकनाशनम् ॥ ५ ॥

अर्थ–इस प्रकार इस मनुष्यको प्रातःकाल उठकर स्मरण कर्त्तव्य है परंतु यदि वेदोक्त मंत्रोंका पाठ करे तो अति उत्तम है।

जगकर प्रथम देखने योग्यवस्तू ।

दध्याज्यादर्शसिद्धार्थबिल्वगोरोचनस्रजम् । वाजिवारणगोविप्रहरिद्राशतपर्वणाम् ॥ दर्शनंस्पर्शनंकार्यंप्रबुद्धेनशुभावहम् ॥ स्वमाननंघृतेपश्येद्यदीच्छेच्चिरजीवितम् ।

अर्थ–प्राणीको प्रातःकाल उठकर प्रथम दही, घृत, दर्पण, सपेद सरसों, बेल, गोरोचन, फूलमाला, घोडा, हाथी, गौ, ब्राह्मण, हलदी, और बांस, वा दूब, इनका दर्शन और स्पर्श करना शुभ है । इस लिखनेका यह प्रयोजन

है कि दुष्ट अधर्मी स्त्रीपुरुषका और कुत्ता, बिल्ली आदिको न देखे यदि इनमें-से कोई वस्तु समीप न होवेतो अपने प्रियका दर्शन करे या अपने हाथोंका दर्शन करे। तथा जिसको बहुत जीनेकी इच्छा होवे उसको अपना मुख घृतमें देखना चाहिये। तदनंतर पृथ्वीसे (समुद्रवसने देवि०) इस प्रकार प्रार्थना कर शय्यासे उठना चाहिये।

ईक्षेततत उत्थायवह्निंगांश्रोत्रियंशुभम्।
हित्वाचान्धंच पापिष्ठं नग्नमुत्कृत्तनासिकम्॥

अर्थ-तदनंतर प्रातःकाल उठकर अग्नि देव गौ वेदपाठीब्राह्मण और मंगली पदार्थोंका दर्शनकरे तथा अंधा अधर्मी नंगा नकटा इत्यादि अमंगलीकोंको न देखे।

आयुष्यमुषसिप्रोक्तंमलादीनांविसर्जनम्।
तदंत्रकूजनाध्मानोदरगौरववारणम्॥

अर्थ-प्रातःकाल उठकर मलमूत्र आदिका त्याग करनेसे आयुष्य बढे और आंतडोंमें वायुका शब्द, पेटका फूलना, तथा पेटका भारीपना, इनका नाश होता है।

मलबाधारोकनेके अवगुण।

आटोपशूलौपरिकर्त्तिकाचसङ्गःपुरीषस्यततोर्ध्ववातः।
पुरीषमार्गादथवानिरेतिपुरीषवेगेऽभिहतेनरस्य।

अर्थ-पेटमें गुडगुडाहटशब्द, शूल, तथा गुदामें कतरनेकेसी पीडा, मलरोध बहुत डकारोंका आना, अथवा मुखमार्गहो मलका निकलना ये लक्षण मलकी बाधा रोकनेवाले मनुष्यको होतेहैं।

वातमूत्रपुरीषाणांसङ्गोऽध्मानंक्लमोरुजा।
जठरेवातजाश्चान्येरोगाःस्युर्वातनिग्रहात्॥

अर्थ-अधोवायु, मल मूत्रका न उतरना, अफरा, क्लम, पेटमें पीडा तथा पेटमें अनेकप्रकारके वातजन्यरोग ये अधोवायुका वेग रोकनेसे होतेहैं।

मूत्रवेगधारणके उपद्रव।

बस्तिमेहनयोःशूलंमूत्रकृच्छ्रंशिरोरुजा।
विनामोवंक्षणानाहःस्याल्लिङ्गंमूत्रनिग्रहे॥

अर्थ-मूत्रवेगके रोकनेसे बस्ति तथा मूत्रमार्ग इनमें शूल, मूत्रकृच्छ्र, मस्तकशूल, शरीरका नवजाना, बद होनेकी जगह खींचनेकीसी पीडा ये लक्षण होतेहैं ।

नवेगितोऽन्यकार्यःस्यान्नवेगानीरयेद्बलात् ।
कामशोकभयक्रोधान्मनोवेगान्विधारयेत् ॥

अर्थ-मलमूत्रके वेगमें दूसरा और कार्य न करे किंतु प्रथम मलमूत्रको त्यागकरे। और यदि मलमूत्रआदि वेगोंके त्यागनेकी इच्छा न हो तो उनको जबरदस्ती न निकाले। कदाचित् कोई शंका करे कि, काम क्रोधादिके वेगभी न रोकने चाहिये इस वास्ते कहतेहैं कि काम, शोक, भय, क्रोध, और मन इनके वेगोंको यत्नपूर्वक धारणही करे । क्योंकि इनके रोकनेसे अनेक गुण हैं ।

शौचादिके गुण ।

गुदादिमलमार्गाणांशौचंकान्तिबलप्रदम्।
पावित्र्यकरमायुष्यमलक्ष्मीकलिपापहृत् ॥

अर्थ-गुदादि मलमार्गोंकी जलमृत्तिकासे शुद्धि करना । कांति और बलकरे, तथा पवित्रकरे आयुष्य बढे और अलक्ष्मी कलि और पातक इनका नाश करताहै ।

शौचप्रयोगः ।

पूर्वोक्तब्राह्ममुहूर्तेउत्थायाचम्येष्टदेवतानमस्कृत्यप्रातःस्मरणं विधायरविंगुरूंन्नमस्कृत्यग्रामाद्बहिर्नैर्ऋत्यामिषुक्षेपात्ययेशुद्धमृत्तिकांससिकतांजलपात्रंचादायकीटादिरहितस्थलं गत्वामृज्जलपात्रेनिधायाऽयज्ञियैरनार्द्रैस्तृणैर्भूमिमाच्छाद्य प्रावृताशिराःपृष्ठतःकण्ठलम्बितयज्ञोपवीत एकवस्त्रश्चेद्दक्षिणकर्णेनिहितयज्ञोपवीतोमौनीघ्राणाऽऽस्येपिधायदिवोदङ्मुखोरात्रौदक्षिणामुखोमूत्रपुरीषेउत्सृज्यलोष्टादिनागुदंपरिमृज्यगृहीताशिश्नउत्थायपूर्वगृहीतमृज्जलपात्रेगृहीत्वार्द्रामलकमात्रमृज्जलैर्द्विवारंलिङ्गशौचंकृत्वार्धप्रसृतितदर्धार्धमृज्जलैस्त्रिवारमपानंसंशोध्यपुनर्जलैरेवलिङ्गगुदेप्रक्षाल्यशुद्धमृत्तिकयैक

वारंहस्तंप्रक्षाल्यशुद्धभूमिमागत्यान्यमृज्जलैर्दशवारंवामकरंप्रक्षाल्यततःकरद्वयंसप्तवारंतावद्भिरेवमृज्जलैः प्रक्षाल्यवामदक्षिणपादौप्रत्येकंत्रिःप्रक्षाल्यान्यजलेनद्वादशगण्डूषान्वामभागे कृत्वाजलपात्रंत्रिःपर्युक्ष्यजलबिन्दूञ्जलेनिक्षिप्योपवीतीद्विराचामेत् ।

अर्थ–पूर्वोक्त ब्राह्ममुहूर्त्तमें उठ आचमन और इष्टदेवको प्रणामकर प्रातः स्मरणकरके सूर्य और गुरु देवको नमस्कार कर [अपने मातापिता आदि वृद्धोंको नमस्कार कर] यदि ग्राममें रहताहो तो ग्रामसे जितनी दूरमें वीरके हाथका छोडा हुआ बाण गिरताहै इतनी दूर जावे और शुद्धमट्टीका पात्र मट्टीका डेला और जलका पात्र साथ लेजावे जहां चैंटी मकोडा आदि जीव न हों उसजगे मट्टी और जलपात्र धरकै अयज्ञिय अर्थात् जिनको यज्ञमें नहीं लेते ऐसे सूखे घास फूस पत्तेसे पृथ्वीको ढ़ककर मस्तकको बांध पीठकी तरफसे कंठलंबित यज्ञोपवीत करके यदि एक वस्त्रही समीप होवे तो दहने कानपर यज्ञोपवीत चढाय मौनहो नासिकाको और मुखको बंदकर दिनमें उत्तरकी तरफ और रात्रिमें दक्षिणकी तरफ मुख करके मलमूत्र परित्याग करने चाहिये । पश्चात् मिट्टीके ढेलेसे गुदाको शुद्धकर लिंगपकड उसजगेसे खडाहो मट्टीजलके पात्रको ले गिली आमलेके प्रमाण मट्टीजलसे २ बार लिंग धोवे, और अर्द्धप्रसृति (आधापस्सा) उससे आधे मट्टीजलसे तीनबार गुदाको शुद्धकर फिर केवल जलसेही गुदालिंगको धोयकर शुद्ध मट्टीसे १ वार हाथको धोय शुद्ध पृथ्वीमें दूसरे जलमट्टीसे १० वार बायाँहाथ धोवे, तदनंतर दोनों हाथोंको सात २ वार मट्टी जलसे शुद्ध करे । और वामदक्षिणपैरमें तीन तीन बार मिट्टी लगाकर धोवे । फिर अन्य शुद्ध जलसे बाँईतर्फ १२ कुल्लेकर जलपात्रको ३ वार प्रोक्षणकर अँगोछेको कंधेपर रखकर जलकी बिंदू जलमें डालकर २ वार आचमन करे ।

यदि केवल मूत्रमात्रकरेवो एकवार लिंगको धोय बाँएहाथको तीनवार धोवे फिर दोनों हाथोंको दोवार धोवे एक २ वार पैरोंमें मट्टी लगाकर धोवे चार कुल्लेकर आचमन करे ।

दिवायद्विहितंशौचंतदर्धंनिशिकीर्त्तितम् । तदर्धमातुरेप्रोक्तमातुरस्यार्धमध्वनि॥स्त्रीशूद्रादेरशक्तानांगंधलेपक्षयोभवेत् । तथाशौचंप्रकर्त्तव्यंचुलुकेननधारया ॥ परस्यशोणितस्पर्शे-

रेतोविण्मूत्रजेतथा । चतुर्णामपिवर्णानांद्वात्रिंशन्मृत्तिकाः स्मृताः ॥

अर्थ–जितना शौच दिनमें करना कहाहै उस्से आधा रात्रिमें करे और रात्रिसे आधा रोगीको करना और रोगीसे आधा मार्गमें चलनेवाले (पथिक वा वटोही) मनुष्योंको कर्त्तव्य है और स्त्रीशूद्रादि अशक्तोंको जितनेमें दुर्गंध चली जावे इतना शौच करे परंतु गुदा प्रक्षालन चुल्लू भरके करे जलकी धारसे न करे यदि किसी अन्यपुरुषका रुधिर अथवा वीर्य देहमें लग्गया हो तो उसजगे चारोंवर्णोंको ३२ वार मृत्तिका लगाकर जलसे धोना चाहिये ।

हस्तपादप्रक्षालन ।

प्रक्षालनंमृदापाण्योःपादयोःशुद्धिकारकम् ।
मलश्रमहरंवृष्यंचक्षुष्यंराजसापहम् ॥

अर्थ–हाथ पैरोंको मट्टीलगाकर धोनेसे शुद्धी होतीहै । और मल श्रम और रजोगुण इनको नाश करे । तथा वृष्य और नेत्रोंको हितकारक है ।

शरीरशुद्धिंनिर्वर्त्यकृतशौचाविधिर्न्नरः । केशपाशेप्रकुर्वीत प्रसाधन्यादिशोधनम् ॥ ततोहिदन्तनिर्ल्लेखंप्रकुर्याद्विधिना स्मृतम् ।

अर्थ–शरीरकी शुद्धिसे निवृत्तहो और शौचविधिके पश्चात् कंगीसे बालोंको सम्हारना चाहिये । (यह विधि कायस्थादि वर्णोंके वास्ते है क्योंकि ब्राह्मणको बालोंका राखना निषेध है) तदनंतर विधिपूर्वक दंतधावन करना ।

दाँतन करनेकी विधि ।

भक्षयेद्[1]दन्तपवनंद्वादशांगुलमायतम्।कनिष्ठिकाग्रवत्स्थूलमृज्वग्रन्थितथाव्रणम् ॥ एकैकंघर्षयेद्दन्तंमृदुनाकूर्चकेनच । दन्तशोधनचूर्णेनदन्तमांसान्यबाधयन् ॥ क्षौद्रत्रिकटुकाक्तेन तैलसिंधुभवेनवा । चूर्णेनतेजोवत्याश्चदन्तान्नित्यंविशोधयेत् ॥

अर्थ–दाँतन १२ अंगुल लंबी और कनिष्ठिका उंगलीके प्रमाण मोटी, नरम जिसमें गांठ न हों और छिद्र न हों उसको चबायकर आगेसे कूंचीके

१ दंतकाष्ठस्यसुगंधीकरणं–सप्ताहंगोमूत्रे हरीतकीचूर्णसंयुते क्षिप्त्वा गंधोदकेचभूयोविनिक्षिपद्दन्तकाष्ठानिगंधोदकलक्षण एकात्वक्पत्राञ्जनमधुमरिचैर्नागकुष्ठश्च गंधाम्भः कर्त्तव्यंकिंचित्कालं स्थितान्यस्मिन् जातीफलपत्रैलाकर्पूरैः कृतयमैकशिखिभागैः अवचूर्णितानिभानोर्मरीचिभिः शोषणीयानि ।

सहृशकर उस्से धीरे धीरे एक एक दाँतोंको घिसे तथा दाँतके मांसको बचाकर दंतशोधन चूर्णसे दाँतोंको शुद्ध करे दंतशोधन चूर्ण सहत सोंठ मिरच पीपल तेल सैंधानिमक इनकरके तथा तेजवल्कलके चूर्णसे नित्य दाँतोंको रगडे।

मधुकोमधुरेश्रेष्ठःकरञ्जःकटुकेतथा। निम्बःस्यात्तिक्तकेश्रेष्ठः कषायेखादिरस्तथा। समयं च तथालोक्यदोषं च प्रकृतिं तथा। यथोचितैरसैर्वीर्यैर्युक्तंद्रव्यंप्रयोजयेत्॥

अर्थ-मधुर वृक्षोंमें महुआ, तीखी द्रव्योंमें कंजा, कडुए रसोंमें नीम, और कषेली द्रव्योंमें खैर, श्रेष्ठ जानना, इनमें समय, दोष, प्रकृति, इनको देख यथोचित रसवीर्ययुक्त द्रव्यकी दाँतन करनी चाहिये।

दाँतन करनेके गुण।

तेनास्यमुखवैरस्यगंधाजिह्वास्यजागदाः।
रुचिवैशद्यलघुतानभवन्तिभवन्ति च।

अर्थ-इसप्रकार दाँतनके करनेसे इस प्राणीके मुखकी विसरता, मुखकी दुर्गंध, तथा मुखके रोग नहीं होते और रुचि, विशदता (स्वच्छता) और हलकापन ए गुण होते हैं।

दाँतन करनेके काष्ठके पृथक् पृथक् गुण।

अर्केवीर्यंवटेदीप्तिःकरंजेविजयोभवेत्। प्लक्षेचैवार्थसंपत्तिर्बेदर्यांमधुरोध्वनिः॥खादिरेमुखसौगन्ध्यंबिल्वेतुविपुलंधनम्। उदुम्बरेतुवाक्सिद्धिराम्रेत्वारोग्यमेवच॥ कदम्बेतुधृतिर्मेधाचम्पकेतुदृढामतिः। शिरीषेकीर्त्तिसौभाग्यमायुरारोग्यमेवच॥ अपामार्गेधृतिर्मेधाप्रज्ञाशक्तिस्तथाध्वनिः। दाडिम्यांसुंदराकारःककुभेकुटजेतथा॥ जातीतगरमन्दारेर्दुःस्वप्नंचाविनश्यति।

अर्थ-आककी दांतन करनेसे वीर्य प्राप्तहो, वडकी दीप्तिकर, कंजेकी जय देनेवाली, पाखर (पीपरी) की अर्थ और संपत्ति देवे, बेरकी मधुरध्वनि करे, खैरकी मुखसुगंधीकरे, बेलकी विपुलधन देवे, गूलरकी वाक्सिद्धी करे आमकी निरोग करे कदंबकी धैर्य और बुद्धि करे चम्पाकी दृढमति

करे, सिरसकी दाँतन कीर्त्ती सौभाग्य, आरोग्य, और आयुष्यको देयहै ओंगाकी दाँतन धैर्य बुद्धि, पाठशक्ति तथा उत्तम ध्वनि करे । अनार, धौं, और कूडाकी दाँतन शरीरको सुंदर करे तथा जाही, तगर, और मंदारकी दाँतन करनेसे दुःस्वप्न नाश होताहै ।

निषिद्ध दाँतन ।

गुवाकस्तालहिंतालौकेतकश्चबृहत्तृणः । खर्जूरंनारिकेरं च सप्तैतेतृणराजकाः ॥ तृणराजसमुत्पन्नंयःकुर्याद्दन्तधावनम् । नरश्चाण्डालयोनिःस्याद्यावद्गङ्गांनपश्यति ॥

अर्थ--सुपारी, ताल, हिंताल, केतक, बृहत्तृण (बांस) खजूर, और नारियल ये सात वृक्ष तृणराज कहतेहैं । जो मनुष्य तृणराजकी दांतन करताहै वह चांडालयोनिको प्राप्त होताहै जबतक गंगा न देखे अर्थात् स्नान न करे ।

दाँतनकरना निषेध ।

नखादेद्गलताल्वोष्ठजिह्वादन्तगदेषुतत् । मुखस्यपाकेशोथे चश्वासकासवमीषुच ॥ दुर्बलोऽजीर्णभुक्तश्चाहिक्कामूर्च्छामदान्वितः । शिरोरुजार्त्तस्तृषितःश्रान्तोयानःक्लमान्वितः ॥ अर्दितःकर्णशूलीच नेत्ररोगीनवज्वरी । वर्जयेद्दन्तकाष्ठन्तुहृदामययुतोपि च ॥

अर्थ--गल, तालु, होठ, जीभ, दांतरोगी, मुखपाक, सूजन, खांसी, श्वास, वमन, तथा दुर्बल, अजीर्णरोगी, भोजनकरा हुआ, हिचकी, मूर्च्छा, मद, मस्तकशूल, तृषित, श्रमकर चुकाहो, रास्तामें चलता हुआ, ग्लानयुक्त, अर्दितवायुवाला, कर्णशूली; नेत्ररोगी, नवीन ज्वरवाला, और हृदयरोगी इनको दाँतन करना निषेधहै ।

दाँतन ग्रहणमें जपनीय श्लोक ।

आयुर्बलंयशोवर्च्चःप्रजाःपशुवसूनिच । ब्रह्मप्रज्ञांचमेधांचत्वन्नोदेहि वनस्पते ॥ इत्यादिस्तुतिवाक्येनयेगृह्णन्तिवनस्पतिम्॥ तत्प्रयच्छंतिसंस्कर्तुरायुर्धीश्रीयशःस्थितीः ।

---

१ सुगंधित दांतन करनेकेगुण । वर्णप्रसादं वदनस्य कांतिंवैशद्यमास्यस्य सुगंधितां च । संसेवितुः श्रोत्रसुखं च वान्तं कुर्वन्ति काष्ठान्यसकृद्द्रवानाम् ।

अर्थ-हेवनस्पते! मेरे अर्थ आयु, बल, यश, तेज, संतति, पशु, ब्रह्मप्रज्ञा, और मेधाको तू दे । इत्यादि स्तुतिवाक्योंसे जो वनस्पतिको ग्रहण करतेहैं उसको आयु, धी, श्री और यशकी प्राप्ति हो

जातिपरत्व दाँतन ।

द्वादशाङ्गुलंविप्राणां क्षत्रियाणांदशांगुलम् । अष्टांगुलंतुवैश्यानां शूद्राणांतुषडंगुलम् ॥ दन्तकाष्ठन्तुगृह्णीयात्स्त्रीणांतच्चतुरंगुलम् ।

अर्थ--ब्राह्मणको बारह अंगुलकी, क्षत्रीको दशअंगुल, वैश्यको आठ, शूद्रको छःअंगुल, औरस्त्रीको चारअंगुली दाँतनकरनी चाहिये यह टोडरानन्द लिखताहै ।

जिभीकरनेको धातुपट्टी ।

जिह्वानिर्लेखनंहैमंराजतन्ताम्रजंतथा ।
पाटितंमृदुतत्काष्ठंमृदुपत्रमयन्तथा ॥

अर्थ-जीभि अर्थात् जीभसे मैल उतारनेकीपट्टी सोना, चांदि, तांमेकी बनावे, अथवा चिरी हुई नम्र दाँतनसे अथवा नम्र पत्रसे जीभका मैल उतरना चाहिये ।

दशांगुलंमृदुस्निग्धंतेनजिह्वांलिखेत्सुखम् ।
तज्जिह्वामलवैरस्यदुर्गन्धजडताहरम् ॥

अर्थ-दशअंगुललंबी नरम और स्वच्छ जिभीसे जीभका मैल उतारना चाहिये । जिभी करनेसे जीभका मैल, मुखकीविरसता, दुर्गंध, और जडता दूर हो ।

जिह्वानिर्लेखनंकुर्यात्प्राङ्मुखोवाउदङ्मुखः । अभावेदन्तकाष्ठस्यानिषिद्धादिवसेषुच । अपांद्वादशगण्डूषैर्मुखशुद्धिर्विधीयते ।

अर्थ-जिह्वानिर्लेखन अर्थात् जिभी पूर्वमुख अथवा उत्तर मुख होकर करना यदि दांतन न मिले तथा कोई पर्वदिन होवे तो उसदिन दांतनके प्रतिनिधि बारह कुल्ले करनेसे मुखकी शुद्धि होतीहै ।

गण्डूषविधि ।

गण्डूषमथकुर्वीतशीतेनपयसामुहुः ।
कफतृष्णामलहरंमुखान्तःशुद्धिकारकम् ॥

अर्थ–दाँत घिसनेके और जिभीकरनेके उपरांत शीतल जलके वारंवार कुल्ले करे, कुल्ले करनेसे कफ, तृष्णा, मल, ये नष्ट होवे, मुखकी भीतरसे शुद्धि होवे ।

कुर्याद्द्वादशगण्डूषान्पुरीषोत्सर्जनेततः ।
मूत्रोत्सर्गेतुचतुरोभोजनान्तेतुषोडश ॥

अर्थ–मलपरित्यागके पश्चात् इस मनुष्यको १२ कुल्ले करने और केवल मूत्रके त्यागमें ४ कुल्ला एवं भोजन करके १६ कुल्लाकरने चाहिये ।

गरमजलके कुल्ले ।

सुखोष्णोदकगण्डूषः कफारुचिमलापहः ।
दन्तजाड्यहरश्चापिमुखलाघवकारकः ॥

अर्थ–सुखोष्णोदक अर्थात् कुछ गरम जलके कुल्ले करनेसे कफ [वात] अरुचि, मुखका मैल, दांतोंका जिकडना तथा मुखको हलका करनेवालाहै [चिकना करेहै और मुखके समस्त दोष दूर करे] बहुत गरम जलके कुल्ले करना निषेधहै ।

कुल्लाकरना निषेध ।

विषमूर्च्छामदार्त्तानांशोषिणांरक्तपित्तिनाम् ।
कुपिताक्षिमलक्षीणरूक्षाणांसनशस्यते ॥

अर्थ–विष, मूर्च्छा, मद्यसे पीडित, शोषी, रक्तपित्ती, नेत्ररोगी, मलक्षीण तथा रूक्ष रोगी इनको कुल्ला नहीं करना चाहिये । परंतु भावमिश्रके मतसे यह निषेध गरमजलकाहै ।

मुखप्रक्षालन ।

मुखप्रक्षालनंशीतपयसारक्तपित्तजित् । मुखस्यपीडिकाशोषनीलिकाव्यङ्गनाशनम् ॥ कुर्याद्वापिकदुष्णेनपयसास्य विशोधनम् । कफवातहरंस्निग्धंमुखशोथविनाशनम् ॥

अर्थ–शीतल जलसे मुखका धोना रक्तपित्त, मुहांसे, मुखशोष, नीलिका रोग, और झांई इनको नाशकरे तथा गरम जलसे मुखप्रक्षालन करना कफवातको हरण करे, मुखकी सूजन नाश करे और स्निग्धहै ।

नस्यविधि तथा गुण ।

कटुतैलादिनस्यार्थेनित्याभ्यासेनयोजयेत् । प्रातःश्लेष्मणि

मध्याह्नेपित्तेसायंसमीरणे ॥ सुगन्धिवदनाःस्निग्धनिःस्वना विमलेन्द्रियाः । निर्वलीपलितव्यङ्गाभवेयुर्नस्यशीलिनः ॥

अर्थ-नस्यके अर्थ कडुआ तेल आदिकी नस्यका सदैव अभ्यास रक्खे वह कफके रोगमें प्रातःकाल, और पित्तकी व्याधिमें मध्याह्न समय, वातके रोगमें सायंकालको नस्य देनी चाहिये, इसप्रकार नस्यलेनेसे मुखमें सुगंधी आवे। सुंदर सुस्वर भाषण, और इन्द्रियोंकी स्वच्छताहो, तथा उसमनुष्यको वली (गुजलट) और पलित (सपेदबाल) और व्यंगरोग कदाचित् नहीं होते।

अञ्जन।

सौवीरमंजनंनित्यंहितमक्ष्णोस्ततोभजेत् ।
लोचनेभवतस्तेन मनोज्ञसूक्ष्मदर्शने ॥

अर्थ-सौवीराञ्जन अर्थात् सपेदसुरमा नेत्रोंको सदैव हितहै, अतएव नित्य लगाना चाहिये। सपेद सुरमाके लगानेसे नेत्र सुंदर और सूक्ष्म वस्तुदर्शक होतेहैं।

स्रोतोञ्जन।

स्रोतोञ्जनंमतंश्रेष्ठंविशुद्धंसिन्धुसम्भवम् । दृष्टेःकण्डूमलहरं दाहक्लेदरुजापहम् ॥ अक्ष्णोरूपावहंचैवसहतेमारुतातपौ । नेत्ररोगानजायन्तेतस्मादञ्जनमाचरेत् ॥

अर्थ-सिंधुदेशमें उत्पन्न हुआ जो शुद्ध काला सुरमा वह नेत्रकी खुजली मल, दाह, और क्लेद आदि पीडाको दूर करे,नेत्रोंको शोभित करे, तथा इसके लगानेसे नेत्र पवन और धूपको सहनशील होतेहैं. तथा इस्के लगानेसे कोई नेत्ररोग नहीं होते अतएव अंजन अवश्य लगाना चाहिये। यह विना शोधेभी लगावे तोभी कुछ अवगुण नहीं करे । कोई कोई औषधोंका बना कज्जल लगातेहैं।

सुरमालगानानिषेध।

रात्रौजागरितःश्रान्तश्छर्दितोभुक्तवाँस्तथा ।
ज्वरातुरःशिरःस्नातोनाक्ष्णोरञ्जनमाचरेत् ॥

अर्थ-रात्रिमें जगाहुआ, थका, वमन होनेके उपरांत, भोजनानंतर, ज्वरी; मस्तकसे स्नान कराहो, ऐसे मनुष्योंको सुरमा नहीं लगाना चाहिये।

औषधंचात्रसेवेतसद्वैद्यप्रतिपादितम् ।
जातरोगनिवृत्त्यर्थमाग्नेयंबलवर्द्धनम् ॥

अर्थ—तदनंतर उत्तम वैद्यकी बनाई अथवा बताई हुई रसायन आदि औषध उत्पन्न रोगकी निवृत्तीके अर्थ और जठराग्निके बल बढानेको सेवन करनी चाहिये। यदि रोग न होवे तोभी सेवन करे कि कदाचित् दोष दुष्ट होकर कोई रोग प्रगट न होवे।

ताम्बूलभक्षण।

ताम्बूलंभक्षयेत्पश्चाद्विजशेषंतुशोभनम्।
तीक्ष्णोष्णंकफवातघ्नंमुखवैशद्यकारकम्॥

अर्थ--इसप्रकार हाथ मुख धोयके पश्चात् तांबूल भक्षण करे अर्थात् बीडी-खाय, यह दांतोंको सुन्दर करे तीक्ष्ण है। उष्ण है। कफवातको हरण करे तथा मुखको स्वच्छकरे हैं। विशेषविधि भोजनके प्रकरणमें कहेंगे।

ततोऽधिकारिणः सर्वेस्वाधिकारेषु योजयेत्।

अर्थ—तदनंतर जिसका जो अधिकार है उसको उसी उसी कार्यपर नियुक्त करे अर्थात् जिसको झाडूका अधिकार है उसको झाडूपर, जिसको जलपर हो उसको जलपर, जिसको रसोईका हो उसको रसोईपर जिसको हिसाब किताबका हो उसको हिसाब किताबपर सावधान करने चाहिये।

क्षौरकृत्य।[1]

पंचरात्रान्नखश्मश्रुकेशरोमाणिकर्त्तयेत्। केशश्मश्रुनखादीनांकर्त्तनंसम्प्रसाधनम्॥ पौष्टिकंधनमायुष्यंशौचकान्तिकरंपरम्।

अर्थ—पांच पांच दिनके अनंतर नख, मूछ, डाढी, और मस्तकके बाल कटाने चाहिये, अर्थात् हजामत बनवानी चाहिये, केश, डाढी मूंछ, और नखोंका कटाना शोभाकारक है, पुष्टिकर, धन, आयुष्य, शौच और कांतिकारक है।

नासिकाके बाल उखाडनेका निषेध।

उत्पाटयेन्नलोमानिनासायांनकदाचन।
तदुत्पाटनतोदृष्टेर्दौर्बल्यंत्वरयाभवेत्॥

अर्थ—नासिकाके बाल कदाचित् न उखाडे क्योंकि नासिकाके बाल उखाडनेसे दृष्टि शीघ्र मारी जाती है।

१ क्षौरकरानेकामुहूर्त्त। दन्तक्षौरनखक्रियात्रविहिताचौलोदितेवारभेपातङ्ग्यारवीन्विहायनवमं घस्रं चसंध्यांतथा। रिक्तांपर्वनिशांनिराशनवनग्रामप्रयाणोद्यतस्नाताभ्यक्तकृताशनैर्नहिपुनःका र्याहितप्रेप्सुभिः॥ राजकार्यनियुक्तानानटानांरूपजीविनाम्। श्मश्रुरोमनखच्छेदेनास्तिकालविशोधनम्।

केशपाशेप्रकुर्वीतप्रसाधन्याप्रसाधनम्।
केशप्रसाधनं केश्यं रजोजन्तुमलापहम् ॥

अर्थ–कंगेसे वा (कंघी) से बालोंको सुधारने चाहिये, केशोंका प्रसाधन बालोंका उत्तम करे तथा रज (धूल) जंतू (जूंआ-लीक) और मलको दूर करे है ।

दर्पन देखना ।

आदर्शालोकनंप्रोक्तंमाङ्गल्यंकान्तिकारकम् ।
पौष्टिकं बल्यमायुष्यंपापालक्ष्मीविनाशनम् ॥

अर्थ--प्रातःकाल दर्पण (आईना) देखना मंगल और कांतिकारक है; पुष्टी, बल और आयुकर है । तथा पाप और अशोभाका नाशक है ।

व्यायाम (दंडकसरत) के गुण ।

लाघवंकर्मसामर्थ्यंविभक्तघनगात्रता । दोषक्षयोऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते ॥व्यायामदृढगात्रस्यव्याधिर्नास्तिकदाचन । विरुद्धं वाविदग्धं वा भुक्तंशीघ्रं विपच्यते ॥ भवंति शीघ्रं नैतस्यदेहेशिथिलतादयः । नचैनंसहसाक्रम्यजरासमधिरोहति । न चास्तिसदृशंतेनकिञ्चित्स्थौल्यापकर्षकम्। ससदागुणमाधत्तेबलिनांस्निग्धभोजिनाम् ॥ वसन्ते शीतसमये सुतरांसहितोमतः । अन्यदापिचकर्त्तव्योबलार्द्धेनयथाबलम् ॥

अर्थ–प्रातःकाल दंडकसरत और कुश्ती लडनेसे देहमें लघुता, कर्म करनेकी सामर्थ्य, देहका सौष्ठव और दृढता तथा शैथिल्य निवारण होता है । दोष (वातपित्तकफ) क्षय, और जठराग्निकी प्रबलता होती है व्यायाम करके दृढगात्र जिसके ऐसे पुरुषके रोग कदाचित् नहीं होते और विरुद्धआहार तथा विदग्धाजीर्णमें भोजन कराहुआ भी शीघ्र पाचन होवे, नियमितरूप व्यायाम करनेसे शीघ्र देहमें शैथिल्य तथा सहसा जरा (बुढापा) अवस्था नहीं प्राप्त होवे व्यायामके समान स्थौल्य (मोटापन) नाशक दूसरा अन्य उपाय नहीं है । अर्थात् यही स्थूलताको दूर करता है बलवान् तथा स्निग्ध भोजन करनेवाले इनको सदैव गुणकारी है । व्यायाम वसंतऋतुमें तथा शीतकालके दिनोंमें विशेष उपकारी होता है ।अन्य (ग्रीष्मादि) ऋतुमेंभी व्यायाम करे

परंतु जिसमें जितना बल होवे उसका बलार्ध अर्थात् अर्द्धशक्ति करनी चाहिये । गरमीकी ऋतुमें संपूर्ण बलयुक्तव्यायाम करनेसे बलक्षयादि अनेक प्रकारके रोग प्रगट होतेहैं ।

बलार्द्धके लक्षण।

हृदयस्थोयदावायुर्मुखंशीघ्रंप्रपद्यते । मुखं च शोषंलभतेत-
द्बलार्द्धस्यलक्षणम्॥किंवाललाटेनासायांगात्रसंधिषुकक्षयोः ।
यदासंजायतेस्वेदोबलार्द्धंतुतदादिशेत् ॥

अर्थ-हृदयकी वायु जिस समय मुखमें प्राप्त हो अर्थात् जल्दी जल्दी श्वास चलने लगे और मुख सूखने लगे तो बलार्द्धके लक्षण जानने । अथवा ललाट, नासिका, देह, और संधि, अथवा, गात्रसंधि, और काख इनमें पसीने आयजावे उसको बलार्द्ध कहते हैं ।

व्यायामवर्जित मनुष्य ।

भुक्तवान्कृतसम्भोगःकासीश्वासीकृशः क्षयी ।
रक्तपित्तीक्षतीशोषीनतंकुर्यात्कदाचन ॥

अर्थ-भोजन करेहुएको, स्त्रीसंगके पश्चात्, खांसी, श्वासी, कृश, क्षयी, रक्तपित्ती, क्षत, (व्रण) और शोष (धातुशोषी) इतने रोगियोंको व्यायाम करना निषेध है ।

अतिव्यायामकरनेसे उपद्रव ।

अतिव्यायामतःकासोज्वरश्छर्दिःश्रमःक्लमः ।
तृष्णाक्षयःप्रतमकोरक्तपित्तश्चजायते ॥

अर्थ-अत्यंत दंडकसरत कुश्ती लडनेसे खांसी, ज्वर, वमन, परिश्रम, क्लम, प्यास, क्षय, प्रतमक, श्वास, और रक्तपित्त इत्यादि संपूर्ण रोग उपस्थित होते हैं ।

अभ्यंगविधि ।

अभ्यङ्गंकारयेन्नित्यं सर्वेष्वङ्गेषुपुष्टिदम् ।
शिरःश्रवणपादेषुतंविशेषेणशीलयेत् ॥

अर्थ-नित्य संपूर्ण देहमें तेलका मालिश करे, उसमेंभी मस्तक, कान और पैरोंमें अच्छी रीतिसे मर्दन करे । तेल मालिश करनेसे संपूर्ण अंग पुष्ट होते हैं ।

पिष्टाद्दशगुणंमांसंमांसाद्दशगुणंपयः ।
पयसोष्टगुणंतैलंखादयेन्नतु मर्दयेत् ॥

अर्थ–पिष्टपदार्थसे दशगुनाबल मांसमें है मांससे दशगुण दूधमें, दूधसे आठ गुणाबल तेलमें है इसीसे तैलको खाय नहीं किंतु मालिश करे ।

तैलाभ्यंगमें श्रीमतिका प्रमाण ।

रविस्तापंकान्तिवितरतिशशीभूमितनयोमृतिंलक्ष्मींसौम्यः सुरपतिगुरुर्वित्तहरणम् । विपत्तिंदैत्यानांगुरुरखिलभोगानुगमनं नृणांतैलाभ्यङ्गात्सपदिकुरुतेसूर्यतनयः ॥

अर्थ–रविवारको तेल लगानेसे ज्वर, चंद्रको कांति, मंगलको मृत्यु, बुधवारको लक्ष्मीप्राप्ति, बृहस्पतिवारको धननाश, शुक्रको विपत्ति, और शनिवारको तेल लगानेसे मनुष्योंकी अखिल भोगोंको प्राप्ति होती है ।

वर्जित वारका परिहार ।

सार्षपं गन्धतैलञ्चयत्तैलंपुष्पवासितम् ।
अन्यद्रव्ययुतंतैलंनदुष्यातिकदाचन ॥

अर्थ–सरसोंका तेल, पुष्पवासित (फुलेल आदि) और गंधतेल (अगर, हिना, अंबर मुष्क, संदल आदिके अतर) अथवा पुष्पवासित (गुलाब, केवडा, आदिका अतर) तथा अन्यद्रव्य मिलाहुआ तेल, अर्थात् (नारायण तेल, प्रसारणि तेल, और चंदनादि तेल) ए तेल दूषित नहींहै इनको वर्जित वारमेंभी लगावे तो दोष नहींहै परंतु देहमें तेल या फुलेलही लगाना हितकारी कहाहै ।

तैलमालिसके गुण ।

अभ्यङ्गोवातकफहृच्छ्रमंशांतिबलंसुखम् ।
निद्रावर्णमृदुत्वायुःकुरुतेदृढपुष्टिकृत् ॥

अर्थ--अभ्यंग करना वात कफको हरण करे परिश्रम दूर होवे शांति, बल, सुख, निद्रा लाताहै। और वर्णको उज्ज्वल करे । देहको नम्र करे। और आयु दृढ, तथा पुष्टिहोतीहै ।

मस्तकमें तेल डालनेके गुण ।

अभ्यङ्गःशीलितोमूर्ध्निसकलेन्द्रियतर्पणः । दृष्टिपुष्टिकरोदृ-

१ मंजिष्ठयाव्याघ्रनखेनशुक्त्यात्वचासकुष्ठेनरसेनचूर्णः । तैलेन युक्तोर्कमयूखतप्तःकरोतिसंक्षेपकगन्धतैलम् ॥ इति सुगंधितैलम् ।

न्तिशिरोभूमिगतान्गदान् ॥ केशानांबहुतांदाढर्यंमृदुतांदीर्घतांतथा । कृष्णतांकुरुतेकुर्य्याच्छिरसः पूर्णतामपि ॥

अर्थ–मस्तकमें तेल डालकर मालिश करनेसे समस्त इन्द्रियोंकी तृप्ति होवे, दृष्टिको अर्थात् देखनेकी शक्तिको पुष्टकरे,शिरोभूमिगत रोगोंका ध्वंस, बालोंकी बाहुल्यता, दृढता, नम्रता, लंबे, तथा कालेहो । और मस्तकमें पूर्णता इत्यादि गुण होते हैं ।

कानोंमें तेल डालनेके गुण ।

नकर्णरोगोनमलोनचमन्याहनुग्रहः । नोच्चैःश्रुतिर्नबाधिर्य्यं स्यान्नित्यंकर्णपूरणात् ॥ रसाद्यैःपूरणंकर्णेभोजनात्प्राक्प्रशस्यते । तैलाद्यैःपूरणंकर्णेभास्करेऽस्तमुपागते ॥

अर्थ–कानोंमें नित्यप्रति तेल डालनेसे कभी कानके रोग नहींहों, तथा कानमें मैल, मन्यानाडीका जिकडना ठोडीका जिकडना,ऊंचा सुनना, तथा बेहरापना, ए रोग कदाचित् नहीं होतेहै । यदि कानमें रसादि डालने हो तो प्रातःकाल भोजनके पूर्व डाले, और तेल रात्रिमें डालना कहाहै ।

पादाभ्यंग ।

पादाभ्यङ्गस्तुतत्स्थैर्यनिद्रादृष्टिप्रसादकृत् । पादसुप्तिश्रमस्तम्भसंकोचस्फुटनप्रणुत्॥ व्यायामक्षुण्णवपुषंपद्भ्यांसंमर्दितंतथा॥व्याधयोनोपसर्पंतिवैनतेयमिवोरगाः॥ रोमकूपशिराजालधमनीभिःकलेवरम् । तर्पितंबलमाधत्तेस्नेहयुक्तोऽवगाहने ॥ अद्भिःसंसिक्तमूलानांतरूणांपल्लवादयः। वर्धंते च तथानृणांस्नेहसंसिक्तधातवः ॥

अर्थ–पैरोंमें तेलकी मालिश करनेसे पैर स्थिर होतेहैं, निद्रा और दृष्टिकी प्रसन्नता करेहैं, तथा पैरोंका सोना, श्रम, स्तंभ, संकोच और फटना दूरहो । व्यायाम, (दंडकसरत) करके श्रमित और पैरोंमें तेलका मालिश करनेवाले मनुष्यके पास रोग इसप्रकार नहीं आते जैसै--गरुडके पास सर्प नहीं आते । अनुवासनप्रयुक्त तेल रोमकूप शिराजाल और धमनीकरके संपूर्ण देहके भीतर प्रवेशहोकर देहकी तृप्ति और बलवृद्धिकरे है । अतएव स्नानके समय देहमें तेल लगाना उचित है। जैसे जडमें जल सींचनेसे वृक्षके डाली, पत्ते आदि बढते हैं उसीप्रकार अनुवासनबस्तिद्वारा मनुष्यके धातु (अंग) बढते हैं ।

अभ्यङ्गायोग्यमनुष्य।

तरुणज्वरीह्यजीर्णीचनाभ्यक्तव्यःकदाचन। तथाविरक्तोवा-
न्तोवानिरूढोयश्चमानवः॥ पूर्वयोःकृच्छ्रताव्याधेरसाध्य-
त्वमथादिवा। शेषाणां तदिहप्रोक्तावह्निसादादयोगदाः।

अर्थ–तरुणज्वरमें अजीर्णमें तथा वमनविरेचन और निरूहणक्रिया करनेके पश्चात् स्नेहाभ्यंग अर्थात् तेलकी मालिश करना निषेध है नवज्वरमें तथा अजीर्णमें अभ्यंग करनेसे कृच्छ्रसाध्य वा असाध्य पीडा प्रगट होती है उसीप्रकार शेषोक्त अर्थात् वमनविरेचन और निरूहण क्रियावालोंको तेल लगानेसे अग्निमांद्य आदि रोग होते हैं।

उवटना करनेके गुण।

उद्वर्त्तनङ्कफहरंमेदोघ्नंशुक्रदम्परम्।
बल्यंशोणितकृत्कान्तित्वक्प्रसादमृदुत्वकृत्॥

अर्थ–तेल लगानेके पश्चात् उद्वर्त्तन (उवटना) करना कफ और मेदको हरण करे हैं और शुक्रकी वृद्धि बलोत्पत्ति रक्तवृद्धि तथा त्वचाको उज्ज्वल और नम्र करे है [आटा हलदीका चूर्ण चिरोंजी आदिको एक कर जलमिलाय प्रथम लेपकर पीछे छुडाय डालते हैं उसको उवटना कहते हैं] इसीप्रकार औरभी जानो।

मुखलेप।

मुखलेपाद्दृढंचक्षुःपीनोगण्डस्तथाननम्।
कान्तमव्यङ्गपिडिकंभवेत्कमलसन्निभम्॥

अर्थ–मुखलेप (तेल लगाय फिर उवटना करने) से नेत्र दृढ हो गाल पुष्ट हो तथा मुख कान्तियुक्त झांई और मुहांसे रहित कमलके समान सुंदर होवे।

स्नान।

दीपनंवृष्यमायुष्यंस्नानमोजोबलप्रदम्।
कण्डूमलश्रमस्वेदतन्द्रातृड्दाहपापनुत्॥

अर्थ–स्वस्थ और बलवान् पुरुषको नित्य प्रति स्नान करना चाहिये, स्नान करनेसे अग्नि दीप्त हो, तेजकी वृद्धि, आयुप्रतिपालन, बलोत्पत्ति, और वृष्य है। तथा खुजली, मैल, परिश्रम, पसीने, तन्द्रा, प्यास, दाह, और पाप [दुष्टता] इनको दूर करे हैं।

---

१ चूर्णं कुष्ठपुरानागकेशराणां घृतान्वितम्। मधुपीतं करोत्यंगं सौरभं सततं नृणाम्॥

स्नानसे जठराग्नि कैसे दीप्त होती इसलिये कहतेहैं

बाह्यैश्चसेकैःशीताद्यैरुष्णान्तर्यातिपीडितः ।
नरस्यस्नातमात्रस्यदीप्यतेतेनपावकः ॥

अर्थ-शीतल जलादि करके देहके बहिर्भागासिक्त होनेसे देहकी गरमी प्रतिहत (अर्थात् बाहर निकलनेसे रुककर) देहके भीतर प्रवेश कर जठराग्निको प्रबल करे इसीसे स्नानानंतर क्षुधा लगती है ।

शीतल और उष्ण जलस्नान ।

शीतेनपयसास्नानंरक्तपित्तप्रशान्तिकृत् ।
तदेवोष्णेनतोयेनबल्यंवातकफापहम् ॥

अर्थ- शीतल जलसे स्नान रक्तपित्तको शांति करे है । वही स्नान गरम जलसे करे तो बल करे और वातकफको दूर करे है । परंतु अति शीतल देश (काश्मीर काबूल आदिमें) शीतल जलसे स्नान सर्वथा त्याज्य है और गरम जलसेभी कभी कभी करना चाहिये । परंतु अति शीतल और अत्यंत गरम जलसे स्नान करना सर्वत्र वर्जित है ।

उष्ण जलके गुणागुण ।

शिरःस्नानमचक्षुष्यमत्युष्णेनाम्बुनासदा ।
वातश्लेष्मप्रकोपेतुहितंतच्चप्रकीर्तितम् ॥

अर्थ-अति गरम जलसे मस्तकस्नानकरना नेत्रोंको और बालोंको सदैव अहित है "अत्युष्णेनोत्तमाङ्गस्य बलहृत्केशचक्षुषाम्" परंतु वातकफके कोपमें गरम जल मस्तकपर डालना हित कहा है ।

चार वस्तु मनुष्यको सदैव पथ्य है ।

अशीतेनाम्भसास्नानंपयःपानंनवाःस्त्रियः ।
एतद्वोमानवाःपथ्यंस्निग्धमल्पं च भोजनम् ॥

अर्थ-हे मानवहो ! गरम जलसे स्नान, दुग्धपान तरुण स्त्रीसे रमण, तथा स्निग्ध और अल्प भोजन ये चार वस्तु सदैव हित है ।

हरिश्चन्द्रः ।

यःसदामलकैःस्नानं करोति सविनिश्चितम् ।
वलीपलितनिर्मुक्तोजीवेद्वर्षशतंनरः ॥

---

१ सूक्ष्मैलाकस्तूरीकुष्ठत्वक्पत्रचंदनैःसुतनु । मलयानिलजलवासं रचय महीपालतिलकानाम् ॥

अर्थ–जो नित्य आमलेके कल्कको देहमें लगाकर स्नान करताहै वह वलीपलितसे निर्मुक्तहो सौवर्ष जीवे ।

स्नाननिषेध ।

स्नानंज्वरेतिसारेचनेत्रकर्णानिलार्त्तिषु ।
आध्मानपीनसाजीर्णभुक्तवत्सुचगर्हितम् ॥

अर्थ–ज्वर, अतिसार, नेत्ररोग, कर्णरोग, बादीका रोग, अफरा, अजीर्ण, और भोजनके उपरांत स्नान करना वर्जित है ।

अङ्गमार्ज्जन ।

स्नानस्यानन्तरंसम्यग्वस्त्रेणतनुमार्ज्जनम् ।
कान्तिप्रदंशरीरस्यकंडूत्वग्दोषनाशनम् ॥

अर्थ–स्नान करके अंगोछेसे अच्छी तरह देह पूछना शरीरमें कांति करे और खुजली तथा त्वचाके दोष नाश करे ।

सितंमांजिष्ठपीतंचनीलंब्राह्मणतःक्रमात् । अष्टहस्तंनवंश्वेतं
सदशंनान्यधारितम्।अहतंतद्विजानीयात्सर्वकर्मसुपावनम्॥

अर्थ--सफेत लाल पीला और नीला वस्त्र क्रमसे ब्राह्मणादिकोंको धारण करना चाहिये अर्थात् ब्राह्मण सफेद, क्षत्री लाल, वैश्य पीला और शूद्रको नील रंगका वस्त्र धारण करना चाहिये। तथा आठ हाथका नवीन सफेद विना फटा और किसी दूसरेने धारण न कराहो उसको अहतवस्त्र कहते हैं, यह पवित्रवस्त्र सर्व कर्ममें धारण करना चाहिये ।

ऋतुमें वस्त्रधारण ।

शीतकालेतुकौशेयंकषायंघर्मवासरे ।
वर्षासुश्वेतवस्त्रंस्यादेवंवस्त्राणिधारयेत् ॥

अर्थ--शीतकालमें रेशमी वस्त्र, गरमीमें गेरुआ वस्त्र, और वर्षामें सपेद वस्त्र धारण करना चाहिये ।

रेशमी वस्त्र ।

कौशेयंचित्रवस्त्रञ्चरक्तवस्त्रंतथैवच ।
वातश्लेष्महरंतत्तुशीतकालेविधारयेत् ।

---

१ पट्टवस्त्रंत्रिदोषघ्नं त्वच्यंचानन्दकीर्तिदम् । वशीकरं पवित्रं च शुक्रपुष्टिबलप्रदम् ।

२ त्वक्कुष्ठरेणुनलिकास्पृक्कारसतगरवालुकैस्तुल्यैः । केशरपत्रविमिश्रैर्नरपतियोग्यंशिरःस्नानम् ॥

अर्थ–कौशेय (रेसमी पीताम्बर, सनिया टसर आदि) रंगीन वस्त्र वा चित्रविचित्र रंगका वस्त्र अथवा लाल वस्त्र ये वातकफनाशकहै अतएव शीत कालमें धारण करने चाहिये, कोई चित्रवस्त्रके स्थानमें ऊनीवस्त्र बनात, लोई धुसा शाल, कंबल आदिका ग्रहण करतेहैं ।

कषायवस्त्र ।

मेध्यंसुशीतंपित्तघ्नंकषायंवस्त्रमुच्यते ।
तद्धारयेदुष्णकालेतत्रापिलघुशस्यते ॥

अर्थ--पवित्र, शीतल और पित्तनाशक कषायवस्त्र (कोकई वा गेरुआ रंगका) होताहै उसको गरमियोंमें धारण करे परंतु कोकई वा गेरुआ वस्त्रभी बहुत पतला होना चाहिये ।

सपेदवस्त्र ।

शुक्लंतुशुभदंवस्त्रंशीतातपनिवारणम् ।
नचोष्णंनचवाशीतंतत्तुवर्षासुधारयेत् ॥

अर्थ–शुभ्र (सपेद) वस्त्र शीत, गरमीको निवारण करताहै, और यह न गरमहै न शीतलहै अतएव उसको वर्षाऋतुमें धारण करना चाहिये । हमारी समझमें तो यह आताहै कि सदैव सपेद वस्त्र धारण करना चाहिये ।

नवीन और उज्ज्वल वस्त्रकी प्रशंसा ।

यशस्यंकाम्यमायुष्यंश्रीमदानन्दवर्द्धनम् ।
त्वच्यंवशीकरंरुच्यंनवनिर्मलमम्बरम् ॥

अर्थ--नवीन वस्त्र यशकर्त्ता, कामोद्दीपक, आयुष्यकर्त्ता, लक्ष्मी और आनंदका बढानेवाला, त्वचाको हितावह, वशीकरणकर्त्ता और रुचि प्रगट करे ये नए वस्त्र और ऊजले वस्त्रके गुणहैं । इसीसे सब मनुष्योंको ओढना बिछैया और पहननेमें उज्ज्वलवस्त्र रखना हितकारीहै[1] ।

मलीनवस्त्रकी निन्दा ।

कदापिनजनैःसद्भिर्धार्यंमलिनमम्बरम् ।
तत्तुकण्डूकृमिकरंग्लान्यलक्ष्मीकरंपरम् ।

अर्थ–बुद्धिमान् पुरुषोंको मलिन (मैला) कपडा कभी नहीं धारण करना चाहिये, क्योंकि मैलावस्त्र खुजली, कृमि, ग्लानि, और अलक्ष्मी (दरिद्र

---

१ स्त्रीधृतं वसनंशौर्यहानिदौर्भाग्यदायकम् । संधितंत्रुटितं चैव दग्धं चान्यधृतं तथा । दारिद्र्यकारकं प्रोक्तंरोगकृच्चमतंबुधैः ॥

वा अशोभा) को करता है, अर्थात् मैलसे खुजली होवे जुँए पडजावे जिसके पास जावे या बैठे उसको ग्लानि हो इसीसे धनकी अप्राप्ति होनेसे दरिद्री होवे है ।

कदाचित् कोई शंका करे कि, जिसके पास नवीन वस्त्र धारण करनेकी शक्ति न होवे वो क्या करे ? इसका यह उत्तर है कि, यदि जो गरीब है उसको पुराने वस्त्रही उज्वल रखने चाहिये धुलानेकी शक्ति न होवे तो आपही धोलिया करे ।

सुगन्धलेपन ।

कुंकुमंचन्दनंचापिकृष्णागरुविमिश्रितम् ।
उष्णंवातकफध्वंसिशीतकालेतदिष्यते ॥

अर्थ--केशर चंदन अथवा काली अगर मिला हुआ चंदन उष्ण और वात कफ नाशक है, अतएव इसको शीतकालमें लगाना चाहिये ।

चंदनंघनसारेणवालकेनचमिश्रितम् ।
सुगंधिपरमंशीतमुष्णकालेप्रशस्यते ॥

अर्थ–कपूर और नेत्रवाला मिला चंदन सुगंधकारक परम शीतल है, अतएव इसको गरमियोंमें लगाना चाहिये ।

चन्दनंघुसृणोपेतंमृगनाभिसमायुतम् । नचोष्णंनचवाशीतंवर्षाकालेतदिष्यते ॥ गंधेनोद्वर्त्तनंचादौततोलेपंप्रकारयेत् ॥

अर्थ–केशर कस्तूरीमिला चंदन न गरम है न शीतल अर्थात् मध्यम है, इसीकारण इसको वर्षाकालमें लगाना शुभ है । इसप्रकार गंध लगाकर फिर लेप करे ।

चंदन लगानेके गुणागुण ।

अनुलेपस्तृषामूर्च्छादुर्गंधश्रमदाहजित् । सौभाग्यतेजस्त्वग्वर्णप्रीत्योजोबलवर्द्धनः ॥ स्नानानर्हमनुष्याणामनुलेपोऽपिनोहितः ।

अर्थ–सुगंधानुलेपन तृषा, मूर्च्छा, दुर्गंध, श्रम, दाह, इनको नाश करे । और सौभाग्य (सुंदरता) तेज, त्वचाका रंग, प्रीति, ओज और बलको बढाताहै । जिन मनुष्योंको स्नान करना निषेधहै उनको चंदनादि अनुलेपन करनाभी निषेध है ।

संध्यावन्दनम् ।

कुलाचारंतुकुर्वीतसन्ध्योपासनमादृतः ।
सूर्योपास्तिततःकुर्यादिष्टदेवस्यचार्चनम् ॥

अर्थ–स्नान करने और गंधधारणके अनंतर अपने कुलाम्नायके अनुसार संध्योपासनकर्म करना तदनंतर सूर्योपस्थान करे । इसप्रकार संध्या आदि पंचकर्मसे निवृत्त हो अपने इष्टदेवका आराधन करना चाहिये ।

इस जगे इतना हमको लिखना आवश्यकहै कि, कुलाचार वोही गिनाजायगा जो वेदविहित श्रौतस्मार्त कर्महो मद्य मांसभक्षी मातृगामी कौलधर्मको कुलाचार नहीं कहसक्ते क्योंकि यह तो कपोलकल्पित तांत्रिकोंने प्रजाको वर्णसंकरी करनेके अर्थ और अपने सुखके लिये बनाय लिया है हा खेद ! कि अपने स्वार्थको कैसे अधर्मके श्लोक रचकर शिवका नाम बदनाम इन दुष्टोंने कराह । वेदेंम लिखाहै कि "अहिंसापरमोधर्मः" परंतु ये दुष्ट इसवाक्यको काहेको मानेंगे हाय! ईश्वरने अन्न केवल मनुष्योंहीके भक्षणके लिये निर्माण कराहै, परंतु ये पामर शीघ्र कहदेते हैं कि मांस मद्य सेवन करना वेदमें लिखाहै और झटपट कृत्रिम श्रुतिको बकने लगते हैं परंतु ऐसी श्रुति हमको अनादरणीयहै क्योंकि बुरीवस्तु सबकोही बुरीहै जैसे देखो मांस मद्य सेवन शास्त्रप्रमाणोसें और युक्तिसे दुष्टही कहलातेहैं परंतु इन्होंने वे वस्तु शुभमान रक्खी है ।

कदाचित् कोई प्रश्न करे कि तुम इनकी कहीहुई श्रुतियोंको अप्रमाण बतलातेहो इसका क्या प्रमाण है ? तौ उनको हम प्रत्यक्ष युक्ति प्रमाण यही देते हैं कि सर्व प्राणिमात्रसे पूंछो कि असत्य बोलना, चोरी करना, अन्याई करना, ये वस्तुउत्तम है ? या बुरी है ? इसमें क्या हिन्दु क्या मुसलमान क्या ईसाई क्या बौध क्या आर्य सब यही कहैंगे कि ये वस्तु पापरूप है, परंतु किसी झूटे अन्याई चोरने इन्ही वस्तुओंकी श्रुतिबनाकर कहीं तो आप उसको प्रमाण मानेंगे या अप्रमाण? इसीतरह शास्त्रसे और युक्तियोंसे मद्य मांस प्रत्यक्ष पापरूप सिद्धि होता है, परंतु इन कौलरूप चोर मांसहारी और मातृगामियोंने जो जो श्रुति कपोलकल्पित बनाई है वो प्रमाण किसप्रकार हो सकती है; कदाचित् तुम कहोगे कि फिर तुम्हारे पुरखे क्यों मानते चले आते हैं तो हम यही कहेंगे कि हमारे पुरखे उनके दुष्टही मानते आए हैं । जो चोरी करना उत्तम समझे वो चौर कर्ममें प्रवृत्त हुए और हम तथा औरभी सत्पुरुष उस चोरकर्मको महान् पापरूप समझते हैं अतएव हम सर्व

सत्पुरुषोंसे प्रार्थना करते हैं कि, अपने मूलरूप श्रौत स्मार्तकर्मसे विमुख मत हो [किमधिकं विद्वद्वरेषु]

ब्राह्मणादि पूजन ।

दत्वादानंचविप्रेभ्योगृह्णीयात्तेभ्यआशिषम् । देवगोविप्रवृद्धानांगुरूणांचैवपूजनम् ॥ आयुष्यंवृद्धिदंपुण्यमलक्ष्मीकलिनाशनम् ।

अर्थ–संध्यावंदनके अनंतर ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दान देकर उन्होंसे आशीर्वाद ग्रहण करना चाहिये । देव, गो, ब्राह्मण, वृद्ध, और गुरु (मातापिता तथा गायत्रीका उपदेश दाता आदि) इनका पूजन आयुको बढावे पुण्यकर और अलक्ष्मी तथा कलहका नाश करता है ।

पुष्पधारण ।

सुपुष्पाणिसुगन्धीनिनित्यंशीर्षेप्रधास्यते । सुगंधिपुष्पपत्राणांधारणंकांतिकारकम् ॥क्लेदायाससमुद्भूतस्वेददुर्गन्धनाशनम् । चक्षुष्यंदाहशमनंसौमनस्यंचजायते ॥

अर्थ–सुन्दर गुलाब आदिके सुगंधित पुष्पोंको नित्य मस्तकपर धारण करे तथा सुगंधित पुष्पपत्रोंका धारण कांतिकारक क्लेद परिश्रमसे प्रगट स्वेद और दुर्गंधिका नाशक है । नेत्रोंको हितकारी, दाहनाशक तथा पुष्पोंके धारणसे मन प्रसन्न होता है । इस जगे पुष्पोंके कहनेसे पुष्पोंकी माला, हार, आदि जानने इनको यथायोग्य अंगमें धारण करे अर्थात् माला, वनमाला, हार आदिको कंठमें धारण करे गजरेको हाथोंमें, पुष्पोंके मुकट किरीट आदिको मस्तकपर धारण करे बहुतसे देशमें स्त्री फूलोंके कलीसी मस्तक गूंथतीहै ।

पृथक् पुष्पोंके धारणमें योग ।

तीक्ष्णाग्रलुप्तंकेतक्याः कोमलंधारयेद्दलम् ।

अर्थ–तीखे अग्रभाग तोडकर कोमल केतकीका पत्र धारणकरे ।

जातीपुष्पंतथावेलाजाम्भजंकुटजंतथा । पाटलंचबृहत्पुष्पं बकुलंचंपकंतथा ॥ श्रीखंडंचैवगौलालंकस्तूर्य्यासहधारयेत् ।

अर्थ–चमेली, वेला, नारंगी, कुडा, गुलाब, कूजा, मौलसिरी, चंपा, चंदन, गुल्लाला, इन पुष्पोंको कस्तूरीके साथ धारण करे । अर्थात् कस्तूर्या चंदन लगायकर इनपुष्पोंके हार आदि धारण करे इसीप्रकार सर्वत्र जानना ।

मन्दारमरुवंचैवनीलोत्पलकुमुद्वतम् ।
रक्तोत्पलंयूथिकां च कर्पूरैःसहधारयेत् ॥

अर्थ-मंदार, मरुआ, नीलकमल, कमोदनी, लालकमल, और जुही इनपुष्पोंको कपूरके साथ धारण करे ।

किसकालमें कौनसापुष्प धारण करे ।

अस्नातैर्मल्लिकाधार्यासुस्नातैर्जातिबिल्वजम् ।
अभ्यङ्गेकेतकीधार्याधार्यंचोत्पलकंसदा ॥

अर्थ-स्नानके पूर्व चमेलीका पुष्प धारण करे । और स्नान करके जुही तथा बिल्वका पुष्प धारण करे । तैलादिकके अभ्यंगमें केतकीका पुष्प तथा कमलको सर्वकालमें धारण करना चाहिये ।

ग्रीष्मऋतुमें धारणीय पुष्प ।

जातीकुन्दंचनैपालंश्रीखण्डंबिल्वमल्लिकम्। मकरन्देनसंयुक्तं शिरसाधारयेन्नरः ॥ सर्वाण्येतानितुल्यानिरसतोवीर्य्यतस्तथा । त्रिदोषशमनायैवसर्वकालेप्रधारयेत् ॥

अर्थ-पीली चमेली, कुंद, वासंती (नेवारी) चंदन, बेल, चमेली, इन पुष्पोंको पराग सहित मस्तकपर धारण करना चाहिये । ये संपूर्ण पुष्प रससे और वीर्यसे समान गुणवाले हैं । त्रिदोष नाशक हैं अतएव सर्वदा धारण करने चाहिये परंतु ग्रीष्मऋतुमें विशेषकरके धारण करे ।

शीतकालमें धारणीय पुष्प ।

केतकंबकुलंपुष्पंश्रीखंडंशतपत्रकम् । गौल्लालकंचंपकं च वातश्लेष्महरंपरम्॥उष्णवीर्यंचतत्प्रोक्तंशीतकाले प्रधार्यते ।

अर्थ-केतकी, मौलसिरी, चंदन, कमल, गुल्लाला और चंपा ये पुष्प वात कफका हरण करताहै और उष्णवीर्यहै अतएव शीतकालमें धारण करने चाहिये ।

वर्षाकालमें धारणीय पुष्प ।

श्रीबकंमरुवंचैवनीलोत्पलसवत्सकौ । कुब्जकंपाटलंचैवश्रीखंडंचतथैवच ॥ नात्युष्णंनचवाशीतंसर्वदोषनिबर्हणम् । निर्मलंनेत्रदोषघ्नंवर्षाकालेप्रधारयेत् ॥

अर्थ-बेल, बक, मरुआ, नीलकमल, कुडा, कुब्जक, गुलाब वा (पाढर)

और चंदन इनके पुष्प न बहुत शीतल और न बहुत गरमहै. तथा सर्व दोष नाशक, निर्मल, नेत्रदोषनाशकहै, इसीसे, वर्षाकालमें धारण करनें चाहिये ।

प्रत्येकपुष्पधारणकी अवधि ।

षड्यामंजातिकुसुमंनैवारंद्विमुहूर्त्तकम् । त्रिरात्रमुत्पलंचैव पंचरात्रन्तुकेतकी ॥ द्विरात्रंशतपत्रञ्चअर्द्धरात्रंतुमल्लिका । अहोरात्रंचंपकंतुयूथिकांद्विमुहूर्त्तकम् ॥ श्रीखंडमेकरात्रन्तु बकुलंमाधवींतथा । श्रीपर्णैयावदाहारंतावत्कालंतुधारयेत्॥ मन्दारमरुवंचैवदामनं च सुपाटलम्।यावत्कालंभजेद्गन्धंतावत्कालंप्रधारयेत् ॥

अर्थ–जाईका फूल ६ प्रहर, निवारका ४ घडी, तीन रात्रि उत्पल (कमल) दो रात्रि शतपत्र (गुलाब) अर्द्धरात्र चमेली, एकदिनरात्र चंपा, ४ घडी जुही, एक रात्र चंदनका पुष्प, मौलसिरी माधवी (वसंती) और श्रीपर्ण इतने पुष्प जबतक सुहाय तबतक धारण करे । मंदार, मरुआ, दोना और पाढर इतने पुष्प जबतक सुगंध रहे तबतक धारण करे ।

पुष्पोंके पृथक् पृथक् गुण ।

त्रिदोषशमनीजातीमहादाघविनाशनी । सुगंधंदोषशमनंगौ- ल्लालंपुष्पमुच्यते ॥ पित्तहृद्विशदंचैवचक्षुष्यंचोत्पलंस्मृ- तम् । श्लेष्मवातप्रशमनमुष्णवीर्यंचनिर्मलम् ॥ पुष्पाणांप्रव- रंचैवकेतकीपुष्पमुच्यते । ईषदुष्णंसुगन्धंचसुशीतंदृष्टिदाय- कम् ॥ शिरोभ्रमविनाशार्हंशतपत्रंसुशोभनम् । अधार्यम- ल्लिकापुष्पंदृष्टिहानिकरंपरम्॥चंपकंवातशमनंचक्षुष्यंविशदं शुभम् । पाटलंचमहाशीतंश्लेष्मवातप्रवर्द्धनम् ॥ मंदाग्नि- पित्तदोषघ्नंकर्णव्याधिविनाशनम् । पाटलंधारयेद्यस्तुसम्पद्या ससमन्वितम् ॥ ज्वरमूर्च्छापिपासघ्नमायुष्यंदाहनाशनम् ।

अर्थ--जाईका पुष्प त्रिदोष और घोर दाह नाशक है । गुल्लालेका पुष्प सुगंधवान् और दोषोंको शांति करे है । पित्तहरणकर्त्ता, सपेद, और नेत्रों- को हित कफ वातका नाशक उष्णवीर्य और निर्मल ऐसा कमल जानना। सब पुष्पोंमें केतकीका पुष्प उत्तम है । कुछ उष्ण, सुगंधित. शीतल और

दृष्टिको बढानेवाला है। मस्तकभ्रमको नाशक शतपत्र जानना चमेलीक पुष्प दृष्टिको हानि करे इसीसे उसे धारण न करे ॥ चंपाका फूल, वातनाशक, नेत्रोंको हितावह और शुभ है। पाटलका पुष्प अति शीतल है। कफवातको बढानेवाला है तथा मंदाग्नि, पित्तके दोष, और कानकी पीडाको दूर करे है जो मनुष्य पाटलके पुष्पको धारण करताहै वह द्रव्यवान् होता है ज्वर, दाह, प्यास, मूर्च्छाको दूर करे और आयुको बढावे है। पाटलनाम गुलाबकाभी है।

ऋतुपरत्व पुष्पधारण।

हेमन्तेशिशिरेचैवशतपत्रंतुशोभनम्। वसंतेकेतकीधार्याग्रीष्मे नैपालमालती ॥ प्रावृट्सुपाटलंधार्यंचम्पकंशरदिस्मृतम्।

अर्थ-हेमंत और शिशिरऋतुमें कमल धारण करे। वसंत ऋतुमें केतकीका पुष्प, गरमियोंमें नेवारका पुष्प और मालतीका, चातुर्मास्यमें पाटलका पुष्प और शरदऋतुमें चंपाका पुष्प धारण करना चाहिये।

भूषण धारण।

भूषणैर्भूषयेदङ्गंयथाविभवसारतः।
शुचिसौभाग्यसंतोषदायकंकांचनंस्मृतम् ॥

अर्थ-यथाविभवके अनुसार भूषणोंसे अपने अंग भूषित करे तहां सुवर्णके भूषण (कटक कुंडल मुद्रिकादि) का धारण पवित्र, सुभगताकारक, और संतोषदायक जानना।

रत्नाभरण।

ग्रहदृष्टिहरंपुष्टिकरंदुःस्वप्ननाशनम्।
पापदौर्भाग्यशमनंरत्नाभरणधारणम् ॥

अर्थ--सूर्यादि नवग्रहोंकी क्रूरदृष्टिनाशक. पुष्टिप्रकाशक, दुःस्वमहरण कर्त्ता पाप दुर्भाग्य शमन कर्त्ता ऐसा रत्नोंका भूषण (अर्थात् हीरा पन्ना मोती आदि रत्नजटित गहना जानना)

मोतीके हारोंकेनाम।

सुरभूषणंलतानांसहस्रमष्टोत्तरंचतुर्हस्तम्। इन्द्रच्छन्दोनाम्नाविजयच्छन्दस्तदर्धेन ॥ १ ॥ शतमष्टयुतंहारोदेवच्छन्दोह्यशीतिरेकयुता। अष्टाष्टकोऽर्धपारोरश्मिकलापश्चनवषट्कः ॥ २ ॥ द्वात्रिंशतातुगुच्छोविंशत्याकीर्त्तितोऽर्धगुच्छा-

ख्यः । षोडशभिर्माणवकोद्वादशाभिश्चार्धमाणवकः ॥ ३ ॥ मन्दरसंज्ञोऽष्टाभिःपंचलताहारफलकमित्युक्तम् । सप्तावींशतिमुक्ताहस्तोनक्षत्रमालेति ॥ ४ ॥ अंतरमणिसंयुक्तामणिसोपानंसुवर्णगुलिकैर्वा॥ तरलकमणिमध्यंतद्विज्ञेयंचाटुकारमिति ॥५॥ एकावलीनामयथेष्टसंख्याहस्तप्रमाणामणिविप्रयुक्ता । संयोजितायामणिनातुमध्येयष्टीतिसाभूषणविद्भिरुक्ता ॥ ६ ॥

अर्थ-एक हजार एकसौ आठ ११०८ लडका और चार हाथ लंबा मोतियोंका हार देवताओंके लिये बनाते हैं। उस हारको इन्द्रछन्द कहतेहैं । इस्से आधे लडका अर्थात्५०४लडके हारको विजयछन्द कहते हैं।१०८ लडका और २हाथ लंबा अथवा ८१ लडका और २ हाथ लंबे हारको देवछन्द कहते हैं। ६४ लडका हार अर्द्धसंज्ञक है, ५४ लडका हार रश्मिकलापसंज्ञक जानना । ३२ लडका हार गुच्छसंज्ञक २० लडका हार अर्द्धगुच्छक १६ लडका हार माणवकसंज्ञक ८ लडका हार मंदरसंज्ञक ५ लडका हार फलकसंज्ञक २७ मोतियोंका और १ हाथ लंबे हारको नक्षत्रमालासंज्ञक कहते हैं । उसी नक्षत्रमालाके बीचबीचमें रत्नहो या सुवर्णके दानेहो तो उसे मणिसोपानसंज्ञक कहते हैं । और इसीके बीचमें मणि (धुकधुकी) होवे तो उसीको चाटुकार कहतेहैं।जिस्से अपनी इच्छानुसार मोतियोंसे एक हाथकी बनाई हो उस मालाको एकावलीनामक कहते हैं । यदि इसीमें हीरापन्नाआदि मणि पडीहोवे तो उसको भूषणके जाननेवालोंने यष्टीसंज्ञक कहा है । इसीप्रकार किरिटि, मुकट, कडे, बाजुबंद, चौकी, बेढा, मूँदरी, पहुची, कोंधनी (तागडी) जंजीर, तथा स्त्रियोंके भूषण बनानेकी विधि और उनके धारणके शुभाशुभ फल स्वर्णकारोंके और रत्नपरीक्षक (जोहरी) योंके वास्ते जो ऋषियोंने ग्रंथ बनाए उनमें विस्तारपूर्वक लिखेथे परंतु कालके परिवर्त्तन होनेसे ६४ कलाओंके सब ग्रंथ नष्ट होगए हैं । केवल पेट भरनेके ग्रंथ ज्योतिष वैद्यक और पुराणआदि ब्राह्मणोंको याद है । चौंसठ कलाओंके नाम भागवत दशमस्कंध पूर्वार्धमें ४५ अध्यायकी टीकामें और शुक्रनीतिमें लिखे हैं सो देखलेवे ।

नवग्रहोंके रत्न ।

माणिक्यंतरणेःसुजात्यममलंमुक्ताफलंशीतगोर्माहेयस्यच

विद्रुमोनिगदितः सौम्यस्यगारुत्मतम्।देवेज्यस्य च पुष्पराग मसुराचार्य्यस्यवज्रंशनेर्नीलंनिर्मलमन्ययोश्चगदितंगोमेद वैदूर्य्यके ॥ १ ॥

अर्थ-माणिक मणि सूर्यकी, मोती चंद्रमाका, मूंगा मंगलका, पन्ना बुधका, बृहस्पतिका पुखराज, शुक्रका हीरा, शनिकी नील, राहूकी गोमेद, और केतुकी वैदूर्य मणि कहीहै । इसप्रकार रत्नधारणसे उसी उसी ग्रहकी शुभ दृष्टि होतीहै ।

नवग्रहोंकी प्रसन्नार्थ नवमूलधारण ।

मूलंधार्यत्रिशूल्याःसवितरिविगुणेक्षीरिकामूलमिन्दौजिह्वाहे भूमिपुत्रेरजनिकरसुतेवृद्धदारोश्चमूलम् । भार्ङ्गीजीवेथशुक्रे भवतिशुभकरंसिंहपुच्छस्यमूलंविच्छोलंचार्कपुत्रेतमसिमलयजंकेतुदोषेऽश्वगन्धा ॥

अर्थ--सूर्यकी प्रसन्नार्थ बेलकी जड धारण करनी, चंद्रमाके लिये खिरनीकी जड, मंगलके लिये नागजिह्वाकी जड, बुधके प्रसन्नार्थ विधायरेकी जड, गुरुके अर्थ भारंगीकी जड, शुक्रके अर्थ अंडकी जड, शनिकी प्रसन्नार्थ विच्छोल (बिछुआ)की जड, राहुको चंदनकी जड, और केतुदोष दूरकरनेको असगंधकी जड धारण करनी चाहिये । ये परिहार उनके लियेहैं जो सर्वथा निर्धनहै ।

वासःस्त्रग्गंधरत्नानांधारणंप्रीतिवर्द्धनम् ।
रक्षोघ्नमर्थ्यमायुष्यंसौभाग्यकरमुत्तमम् ॥

अर्थ--सुंदरवस्त्र, फूलमाला, चंदन, अतर आदि गंध और हीरा, पन्ना, माणिकआदि रत्नोंका धारण करना प्रीति प्रगट करे तथा राक्षसादि दुष्टोंका नाशक, आयु और सौभाग्यकर जानना ।

मङ्गलधारण ।

सततंसिद्धमन्त्रस्यमहौषध्यास्तथैवच । रोचनासर्षपादीनां माङ्गल्यानां च धारणम् ॥ आयुर्लक्ष्मीकरंरक्षोहरंमङ्गलदंशुभम् । हिंस्रादिभयविध्वंसिवशीकरणकारकम् ॥

अर्थ-निरंतर सिद्धमंत्रका (अथर्वणवेदके मंत्रोंका न कि तांत्रिक मंत्र) महौषधी (ऐन्द्री, ब्राह्मी, शतवीर्या, अमोघा आदि) और गोरोचन सपेद-

सरसोंआदिका धारण करना आयुको बढावे, लक्ष्मीकी प्राप्ति होवे, तथा राक्षसोंका भय, हिंसक प्राणियोंका भय, इनको नाशक तथा उनको वशीकरण करताहै मंगलदाता शुभहै ।

मंगलपदार्थदर्शन ।

ततोभोजनवेलायांकुर्य्यान्मङ्गलदर्शनम् ।
तस्यप्रदक्षिणंनित्यमायुर्धर्मविवर्धनम् ॥

अर्थ–तदनंतर भोजनके समय मंगलीवस्तुओंका दर्शन करना चाहिये । और इनकी प्रदक्षिणा करे तो आयु, और धर्म, बढे ।

मंगलीकवस्तु ।

लोकेस्मिन्मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणोगौर्हुताशनः ।
हिरण्यंसर्पिरादित्यआपोराजातथाष्टमः ॥

अर्थ–इस लोकमें आठवस्तू मंगलीहै, उनको कहतेहैं कि ब्राह्मण, गौ, अग्नि, सुवर्ण, घृत, सूर्य, जल, और अष्टमराजा इन सबका दर्शन और प्रदक्षिण कर्त्तव्यहै ।

पादुकारोहण ।

पादुकारोहणंकुर्यात्पूर्वंभोजनतःपरम् ।
पादरोगहरंवृष्यंचक्षुष्यंचायुषेहितम् ॥

अर्थ–भोजनके पूर्व अथवा भोजनोत्तर पादुका (खडाऊँ) पहरनी चाहिये, खडाऊँ पहरनेसे पैरके रोग नष्ट हो । वृष्य है, नेत्रोंको गुणकारक, और आयुष्यको बढावे है ।

चतुर्विध इच्छा ।

शरीरेजायतेनित्यंवांछानॄणांचतुर्विधा ।
बुभुक्षा च पिपासा च सुसुप्तासुरतस्पृहा ॥

अर्थ--स्वतः स्वभावसे इस देहमें मनुष्योंके चारवस्तुकी इच्छा होती है, जैसे भोजनकीइच्छा, पीनेकी इच्छा निद्राभिलाष, और मैथुनेच्छा ।

भोजनेच्छारोधके अवगुण ।

भोजनेच्छाविघातात्स्यादङ्गमर्दोऽरुचिःश्रमः ।
तन्द्रालोचनदौर्बल्यंधातुदाहोबलक्षयः ॥

अर्थ–भोजनके समय भोजन न मिलनेसे अंगोंका टूटना, अरुचि, श्रम,

तन्द्रा, नेत्रोंमें दुर्बलता, धातु (रुधिर मांसादि धातु) ओंका दाह, और बलक्षय होता है ।

तृषारोकनेके अवगुण ।

विघातेनपिपासायाःशोषःकण्ठास्ययोर्भवेत् ।
श्रवणस्यावरोधश्चरक्तशोषोहृदिव्यथा ॥

अर्थ--प्यासरोकनेसे कंठसूखे, मुखसूखे, श्रवणशक्तिका घटना, रुधिरका शोष और हृदयमें व्यथाहो ।

निद्रारोकनेके अवगुण ।

निद्राविघाततोजृम्भाशिरोलोचनगौरवम् ।
अंगमर्दस्तथा तन्द्रास्यादन्नापाकएव च ॥

अर्थ–निद्रारोकनेसे जंभाई, मस्तक और नेत्रोंका भारीहोना, अंगोंका टूटना, तन्द्रा, और अन्नका न पचना ये अवगुण होते हैं ।

कामवेग रोकनेके अवगुण ।

अव्यवायान्मेहमेदोवृद्धिःशिथिलतातनोः ।

अर्थ–एकसाथ मैथुनेच्छारोकनेसे प्रमेह, मेदोवृद्धि, और देहमें शिथिलता होती है ।

बुभुक्षितोनयोश्नातितस्याहारेन्धनक्षयात् । मन्दीभवति कायाग्निर्यथाचाग्निर्निरन्धनः ॥ आहारंपचतिशिखीदोषा-नाहारवर्जितःपचति । दोषक्षयेचधातून्पचतिचधातुक्षये प्राणान् ॥

अर्थ–जो मनुष्य क्षुधा लगनेपर भोजन नहीं करता उसके आहाररूप ईंधन क्षीण होनेसे जठराग्नि मन्द होती है । जैसे विना ईंधनके बाहरकी अग्नि शीतल होती है । आहार मिलनेसे जठराग्नि प्रथम आहारको पचाती है । जब आहार पचानेको नहीं रहता तब वही जठराग्नि वात कफ दोषों-को पचाती है । जब दोषभी पचजाते हैं तब रस रुधिर मांसादि धातुओं-को पचाती है । और धातुपचनेके अनंतर प्राणोंको नष्ट करे है ।

भोजनकाल ।

याममध्येनभोक्तव्यंयामयुग्मंनलंघयेत् । याममध्येरसोत्प-त्तिर्यामयुग्माद्बलक्षयः ॥ क्षुत्संभवतिपक्वेषुरसदोषमलेषुच । कालेवायदिवाकालेसोऽन्नकालउदाहृतः ॥

अर्थ—एक प्रहरमें दोबार भोजन न करे। और दो प्रहरतक भूखा न रहे क्योंकि प्रथमप्रहरमें भोजन करनेसे उत्तम रसकी उत्पत्ति होती है। और दोप्रहरतक भोजन न करनेसे बलक्षय होता है। तथा रसदोष मल इनके पक्क होनेसे इस प्राणीको भूख लगती है। वह क्षुधा किसी समय लगे जिस समय क्षुधा लगे वही भोजनका समय है [किसीका यह मत है कि, प्रथम प्रहरमें भोजन न करे और दिनके दोप्रहर व्यतीत न होनेदेवे। कारण यह है कि, प्रथम प्रहरमें रसकी उत्पत्ति होतीहै इसी कारण प्रहरके भीतर कराहुआ भोजन अच्छीरीतिसे परिपक्क नहीं होता। और दो प्रहर उपरांत भोजन करनेसे बलक्षय होता है]

भोजनविधान।

यथोक्तगुणसंपन्नमुपसेवेतभोजनम् । विचार्यदोषकालादी न्कालयोरुभयोरपि ॥ सायंप्रातर्मनुष्याणामशनंश्रुतिनोदि- तम् । नान्तराभोजनंकुर्य्यादग्निहोत्रसमोविधिः ॥

अर्थ—मनुष्यको प्रातःकाल तथा सायंकालमें दोष व काल इनका विचार करके जो शास्त्रमें गुण कहे हैं उनको देख भोजन करना चाहिये। सायंकाल तथा प्रातःकाल दोनों समय भोजन करना वेदोंकी आज्ञा है इन दोनों समयके विना बीचमें भोजन नहीं करना इसकी विधि अग्निहोत्रके सदृश है, अर्थात् जैसै यथोक्तकालमें हीं अग्निहोत्र करतेहैं उसीप्रकार भोजनके समयही भोजन करना चाहिये।

आहारकेगुण।

आहारोबलतृप्तिकान्तिसुखदोदेहस्यसंधारकोधैर्योत्साहविव- र्धनःस्मृतिकरःस्वर्योरसालस्वरे। यत्कान्तेऽस्तिजगत्रयेकि- मपितच्चाहारकेसंस्थितंतस्मादस्यविधिंगुणांश्चनियतंज्ञात- व्यमित्थंबुधैः।

अर्थ—आहार बल, तृप्ति, कांति, और सुख, इनको देनेवाला है तथा देहका संरक्षक, और धैर्य, तथा उत्साह, इनको बढानेवाला और स्मृति (स्मरणशक्ति) तथा सुंदरस्वर इनका देनेवालाहै। जो कुछ इस जगत्में है वो संपूर्ण आहारसे प्राप्त होनेवाला ऐसा जानना, अतएव इस आहारकी विधि और गुण वैद्योंको निश्चय जानने चाहिये।

रसादीनां पाकज्ञानमाह ।

उद्गारशुद्धिरुत्साहोवेगोत्सर्गोयथोचितः ।
लघुताक्षुत्पिपासाच जीर्णाहारस्यलक्षणम् ॥

अर्थ--उत्तम डकारका आना, उत्साह, मलमूत्रादि वेगोंका यथोचित समयपर अच्छेप्रकार त्याग होना, देह हलका हो, और भूख प्यास प्रगटहो ये जीर्णआहारके लक्षणहैं ।

भोजनस्थान ।

आहारोविजनेकुर्यान्निर्हारमपिसर्वदा ।
उभाभ्यांलक्ष्म्युपेतःस्यात्प्रकाशेहीयतेश्रिया ॥

अर्थ--मनुष्यको आहार (भोजन) तथा निर्हार (मलमूत्रका त्यागकरना) ये एकांतमें करने चाहिये इस्से धनी होता है तथा इनको सर्व जनोंके आगे करनेसे लक्ष्मीरहित होताहै ।

तथाच ।

आहारनिर्हारविहारयोगाःसदैवसद्भिर्विजनेविधेयाः ।

अर्थ--भोजन, मलमूत्रपरित्याग, और स्त्रीसंभोग, ये विद्वानोंको सदैव एकांतमें करने चाहिये ।

स्थानका वर्णन ।

स्वच्छंव्यवकरंलिप्तंगोमयाद्यैर्मनोहरम् । सुधाधवलितंसम्यक्प्रतिमाद्यैर्विचित्रितम् ॥ गीतैःकलपदैर्जुष्टंपुष्पवृक्षैःसुशोभितम् । दुष्टशब्दादिरहितंतच्छस्तंभोजनालयम् ॥

अर्थ--अब भोजनका स्थान कैसा होना चाहिये, उसको कहतेहैं । प्रथम झरा बुहारा गोबर मिट्टीसे लिपा रंगवल्ली जिसमें कढरही, सर्वत्र ऊपर नीचे सपेदीसे पुतरहा चित्र विचित्र देवता मनुष्योंके तथा प्रिय पक्षी पशु आदिके चित्र जिसमें कढरहेहों, आदिशब्दसे झाड फनूस, बडे बडे, दर्पण जिसमें लगरहे, सुंदर झीलकंठसे मीठे शब्दकरके गान होरहा हो चारोंतरफ पुष्पितवृक्षोंके घमले धरेहो (तथा अपने प्रिय मित्र पुत्र कलत्रादि युक्त) और जहां खोटे पुरुष स्त्रियोंकी दृष्टि और व्यथा जनक दुष्टशब्दरहित आदिशब्दसे सुगंधित और सर्व इन्द्रियोंको तथा मनको आनंददायक ऐसा भोजन करनेका स्थान होना चाहिये ।

अथ पाकविधान।

शिष्य-अब कुछ रसोई बनानेकी विधि कहिये।

गुरु-रसोई बनानेकी विधि हमारे सूपशास्त्र ग्रंथोंमें विस्तारपूर्वक लिखीहै परंतु इसजगेमें तुम्हारे आगे संक्षेपसे जो इस मध्यदेशमें बहुधा प्रचलितहैं इसको कहताहूं।

शिष्य-प्राचीन पाक बनानेके कौन कौनसे ग्रंथहै और पाक कितने प्रकारके हैं।

गुरु-प्राचीन कालसे इस भारतवर्षमें जैसे ज्योतिष, वैद्यक, न्याय, सांख्य, वैशेषिक, और व्याकरण आदि ग्रंथोंकी उन्नतीथी इसीप्रकार इस पाकशास्त्रकी भी अत्यंत उन्नती थी और इसके अनेक ग्रंथ थे जैसे प्राचीन ग्रंथोमें नलपाक, भीमपाक, सीतापाक, कृष्णापाक, और अर्वाचीन ग्रंथोंमें भोजपाक, वीरपाक, पाकसुधाकर, रुचिवधूरत्नमाला, पाकशेखर, तथा क्षेमकुतूहल· इत्यादि।

और तुमने जो प्रश्न करा कि पाक कितनेप्रकारकेहैं सो हे प्रियपुत्र! इसकी संख्या मैं नहीं कहसकता क्योंकि पाक देश देशमें भिन्न भिन्न और उनके बनानेकी विधीभी पृथक् पृथक्है, जैसे वल्लभकुली गोकुलस्थी गुसाइयोंके छप्पन भोगमें एकही अन्नके ५६ छप्पन प्रकारके पदार्थ बनातेहैं और उनके नामभी पृथक् पृथक् है फिर बंगाली, गुजराथी कर्नाटक, पंजाबी, आदिके पाकोंकी संख्या तो लिखना दूरहै अतएव पाक अनंतहैं।

परंतु इसजगेमें संक्षेपसे थोडेसे पाक लिखते हैं। विशेष देखनेकी इच्छा होवे तो उक्त प्राचीन ग्रंथोंको देखो।

शिष्य-प्रथम रसोईका काल, और रसोईके बनानेका स्थान, सूपकारके लक्षण और रसोईके उपस्कर अर्थात् रसोई करनेमें किस किस वस्तुको रसोइया अपने पास रक्खे यह सब यथाक्रमसे कहो।

गुरु-सुनो-प्रियवर रसोई करनेके दो समयहैं, प्रथम प्रातःकालमें और दूसरा सायंकाल। प्रातःकालमें जो पदार्थ करतेहैं उसको रसोई कहतेहैं और सायंकालमें जो करते हैं उसको व्यालू कहतेहैं।

प्रातःकालकी रसोई प्रहर दिन चढेसे दो प्रहर दिन चढेतक करनी उचित है जैसे लिखाहै कि " याममध्ये न भोक्तव्यं यामयुग्मं न लंघयेत्" और इसीप्रकार सायंकालमें चारबजेसे लेकर रात्रिके नो बजेतक व्यालू करनेका समयहै। इस्से उपरांत भोजनका निषेधहै।

रसोईकरनेका स्थान ।

आग्नेय्यांदिशिकर्तव्यमावासस्यमहानसम्।गवाक्षजालमार्गा-ढ्यमर्द्धमित्युपलेपितम् । अग्नेःस्थानंयतस्तत्रभोक्तुरन्नन्तुव-र्द्धते । चुह्लिस्तत्रप्रकर्त्तव्यापूर्वपश्चिममायता । मृन्मयादी-निभाण्डानिक्षालितानि च वारिणा । तेषुयत्पच्यतेद्रव्यंगु-णवत्सर्वसंमतम् ।

अर्थ-वैद्यको उचितहै कि राजभवनमें जहां रसोईका स्थान हो उस स्थानमें अग्निकोणमें चूल्हा बनावे और रसोईका स्थान परमोत्तम होना चाहिये । जिसमें जाली झरोखा गोखा मोखा तथा आले अलमारी युक्त तथा गोबर मिट्टी आदिसे आधी आधी भीत लीपी पोती हुई हो उसजगे अग्निस्थानमें भोजन करनेसे भोजन करनेवालेका अन्न शीघ्र पचेहैं । और उस रसोईमें पूर्वपश्चिममें विस्तृत भट्टी बनानी चाहिये ।

उस रसोईमें मिट्टी (चीनी आदि) के पात्र जलसे शुद्धकरके रखने चाहिये और पित्तल तामे आदिके पात्रोंको मिट्टी और खटाईसे माँझ जलसे धोयकर रखने चाहिये । ऐसे शुद्ध पात्रोंमें बनाहुआ अन्न सर्वगुणसं-पन्न और सर्वसंमतहै ।

सूपकारकेलक्षण ।

पितृपैतामहोदक्षः शास्त्रीयो मिष्टपाचकः ।
शौचवानातिभक्तश्चसूपकारःसउच्यते ।

अर्थ-जिसके कुलमें परंपरासे रसोई करनेका व्यवहार चला आयाहो, और चतुरहो, (अर्थात् जो वस्तु एकवार देखी या सुनीहो उसको करलेवे) तथा सूपशास्त्रके ग्रन्थपढाहो [मूर्ख नहो] मीठे वाक्यका बोलनेवाला अथवा " मिष्ट पाचक " अर्थात् रुचिकारी पदार्थको करे [ऐसा न करे कि किसीमें नोन अधिक और किसीमें मिरच किसीमें खटाई] तथा स्नान वस्त्रादिसे पवित्र रहताहो, और अपने स्वामिका भक्तहो ऐसा सूपकार (रसोइया) उत्तम कहाहै ।

तथाच ।

भवेयुर्धार्मिकाःस्निग्धाःसूपकाराःक्रमागताः । धृतोष्णीषाश्च शुचयस्तथावैद्यवशेस्थिताः । नृपामित्रद्विषोदक्षाबलिष्ठाः कुलसम्भवाः । सर्वपाकेषुनिष्णातादयावन्तोविचक्षणाः ।

अन्येपितत्रयेकेचिच्चरन्तिपरिचारकाः। तेपिचैवंविधायोज्या-स्तदध्यक्षोपिताद्दशः। सूपकारपतिस्तत्रप्रायोवैद्यगुणान्वि-तः। क्षणंनविश्वसेत्तांस्तुतत्त्वज्ञस्तत्प्रशासनः। जीवनंजी-विनामन्नमृतूक्तंविधिपाचितम्। तदेवाविधिनाभुक्तंपरिणामे विषोपमम्। ऋतूनांलक्षणंज्ञात्वाततस्ताद्विधिमाचरेत्।

अर्थ–धर्मनिष्ठ, प्रीतिवाले, क्रमागत रसोईकी विद्या, पगडीके धारण करनेवाले, पवित्र, वैद्यके वशीभूत राजाके शत्रुओंसे द्वेष करनेवाले, चतुर, बलिष्ठ उत्तम कुलमें जन्म जिन्होंका, सर्व प्रकारके पाकोंको बनायचुकेहो, दयावान, और विचक्षण एताद्दश लक्षणवान् सूपकार होना चाहिये [हमारी समझमें तो नवीना स्त्री जो चतुर हो और अपनेसे परम प्रीति रखतीहो उसके हाथकी रसोई इस पृथ्वीमें अमृतके तुल्य है] तथा अन्य पुरुष जो पाकघरमें रहनेवाले नौकर हो वोभी सूपकारके समान लक्षणवाले होने चाहिये और उनका अध्यक्ष (अफसर) भी ताद्दश होना चाहिये । परंतु जो रसोइयोंके ऊपर अफसर हो वो वैद्यके गुणवाला हो और उन पाकका-रोंका क्षणमात्रभी विश्वास न करे तत्त्वज्ञहो प्रत्येक समय उन रसोईयोंको शिक्षा देता रहे। जो जो पदार्थ प्रत्येक ऋतुमें सेवन करने कहे हैं वो यथा-विधि पक्क करा हुआ अन्न जीवोंका जीवन है यदि वोही अन्न अविधिसे कराजावे और अविधिसे भोजन करा हुआ परिणाममें विषतुल्य होता है। अतएव वैद्यको उचित है कि, ऋतुओंके लक्षण विचार कर तदनंतर भोजन-पानकी विधि करनी चाहिये । ऋतुओंके लक्षण प्रथमही ऋतुचर्याध्यायमें कहआएहैं ।

विषदूषितान्नपरीक्षार्थसद्वैद्यस्थापनम् ।

राजाराजगृहासन्नेप्राणाचार्यंनिवेशयेत् । सर्वदासभवत्येव सर्वत्रप्रतिजागृविः । अन्नपानंविषाद्रक्षेद्विशेषेणमहीपतेः। योगक्षेमौयदायत्तौधर्माद्यायन्निबंधनाः। तस्माद्वैद्येनसततंवि-षाद्रक्ष्योनराधिपः।

अर्थ–राजा राजगृहके समीप वैद्यको स्थापित करे वह सदैव और चारों-तर्फसे सावधान रहे और विशेष करके विष मिले अन्नपानसे नरपतिकी रक्षा करे क्योंकि योग (अप्राप्त वस्तुकी प्राप्ति) और क्षेम (प्राप्तवस्तुका

रक्षण) राजाके आधीन है तथा उन योगक्षेमके वशीभूत धर्मादिक है अतएव वैद्य राजाकी विषसे सदैव रक्षा करे । वैद्यके लक्षण आगे कहेंगे ।

महानसयोग्योपकरण।

वस्तूनिभोजनार्हाणिविविधानिपुनःपुनः ।
सर्वाणिगुणयुक्तानिस्थापितानिमहानसे ॥

अर्थ--भोजनके योग्य अनेक प्रकारकी सामग्री संपूर्ण गुणयुक्त रसोईके समय चूल्हेके समीप रक्खे ।

उपस्कर ।

दास्यःसंमार्जनीवाटापूतहंडीसुकूर्चिका । घर्षणीवैणवंपात्रं जलपूर्णमलिञ्जरः । वह्निसंजननग्रावा कुद्दालःसकुठारकः । दारुखण्डानिशुष्काणिहस्तमात्राणिचेन्धनम् । अजीर्णान्यगुरूणीह कीटवर्ज्यानिसंचितः । तितउश्चल्लनीपीठंमुसलंचाप्युलूखलम् । शिलाशिलासुतःशूर्प चतुरस्रा च पट्टिका । संदंशके च दर्व्यश्चवस्त्रखंडचतुष्टयम् । नलिकाछुरिकाचैव शूलानिचकटाहकम् । वह्निसंचालनार्थायदीर्घांदीर्घासुलोहजा । इत्यादिवस्तुजातैःस्याद्गुणाढ्यंतुमहानसम् ।

अर्थ—दासी [दास] संमार्जनी (झाडू) वांटतराजू पवित्र हांडी सुकूर्चिका [मूंजकी कूंची] घर्षणी [जिस्से मांझनेके समय पात्रोंको रगडते हैं] बांसकी पिटारी, जलका भरा पूर्णपात्र, [मांठ या तमिया] चमकपत्थर, कुदारी, कुठारी, [ईंधन तोडनेको] एकएक हाथकी हलकी और सूखी लकडी, पुराने हलके कीडेरहित ऊपले, चलनी,चलना, पटा या आसन, मूसल, ओखली, सिल, लोढा, सूप, चौकोन पट्टी, सडासी (चीमटा) कलछी, चार कपडेके टूक, फूकनी, छुरी, चक्कू, कांटा (वा कौंचा) अग्निके चलानेको बडे बडे चीमटा, इत्यादि वस्तुओंसे गुणयुक्त महानस (चूल्हा) होता है ।

आदि शब्दसे इतनी वस्तु औरभी रखनी चाहिये । दियासलाई, अंगीठी, सिगडी, तवा, कढैया, कढाव, डोही, कलसा, लोटा, घंटी, गिलास, प्याले, थाली, रकेबी, परात, तमंगा, तामडी तपेली, तपेला, वटला, देग, देगची, चकला, वेलन, उदला, झाल, टोकरा, डलिया, कटोरा, कटोरी, झंझरी, पौना, घीयाकस, कूडी, कूल्हडे, सकोरे, सराई, तोला, कमोरी, पत्तल, दोना, केलाके पत्ते, सादापत्ते, इत्यादि ।

मैंदा, चून, दाल, चामल, नोन, तेल, घी, मसाला, दूध,दही, बूरा, मिश्री, बेसन, इत्यादि सर्व वस्तू रसोई करनेवालेको अपनेपास धर लेनी चाहिये। और दो चार जवान और चतुर मनुष्यभी अवश्य रसोइयेको अपने पास रखने चाहिये।

पात्रोंके पृथक् पृथक् गुण।

मृदभावेपचेल्लोहे चक्षुरर्शोविकारनुत् । कांस्यजेपाचितंय-द्धितद्धितंमतिदंशुचि।यत्तुताम्रमयेसिद्धमरुच्यमम्लपित्तकृ-त् । सौवर्णेराजतेपाच्यमाढ्येभूमिभृतांगृहे । मृत्पात्रंसर्वदो-षघ्नंधिषणोत्सवदंसदा। संकीर्णेपात्रसंभारेमार्गेवाग्रामवर्जिते।

अर्थ–वैद्यको उचितहै कि, रसोईके लिये मृत्तिकाके पात्र लेने चाहिये, यदि मिट्टीके पात्र न मिले तो लोहके पात्रमें रसोई करे लोहके पात्रमें पककरा अन्न नेत्ररोग और बवासीर आदि रोगोंको दूर करताहै। काँसेके पात्रमें सिद्ध करा अन्न बुद्धिदायक पवित्र और हितकारीहै। एवं तामेके पात्रमें सिद्ध करा अन्न अरुचि और अम्लपित्तको करेहै। यदि तामेकेही पात्रमें रसोई करनी होवे तो उसमें कलई कराय लेवे और कोई कोई पीतलके पात्रमेंभी कलई कराना कहतेहैं तथा राजा महाराजा और धनाढ्योंके घरमें सुवर्ण और चांदीके पात्रमें रसोई करनी चाहिये।परंतु सर्व दोष नाशक और बुद्धिको प्रफुल्लित करनेवाला ऐसा सदैव मृत्तिकाका पात्र कहाहै। जहां पात्र नहो अथवा ग्रामरहित मार्गहो तहां मट्टीके पात्रमेंही रसोई करनी चाहिये।

पाकविधि।

स्थापयेद्गुरुवत्सूदःसिद्धान्नंपात्रकान्तरे।भक्तंस्वपात्रकेस्था-प्यंक्वथितापात्रकान्तरे । घृतंकाष्ठायसेस्थाप्यंमांसंमांसर-सौपुनः। स्थापयेद्राजतेहैमेपात्रेलोहेऽथकाष्ठजे । पत्रादि षड्विधंशाकंस्थाप्यंकाष्ठाश्मलोहजे।पक्वान्नंपिष्टजंभक्ष्यंस्था-प्यंकांस्येथदारुजे। शृतंक्षीरंस्थापनीयंपात्रेकाष्ठस्यवामृदः। पानीयं पायसंतक्रंमृन्मयेष्वेवधारयेत्। कांचनेस्फाटिकेवा-थवैदूर्यादिविचित्रिते। धारयेत्सर्वदापात्रेरागखांडवसक्तुकान्। एतेषुस्थापितंद्रव्यंपात्रेषुगुणदंभवेत् । सर्वदासुखदंह्द्यम-न्यथादोषकारकम्।

अर्थ–सिद्धअन्नको चतुर रसोईया अन्य पात्रमें स्थापन करे । भातको जिस पात्रमें कराहो उसीमें रहने देवे, और कढीको दूसरे पात्रमें घृतको काष्ठके पात्रमें या लोहके पात्रमें रक्खे, मांस और मांसरसको सोने चांदी लोहा अथवा लकडीके पात्रमें रक्खे, पत्रके छः प्रकारके शाकको लकडी पत्थर अथवा लोहके पात्रमें धरे, पक्वान्न (लड्डू, गूँझा, सोहनथाल, आदि) और पिष्टज पदार्थ (पूडी, कचोडी, पापड, सुहार, मट्ठे, आदि) को कांसेके पात्रमें या लकडीके पात्रमें धरने चाहिये । औंटा शीतल दूधको काष्ठके अथवा मट्टीके पात्रमें धरना [परंतु औटाहुआ दूधको कांसीके उत्तम कटोरेसे पीना चाहिये] जल, खीर, छाछ ये पदार्थ मट्टीके पात्रमेंही रखने चाहिये । और मुरब्बा (पने, चटनी; सिखरन, अमरस, आदि) एवं सत्तु इनको सुवर्णके पात्रमें अथवा स्फटिकमणि तथा वैदूर्यमणि आदि जडे हुए पात्रमें धरने चाहिये । इन पात्रोंमें उक्त क्रमपूर्वक पदार्थ धरनेसे गुणदायी होते हैं और सदैव सुखदायक एवं चित्तको प्रिय होते हैं । अन्यथा अर्थात् विपरीत क्रमसे धरे तो विकारकारी होते हैं ।

" मधुरेणसमारभ्य मधुरेणसमापयेत् " अर्थात् भोजनको मिष्ट पदार्थसे आरंभ कर मिष्ट पदार्थसेही समाप्ति करे इस वाक्यके अनुसार प्रथम मिष्ट पदार्थोंको कहते हैं परंतु मिष्ट पदार्थ चासनीकी विशेष अपेक्षा रखते हैं । अत एव आदिमें प्रथम चासनीकी विधिसे आरम्भ करते हैं ।

चासनी ।

उत्तम सहांजहांपुरी चिनी कढाईमें चढाय उसमें तृतीयांश अर्थात् तीनसेरमें १सेर जल मिलाय अत्यंत तेज आंच देओ जब उसका गाद उठने लगे तब उसमें मंद आंच देओ और उस रसके चारोंतर्फ दूधमें जल मिलाकर वारंवार गेरते जाओ और धीरेधीरे झरनेसे उसका गाद निकालते जाओ जब जानोकि, संपूर्ण मैल ऊपर आगया तब एक पात्र लो उसपर दो लकडी धर एक डलिया धरो और उस डलियामें स्वच्छ वस्त्र धुला हुआ बिछाय उससें उस रसको डोहीसे भरभरके डालो तो उस चीनीका रस उस डलियामेंसे चुचाकर नीचेके पात्रमें गिरेगा इस रसको वक्खर कहते हैं । फिर इस रसको दूसरे पात्रमें भर अग्निपर चढाओ और धीमीआंचदो जब कलछुलेसे लगकर एक धार गिरे उसको इकतारी चासनी कहते हैं । और इससेभी अधिक गाढा हो, दो तार गिरे उसको दुतारी चासनी इसीप्रकार इससे कुछ अधिक गाढा होकर रस सपेद वर्ण होगा उसको उंगलीसे घिसकर देखो यदि रवा बँधे तो उसको तितारी चासनी कहते हैं । इससे कुछ गाढा हो तो साढेतीन तारी चासनी

जाननी। इसप्रकार जिस पाकमें जैसी चासनी लेनी लिखी है उसी तरहकी लेवे।

अथमोदकानाह।

तत्रतावद्दहित्रमोदकाः।

प्रस्थमानंविशालाक्षिगोधूमजंचेत्सुपिष्टंघृतंतार्हिंमुष्टिद्वयंच। मिश्रयित्वाचनीरेणतावत्प्रियेमुष्टिबद्धंचलोलाक्षियावद्भवेत्। मुष्टिबद्धानिपिंडानिभित्त्वाततःपाचयेत्कुंकुमाभांश्छनैःसद्घृते। तानिसंकुट्यकृत्वातुचूर्णंपुनःशर्कराज्यंपृथक्प्रस्थमानंनवम्।द्रा- विडीवल्लिजंकोलमानंपृथक्चारवादामबीजंपलंखंडितम्।सर्व- मेकत्रकृत्वाचसंमिश्रयेद्बध्नयेन्मोदकांश्चाम्रमानांस्ततः। तेद- हित्राभिधामोदकाःशीतलावातपित्तापहाश्चाग्निमांद्यप्रदाः। श्लेष्मलाःशुक्रलाबल्यवृष्याहिताः सारकाश्चापिस्निग्धागरि- ष्ठाप्रियाः।

अर्थ—अब लड्डू बनानेकी विधि कहतेहैं उसमें प्रथम दहित्रमोदक अर्थात् मुठियाके लड्डू बनानेकी विधि और उसके गुणदोष कहतेहैं। गेहूंकी चून १ सेर लेकर उसमें ८ तोले घीका मोहन डाले, जब मुट्ठी बँधने योग्य होजावे तब पानीसे, उसने, फिर उसमेंसे मुट्ठीभर भर के तोडकर घीमें डाले, और धीमी आंचसे सेके, जब केसरके समान लाल रंग होजावे तब निकासले, फिर उनको कूटकर चूर करे फिर उसमें १ सेर सपेदबूरा और कुछ कंद तथा १ सेर घी और इलायचीके दाने आधेतोले मिरच आधेतोले बदाम ४तोले खसखस ४ तोले इनका चूरा डाल अच्छीरीतिसे मिलाय फिर लड्डू बांधे इसको दहित्रमोदक वा मुठियाके लड्डू कहतेहैं) ये लड्डू शीतल वातपित्त नाशक, अग्निमांद्यकरता, कफकारी, वीर्य बढानेवाले, बलकर, वृष्य, सारक, स्निग्ध, तथा भारीहै।

अथबिंदुमोदकाः।

प्रस्थैकंवेसनंपिष्टंतंडुलानांपलंप्रिये। द्विपलंचघृतंसम्यग्घ- स्ताभ्यांपरिमर्दयेत्। लोड़ायित्वाततश्चाद्विर्गाढंमाक्षीकस- न्निभम्।ततश्चुल्ल्यांसुप्रज्वाल्यवह्नौन्यस्यकटाहकम्।ततोदं-

डंकटाहस्यसघृतस्योपरिन्यसेत् । सूक्ष्मछिद्रान्वितंतस्योपरिसङ्ग्यस्यझर्झरं । तत्फणायांचतन्न्यस्यशनैःसंहत्यपातयेत् । बिंदूंस्तेकुंकुमाकारायदास्युश्चतदाद्रुतम् । तानन्येनच निष्कास्यझर्झरेणविचक्षणे । विस्तीर्णामत्रकेन्यस्यततःकुर्यादमुंविधिम्। त्रिप्रस्थायाःसितायाश्चपाकंकृत्वात्रितारकम्। कर्पूरैलादिसंयुक्तंतस्मिंस्तान्बिन्दुकान्क्षिपेत् । दर्व्यासंचाल्य बहुशःसत्युष्णेचविबंधयेत्। मोदकान्बिल्वतुल्यांस्तुतेवृष्या धातुवर्द्धकाः । शीतलालघवोरूक्षामधुरास्तृप्तिकारकाः । त्रिदोषघ्नाःस्मृताःपूर्वैराचार्यैर्बिंदुमोदकाः ।

अर्थ–अब बिंदुमोदक अर्थात् बूंदीके लड्डू बनानेकी विधि तथा गुण दोष कहतेहैं । बहुत बारीक बेसन १ सेर उसमें चामलकी चून ४ तोले घी ८ तोले मिलावे, फिर उसमें इतना पानी डाले कि, वह सन जावे, फिर उसको हाथोंसे खूब मथे तदनंतर कढाईमें घीभर भट्टीपर चढावे जब वो गरमहो जावे तब उस कढाईपर एक लकडी आडी धरे, और उसपर बारीक छिद्रकी झँझरी धरे उसमें मथा हुआ बेसन भरके उसको धीरे-धीरे उस लकडी पर ठोंकें तो उस झँझरीमेंसे मोतीके समान बेसनकी बूंद निकलकर घीमें पडे उनको सिकनेपर निकालले फिर १ सेर कंदकी तीन तारी चासनीकर उसमें उन बूँदियोंको डाल देवे और उसमें कपूर, इलायची, आदि सुगंधिद्रव्य मिलाय बहुत देरतक पौनासे उलटता पलटता रहे फिर इसके चार चार तोले या अधिक बडे लड्डू बनावे । ये बूंदीके लड्डू वृष्य, धातुवर्धक, शीतल, हलके, रूक्ष, मधुर, तृप्तिकारी, और त्रिदोषनाशक हैं । ये कुछ गरम रहनेपरही बांधे शीतल होनेपर नहीं बँधते ।

अथमुक्तामोदकाः (मोतीचूरकेलड्डू)

मुद्गपिष्टंससर्पिष्कंमंथयित्वांबुनाततः । कुर्यादन्यंचसकलं बिंदुमोदकवद्विधिम्।स्यान्मुक्तामोदकः स्वादुर्लघुर्ग्राहीत्रिदोषनुत। चक्षुष्योज्वरहृद्बल्यः शीतस्तृप्तिरुचिप्रदः ।

अर्थ–मूंगके चूनमें घृतका मोयन देके और पानी डालके मथे फिर बूंदीके लड्डूकी विधिसे बनाय लेवे इसको मुक्तामोदक अर्थात मोती-

चूरके लड्डू कहतेहैं । ये हलके, मलग्राही, त्रिदोषनाशक, नेत्रोंको हितकारी, ज्वरनाशक, बलदायक, शीतल और तृप्ति तथा रुचि इनको देतेहैं।

अथरत्नमोदकाः।

मुक्तामोदकवत्कृत्वामाषजानपिमोदकान् ।
ईषत्समगुणामाषैः प्रोक्तास्तेरत्नमोदकाः ॥

अर्थ-उडदके चूनके जो लड्डू बनतेहैं उनको रत्नमोदक कहतेहैं इनको मोतीचूर लड्डुओंके समान बनावे इनके गुण उडदोंकेसेहैं ।

सेविकामोदकाः (सेवके लड्डू)

घृताक्तांसमितांमर्घ्यकृत्वातंतूञ्जलेनच । शनैस्तान्भर्जयेदाज्येसितापंकेविमिश्रयेत् । ततस्तान्मोदकान्कृत्वातेगुणैर्मठकाइव । सेविकामोदकानाम्नाकीर्त्तिताःशास्त्रवेदिभिः ।

अर्थ-मैदामें मोयनदेके पानीसे मलकर उसके सेव बनाने फिर उन सेवोंको घीमें तलके मिश्रिकी चासनीमें मिलाय लड्डू बनावे, इनको सेवके लड्डू कहतेहैं । इनके गुण मठरीके समान है ।

अथसमितामोदकाः।

समिताप्रस्थमेकांतेघृतंक्षिप्त्वाशरावकम्।वर्णव्यत्ययतायावत्तावद्भर्ज्याथशर्करा‌म्।प्रस्थैकांचविनिःक्षिप्यततश्चोत्तार्यशीतले। एलालवंगमरिचंपृथक्कोलंविनिःक्षिपेत् । मोदकान्रचयेत्तस्यारुच्यामारविवर्द्धनाः।समितामोदकानामापित्तघ्नाः प्रीतिकारकाः ।

अर्थ-मैदा १ सेर उसमें ४ तोले घी डालके भूने, जब मैदाका रंग कुछ लालहो तब उतार लेवे उसमें १ सेर सपेदबूरा और इलायची, लौंग, काली मिरच इनका चूरा आधे आधे तोला मिलाय लड्डू बाँधे ये लड्डू रुचिकारी कामवर्द्धक पित्तनाशक, तथा प्रीतिकारक है । इसको समितामोदक अर्थात् मगदके लड्डू कहतेहैं ।

अथद्रावकमोदकाः।

समितादुग्धकिट्टं च सर्पिःप्रस्थमितंपृथक् । हस्ताभ्यांमर्दयित्वातच्चैकीभूतंविभर्जयेत् । अर्द्धपक्केपुनःसर्पिःप्रस्थैकंक्षिप्यभर्जयेत् । सम्यक्पक्केचद्विप्रस्थांसितांतत्रविमिश्रयेत् ।

शीतस्थानेततोधृत्वाशीतीभूतेचकल्पयेत् । मोदकाद्राव-
काख्यास्तेलवंगैलादिसंभृताः ॥ वृष्याबल्याश्चपित्तघ्नारुच्याः
कामविवर्द्धनाः । श्लेष्मलास्तर्पणाहृद्यावातघ्नागुरवःस्मृताः॥

अर्थ--मैदा १ सेर, खोहा १ सेर, और घी १ सेर, इन तीनोंको मिलाय हाथोंसे मलके एकजीव करे फिर इसको भूने जब अर्द्धपक्क होजावे फिर इसमें १ सेर घी मिलावे और भूने जब अच्छी रीतिसे पक्क होजावे उसमें २ सेर सपेद बूरा मिलाय उतारलेवे फिर इसमें लौंग, इलायची, आदि मिलाय कलछीसे चलायदेवे और इसको शीतलस्थानमें धरदेवे जब शीतल होजावे तब लड्डू बँधावे इसको द्रावकमोदक कहतेहैं यह द्रावकमोदक वृष्य, बलकारी, पित्तघ्न, रुचिकारी, कामवर्धक, कफकारक, तृप्तिकारी, हृदयशोधक, वातघ्न और भारी है।

अथ चूरमोदकाः (चूरमाके लड्डू)

घृताक्तंमर्दयेदीषदंबुनातिघनंप्रिये । पिष्टंगोधूमजंतस्यकुर्या-
दंगारककर्कटीः ॥ चूर्णयित्वातुतास्तत्रशर्करांचघृतंसमम् ।
संक्षिप्येलादिकंकुर्यान्मोदकान्मठवद्गुणैः ।

अर्थ-गेहूंके चूनमें घीका मोयन देके पानीसे करडा उसने फिर उसकी अँगाकर दो अंगुलमोटी करे उनको अंगारोंमें सेके जब सिकजावे तब उसका चूर्ण करे फिर उसमें बराबरका घी और बूरा तथा इलायची आदि मिलायके लड्डू बाँधे इसके गुण मठरीके समानहै ।

अथ मुद्गादिमोदकाः ।

मुद्गचूर्णंप्रियेप्रस्थंप्रस्थेसर्पिषिभर्जयेत् । ततश्चोत्तारयेत्पात्रं
वह्नेर्भूमौनिधापयेत् ॥ पाकार्थेऽत्रसिताग्राह्याद्विप्रस्थामलव-
र्जिता । ततःकृत्वाचतत्पाकंचतुस्तारंमनोरमम्॥तस्मिन्सं-
मिश्रयेच्चेदंवक्ष्यमाणंगणंक्षिपेत् । लवंगमेलामरिचंबादामंच
निकोटकम् ॥ इदंकृत्वापृथक्छाणंखंडशोऽतीवशोभनम् । मो-
दकानस्यलोलाक्षिकल्पयेदाम्रमानकान् । इत्येवंमाषपिष्टस्य
कल्पयेल्लड्डुकानपि । वेसनस्याप्यतोवक्ष्येपृथक्कृत्वागुणा-
नहम्॥लघवोवातपित्तघ्नाःशीतवीर्याहिमुद्गजाः । सेवितास्त-

रुणैरेते वातघ्नास्तृप्तिकारकाः॥ चाणकावातलारूक्षाःशीता विष्टंभिनोमताः । रोचकालघवोबालेपित्तरक्तकफापहाः ॥

अर्थ-मूंगकी बारीक चून ६४ तोलेको घी ६४ तोलेमें भूने फिर २ प्रस्थ खाँडकी चौतारी चासनीकर उसमें वो भुनाहुआ मूंगका चून और लोंग इलायचीके बीज, काली मिरच, बादाम, और पिस्ता, इनके टुकडे करके मिलावे और चार चार पांच पांच तोलेके अनुमान लड्डू बांधे, इसीप्रकार उडदके चूनके और चनेके चूनके बेसनी लड्डू करे । अब इनके पृथक् पृथक् गुण कहतेहैं । मूंगके मुक्तामोदक हलके वातपित्तनाशक, और शीतवीर्यहैं । माषमोदक कहिये उडदके लड्डू गरम, वृष्य, भारी, स्निग्ध, बलकारी, तरुण पुरुषके सेवन करनेसे वातघ्न तथा तृप्तिकर है । बेसनी लड्डू वातकारक, रूक्ष, तथा शीतल, मलस्तम्भकारक, रुचिकारी तथा हलके होनेसे पित्तरक्त और कफसंबंधी रोगोंको नाश करता जानने ।

अथ होलकमोदकाः ।

होलकंचणकादीनांशोषयेदातपेततः । स्थूलंपिष्ट्वातुप्रस्थैके घृतंप्रस्थंविनिःक्षिपेत् ॥ द्विप्रस्थांशर्करामेवबादामादीन्यथारुचि । बंधयेन्मोदकांस्तस्यमिश्रयित्वाऽश्रमानकान् ॥ दुर्जरागुरवःशीतावातमेदःकफप्रदाः । श्रमघ्नाग्राहिणोरूक्षाइमे होलकमोदकाः ॥

अर्थ-चनाके बूंट आदि फलीके धान्योंको धूपमें सुखाय चाकीसे मोटा-पीस एक सेरमें घी एकसेर डालके भूने फिर २ सेर बूरा और बदामकी मिंगी आदि मसाला डारकर लड्डू बनावे ये लड्डू दुर्जर, भारी, तथा शीतल, एवं वात मेद तथा कफ इनको करेहैं । और श्रमनाशक, मलग्राही, और रूक्षहैं ।

एवमुंव्याश्चकर्तव्यामोदकागुरवोहिते ।
वृष्याःश्लेष्मप्रदाःप्रोक्ताबल्याःपित्तानिलापहाः ॥

अर्थ-बूंटके लड्डूके सदृश अन्य कच्चे अन्नके लड्डू करने चाहिये ये भारी, वृष्य, कफकारी, बलकारक, और वात तथा पित्त रोगनाशक हैं ।

अथ बीजमोदकाः ।

कूष्मांडकारिबीजानिनिस्तुषीकृत्यभर्जयेत् । घृतेचापिसि-

तापंकेक्षिप्त्वाकुर्याच्चमोदकान् ॥ तेबीजमोदकावृष्याःशीतलागुरवोमताः। शुक्रलामधुराबल्याःस्थौल्यवर्णकफप्रदाः॥ रक्तदोषंतथावातंपित्तंसन्नाशयंत्यये। बालेभुक्त्वापिनारीणां तोषकोनाभवेद्ध्रुवम् ॥

अर्थ--अब बीजमोदक अर्थात् बीजोंके लड्डू बनानेकी विधि और गुणदोष कहते हैं। पेठा, तरबूज, घीया इत्यादिके बीजोंको छील घीमें भूने फिर खांडकी चासनीमें डाल लड्डू बनाय लेवे ये लड्डू वृष्य, शीतल, भारी, वीर्यवर्द्धक, मधुर और बलकारी एवं स्थूलता, कांति; तथा कफ, इनको करे और रक्तदोष वायु और पित्त इनको नाश करेहैं।

अथ शालूकमोदकाः ।

शालूकंनिस्त्वचंकृत्वापाचयेदंबुनाशनैः । संपेष्यवटकान्कृत्वापाचयेत्तान्घृतेप्रिये। ततःसंचूर्णयित्वातुसितापाकेविमिश्र्यच । बंधयेन्मोदकांस्तस्यविष्णवेतान्समर्पयेत् ॥ किंवासंपाच्यसंपेष्यकृत्वातंतून्घृतेपचेत् । संक्षिप्यशर्करापाके मोदकान्रचयेत्प्रिये ॥ शालूकमोदकारूक्षादुर्जराःकफनाशनाः। किंचित्कषायाःपित्तघ्नाःशूलाध्मानकरामताः । विष्टंभकरणाःख्याताःशीतसंनाशनास्तथा । एवंशृंगाटकादीनां मोदकान्रचयेत्प्रिये ॥ गुणाःकंदानुमानेनकल्पयेच्चनिघंटुतः। ग्रंथभूयस्त्वभीतोहंनब्रवीमिविधिंपृथक् ॥

अर्थ--अब शालूक (कमलकंद) के लड्डूओंकी विधि कहतेहैं कमलकंदके ऊपरके छिलकेको चाकूसे दूरकर उनको सिजावे जब सीज जावे तब उनको पीसके बडे करे उनको घीमें सेके फिर उसको कूटकर चासनीमें मिलाय लड्डू बनाय लेवे। अथवा कमलकंदको सिजाय और पीसकर सेव करे उन सेवोंको चासनीमें तलके लड्डू बनावे । ये लड्डू रूक्ष, दुर्जर, कफनाशक, कषेले, पित्तनाशक, शूल करता, अफराकारक, मलस्तंभकारी, और शीतनाशकहैं। इसीप्रकार कसेरू, सिंघाडे, आदिके लड्डू करने चाहिये उनके गुण उसी उसी कंदके समान जानने जिनको इनके गुण देखनेकी इच्छा होय वो इस ग्रंथके निघंटुभागमें जो पीछे छपेगा उसमें देखलेना इसजगे ग्रंथविस्तारके भयसे नहीं लिखे।

अथ क्षीरशाकाकृतिगुणाः ।

दुग्धंवादधिवातक्रेसमभागेनमेलयेत् । ततोयावद्द्रवेत्पिडंतावदेवविपाचयेत् ॥ शर्करापूरणेनैवतस्यकार्याचचक्रिका । घृतेसंपाचितासातुक्षीरशाकेतिकथ्यते ॥ कफदापुष्टिदागुर्वीवृष्याहृद्याप्रकीर्तिता । वाताग्निनाशनीचोक्तादीप्ताग्नीनांहितामता ॥ व्यवायिनामनिद्राणांसुहितेपरिकीर्त्तिता ।

अर्थ–दूध अथवा दहीको छाछमें समान भाग मिलाय अग्निपर पचावे जब औटते औटते गोला होजावे तब उसमें बूरा मिलाय टिकिया करे और उनको घीमें तले इसको क्षीरशाका कहतेहैं । यह क्षीरशाका कफ और पुष्टिको करे, भारी, वृष्य हृदयको बल देनेवाली, और वायु तथा जठराग्नि इनको नाश करे उसीप्रकार जिनकी जठराग्नि तीव्रहो उनको और जो निरंतर मैथुन करनेवालेहैं उनको और जिनको निद्रा नहीं आतीहो उनको हितकारीहै ।

अथ निष्पंदः ।

दधिदुग्धेसमेकृत्वापचेदर्द्धविशेषकम् । तस्मिंस्तिलांस्तंदुलांश्चारकंपनसास्थिच ॥ मातुलुंगस्यखंडानितस्मिन्दुग्धसमंघृतम् । सितांनिक्षिप्यविपचेत्तस्मिन्व्योषंसचंद्रकम् ॥ निक्षिप्योत्तार्यनिष्पंदोधातुवृद्धिकरोगुरुः । हृद्यश्चवातपित्तघ्नोमुनिभिःपरिकीर्तितः ॥

अर्थ--दही और दूध समभाग एकत्र कर अर्धशेष रहनेतक औटावे फिर उसमें तिली, चावल, चिरोंजी, पनसकी गुंठली, बिजोरेके टुकडे तथा दूधके समान घी और बूरा डालकर जबतक नरम खोहा न होय तबतक औटावे औटते समय उसमें सोंठ, मिरच, पीपल, और कपूर डालके उतार लेवे इसको निष्पंद कहतेहैं । यह निष्पंद धातुवर्द्धक, भारी, हृदयको बलकर एवं वातपित्त संबंधी रोगोंको दूर करे ।

अथ पललम् ।

पललंतुसमाख्यातमैक्षवंतिलपिष्टकम् । पललंमलकृद्वृष्यंवातघ्नंकफपित्तकृत् ॥ बृंहणंपौष्टिकंस्निग्धंगुरुमूत्रनिवर्त्तकम् ।

अर्थ--तिल और गड इन दोनोंको एकत्र कर कूटे फिर उसके लड्डू बाँधे

इनको संस्कृतमें पलल और भाषामें तिलकुट वा तिलभुग्गा कहते हैं । यह मलवर्द्धक, वृष्य, वातनाशक, कफपित्तकारक, धातुवर्द्धक, पुष्टिकारी, स्निग्ध तथा भारी एवं मूत्रनाशक है ।

अथ तिलमोदकाः ।

वितुषान्सुतिलान्भर्ज्यगुडपाकेनमोदकान् ।
कृत्वातेचसमीरघ्नावीर्यपुष्टिबलप्रदाः ॥

अर्थ--तिलका छिलका दूर कर भूने और उसमें गुडकी चासनी मिलाय लड्डू बाँधले ये तिलके लड्डू वातनाशक और वीर्य पुष्टि और बलको देते हैं ।

अथ मुद्गदलमोदकाः (मूंगदलके लड्डू)

समाज्यशर्कराःकांतेमुद्गसक्तुविनिर्मिताः। एलादिचूर्णसंयुक्ता घर्मर्त्तौहितकारकाः॥प्रियेमुद्गदलाख्यास्तेमोदकाःपरिकीर्त्तिताः।

अर्थ--अब मुद्गदल मोदककी विधि कहते हैं, भूनेहुए मूंगके चूनमें बराबरका घी और बूरा तथा इलायचीके दाने आदि मसाला मिलाय लड्डू बाँधे, इसको मुद्गदलके लड्डू कहते हैं। ये मूंगदलके लड्डू उष्णकाल अर्थात् गरमियोंमें हितकारी हैं ।

अथ पायसमाह ।

दुग्धेषोडशप्रस्थेसुतंडुलानांप्रस्थैकंकांते ।अथवाप्रस्थद्वितयं मंदवह्निनाविपाचयेच्छनकैः ॥ नातिद्रवंघनकुचेनातिघनंभो यदामधुसमंस्यात् । उत्तारयेत्कदुष्णोसिताऽष्टमांशाप्रक्षेप्या-पयसः ॥ घृतंसितार्धबहुलारजःपलैकंमृद्वीकाष्टपला । वादा-मस्यशरावंक्षिपेत्पायसेहिखंडशःकृत्वा ॥ तत्पायसंनितंवि-निधातुवर्द्धकंचदुर्जरंबल्यम्।विष्टंभ्यरुचिकफकरंमेदोवृद्धिप्र-दंचगुरुकांते ॥ कुरुतेचअग्निमांद्यंलोहितपित्तप्रणाशनंख्या-तम् । हरतेपित्तंवातंहरयेसततंनिवेदयेच्चततः ॥

अर्थ--अब चामलकी खीरके बनानेकी विधि कहते हैं, दूध १६ शेरमें १ शेर अथवा २ शेर चावल डालकर उसको मंदमंद अग्निसे पक्क करे, पक्क करते समय कौंचासे बारबार चलाताजाय तदनंतर सहतके समान गाढी हो जावे तब उतारकर उसमें २ शेर बूरा, १ शेर घी, चार तोले इलाइची-का चूर्ण, आठ पल किसमिस, बदामके टुकडे ८ पल डालके कौंचासे चलाय

देवे इसको पायस कहते हैं। यह पायस धातुवर्द्धक, दुर्जर, भारी, बलदायक तथा विष्टंभी, एवं अरुचि, कफ, मेद, और अग्निमांद्य इनको करे हैं। उसीप्रकार रक्तपित्त तथा वादीको दूर करे।

अथ नालिकेरपायसगुणाश्च।

दुग्धेचनालिकेरंसूक्ष्मंकृत्वाविपाचयेच्छनकैः। नातिद्रवंघनंवासिताज्यबहुलागोस्तनिकादियुतम्॥ तत्स्निग्धंचशीतलं गुर्वतिमधुरंसुपौष्टिकंवृष्यम्। वातंचरक्तपित्तंतथाम्लपित्तंविशेषतोजयति॥

अर्थ—अब नारियलकी खीर बनानेकी विधि कहते हैं,नारियलकी गिरीको बारीक कतर अथवा उसको घीयाकसमें कसके पूर्वोक्त विधिके समान दूध आदि लेकर खीरकरे यह खीर स्निग्ध, शीतल, भारी, अत्यंत मधुर, पौष्टिक तथा वृष्य होकर वात, रक्तपित्त, और अम्लपित्त इनको नाश करे।

अथ लप्सिका (सीरा)

प्रस्थैकासमिताकांतेतत्समंसर्पिरंगने। भर्जयित्वायदापश्येत्कणशश्चघृतंपृथक्॥ भर्जितेतिविजानीयात्तदेयंसमिताप्रिये। ततःकृत्यंप्रवक्ष्यामित्वंशृणुष्वसमाहिता॥ प्रस्थैकासार्द्धप्रस्थावाद्विप्रस्थावासुशर्करा। त्रिप्रस्थेक्षीरकेनीरेवाविपाच्याप्रयत्नतः॥ मलमुत्तार्यतन्नीरंतत्कटाहेविनिक्षिपेत्। यत्रसासमितापक्काज्वलच्चुल्युपरिस्थिता॥ततःसंचालयेद्दर्व्या यावदाज्यंनदृश्यते। मरिचश्रीसुमैलानांततश्चूर्णंविमिश्रयेत्॥ ततःसंचालयित्वातुसमुत्तार्यनिधापयेत्। प्रोक्तासालप्सिका गुर्वीवृष्यास्निग्धाबलप्रदा। धातुश्लेष्मकराचापिमधुरारसपाकतः। वातापित्तप्रशमनीकमनीयगुणालये॥

अर्थ—इसको कोई सीरा और कोई देशके मनुष्य इसको मोहनभोग कहते हैं गेहूंका चून १ शेर ले उसको शेरभर घीमें भूने जब भूनतैं भूनतैं उस चूनके किनका पृथक् पृथक् और कुछ लाल हो जावे तथा उनमेंसे घी बाहर निकलने लगे तब जानेकी चून भुनगया, पीछे उसी प्रकार एक अथवा डेढ किंवा दोशेर बूरा तीनशेर दूध अथवा पानीमें भिगोकर औंटावे जब ऊपर उसके मैलकी

मलाई आवे उसको निकालडाले इसप्रकार दूध प्रथम तयार कर उस भुने हुए चूनमें मिलावे। और कौंचासे चलाताजाय जब चलाते चलाते कुछ घी पृथक् दीखने लगे तब उसमें काली मिरच, लोंग, छोटी इलायची, इनका चूर्ण करके डाले सबको मिलाय कढैयाको उतार लेवे। यह मोहनभोग भारी, वृष्य, स्निग्ध, बलदायक, धातु तथा कफवर्धक, रसकालमें तथा पाककालमें मधुर और वातपित्तनाशक है।

अथ भैमीलप्सिका।

प्रियेभैमीलप्सिकायाविधिरन्यस्तुपूर्ववत्। समानाशर्करा पिष्टादंबुजाक्ष्यपरंशृणु॥ नालिकेरस्यमज्जानंसूक्ष्मंखर्जूरमंगने। द्राक्षामेलांत्वचंविश्वंमरिचंकृत्यखंडशः॥ निःक्षिप्य चालयेद्दर्व्यासमुत्तार्यनिधापयेत्।इयंगुणैर्लप्सिकेवशीतकाले हितावहा॥

अर्थ-इस भैमीलप्सिकाकी विधि मोहनभोगके समान है, परंतु इसमें बूरा चूनके समान लेना चाहिये तथा बारीक कतरे हुए गिरी, छुहारे, दाख, इलायची, दालचीनी, सोंठ काली मिरच, इनके टुकडे कर डाले तो भैमी लप्सिका बने इसके गुण लप्सिकाके समान है। परंतु यह शीतकालमें विशेष सुखदायक है।

अथ चंद्रहासा लप्सिका।

चंद्रहासालप्सिकायाःपाकंकुर्याद्धिपूर्ववत्। घृतंपिष्टसमंक्षीरं द्वयोस्तुल्यंसितापिच।कर्पूरमेलांमरिचंक्षिप्त्वासंचालयेत्ततः। समुत्तार्यभजेदेषावृष्याबल्याकफप्रदा। धातुसंवर्द्धिनीगुर्वी वातपित्तहरामता॥

अर्थ-चंद्रहासा लप्सिकाकी विधि पूर्वोक्त प्रमाण है, विशेषता इतनी है कि, इसमें घी सूजीके समान और दूध दोनोंके समान तथा बूरा दूधके समान डालना चाहिये, जैसे-सूजी १ भाग, घी १ भाग, दूध २ भाग, और बूरा २ भाग, उसीप्रकार भीमसेनी कपूर, इलायची, काली मिरच, इनका चूर्ण करके डाले यह चंद्रहासा लप्सिका वृष्य, बलदायक, कफकरता, धातुवर्धक, तथा भारी है। और वातपित्तनाशक है।

अथ फेनिका।

समितामरविंदाक्षिकिंचिदाज्यविमिश्रिताम्। मर्दयेदंबुनागाढां

कारयेद्वर्त्तिकास्ततः ॥ सन्निधायसजूःसर्वाःकाष्ठदंडेतुवेष्ट-येत् । ताश्चच्छुरिकयाखंड्यपुनःस्थाप्यसुपट्टके ॥ घृतनीर-युतेनैवशालिचूर्णेनलेपयेत् । पुनःसंवृत्यचैतासांलोम्नींसम्य-क्प्रकल्पयेत् ॥ वेल्लयेत्तांततःस्थूलामंगुलोत्सेधकांपचेत् । घृतेपक्वांसमुद्धृत्यासितापाकेनवेष्टयेत् ॥साज्यैषाफेनिकागुर्वी बृंहिणीबलपुष्टिदा । मधुरादीपनीरुच्यावातपित्तहरास्मृता ॥

अर्थ–मैदामें घीका मोयन देकर उसको गाढी उसने फिर घृत लगाकर अच्छी रीतिसे जबतक नरम न होवे तावत्कालपर्यंत उसका मर्दन करे फिर उसकी सैमईके समान बत्ती करे उन सबको एक लकडीसे लपेट देवे पश्चात् छुरीसे कतर टुकडे कर फिर उन टुकडोंको पटेपर धरके उनमें चामलोंकी चून घी और पानी समान भाग मिलाकर लेपकरे और गोलाकर एक अंगुल मोटा वेले फिर घृतमें सेके जब पक्कहोजावे तब उनको निकाल एकतारी चासनीमें पाग लेवे इसको फैनी ऐसे कहतेहैं । यह फेनी भारी, धातुवर्धक बलकर, पुष्टिकारक, मधुर, दीपन, रुचिकारी, तथा वातपित्तहरहै ।

अन्यः प्रकारः ।

समितांपूर्ववन्मर्द्यकारयेद्वर्तिकाश्चताः । घृताक्ताःसंहताःस-र्वाःपीठस्योपरिधारयेत्॥वेल्लयेद्वेल्लनेनैतायथैकापर्पटीभवेत्। शकटंलेपयेत्तस्यांततःशस्त्रेणखंडयेत् ॥ एकीकृत्यततोलो-म्नींकल्पयेद्वेल्लयेत्ततः।एवंवारत्रयंकृत्यवेल्लयेदंगुलोच्छ्रिताम्॥ ततस्तांपाचयेदाज्येफेनिकांपूर्ववद्गुणाम् ।सुगंधयाशर्करयात-दुद्धूलनमाचरेत् ॥

अर्थ–फेनीकी दूसरी विधि कहतेहैं । मैदाको पूर्वोक्त रीतिसे उसनकर उसकी बत्तीकर उसमें घी लगाय एकसे एक मिलाय मैदाके ऊपर धर देवे, और चकलावेलनसे वेल उनकी एक पापडीकरे फिर उसके ऊपर सकट (सां-ठा) लगाय छुरीसे टुकडे करे उन टुकडोंको एकके ऊपर दूसरा धरे फिर उ-नको वेलें इसप्रकार तीन बार करे तथा एक अंगुलभर मोटी वेलकर घीमें सेके फिर इसके ऊपर खांडकी चासनी चढावे; इसके गुण पूर्वोक्त फेनीके समान जानने ।

शकट।

शकटंवदकंजाक्षशृणुकंजविलोचने ।
शालिचूर्णघृतंनीरंमथितंशकटंभवेत् ॥

अर्थ–हे प्राणप्रिय! आप सकट कहो हे कुंजविलोचने ! चावलोंका चून, घी, और पानी इन तीनों पदार्थोंको समान लेकर मिलनेको सकट कहतेहैं ।

अथ पत्रफेणिका।

धौततंदुलजंपिष्टंमर्दितंपयसाद्रवम्।निशिपर्युषितंप्रातःपुनर्नीरेणमर्दयेत् । वटादिपत्रकेतच्चपत्रवत्परिलेपयेत् । किंचित्तोयान्वितेभांडेतृणगर्भेविपाचयेत् । लघ्वीवृष्याकषायेयं वातघ्नीपत्रफेनिका।

अर्थ--धुले हुए चामलोंके चूनको रात्रिमें पानीमें भिगोकर धरदेवे तथा प्रातःकाल थोडा पानी डालकै मथे फिर वडके पत्तेपर अथवा दूसरे पत्तेपर उसका पतला लेप करे फिर एक पात्रमें थोडा पानी भरके उस बर्तनको आधा तिनकोसे भरदेवे उन तिनकोंके ऊपर पूर्वोक्त लेप करे हुए पत्तोंको धरके अग्निसे पक्क करे जब उस पत्तेपर वह चामलका चून पक्क होजावे तब उस पत्तेपरसे उचेल घृतमें पक करे इसको पत्रफेनी कहते हैं। यह पत्रफेनी हलकी, वृष्य, कषेली, और वातनाशक है।

गोधूमसंभवालघ्वीछर्दिघ्नीपत्रफेनिका । रुच्याबल्याऽम्लपित्तघ्नीदाहघ्नीचप्रकीर्त्तिता। माषजाबृंहणीगुर्वीस्निग्धाबल्या चशुक्रला। स्त्रीषुहर्षप्रदाकांतेकीर्तितापत्रफेनिका।

अर्थ--गेहूंकी पत्रफेनी हलकी, वांतिनाशक, रुचिकारी, व बलकारी, एवं अम्लपित्त और दाह इनको नाश करे उडदकी पत्रफेनी, भारी, धातुवर्द्धक, स्निग्ध, बलकारी, वीर्यवर्द्धक, और वृष्य है।

अथ तंतुफेनिका।

ईषत्सैंधवसंयुक्तांसमितामलिकुंतले । घनंसंमर्द्यसंकुट्यकृत्वामृदुतरांततः । सेविकारचयेत्तस्यास्ताभिःकंजविलोचने। विचित्रंरचयेद्गुच्छमुष्णीषाकारमेवच । तस्योपरिघृतं लिंपेन्माथितंनवनीतवत्॥पुनःसवेष्टयेत्ताभिःकिंचिदाकर्ष्यंव-

र्द्धयेत्।घृतेसंपाचयेत्तस्यांपचंत्यांसंविचालयेत् । सूक्ष्माभि-श्चशलाकाभिःसुपक्वांतुसमुद्धरेत् । अन्यपात्रेतुसंस्थाप्यंसि-तामुपरिनिःक्षिपेत्। बृंहणीग्राहिणीवृष्याशुक्रलाचात्रिदोषहा। लघ्वीचमधुरापाकेतन्वंगिरुचिकारिका । बालेबलवतिप्रो क्तावल्यैषातंतुफेनिका।

अर्थ-मैदामें थोडासा सैंधानिमक मिलाय फिर पानीसे उसने और मुक्की देकर उसको नम्र करे पीछे उसके सेवसे बनाय पगडीके समान लपेटा देकर गोल करे फिर उसके ऊपर पानीमें घी मथकर जब मक्खनके समान होजावे तब लगावे फिर उसको मालाके समान लंबी करे और फिर उसीप्रकार छोटीसी घडी करे उसको घृतमें तले और तलतेसमय बारीक काँटेसे चलाताजाय जब परिपक्व होजावे तब उतारकर वक्खरमें डाल खांड चढा-यकर निकास लेवे यह तंतुफेनी अर्थात् तारफेनी सप्तधातुवर्द्धक, मलको बाँधनेवाली, वृष्य, वीर्यवर्द्धक, त्रिदोषनाशक, हलकी, पाकके समय मधुर, रुचिकारी और बलदायक है।

अथ गुलोरिका (शक्करपूरी)

समितातोऽष्टमंभागंघृतंसम्यग्विमिश्रयेत् । घनंनीरेणसंमर्द्य कुर्याच्चैवातिकोमलाम्। ततःपिचुमितांनीत्वाकृत्वालोम्नींम-ठाकृतिम्। शर्करांपूरयेत्तस्यांमुद्रयेत्तन्मुखंदृढम् । ततस्तां वेल्लयेद्बालेवर्तुलांपूलिकाकृतिम् । मंदाग्नौपाचयेदाज्येसाच ख्यातागुलोरिका । गुर्वीयंललनेवृष्याधातुसंवर्द्धिनीमता । वातपित्तप्रशमनीकारयेच्चगुडेनवा ।

अर्थ-गेहूंकी मैदामें आठवाँ हिस्सा घी डालके गाढी उसने फिर कुछ जलके छींटे देकर और मुक्की देदे कर नम्रकरे फिर उसमेंसे अनुमान १ तोलेकी लोई तोड मूंसके समान कर उसमें मिश्रीका महीन चूराभर और मुखबंदकर उसको चकला वेलनसे चंद्रमाके समान गोल वेलकर तत्ते घीमें छोडदेवे जब सिकजावे तब निकासले इसको गुलोरिका अर्थात् शक्कर भरी पूरी कहतेहैं। यह गुलोरिका भारी वृष्य सप्तधातुको बढानेवाली और वात्तपित्तनाशकहै इस गुलोरिकाको गुडकीभी करतेहैं इसीप्रकार मेवाकी पूडी बनातेहैं।

अथ दुग्धकूपिका (गुलाब जामुन)

दुग्धमम्लेनसंभेद्यपाचयेन्मंदवह्निना । गाढीभूतेप्रियेतस्मिन्पिष्टंतंदुलजंसमम्। मिश्रयित्वा च रचयेत्कूपिकांजंबुसन्निभाम् । अतीवरम्धीयांचपाचयेद्गोघृतेततः । घनंसम्यक्छृतंदुग्धंतस्यामेवप्रपूरयेत् । पश्चात्तेनैवपिष्टेनमुखंतस्याविमुद्रयेत्। पुनस्तस्यामुखंयुक्त्यापाचयेद्दैघृतेततः । चतुस्तारे सितापाकेप्लावयित्वासमुद्धरेत् । अथवाजंबुसदृशंकृत्वापिंडंविपाचयेत् । तस्यमध्यंतुशस्त्रेणयत्नान्निष्कास्यपूर्ववत्। दुग्धेनपूरयेद्वक्रंमुद्रयेत्पिष्टकेनच। पाचयेद्वेष्टयेत्तद्वत्सितापाकेनशोभनम्। सादुग्धकूपिकाख्यातागुर्वीबल्याचशीतला। वातपित्तहराख्याताशुक्रलातृप्तिपुष्टिदा ।

अर्थ–प्रथम दूधमें इमली आदि खटाईका रस डालकर कुछ गरम करे जब फटजावे तब फिर खूब अग्निदेवे जब जानेकि अब थोडी देरमें खोहा होनेवालाहै उससमय बराबरका चांवलका चून मिलावे फिर उसमेंसे थोडा चून लेकर उसकी जामुनके समान पोली कुप्पीसी बनाय तत्ते घीमें छोडदेवे जब वो सिकजावे तब निकाल उनके भीतर गाढा गाढा दूध भरे और उनका मुख उसी चूनसे बंद करदेवे फिर उनके केवल मुखमात्रको घीमें सेक निकासलेवे, फिर खांडकी चौतारी चासनीमें उनको भिगोकर निकास लेवे, अथवा उस पूर्वोक्त खोहेकी जामुनके समान गोली बनाय घीमें सेकलेवे फिर उनको निकाल छुरीसे चीरके उनके भीतरसे खुरचके पोली करे और उनमें गाढा गाढा दूध भर मुख, बंद कर घीमें तलके निकासले उनपर चासनी चढावे इसको दुग्धकूपिका कहतेहैं और भाषामें उनको गुलाबजामुन कहतेहैं। ये गुलाबजामुन, भारी बलकारी, शीतल, वातपित्तनाशक, वीर्यवर्द्धक तृप्तिकर और पुष्टिकारकहै ।

अथ शालिपूपकृतिगुणाः (अँदरसे)

धौततंदुलजंपिष्टंघृतमिश्रंगुडांबुना । संमर्द्यापूपकंकृत्वातस्यैकांगेचखाखसम्। लग्नंकृत्वाततश्चाज्येपाचयेच्छालिपूपकम्। शालिपूपोरुचिकरोवृष्यःस्निग्धश्चशीतलः । अतीसारप्रशमनोमतःशुक्राभिसारिके ।

अर्थ—धूलेहुए चावलके चूनमें थोडा घी मिलायकर फिर गुडके पानीसे उसने फिर उसकी लोई तोडकर पूडीके समान वेले और उसके एक और खसखसके दाने लगायके घीमें सेकै इसको शालिपूप कहतेहैं। कोई अँदरसे कहतेहैं । ये शालिपूप रुचिकारी वृष्य, स्निग्ध, तथा शीतल है । एवं अति-साररोगका नाशक है ।

अथाऽऽपूपकृतिगुणाः (पूआ)

समितामभितानंदेमर्दयित्वागुडांबुना । घृताक्तांचततोनी-त्वाबिल्वंबिल्वपयोधरे। वेल्लनेनतुसंवेल्यचंद्रमंडलसन्निभम्। वर्त्तुलंपाचयेदाज्येसिद्धंज्ञात्वासमुद्धरेत् । आपूपोयंविलो-लाक्षिपुष्टिदोऽतिगुरुस्तथा । वातपित्तहरोबल्योहृद्योवृष्यो रुचिप्रदः ।

अर्थ—मैदाको गुडके पानीसे उसनकर उसमेंसे चार तोले लेकर पूडीके समान वेलकर घीमें सेके इसको अपूप (पूआ) कहतेहैं । ये अपूप पुष्टिकारी, भारी, वातपित्तनाशक, बलकारी, हृदयको बलदेनेवाले वृष्य, और रुचिदा-यकहै । इसीप्रकार खांडके पूआ बनतेहैं । और कोई मैदाकी प्रतिनिधी गेहूं-का चून डालते हैं ।

अथ दधिपूपकृतिगुणाः ।

घनदध्नाघनंमर्द्यशालिपिष्टंघनस्तानि । कारयेद्वटकाकाराना ज्येसंपाचयेत्ततः । चतुस्तारेसितापाकेमज्जयित्वासमुद्धरेत्। दाधिपूपाइमेवृष्यारुच्याधातुप्रवर्द्धनाः । अग्निमांद्यप्रदाब-ल्याःश्लेष्मलादाहतृड्हराः।वातपित्तहराहारलसत्पीनपयोधरे ।

अर्थ—चावलके चूनको दहीमें उसनकर उसके वडे बनावे उनको घीमें सेक खांडकी चौतारी चासनीमें तले ये दहीके पूआ वृष्य, रुचिकारी, धातु-वर्द्धक, मंदाग्निकारक, बलकर्त्ता, तथा कफकारक, एवं दाह, तृषा, वात, और पित्त इनको नाश करतेहैं ।

अथ चिरमंठकृतिगुणाः ।

समितामभितानंदेसर्पिषाक्तांविमर्दयेत् । घनामद्भिर्घनोरो-जेततःकुर्यादमुंविधिम्।किंचित्किंचिज्जलंदत्वामर्दयेद्धिपुनः-पुनः । सुचिरंकोमलांकृत्वाकोमलांगिमनोहरे । ततःपूगामि-

तंनीत्वावेल्यकृत्वाचपर्पटीम् । सूक्ष्मांपत्रनिभामेवंबह्वीःकृ-त्वानिधापयेत् । आज्यलिप्तास्ततस्तास्तुस्थापयेदुपर्य्यू-परि। यावद्व्यंगुलमुत्सेधंततःकिंचिच्चवेल्लयेत् । ततःशस्त्रेण संखंड्यत्र्यंगुलोन्मानकानि च । खंडान्येवपुनर्वेल्यतनूकृ-त्यप्रयत्नतः । चतुःकोणान्पचेदाज्येशर्कराढ्यांश्चभक्षयेत् । चिरमंठाइमेबल्यावृष्याधातुप्रवर्द्धनाः । गुरवोवातपित्तघ्नाः पुष्टिदाःपरिकीर्त्तिताः ।

अर्थ–मैदामें थोडासा मोयन देकर मिलावे फिर उसे पानी डालकर भिजोवे तदनंतर थोडा पानी देकर वारंवार उसनकर नरमकरे फिर उसमेंसे सुपारीके समान लोई तोड गोलकर चकलापर वेलनीसे पतली पत्तेके समान वेले इसप्रकार बहुतसी पापडी वेलके उनमें घृतलगाय एकके ऊपर दूसरी धरे इसप्रकार धरनेसे जब दो अंगुलके अनुमान मोटी घडी होजावे तब उसको फिर कुछ वेलकर छुरीसे तीन तीन अंगुलके टुकडेकरे उन प्रत्येक टुकडोंको वेलकर घीमें सेंकै इनको बूरेके साथ खाय ये चिरमंठ बलदायक, वृष्य, धातुवर्द्धक, भारी, वात पित्तनाशक और पुष्टिदायकहै । इनको महा-राष्ट्भाषामें चिरोंटे कहते हैं ।

अथ खाजा (खजला)

अंभसित्रिदिनंप्लाव्यतंडुलांस्त्रिःप्रमार्जयेत् । शोषयेदातपे तेषांपिष्टंवस्त्रविगालितम् । तत्समंचघृतंगाढंमिश्रयित्वाप्रमं-थयेत्।स्थापयेत्तच्छुभेपात्रेततःकुर्यादमुंविधिम्।समितामुभ योस्तुल्यामंभसामर्दयेद्दृढम् । कांतेचातिघनांकिंचिदाज्यलि प्तंविकुट्टयेत् । भूयोभूयःप्रयत्नात्तद्गोलकंदृषताऽश्मनि । या-वन्मृदुतरंपश्चाच्छिलायांसंप्रसार्यच। तत्रगर्त्तान्यंगुलीभिःक-ल्पयित्वाप्रपूरयेत् । साज्यंतत्पिष्टकंयावद्गर्तपूरंमनोहरे। त-तस्तद्द्विगुणीकृत्यकुट्टयेच्चापिपूर्ववत् । एवंवारत्रयंकृत्वात-तोनीत्वाऽक्षकंपृथक् । किंचिद्विस्तार्यांगुलीभिःकृत्वागर्ता-निपाचयेत् । घृतेखाजेतिविख्याताभुक्ताशर्करयानरैः । स्त्री-

षुहर्षकरीह्येषागुर्वीपित्तानिलापहा। शुक्रलामधुराकांतेमधु-राधरपल्लवे ।

अर्थ-चामलोंको ३ दिन पानीमें भिजोवे, फिर तीन दिनके उपरांत तीन वार जलसे धोय शुद्धकर धूपमें सुखावे, फिर उनको पीस उनके चूनको कपडे में छानलेवे, फिर चावलके चूनके समान गाढा घी मिलावे, फिर इनदोनोंको खूब मथकर एक उत्तम पात्रमें भरिकै धरदेवे, तदनंतर उसके समान गेहूंकीमैदा लेकर उसको पानीसे उत्तम रीतिसे सानकर उसको ओखलीमें डाल मूसलके वारंवार घी लगाकर कूटे इसप्रकार कूटकर नरम करे, तदनन्तर उस कुटी-हुई मैदाको एक स्वच्छ पट्टेपर रोटीके समान करके फैलाय देवे,उसमें पांचो उँगलियोंसे गड्ढा करे, और ऊपर कहाहुआ चावलका चूनके लेपसे उन गड्ढोंको भरदेवे फिर उसकी घडी करके और गोल करके कूटे, ऐसे ३ वार करे उसमेंसे फिर सुपारीके समान लोई ले हाथोंसे चपटी करके उसमें पांचों उँगलियोंसे गड्ढाकर घृतमें सेके इसको खाजा अर्थात् खजला ऐसे कहते हैं। इसको बूरेके [अथवा दूध बूरेके] साथ भोजन करनेसे वृष्य, भारी, वात तथा पित्तनाशक धातुवर्द्धक और मधुर है ।

अथ मल्लपूपः (मालपूआ)

गोधूमपिष्टकंप्रस्थंगुडंपादोनप्रस्थकम् । शर्कराचेत्समानीरे घोलयेत्तेनवारिणा । पिष्टंविलोडयेत्तावज्जलंदत्वापुनःपुनः । यावन्माक्षीकतुल्यंस्यात्ततःकृत्वात्विमंविधिम् । लोहमय्यांत-त्रिकायांशरावैकंघृतंक्षिपेत् । तस्मिंस्तप्तेतुतद्धोलमाभ्रमानं चनिःक्षिपेत् । विस्तृतंचंद्रबिंबाभंघृतोपरितरेद्यदा । तदाप्र-वर्त्तयेत्पश्चात्सिद्धंज्ञात्वासमुद्धरेत् । मल्लपूपइतिख्यातोवा-तपित्तहरोगुरुः । बल्योऽयंमधुरोवृष्योहृद्योरुच्यः कफप्रदः ।

अर्थ-गेहूंका चून १ शेर, तथा गुड तीनपाव, यदि खांड होवे तो चूनके बराबर ले, तदनंतर गुड अथवा खांडको पानीमें भिगोवे उस पानीमें चून डालके खूब मथे इसप्रकारकी उस पानीको मथते मथते सहतके समान पतला होजावे तब चूल्हेपर तई चढावे जब तईका घी खूब गरम होजावे तब उस मथे हुए पानीमेंसे चार चार तोले लेकर उस घीमें छोड देवे,वो फैलके घीके ऊपर आय जावेगा उसको पोनीसे पलट कर दूसरी ओरसे सेकै जब अच्छी

रीतिसे सिकजावे तब उसको निकासले इसको मल्लपूप अर्थात् मालपूआ कहते हैं । ये मालपूए वातपित्तनाशक, भारी, बलकारी, मधुर, वृष्य, हृदयको बल देनेवाले, रुचिकारी, और कफकारक हैं । यद्यपि इसको चातुर्मास्य आदि महिनोंमें सदैव करते हैं परंतु पुरुषोत्तम महिनेमें तो प्रत्येक ग्रहस्ती करता है । इनीको अपूप और सहस्रछिद्र कहते हैं इस जगे तईका पैंदा चपटा होना चाहिये ।

अथ कुंडलिनी (जलेबी)

लोलाक्षिसमितांप्रस्थंप्रस्थक्षीरेणमंथयेत् । नवीनेमार्त्तिकेभांडेक्षिपेद्बद्ध्वाचतन्मुखम् । आतपेस्थापयेत्तावद्यावदम्लत्वमाव्रजेत् । ततोऽन्यपयसालोड्यकुर्यान्माक्षीकसन्निभम् । सच्छिद्रेनालिकेरस्यपात्रेकृत्वांऽगुलीतले । तप्तिकायांघृतेतप्तेपृथक्कृत्वांगुलींततः । द्विधावापित्रिधातत्रभ्रामयित्वाऽतिशीघ्रतः । रेखैकामुपरिन्यस्यचोत्थितांवर्तयेत्ततः । सुपक्कांकुंडलाकारांसितापाकेविनिःक्षिपेत् । मधुतुल्येततोनीत्वास्थापयेत्पंचभाजने । एषाकुंडलिनीवृष्याहृद्याधातुविवर्द्धिनी । तर्पणींद्रियवर्गाणांपुष्टिकांतिबलप्रदा ।

अर्थ—१ शेर मैदाको शेरभर दूधमें मिलायके नए मिट्टीके बर्तनमें भरके उसका मुख बंदकर भीतरकी मैदा खट्टी होनेकेवास्ते धूपमें धरे तदनंतर छिद्रयुक्त नरियलके पात्रमें अथवा मिट्टीके पात्रमें उसकी पैंदीमें छिद्र कर उसमें वो भीगी हुई मैदा भरके उसको तईके गरम घीमें उस छिद्रके द्वारा गेरैं, इसप्रकार कि दो अथवा तीन फेरे गोलगोल फिराकर उसके ऊपर जल्दीसे एक आडी रेखाके समान फिरावे फिर उस छिद्रको शीघ्र उँगलीसे बंद कर लेवे जब वो घीको ऊपर तैर आवे तब उसको पलट देवे जब सिक जावे तब उसे निकाल इकतारी चासनीमें भिगोकर थोडी देरमें निकास लेवे । यह जलेबी[1] वृष्य, हृदयको बलदायक, धातुवर्द्धक, तथा इन्द्रियोंको तृप्त करनेवाली एवं पुष्टि, कांति, और बल इनको देनेवाली है ।

---

१ परिभ्राम्यघृतेतप्तेपचेत्तन्मंदवह्निना ।सुपक्कां कंकणाकारां सितालेहे विनिक्षिपेत् । सातुकुंडलिका नाम्ना क्वचिच्चजलवल्लिका । जलवल्ली सरावृष्याबृंहणी दृष्टिपुष्टिदा । धातुस्तन्यकरीहृद्याविशेषाद्बलतुष्टिदा ।

अथ द्वितीयः प्रकारः ।

समितायांघृतंतावन्मिश्रयेद्वनितावरे । यावत्स्यान्मुष्टिकाबद्धंततोनीरेणलोडयेत् । स्थापितंचाम्लतांप्राप्तंपुनर्दुग्धेनमंथयेत् । पूर्ववत्सकलंकृत्वाविधिंचापिगुणैःसमा ।

अर्थ–मैदामें इतना घी मिलावे कि, जिसमें मुट्ठीमें लेनेसे बंधजावे, फिर उसको पानीसे मथकर जबतक खट्टी न होवे तबतक धरी रहनेदे, फिर दूधसे मथकर पूर्वरीतिके अनुसार जलेबी तयार करलेवे इसके गुणभी पूर्वोक्त जलेबीसमानहै ।

अथ तृतीयःप्रकारः ।

नूतनंघटमानीयतस्यांतःकुशलोजनः । प्रस्थार्द्धपरिमाणेन दध्नालिप्तेनलेपयेत् । द्विप्रस्थांसमितांतत्रदध्यम्लंप्रस्थसंमितम् । घृतमर्धशरावंचघोलयित्वाविनिःक्षिपेत् । आतपे स्थापयेत्तावद्यावद्यातितदम्लताम् । पूर्ववत्त्वखिलंकृत्यंगुणाज्ञेयाश्चपूर्ववत् ।

अर्थ–नवीन मटका लेकर उसके भीतर आधसेर दहीका लेप करे फिर मैदा २ सेर तथा दही १ सेर और घी आधसराव डाल सबको मिलायदेवे फिर जबतक खट्टी नहीं हो तबतक धूपमें धर देवे तदनंतर पूर्वोक्त प्रकारसे जलेबी बनाय लेवे इसके गुण पूर्वोक्त जलेबीके समान जानने ।

अथ घृतपूरः (घवर)

पादांशसर्पिषामिश्रांसमितामभितप्रभे । घोलयेत्पयसाकृत्वाघोलंमाक्षिकसन्निभम् । तात्तिकोपरिसंन्यस्यातिर्यग्दंडंसुकाष्ठजम् । तस्योपरिदृढंन्यस्यझर्झरंधातुनिर्मितम् । तद्घोलंतत्फणायांचधृत्वाहस्तेनघर्षयेत् । तच्छिद्रैर्निःसृतंघोलंतस्यांतप्ते घृतेपतेत् । द्व्यंगुलोत्सेधकंयावद्भवेत्तावान्निपातयेत् । ततः पक्वंसुविज्ञायप्रियेशीघ्रंसमुद्धरेत् । संक्षिपेच्छर्करापाकेमधुतुल्येसुशोभने । ततउद्धृत्यचान्यस्मिन्न्यसेत्पात्रेसुविस्तृते । घृतपूरोगुरुर्वृष्यो हृद्योबल्यःकफप्रदः । मांसलोहितशुक्राणां वर्द्धनश्चप्रियोमतः । सेवितोनाशयत्याताशुवंपित्तंक्षतंक्षयम् ।

अर्थ—मैदामें चतुर्थांश घी मिलाय तदनंतर दूध डाल सहतके समान पतला कर हाथोंसे मथे फिर तईपर एक सीधी लकडी धरके उसपर झझरी धरके उसमें वो मथीहुई मैदा भरके हाथोंसे रगडे इसप्रकार करनेसे झझरीके छिद्रोंसे वो मैदा निकल कर तईमें पडने लगताहै इसप्रकार दो अंगुल मोटा घेवर होनेतक गेरे, फिर बंद करके उसको पचावे, जब वह अच्छी रीतिसे परिपक्व होजावे तब उसको निकाल एकतारी चासनीमें गेर देवे थोडी देर उसमें राख कर निकास लेवे यह घेवर भारी, वृष्य, हृद्य, बलकारी, तथा कफकरता, एवं मांस, रक्त, और वीर्य इनको बढावे, तथा प्रिय है। उसीप्रकार वात, पित्त, क्षत, और क्षीण इनका नाशक है। इस घेवरमें कपूर, मिरच, और मिलावे जैसे लिखा है " घृतपूरोयमुद्दिष्टः कर्पूरमरिचान्वितः "

अथ नारिकेलजघृतपूरः।

नारिकेलफलंस्वार्द्रंसूक्ष्मंयत्नेनकर्त्तयेत् । सूक्ष्मंगोधूमचूर्णंतु शर्करामपिमिश्रयेत्।दुग्धेनालोड्यप्राग्वच्चकारयेद्घृतपूरकम्।

अर्थ—मैदामें बूरा और कतरी हुई गीली नारियलकी गिरी मिलाय दूधमें मथके पूर्वोक्त प्रकार घेवर बनाय लेवे।

अथ क्षीरघृतपूरः।

दुग्धंसंपाचयेद्गाढंपिंडंकृत्वासशर्करम्।ततआम्रद्वयंनीत्वाकृत्वेंदुमंडलाकृतिम्। फलाकारंतुवाकृत्वापचेदाज्येप्रयत्नतः। मज्जयेच्छर्करापंकेघृतपूरंमनोरमे।

अर्थ—दूधका खोहा कर उसमें मिश्री मिलाय फिर उसमेंसे आठ आठ तोले ले वडेके समान अथवा फलके समान करके घृतमें सेकै फिर इसको चासनीमें तलके निकास लेवे, तो दूधका घेवर सिद्ध हो।

अथ शालिपिष्टादिघृतपूराः।

दुग्धमर्द्धशृतंकृत्वाशालिपिष्टंसशर्करम्। संमिश्र्यवटकंकृत्वा पाचयेच्चापिपूर्ववत् । शृंगाटककसेर्वादिपिष्टजंचाविचक्षणे। अनेनविधिनाकुर्याद्घृतपूरंसुशोभनम्।

अर्थ--अधोटा दूध करके उसमें धुलेहुए चावलका चून कपडछान कराहुआ और खांडमिलायके परातमें उसने पीछे वडीके सदृश करके घीमें सेकै फिर उनको उक्तविधिके समान चासनीमें तलके तयार कर ले इसे चाव

लका घेवर कहतेहैं इसीप्रकार सिंघाडे तथा कसेरू इत्यादिकोंका घेवर[1] बनाने चाहिये ।

अथाम्ररसघृतपूरः ।

पक्काम्रस्यरसंकांतेघृतयुक्तंविपाचयेत् । घनीभूतंसमुत्तार्यं कारयेद्वटकाकृतीन्।ततःसंपाचयेदाज्येसितापाकेचपूर्ववत् । रोचनादीपनाबल्याश्चूतजाघृतपूरकाः । हृद्यावृष्याश्चगुरवो वातपित्तप्रणाशनाः ।

अर्थ-पके हुए आमके रसमें घी मिलाय एकत्र करे उसको अग्नि देकर गाढा करे, फिर उसके वडेके समान घेवर बनाय घीमें सेंके, और ऊपर कही विधिके अनुसार चासनीमें तलके काढलेवे ये घेवर रुचिकारी, दीपन, बलदायक, हृदयको बल देनेवाले, वृष्य, भारी, और वातपित्त इनको नाश करनेवाले हैं ।

अथ द्वितीयःप्रकारः ।

पक्काम्रस्यघृतेनवेसुविपचेन्मंदाग्निनायत्नतो यावत्स्यात्सुघनस्तथापुनरयंपाच्यःसितापंकके । संजातेचघनेततःपृथुतरेविस्तीर्णपात्रेतुतं संलिंपेत्तुयथांगुलंघनतरंतंखंडशःकर्त्तयेत्।सोयंचाम्ररसोद्भवोघृतपुरोहृद्योगुरुर्दीपनोरुच्यःपित्तमरुत्प्रणाशनकरोबल्योऽतिवृष्योभवेत् । एवंचान्यपदार्थजोघृतपुरस्तत्तद्गुणैरन्वितो भीमेनप्रियभोजनेनचपुराकृष्णार्थमुत्पादितः ।

अर्थ-पके आमके रसमें घी मिलाय मंदाग्निसे पक्क कर गाढा करे, फिर उसको खांडकी चासनीमें डालके अच्छी रीतिसे उलटपलट उतार लेवे, और पट्टेपर घी चुपड इसको १ अंगुलके अनुमान मोटा ढाल देवे जब शीतल होजावे तब इसकी कतली कतर लेवे इसको आम्ररस घृतपूर कहते हैं । यह घेवर हृदयको बलदायक, भारी, दीपन, रुचिकारी, वातपित्तनाशक, बलकारी, और वृष्य है । इसप्रकारके घेवर भीमसेनने श्रीकृष्णकेवास्ते तय्यार करे हैं इसी प्रकार दूसरे पदार्थका घेवर करते हैं।

---

१ अथ कसेरुघेवर । कसेरुचूर्णे निक्षिप्यपाकपिंडीकृतं पयः । कसेरुघेवरं कुर्यात्पूर्ववत्खंडमंडितम् ॥

अथ संयावः (गूझा गुझिया)

गोधूमचूर्णकंकांतिभर्जयेत्सर्पिषाततः । शर्करामिश्रितंकृत्वा लवंगैलामरीचकम्।सचंद्रंचूर्णयेत्तास्मिन्मिश्रयेच्चततःप्रिये । घृताक्तांसमितामन्यांमर्दयेत्पयसाघनाम्।ततःपूगमितांनीत्वा वेल्ल्यकृत्वासुपर्पटीम् ।तस्यांतत्पूरयेच्चूर्णसंपुटीकृत्यमुद्रयेत्। मुखमस्याःप्रगुंथ्यापिकुर्यात्कंकणचिह्नवत् । पाचयेच्चघृतेपक्वंसितापंकेनलेपयेत् । संयावोऽयंगुरुर्वृष्योहृद्योधातुप्रवर्द्धनः । मधुरोवातपित्तघ्नोभग्नसंधानकृत्सरः ।

अर्थ--संयाव (गुझिया) बनानेकी विधि कहतेहैं । गेहूंका चून घृतमें भून उसमें मिश्री और लोंग, इलायची, कालीमिरच, और कपूर इनका चूरा-मिलाय धररक्खे, फिर मैदामें मोयन दे दूधमें उसने फिर उसमेंसे सुपारी-के समान लोई तोडकर पापडी वेले, उसमें पूर्वोक्त चूर्ण (अर्थात् भुनाहुआ मिश्री आदि मिला चून) भरे, फिर उसको लंबीकर उसके मुखको नखसे कंकणके समान गूंथे फिर इसको घीमें सेके, इसको संयाव अर्थात् गुझिया कहतेहैं, और दूसरा संस्कृत नाम इसका गुह्यकहै, जैसे लिखाहै " गुह्यको बृंहणो वृष्यो हृद्यःपित्तानिलापहः " यह भारी, वृष्य, हृदयको बलकारी, धातुवर्द्धक, मधुर, वातपित्तनाशक भग्नसंधानकारक और सारक है ।

अथान्यः प्रकारः ।

शुद्धतंदुलजंपिष्टंसूक्ष्मंवस्त्रावगालितम्।यत्पात्रप्रमितंपिष्टंतत्पात्रप्रमितंजलम्।जलमग्नौप्रताप्यैवततःकुर्यादमुंविधिम्।किंचित्किंचित्क्षिपन्पिष्टंदर्व्यासंचालयेन्मुहुः । घनीभूतंसमुत्तार्यकृत्वासीतेचपर्पटीः । तासांमध्येन्यसेत्पूर्णंश्रीफलैलासितोद्भवम् । सिताधान्याकजंचूर्णंकिंवाविश्वगुडोद्भवम् । ततोद्विगुणितांगुंथेन्नखेनार्द्धेंदुसन्निभाम् । पाचयेच्चघृतेसम्यक्संयावोयंचकीर्तितः । तृणगर्भेऽथवाभांडेसनीरेस्वेद्यपाचयेत् । संयावोऽयंगुरुर्वृष्योविष्टंभीतृप्तिकारकः । श्लेष्मलोवातपित्तघ्नोघनपीनपयोधरे ।

अर्थ–धुलेहुए चावलोंको पीस कपडेमें छानलेवे, फिर इस चूनके समान पानी चूल्हेपर चढावे, जब वो पानी खौलने लगे तब उसमें चावलका चून थोडा थोडा डालता जाय और कलछीसे चलाता जाय इसप्रकार सब चून-को उसमें डालके पक्व करे जब अच्छी रीतिसे परिपाक हो गाढा होजावे तब उतारले, जब शीतल होजावे तब इसके पतले पतले पापड करे, उनमें मि-श्रीसंयुक्त गोलाका खीस और छोटी इलायचीका चूर्ण भरे, अथवा गुड और सोंठका चूर्ण मिलाकर भरे, फिर उसको गुझियाके समान नखोंसे गूथ अर्ध-चंद्रके आकार बनायले फिर उसको गरम घीमें छोडदेवे, अथवा विस्तीर्ण पात्रमें थोडा पानी भर और उसमें तृण भर उसमें धरके सेकैं जब सिक-जावे तब चासनीमें तल लेवे, ये संयाव (गूझा) भारी, वृष्य, विष्टंभी कहिये-मलस्तंभक, तृप्तिकारक, कफकारी, और वातपित्तनाशक है।

अथ कर्पूरनालिका।

घृताक्तांसमितांकांतेमर्दयेदंबुनाचिरम्। ततःपूगमितंनीत्वा रचयेन्नालिकांशुभाम्।तत्रेलोषणचंद्रश्रीयुतांसंपूरयेत्सिताम्। मुद्रयेत्तन्मुखंचाज्येपचेत्संयाववद्बुधः। कर्पूरनालिकातज्ज्ञैः कीर्त्तितासुभगालके।

अर्थ–मैदामें घीका मोयन दे पानीसे उसने और उसको मुक्की देकर नम्र करे फिर उसमेंसे सुपारीके समान लोई लेकर बांसकी नलीके समान पोली करे, तदनन्तर मिश्रीमें छोटी इलायची, काली मिरच, भीमसेनी कपूर (ब-रास) और लोंग इनका चूर्ण मिलाय उस नलीमें भरे फिर उस बत्तीका मुख बंदकर घीमे सेके इसके गुण गूंझाके समान है। इसको संस्कृतमें कर्पूर-नालिका कहते हैं।

अथेंदुरसाः (अँदरसे)

त्रिप्रस्थंषष्टिकाचूर्णंप्रस्थैकाशर्कराप्रिये। घनंदध्नाचसंमर्द्यकृ त्वापिंडंमनोहरे। ततश्चैकदिनंस्थाप्यद्वितीयेऽह्निवोनर्मये-त्। अपूपांश्चंद्रबिंबाभांस्तदेकांगेसितांस्तिलान्। लग्नान्कृ-त्वापचेदाज्येविष्णवेसन्निवेदयेत्। इमाइंदुरसाबल्याःशरदिं-दुनिभानने। कफवातहराहृद्याअतिशीताश्चपुष्टिदाः।

अर्थ–चावलका चून ३ शेर ले उसमें १ शेर मिश्री मिलावे पीछे थोडा दही मिलायके अच्छीरीतिसे मर्दन कर १ दिन धरारहनेदे दूसरे दिन उसके

चन्द्रमंडलके समान पतले वडेकर उसके एक तरफ सपेद तिल लगाय घीमें सेकै इनको अँदरसा कहतेहैं, यह बलकारी, कफवातहर, हृदयको बलदायक, अतिशीतल, और पुष्टिदायक है ।

अथ द्वितीयः प्रकारः ।

प्रक्षाल्यतंदुलान्सम्यक्चूर्णयेत्तानुलूखले । समयासितया योज्यमर्दयेच्चविचक्षणः । यदापिंडीभवेत्पिष्टंतदालोम्नींविधायच । वेल्लयित्वातदेकांगेलग्नान्कृत्वाप्रयत्नतः । अहिफेनस्यबीजानिनिस्तुषान्वातिलांस्ततः । पाचयेद्धिघृतेसम्यक्ताःस्युरिंदुरसाःप्रिये । इमाइंदुरसावृष्याहृद्याधातुप्रवर्द्धनाः। पित्तघ्नागुरवोरुच्याःपुष्टिकांतिबलप्रदाः । सेविताःसततंयुक्त्यासकलेंद्रियतर्पणाः ।

अर्थ--अब दूसरा प्रकार कहतेहैं । चावलोंको अच्छी रीतिसे धोयकर ओंखलीमें कूटकर चूनकरे, फिर जितना चूनहो उतनी मिश्री पिसी डालकर मर्दनकर जलसे गाढा गोलाकरे उसमेंसे थोडाले गोलीसी कर चकला वेलनसे वेल पूरीबनावे, और उसके एकतरफ खसखसके अथवा तिली लगायकर घीमें तले ये अँदरसे वृष्य है, हृदयशोधक, धातुवर्द्धक, पित्तनाशक, भारी, तथा रुचिकारी एवं पुष्टि, कांति, और बल इनको देवे इनको नित्य सेवन करनेसे इन्द्रियोंको तृप्तिदायक होतेहैं ।

अथ शर्करापालिका ।

समानंपिष्टतःसर्पिःसार्द्धभागाचशर्करा । भर्जितंशर्करापाके पिष्टकंसघृतंक्षिपेत् । लवंगैलादिकंक्षिप्त्वातच्चदर्व्याविचालयेत् । यावद्घटकयोग्यंस्यात्ततःस्थाल्यांप्रसारयेत् । कवोष्णंखंडशःकृत्वाशीतेसीताधवायच । अर्पयेच्छर्करापालीस्निग्धाःकिंचिच्चपित्तलाः । श्लेष्मलागुर्व्यरोचघ्नीर्वातविष्टंभनाशनीः ।

अर्थ—चूनके समान घी लेकर उसमें उस चूनको भूने फिर चूनसे डचोढी मिश्रीका पाककर उसमें भुनाहुआ चून मिलावे और लौंग, इलायची, आदिका चूर्ण डालकर कौचेसे उलट पलट करता रहे, जब उलटते पलटते बडे

होने लायक होजावे तब परातमें उतार कर फैलाय देवे, जब शीतल होजावे तब उसके छुरीसे चौकोन टुकडे कतर लेवे इनको सकल पारे कहतेहैं । ये साखरपारे स्निग्ध किंचित् पित्तकारी, कफकारी, एवं भारी, अरुचि, वात, मलस्तंभ, इनको नाश करतेहैं ।

अथ शंखपालः (मीठे सकलपारे)

घृतक्तांसमितांमर्द्यदुग्धेनचजलेनवा । संवेल्लचरोटिकांकुर्यादुत्सेधामंगुलार्द्धिकाम् । शृंगाटाकृतिकान्यस्याःकांतेखंडानि कारयेत् । घृतेसंपाच्यसंलिंपेत्सितापंकेनयुक्तितः । शंखपालाइतिप्रोक्ताबृंहणाबलपुष्टिदाः । मधुराःपित्तवातघ्नागुरवोरुचिकारकाः ।

अर्थ–अब दूसरे प्रकारके सकलपारोंकी विधि कहतेहैं मैदामें घीका मोयन देकर दूधसे या पानीसे करडी उसन लोईकर आधअंगुल मोटी रोटी करे फिर छुरीसे तिकोने टुकडे कर घीमें छोड़देवे जब सिक जावे तब निकाल चासनीमें तल लेवे ये शंखपाल धातुवर्द्धक, बलकारी, पुष्टिदायक, मधुर पित्त तथा वातनाशक, भारी और रुचिकारीहै । इसीप्रकार निमकीन सकलपारे बनतेहैं ।

अथ मंठः (मठरी)

द्विप्रस्थांसमितांसर्पिर्मिश्रयित्वाचतुःपलम् । ततोनीरेणसंमर्द्य कारयेद्वटकान्दृढान् । पाचयित्वाघृतेकांतेततःकुर्यादिमंविधिम् । एलालवंगकर्पूरमरीचाद्यैःसुशोभनम् । सितापंकंविधायैवयुक्त्यामंठेषुलेपयेत् । तेमंठाबृंहणाबल्याःपौष्टिकागुरवस्तथा । वातपित्तहरारुच्यामधुरामधुराधरे ।

अर्थ–दोशेर मैदामें पावभर घीका मोयन दे पानीसे करडा उसन उसके वडेकर घृतमें सेकै, फिर इलायची, मिरच, लोंग कपूर आदि मसालेसे सुवासित ऐसी मिश्रीकी चासनीमें पागकर निकाल लेवे, ये मठरी सप्तधातुवर्द्धक, बलकर, पुष्टिदायक, भारी, वातपित्तनाशक और रुचिकारकहै ।

अथ शेविकाः (सेमई)

समितामिताह्लादेयनंक्षीरेणमर्दयेत् । मृद्वींकुर्यात्पुनर्मर्द्य तस्यास्तंतून्विनिर्मयेत् । शोषयित्वातपेचैतानीषदाज्येवि-

भर्ज्यंच । क्षिपेदुत्कलितेनीरेक्षणेनोत्तारयेद्दुतम् । पृथक्तोयं सुनिःसार्यासिताज्याभ्यांनिषेवयेत् । अथवाशर्करादुग्धसंयुक्तास्त्रुटिमिश्रिताः । सेवयेत्सेविकाबल्याभग्नसंधानकारिकाः । गुर्व्यस्तृप्तिकरारुच्याग्राहिण्यःपित्तहामताः ।

अर्थ–मैदाको दूधसे उसनकर अति नम्र करावे फिर किसी बडेपात्र (गागर, मटके) की पैदी पर महीन सूतके समान बटकर बनावे, उनको धूपमें युक्तिसे सुखाय लेवे, फिर इनको घीमें भून खलभलाते जलमें पक्क करावे, थोडीदेरमें उतार उसका पानी निकाल डाले, फिर इसमें घी, बूरा, अथवा दूध बूरेके साथ भोजन करना चाहिये । ये सेमई बलकारी टूटेहुए भागको जोडनेवाली, भारी, तृप्तिकारी, रुचिकारी, मलग्राहक और पित्तनाशक है ।

अथ शष्कुली (पुंडी)

घृताक्तांसमितामद्भिर्मर्दयित्वाचिरंततः । मृद्वींकृत्वाततोनीत्वानिंबुमानांहिगोलकम् । वेल्यकृत्वाचतांतन्वींचंद्रमंडलसन्निभाम् । घृतेसंपाचयेदेषाशष्कुलीफेनिकागुणा ।

अर्थ–अब पूडी बनानेकी विधि कहते हैं । मैदामें या चूनमें घीका मोयन दे उसनकर नम्र करे, फिर उसमेंसे नींबूके समान लोई ले गोल चंद्रके समान पतली वेलकर घीमें सेंके इसको शष्कुली अर्थात् पूडी कहते हैं । इसके गुण फेनीके समान है ।

अथ माषगर्भा (कचौरी)

निस्तुषांमाषजांदालीमार्द्रामश्मनिपेषिताम् । तांपिष्टिंप्रवदंतिस्मपाकशास्त्रविचक्षणाः । ततिपष्टयामार्द्रकंहिंगुलवणंतु विमिश्रयेम् । अथवैलादिकंकांतेवेशवारंविमिश्रयेत् । निधायामत्रकेकांतेततःकुर्यादमुंविधिम् । घृताक्तांसमितामद्भिर्मर्दयित्वाघनंततः । किंचित्किंचिज्जलंदत्वामर्दयित्वापुनः पुनः । कृत्वामृदुतरामक्षंततोनीत्वाप्रकल्पयेत् । मूषिकामक्षकांतत्रापिष्टिंपूर्यविमुद्रयेत् । संवेल्लचपोलिकांकृत्वाघृतेतां

१ पृथुशशिसमकांतिश्चारुगोधूमजातावितरतिमुदमुच्चैःपोलिकाकस्यनेह । अतुलबलविधात्रीकोष्ठसंशुद्धिकर्त्री नासिजजनयित्री वातपित्तापहंत्री ॥ १ ॥

भर्जयेच्छनैः । गुर्वीयंमाषगर्भाख्यास्निग्धारुच्याबलप्रदा । स्वाद्वीनेत्रहितोष्णाचपित्तरक्तविशोधनी । तैलेनेत्राहिताप-क्तारक्तपित्तविदूषणी ।

अर्थ–अब कचौडी बनानेकी विधि और गुण कहते हैं । जलसे धुली हुई छिलकारहित उडदकी भीजी हुई दालको सिल लोढासे पीसे इसको पिट्ठी कहते हैं, इस पिट्ठीमें हींग, अदरख, मिरच, धनिया, जीरा, आदि कुटा मसाला मिलाय तयार रक्खे फिर मोयनपडी मैदाको पानीसे उसन खूब नरम करे फिर इसमेंसे एकएक तोलेकी लोई तोड मूसके समान कर उसमें उक्त उडदकी पिट्ठी भर मुख बंद करदेवे, और कुछ वेलकर गरम घीमे छोडदेवे, जब सिक जावे तब निकाल लेवे, इसको माषगर्भा आर्थात् कचौरी कहतेहैं । यह कचौरी भारी, स्निग्ध, रुचिकारी, बलदायक, स्वादु, नेत्रोंको हितकारक, और उष्ण एवं पित्त तथा रक्त इनको शुद्धकरे, परंतु तेलमें तले तो नेत्रोंको अहित होती है, और रक्त व पित्त इनको बिगाडे है ।

अथ दुग्धाम्रम् ।

पक्काम्रस्यरसंप्रस्थंशृतंदुग्धंचतत्समम्।प्रस्थैकाशर्कराचाज्यं प्रस्थार्द्धंसंविमिश्रयेत् । एलाजातीफलादीनांचूर्णंचेद्वाविमि-श्रयेत् । तद्दुग्धाम्रमितिख्यातंस्वादुशीतंचपौष्टिकम् । गुरुव र्णकरंरुच्यंबल्यंधातुविवर्द्धनम्।वातापित्तहरंवृष्यंभुक्तंमेद्यम-दोद्धतैः ।

अर्थ–पकेहुए आमका रस ६४ तोले और औंटाहुआ दूध ६४ तोले, सपेद बूरा ६४ तोले, और घी ३२ तोले, एकत्र मिलाय इसमें इच्छा होय तो इला-यची, जायफर आदि मसालेका चर्ण मिलावे, इसको दुग्धाम्र कहतेहैं यह स्वादु शीतल, पौष्टिक, भारी, कांतिकर, रुचिकर, बलकारी, धातुवर्द्धक, वा-तपित्तनाशक, और वृष्य है ।

अथ शिखरिणी ।

दधिद्विप्रस्थंभोजलविरहितंकंजवदनेसिताचप्रस्थैकामधुघृ-तमयेबिल्वमबले । पृथक्कोलंचैलात्वचमपिगजंपत्रजमुत द्वि-कर्षंविश्वंवैमरिचमपिलोलाक्षिचपृथक् । पटेसूक्ष्मेबालाकर-विगलितंचेतिसकलं तदाविख्यातेयंमतिमतिरसालाशिखरि

णी ।. इयंस्निग्धावृष्याकफरुचिकराकांतिजननी मतागुर्वीब ल्याश्रमपवनपित्तप्रशमनी । विशालास्येपुष्टिंवितरतिच शुक्रंवितनुते जनानांशंदात्रीसुतनुजघनांभोजसुभगे । कुरुश्रीरामायार्पणमवनिपुत्र्यैचसततंमनोर्थस्तेसिद्धोझटिति भविताकुंददशने ।

अर्थ-अब शिखरनके गुणदोष कहतेहैं । पानी निकाला हुआ दही २ सेर सपेद बूरा १ सेर, सहत छटांक, गौका मक्खन छटांकभर, इलायची, दालचीनी, नागकेशर और पत्रज ये प्रत्येक आधा आधा तोला सोंठ २ तोले, कालीमिरच २ तोले, इन सबको एकत्र करके महीन वस्त्रमें बालाख्रीकरके छानागया इसको रसाला सिखरन कहतेहैं । यह स्निग्ध, वृष्य, कफकारी, रुचिकारी, कांतिदायक, भारी, एवं बलकारी होनेसे श्रम वात पित्त इनको नाशक और पुष्टि तथा वीर्यकारक है । इसका छंदभी शिखरिणी है ।

अथ मज्जिकाशिखरिणी ।

अयिदधिमस्तुविहीनंद्विप्रस्थंवैप्रस्थैकाचासिता । सर्पिः पलं मधुपलंपलंचार्द्रकंमरिचंचार्द्धपलम् । त्वक्पत्रंगजमेलापृथग-क्षैकंकृत्वाचैकध्यम्।चंद्रवासितेभांडेप्रिये मार्तिकेतरुणीनि-मंथयेत् । सामज्जिकाशिखरिणीबालेबल्यारुचिप्रदावृष्या । कांतिकारिणीस्निग्धाशुक्रपुष्टिदागुर्वीश्लेष्मकरी । प्रतिश्याय वातार्तिश्रमपित्तघ्नीनितंबभारभरे । तरुणकमलदलनयनेको-किलवयनेप्रकटितकामकले ।

अर्थ-पानी निकलाहुआ दही १२८ तोले सपेद बूरा ६४ तोले घृत, सह-त, अदरख, ये प्रत्येक चार चार तोले, कालीमिरच दोनतोले, और दालचिनी, तमालपत्र, नागकेशर, इलायची ये प्रत्येक एक एक तोले ले इसप्रकार सर्व पदार्थ एकत्र करके कपूरसे सुगंधित करेहुए पात्रमें तरुणी स्त्री उसको मथे इसको मज्जिका शिखरण कहतेहैं । यह बलकारी, रुचिकारी, वृष्य, कांतिकर स्निग्ध, वीर्य, तथा पुष्टिदायक, भारी, तथा कफकारक होकर सरेकमाँ, वायु, श्रम, और पित्त इनको नाश करेहैं ।

अथ मंडककृतिगुणानाह ।

समितामंबुनामर्द्यघनांकृत्वातिकोमलाम् । तल्लोप्त्रींरचयित्वातुहस्ताभ्यांपरिवर्द्धयेत् ।संतप्तेखर्परेचुल्ल्यांमृन्मयेऽधोमुखेततः । संक्षिपेदरविंदाक्षिपाचयेच्चशनैःशनैः । मंडकःसाहिविज्ञेयोदुग्धखंडेनभक्षयेत् । दुग्धाज्यशर्कराभिर्वाकिंवामांसरसेनाहि । वातकवटकैश्चैनंमधुरोऽयंत्रिदोषनुत् । रुच्योग्राही लघुःपाकेबृंहणोबलपुष्टिदः ।

अर्थ–गेहूंकी मैदा पानीसे उसन कर फिर जलके छींटे देकर नम्र करे, तदनंतर उसमेंसे थोडी लोई ले गोलाकर हाथोंसे बढाकर गरम मट्टीके उलटे खिपडेपर सेंके, इसको मंडक कहते हैं। यह दूधखांडके साथ अथवा दूध खांडमें घी डालके किंवा मांसरसयुक्त अथवा छाछके वडोंके साथ भोजन करे यह मंडक मधुर, त्रिदोषनाशक, रुचिकारक, ग्राही, हलके, धातुवर्द्धक, बलकारी और पुष्टिदायक है ।

अथ द्रव्ययोजना ।

सूपादौलवणंबालेप्रस्थेमुष्टिमितंक्षिपेत् ।
कौलैकंमारिचंचूर्णवेशवारंचतत्समम् ॥

अर्थ–प्रथम लवणादिक द्रव्यकी योजना कहतेहैं । दाल कढी आदिमें नोन ऽ१ सेरमें एक)–छटांक डाले । और मिरच एक कोल अर्थात् सेरभर दालमें आधा तोला डालनी चाहिये । और वेसवार अर्थात् मसाला एक कौल अर्थात् आध तोले डाले ।

गुंजैकंरामठंबालेधूपनार्थघृतेक्षिपेत् । राजिकाजीरकंचात्रमेथिकालशुनादिकम् ।पृथक्टंकमितंक्षिप्त्वादृष्टेधूमेचधूपयेत् ।

अर्थ--हेबाले वघार देनेको एक प्रस्थ प्रमाण दालमें १ रत्ती हींग घृतमें भूनकर डालनी चाहिये । राई, जीरा, मेथी, और लहसन ये पृथक् पृथक् एक एक टंक कहिये पाव पाव तोले घीमें भूनकर वघार देवे । परंतु जब घीमें अच्छी रीतिसे धूंआ निकलने लगे तब वघार देवे, लहसनका वघार इतर जातीके वास्तेहै या रोगीकोहै ।

टंकैकंरजनीचूर्णमम्लंशुक्तिमितंक्षिपेत् ।

आर्द्रकंद्विपलंकर्षंधान्याकंसूक्ष्मचूर्णितम् ॥

अर्थ--दाल आदि सेर भरमें ४ मासे हलदी, अमचूर आदि खटाई २ अर्थात् दो तोले डाले, अदरख एकपल अर्थात् ४ तोले डाले, और धनिया पिसाहुआ एक कर्ष अर्थात् एक तोले डालना चाहिये ।

अथ वेसवार (मसाला)

एलात्वक्पत्रमरिचश्रीसुमश्यामजीरकैः ।
वेशवारःसधान्याकैरेलादिःकथ्यतेबुधैः ॥

अर्थ-इलायची, दालचीनी, तमालपत्र अथवा पत्रज, काली मिरच, लौंग, काला जीरा, और धनिया इनके चूर्णको एलादि वेसवार कहतेहैं, आदिशब्दसे सपेद जीरा वगैरह जानने ।

माषमुद्गादिजेसूपेनिस्तुषेचामिषेतथा ।
वटिकामाषगर्भादौवेशवारंप्रयोजयेत् ॥

अर्थ-उडद, तथा मूंगकी धुलीहुई दालमें और मांस तथा बडी कचोरी आदिमें यह उक्त मसाला डालना चाहिये ।

भक्तविधिगुणांश्चाह ।

तंडुलान्निर्मलाञ्छुद्धांस्त्रिधाधौतान्वराङ्गने । नीरेपंचगुणेक्षिप्त्वावसुनिघ्नेतुवाप्रिये । दिग्गुणेत्वथवाकांतेचतुर्दशगुणेऽपि वा । पचेदर्द्धशृतेमंडंस्रावयेदतियुक्तितः । षोडशांशंघृतंतस्मिन्संक्षिप्यच्छादयेत्ततः । निर्धूमांगारकेन्यस्यक्षणादुत्तारयेद्द्रुतम्।नस्याद्यदाषोडशांशंयथालाभंघृतंक्षिपेत् । नीरसंस्कारभेदेनयथोत्तरगुणाधिकः ।

अर्थ--अब भात बनानेकी विधि कहते हैं। बीने फटके निर्मल शुद्ध चांमलोंको तीनवार पानीसे धोयकर शेरभरको पांचशेर अथवा आठशेर अथवा १० शेर किंवा १४ शेर पानीवटलेमें भर चामल डालकर पचावे, जब आधे अ-

१ कोष्णंपङ्कजचक्षुषस्तनइवस्वच्छंशरच्चन्द्रमोरोचिर्वन्मिलितंमिथोनचयथा चाण्डंसपत्नीजनः । सुस्निग्धं तरुणीकपोलवदलं कान्ताङ्गवत्कोमलं भक्तंभुक्तमनेकदोषशमनं लघ्वग्निकृद्बृंहणम् । सद्यःशालेयमन्नंशशिकरनिकरप्रोज्ज्वलंसिद्धसारं भ्राम्यद्बाष्पच्छलेनत्रिदशपुरसुधाधेयमाधुर्य्यधुर्य्यम् । अन्योन्यंनैवलग्नं परिमलभरितागारवेदीविभागं संप्राप्नोतिप्रसन्नः प्रथमपरिवृढोयस्यपुंसःसदास्यात् ॥ १ ॥

थवा कुछ थोडे कच्चे रहे तब चूल्हेसे उतारकर मांढ निकाल डाले और उनमें एक पल घृत डालकर अंगारोंके ऊपर धरके बर्तनके मुखको ढकनेसे ढक देवै, इसप्रकार उसको आधघडीपर्यंत धरारक्खे तो भात बनकर तयार हो. यदि एक पल घी न मिसलके तो जितना प्राप्त हो उतनाही डाले । यह भात पानीकी आधिक्यतासे यथोत्तर अधिकाधिक गुणवाला होता है । जैसे पांच गुने पानीमें पक्व भातसे आठ गुने जलमें पक्व भात श्रेष्ठ है । इसप्रकार जानना परंतु १४ गुने पानीसे अधिक पानी चामलोंमें नहीं चढाना चाहिये ।

मढमढा भातकी विधि ।

चेदस्रावितभक्तंकुर्याद्बालेविधिस्तदायंस्यात् । यदितंडुलाहिसूक्ष्माःकेविपचेद्द्वैतुसार्द्धकेभागे। स्थूलाश्चेद्द्विगुणेकेस्थूलतराश्चेत्सार्द्धद्विभागिके । सपादकेकेसाध्याःसूक्ष्मतरावैसुतंडुलाललने। अयमस्रावितभक्तोगुरुश्चशीतोरुचिप्रदोवृष्यः । शुक्रवर्द्धनोमधुरोवातकफघ्नोग्राहीतृप्तिकरः । क्षयरोगघ्नश्चापिप्रफुल्लपद्माननेवरारोहे ।

अर्थ--अब बैठेहुए भातकी विधि कहतेहैं । उत्तम बीने फटके चावलोंको तीनबार धोकर शेर भरोंको डेढशेर पानीमें चढावे परंतु यह विधि महीन चावलोंकी है यदि चावल मोटे होवे तो दूने पानीमें पचावे, यदि बहुत मोटे चावल होवे तो ढाईगुने पानीमें चढाकर पचावे और यदि बहुतही महीन चावल होवे तो सवाए पानीमें चढायकर पचावे जब सब पानी जरजावे कुछ थोडा शेष रहे तब उतारकर अंगारोंपर धरदेवे तो यह मढमढा भात बने । यह भात भारी, शीतल, रुचिकारक, वृष्य, वीर्यवर्द्धक, मधुर, वात व कफनाशक, ग्राही, तृप्तिकारक, और क्षयरोगकाभी नाश करनेवाला जानना ।

भुने चावलोंके भातकी विधि ।

जीवनेऽर्द्धशृताञ्छालीन्भर्जयेच्छोषयेत्ततः । कंडयेत्तंडुलानेनांस्त्रिधाधौतान्विपाचयेत् । तद्भक्तोदीपनःपथ्यस्तृप्तिकृन्मूत्रलःस्मृतः । लघुःस्वच्छश्चरुच्योऽयंवातश्लेष्मामयापहः ।

उष्णवीर्यश्चसंप्रोक्तस्ततःपित्तामयेऽहितः। दद्याद्दोषबलंदृष्ट्वा भोजनायविचक्षणः ।

अर्थ–अब उबले हुए चावलोंका भात करनेका प्रकार कहते हैं। प्रथम धानोंको पानीमें सिजावे जब आधा सीज जावे तब कुछ भूनकर सुखाय देवे तदनंतर चावलोंको फटक चामल निकाल इनको भातकी विधिसे बनावे, यह भात अग्निदीपन तथा पथ्य, तृप्तिकारक, मूत्रवर्द्धक, हलका, स्वच्छ, रुचिकारक, वात, व कफसे होनेवाले रोगोंको नाशक, तथा उष्णवीर्य है। अतएव यह पित्तरोगीको अपथ्य है । इसको वातादि दोष और रोगीका बलाबल विचार करदेना चाहिये ।

तथा गुणान्तर ।

भर्जिततंडुलभक्तःसुगंधिरुष्णोलघुस्तथारुच्यः। आस्थापने चवमनेविरेचनेचप्रशस्तउक्तोऽयम्।गलामयघ्नश्चहितःकफमरुचिंचैवविनाशयेदबले । यथात्वदीयाप्रीतिःपरांगनायारतिप्रियेश्रेष्ठा ।

अर्थ–भुने हुए चावलोंका भात सुगंधवान्, गरम हलका, और रुचिकारक होताहै। आस्थापन, वमन और विरेचन इनमें यह भात पथ्यकरहै। और यह गलेके रोगोंका नाशक, हितकारक और कफ तथा अरुचि इनको नाश करे है।

कच्चे चावलोंका भात ।

तंडुलान्कंडयेदामानंबुनाक्षालयेत्रिधा । विपाच्यस्त्रावयेन्मंडंतद्भक्तोऽतिमनोहरः। दीपनश्चत्रिदोषघ्नोबृंहणःपथ्यईरितः। लघुःप्रीतिप्रदोनित्यंकीर्तितस्तद्विदांवरैः।

अर्थ–हरे चावलोंको अच्छी रीतिसे वीनफटक तीनवार जलसे धोयके सिजावे जब चावल सीज जाय तब मांढ निकाल डाले, यह भात अति श्रेष्ठ जठराग्निदीपक, त्रिदोषनाशक, धातुवर्द्धक, पथ्यकर, हलका और भोजनमें प्रीतिकारक ऐसा है ।

ताजे जलमें करेहुए भातके गुण ।

सद्यनीरकृतोभक्तोलघुःशीघ्रंविपच्यते । शीतपित्तज्वरेदेयः सितायुक्तोमनोहरे । तथाश्लेष्मज्वरेदेयोमुद्गयूषसमान्वितः ।

अर्थ—ताजे जलमें पक हुआ भात हलका तथा शीघ्र पचनेवाला होताहै। यह शीतपित्तज्वरवाले रोगीको खांडकेसाथ और कफज्वरवालेको मूंगके यूषके साथ देना चाहिये।

बासेजलका भात।

उशितांबुशृतोरूक्षोमूत्रलोमलकारकः।
मेदःस्वेदकफक्लेदप्रदश्चापिप्रकीर्तितः॥

अर्थ—बासेजलमें कराहुआ भात रूक्ष, मूत्रवर्द्धक, मलकारक, तथा मेद पसीने कफ और ग्लानि इनको उत्पन्न करनेवाला जानना।

कांजिआदिसे बने भातके गुण।

धान्याम्लसिद्धोरुचिदोलघुश्चैवाग्निदीपनः। तक्रेसिद्धःप्रियः स्वादुःशीतलश्चाग्निदीपनः॥ पाचनःपुष्टिदोरुच्यःशूलामग्रहणीप्रणुत्। अर्शोघ्नश्चश्रमघ्नश्चनिशिभुक्तोविशेषतः।

अर्थ—धान्याम्लमें कराहुआ भात रुचिदायक हलका और जठराग्निको दीपन करनेवाला है। छाछमें सीजाहुआ भात प्रिय, स्वादु, शीतल, अग्निदीपन, पाचन, पौष्टिक, और रुचिकारक एवं शूल, आम, बवासिर, और संग्रहणी श्रम इनका नाशक जानना। यह भात रात्रिमें खानेसे अधिक गुण करे है।

अथान्यद्रव्यमिश्रितभक्तके गुण।

मथितेनयुतोभक्तःशीतःस्वादुःप्रियस्तथा। पौष्टिकः पाचनोरुच्योदीपनोऽर्शोघ्नएवच।श्रमामग्रहणीशूलनाशनःपरिकीर्तितः। यदारात्रौभक्षितश्चेद्रुच्यस्तृप्तिकरोमतः।

अर्थ—बिना जल पडेहुए छाछके साथ भात खानेसे शीतल, स्वादु, प्रिय पौष्टिक, पाचन, रुचिकारी, व दीपन, जानना उसीप्रकार बवासीर, श्रम आम, संग्रहणी और शूल इनको नाश करे। इस भातको रात्रिमें खानेसे रुचिकारक, तथा तृप्तिदायक होता है।

जवके और गुण।

यावकश्चमृदुःस्वादुर्गुरुर्वृष्यःप्रकीर्तितः।
यौगंधरोघनःकासश्वासघ्नश्चगुरुर्मतः॥

अर्थ—जौका भात नम्र, स्वादु, भारी और धातुवर्द्धक है। ज्वारका भात कठिन तथा खांसी श्वास इनका नाशक और भारी है।

श्यामाकोदीपनोरूक्षोलघुर्वातप्रकोपनःकृच्छ्रमेहगलातंकहरोरुचिबलप्रदः । नैवारोदीपनोरुच्योलघुर्वातप्रकोपनः । यकृत्प्लीहव्रणश्वासामामयघ्नःप्रकीर्तितः ।

अर्थ--सामखियेका भात दीपन, रूक्ष, हलका, तथा वातरोगका कोप करनेवाला, और मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, गलेके रोग इनको नाश करे और बल करे। पसाईका भात दीपन, रुचिकारक, हलका तथा वातप्रकोपकारक होकर यकृत, तिल्ली, व्रण, श्वास, तथा आमविकार इनको नाश करे ।

अथान्नान्याह ।

परमान्नंहरिद्रान्नंदध्यन्नंकृशरान्नकम् ।
गुडान्नंचापिमुद्गान्नमित्यन्नंषड्विधंस्मृतम् ॥

अर्थ--अब अन्नकी कृति तथा गुण दोष कहते हैं-एक परमान्न, दूसरा हरिद्रान्न, तीसरा दध्यन्न, चौथा कृशरान्न, पांचवा गुडान्न, छटवाँ मुद्गान्न, ऐसे अन्नके छः प्रकार कहे हैं ।

परमान्न ।

तंडुलात्रिगुणंदुग्धंतदर्द्धंजीवनंप्रिये । तदर्द्धंतुगुडंकांतेपाचितंपरमान्नकम् । परमान्नंबल्यंवृष्यंवातापित्तप्रणाशनम् । कफप्रकोपनंबालेतृप्तिकृच्चप्रकीर्तितम् ।

अर्थ-अब परमान्नके गुणदोष कहते हैं। चावलोंसे तिगुना दूध तथा दूधका अर्द्धभाग पानी तथा पानीका अर्द्धभाग गुड ये सब पदार्थ एकत्र पक्व करनेसे इसको परमान्न कहते हैं। यह परमान्न बलदायक, वृष्य, तथा वातपित्तका नाशक और कफकोपकारक तथा तृप्तिकारक है।

हरिद्रान्नम् ।

आढकंमथितंगव्यंतंडुलानांचप्रस्थकम् । कर्षैकंमारिचंचूर्णं कोलैकंजीरकंप्रिये । निशाटंकमितासर्वंकृत्वैकध्यांविपाचयेत् । पलमेकंपटुक्षिप्त्वाहरिद्रान्नमितीरितम् । पाचनंहिहरिद्रान्नंदीपनंरुचिकारकम् । वातपित्तकफातंकनाशनंपरिकीर्तितम् ।

अर्थ–अब हरिद्रान्नकी विधि और गुणदोष कहते हैं। गौकी विना जल मिली छाछ ४ प्रस्थ, काली मिरचका चूर्ण १ कर्ष, जीरा आधा कर्ष हलदी १ टंक, नोन ४ कर्ष, इन सबको एकत्र कर पक्व करनेसे हरिद्रान्न सिद्ध होता है। यह हरिद्रान्न पाचन, दीपन, तथा रुचिकारक, और वात पित्त कफ संबंधी रोगोंका नाशक है।

दध्यन्नम्।

प्रस्थैकांस्तंडुलान्कांतिपाचयेद्विधिवत्ततः। नात्यम्लमधुरंतत्रदधिद्विप्रस्थमुत्तमम् । कोष्णेसंमिश्रयेद्भक्तेकोलैकंमारिचंरजः। मुष्टचैकंलवणंचाम्रंशृंगवेरंप्रयोजयेत् । इदंदध्योदनंबल्यंरुच्यंवातघ्नदीपनम्।

अर्थ–१ शेर चावलोंको जलमें विधिपूर्वक पचन करावे जब भात होजावे तब इस भातको अंगारोसे उतारके धरलेवे, पीछे एक दूसरा पात्र चूल्हेपर चढाय उसमें घी डाल जीरा हींग भूने, पीछे उक्त भातमें न बहुत मीठा न बहुत खट्टा, ऐसा दही दो शेर मिलाय उक्त भातको छौंक देवे, इसको दध्योदन कहते हैं, प्रायः द्राविडी मनुष्य इसको बहुत करते हैं यह बलदायक, रुचिकारक, वातघ्न और दीपन है।

खिचड़ी।

द्विप्रस्थंतंडुलंमुद्गंप्रस्थैकंसंविपाचयेत् । कर्षैकंमारिचंचूर्णतिलचूर्णपलंक्षिपेत् । मुष्टचैकंलवणंकांतिपचत्यास्मिन्विमिश्रयेत्। इदंवैकृशरान्नंस्याद्बलवीर्यविवर्द्धनम्। पित्तश्लेष्मकरंचैवगुरुविष्टंभिदुर्जरम्। पुष्टिकृच्चवरारोहेमलमूत्रविवर्द्धनम्।

अर्थ–अब कृशरान्न अर्थात् खिचडी बनानेकी विधि कहते हैं। चावल २ शेर, तथा मूंगकी दाल १ शेर, इन दोनोंको एकत्र कर पक्व करे (पकावे) तथा सीजतेसमय इसमें काली मिरचका चूरा १ कर्ष डाले, ४ कर्ष तिलोंका चूरा, नोन १ पल डारे, इसको कृशरान्न कहते हैं। यह बल वीर्यको बढावे, और पित्तकफको करे है, तथा भारी, विष्टंभी, दुर्जर पुष्टिकारक तथा मलमूत्रको यह बढाती है।

गुडान्नम्।

तंडुलानांहिप्रस्थैकंदुग्धंप्रस्थत्रयोन्मितम् । दुग्धार्धंतुजलं

कांतेनीरतुल्यंगुडंमतम्। गुडादर्द्धंघृतंसर्वंपाचयेद्विधिपूर्वकम् । तद्गुडान्नमितिप्रोक्तंतृप्तिकांतिबलप्रदम् ।

अर्थ–अब गुडान्नकी विधि कहते हैं। चावल १ शेर, दूध ३ शेर पानी १॥ शेर, गुड १॥ शेर घृत तीनपाव, इन सबको एकत्र कर इसकी खीर करे इस को गुडान्न कहते हैं। परन्तु मध्यदेशके मनुष्य दूधमें गुड नहीं मिलाते उन को बूरा डालना चाहिये, इसको गुडान्न कहते हैं। यह तृप्ति, कांति और बल करे है।

मुद्गान्न।

त्रिप्रस्थंतंडुलंमुद्गंप्रस्थंतुल्याचशर्करा। मुद्गान्नमेवंरंभोरुपौष्टिकंबलवीर्यकृत् । घृतमस्मिन्क्षिपेत्प्रस्थंसिद्धेकंजविलोचने ॥ इतिषड्विधान्नम् ।

अर्थ–अब मुद्गान्नकी विधि और गुण कहते हैं। चावल ३ शेर, मूंग १शेर, इन दोनोंको मिलायके रांधे, जब सीज जावे तब बूरा ४ शेर और घृत १ शेर मिलावे इसको मुद्गान्न कहते हैं। यह पुष्टि करता तथा बल वीर्य इनको उत्पन्न करे है। यह षड्विधान्न कहा।

अथकृशरा।

तिलाःप्रस्थमिताबालेतत्तुल्यास्तंडुलाःप्रिये । कुडवैकंघृतं चाम्रंसैंधवंपाचयेदियम्। कृशरेतिसमाख्यातादीपनीपाचनी मता। बलवीर्यप्रदाश्लेष्मश्वासकासप्रवर्द्धिनी। नातिमूत्रकराप्रोक्तावातघ्नीपित्तकोपिनी।

अर्थ–अब कृशरा (साधारण खिचडी) के बनानेकी विधि और गुणदोष कहते हैं। तिल १ शेर, चावल १ सेर, घृत १ कुडव, और नोन ४ तोले, इन सबको मिलाकर खिचडी करावे उसको कृशरा कहतेहैं। यह खिचडी दीपन पाचन होकर बल, वीर्य, कफ श्वास; और खांसी, इनको बढावे और मूत्र को कमीकरे, वातनाशक तथा पितवर्द्धकहै।

अथान्याकृशरा।

तंडुलानांचप्रस्थैकंमुद्गसूपंचतत्समम्। पाचयेल्लवणस्याम्रमार्द्र-

---

१ पाठांतरम् तंदुलैर्मौक्तिकाकारैः कंडितैर्न्न च खंडितैः। सस्नेहा कामिनीवेयं कृशरा शिशिरे हिता ॥ चतुर्थभागैर्माषस्य वैदलैः पारिमिश्रितैः। कृशरा दुर्जराबल्या गुर्व्वी वातविनाशिनी। यथोचिताम्बुसंसिद्धैः सहिंगुलवणार्द्रकैः। बलपुष्टिमलश्लेष्मापत्तिरतःप्रदासदा ॥ इति।

कस्यपलंक्षिपेत् । शरावैकंघृतंचैषाकृशराहरिवल्लभा । अ-र्पयेद्धरयेतस्माद्धनुर्मासेविशेषतः । बलवीर्यप्रदागुर्वीकफपि-त्तविवर्द्धिनी । दुर्जरापुष्टिविष्टंभमलमूत्रकरीमता ।

अर्थ–अब कृशराकी दूसरी विधि कहतेहैं । चावल १ सेर, मूंगकी दाल १ सेर, इनकी खिचडी करे, पीछे इसमें नो . १ पल डारे, और अदरख १ प्रस्थ, घृत आध सेर डाले, इसको कृशरा कहतेहैं । यह भगवान्को अत्यंत प्रियहै इसीसे धनकी संक्रांतसे लेकर मकरकीसंक्रांतिपर्यंत भोग लगावे यह खिचडी बलवीर्य बढावे, भारीहै, कफ तथा पित्त इनको वृद्धीकरे, दुर्जरहै, पुष्टिका-रक, विष्टंभकारक और मल मूत्रको बढानेवाली है ।

इसको दही, पापड और आम नीबू निसोरे आदिके आचारके साथ भोजन करनी चाहिये, एक खिचडी धनुर्मासमें चनेकी दाल और चाव-लकी बनतीहै ।

द्विदलान्नमितिप्राहुःकृशरामपिकेचन ।
शिबिधान्यप्रभेदेनतद्गुणान्प्रवदाम्यहम् ॥

अर्थ–कितनेक आचार्य कृशराको द्विदलान्न कहतेहैं । अतएव द्विदल कहिये फलीसे उत्पन्नहुए जो उडद मूंग आदि धान्य उन द्विदलान्नोंके गुण मैं कहताहूं ।

माषान्नंगुरुवृष्यंचवातघ्नंमांसवर्धनम् । कफपित्तकरंबालेदुर्जरं परिकीर्तितम् । आढक्यन्नंविशेषेणगुरुपित्तकफापहम् ।वातलं चवरारोहेपीनोत्तुंगपयोधरे । पाकेतीक्ष्णंकुलित्थान्नंरुक्षमुष्णं चदीपनम् । कषायंमधुरंपित्तकारकंलघुकीर्तितम् ।कफवात-कृमिश्वासनाशनंनवयौवने ।

अर्थ–उडदकी खिचडी भारी धातुवर्द्धक, वातघ्न, मांसवर्द्धक तथा कफ पित्तको करेहै और दुर्जरहै । अरहरकी खिचडी भारी तथा पित्त कफ नाश-कहै और वातकारक जाननी । कुलथीकी खिचडी पाकके समय तीक्ष्ण तथा रूक्ष, गरम, दीपन, कसेली, मीठी, पित्त करके तथा हलकीहै तथा कफ वात, और उदरकी कृमि और श्वास इनको नाश करे ।

तापहारी (ताहरी)

घृतंभांडेनिशायुक्तंक्षिप्त्वाचुल्ल्यांप्रतापयेत् ।तस्मिन्माषवटीः

क्षिप्त्वाभर्जयेदतियत्नतः । सुधौतांस्तंडुलांश्चापितत्समान्सु- विभर्जयेत् । तान्भ्रष्टानितिविज्ञाययथायोग्यंजलंक्षिपेत् । पाचयेदर्द्धपक्केऽस्मिँल्लवणंहिंगुचार्द्रकम् । संक्षिपेदनुमानेन सिद्धातापहरीस्मृता । वल्यातापहरीरुच्याश्लेष्मघ्नीपुष्टिदा मता । धातुसंवर्द्धिनीबाल्हेगुर्वीसंतर्पिणीतिच ।

अर्थ–अब ताहरीके बनानेकी विधि और गुणदोष कहतेहैं--एक बटलेमें घृत और हलदी डालकर चूल्हेपर धरे, जब घृतमें धूआँ उठनेलगे तब उसमें उडदकी अथवा मूंगकी बडी और उतनेही चावल गेरके भूने । जब दोनों भून जावे तब उसमें इतना पानी डाले कि, जिसमें वो दोनों सीजजावे, जब अर्द्धपक्क हो जावे तब नोन, हींग, और अदरख अनुमान माफिक डाले फिर अच्छीरीतिसे सिजावे इसको ताहरी कहतेहैं । यह बलदायक, रुचिका- रक-कफनाशक, पुष्टिदायक धातुवर्द्धक भारी तथा तृप्ति करताहै ।

शाकौदनम् ।

रूक्षंशाकौदनंचोष्णंलेखनंपरिकीर्तितम् ।
फलान्नं गुरुरुच्यंचतत्तत्फलगुणागुणम् ॥

अर्थ–शाकयुक्त पकाहुआ भात रूक्ष, गरम, तथा लेखन कहिये कृश करने वालाहै । उसीप्रकार फलयुक्त सीजाहुआ भात भारी तथा रुचिकारक और फलोंके गुण दोषोंके अनुसार गुणदोष करनेवाला जानना ।

तिलमाषपयोदुग्धसाधितान्नंमनोहरे ।
वल्यंतृप्तिकरंधातुवर्धनंपरिकीर्तितम् ॥

अर्थ–तिल, उरदकी दाल, दूध और पानी इनसे सिद्ध कराहुआ अन्न बल और तृप्ति तथा धातु इनकी वृद्धि करनेवालाहै ।

नवान्नंमधुरंस्निग्धंगुरुश्लेष्मप्रवर्द्धनम् ।
वातलोहितपित्तघ्नंमलावष्टंभकारकम् ।

अर्थ–नवीन कहिये नवीन उत्पन्न होनेवाला धानका अन्न यह मधुर, स्निग्ध, भारी, कफवर्द्धक, वात, रक्त, और पित्त इनका नाशक तथा मला- वरोधकारक जानना ।

कोष्णान्नगुणाः ।

कोष्णान्नंलघुदीपनंक्लमिहरंसश्वासकासापहंहिक्काध्मानकगु-

ल्मजाड्यहरणंपानात्ययातंककृत्।पित्तासृग्भ्रममेहरोगजननं वातामयध्वंसनंश्लेष्मघ्नंक्षतकासनाशनमयेलोलाक्षिभक्तप्रिये।

अर्थ-अब किंचित् गुनेगुने अन्नके गुणदोष कहतेहैं। किंचित् उष्ण अन्न हलका, दीपन, पेटकी कृमिनाशक, तथा श्वास, खांसी, हिचकी, पेटफूलना गोला और शरीरका जडत्व इनको हरण करताहै। पानात्ययरोग, रक्तपित्त भ्रम, प्रमेह, इनको करैहै। तथा वात, कफ और क्षत, खांसी इनको नाश करैहै।

शीतौदनगुणदोषाः।

शीतौदनंशीतवीर्यंरक्तपित्तप्रमेहनुत्। पानात्ययभ्रमच्छर्दि-मूर्च्छाघ्नं चाङ्गनोत्तमे। वाताग्निसादहृल्लासश्वासकृच्चापिकीर्तितम्।

अर्थ-अब शीतौदन कहिये शीतल अन्नके गुणदोष कहतेहैं। शीतलहुआ अन्न शीतवीर्य होकर रक्तपित्त, प्रमेह, पानात्ययरोग, भ्रम, वमन, मूर्च्छा इनका नाशक है और वातसंबंधी रोग, मंदाग्नि, हृल्लास कहिये मुखसे पानी छूटना तथा श्वास इनको उत्पन्न करताहै।

अतिशीतोष्णक्लिन्नशुष्कान्नगुणाः।

अतिशीतान्नंदुर्जरंचात्युष्णंबलनाशनम्। अतिक्लिन्नंग्लानि-करंचातिशुष्कंहिदुर्जरम्।नातिशीतंनचात्युष्णंनातिशुष्कंन चार्द्रकम्। अतोऽन्नंसंभजेत्कांतेसुखेप्सुर्मनुजोऽनिशम्।

अर्थ-अब अतिशीतल अन्न तथा अत्यंत गरमागरम तथा अति पतला अन्न इनके गुणदोष कहतेहैं। अतिशीतल अन्न शीघ्र नहीं पचे, और अति गरम अन्न बलनाशकहै, अत्यंत पतला अन्न ग्लानि करैहै, इसीसे सुखकी इच्छा करनेवाले पुरुषको अत्यंत गरम और अति शीतल न होवे ऐसा मध्यम अन्न सेवन करना चाहिये।

अथ मण्डविधिगुणाः।

मंडश्चतुर्दशगुणेसिद्धस्तोयेत्वसिक्थकः। सचग्राहीलघुःशी-तोदीपनोधातुशाम्यकृत्। स्वेद्योमार्दवकृच्चापिपाचनःश्रम-वातनुत्। त्रिदोषज्वरतृट्पित्ताश्मरीश्लेष्मातिसारहा।

अर्थ–१ पल चावलको १४ पल पानीमें पक्क कर उसमेंसे जो मांढ निकलता है उसको मंड कहते हैं । यह मंड ग्राही, हलका, शीतल, दीपन, समधातुकर, पसीने लानेवाला, शरीरको कोमल करनेवाला, तथा पाचन होकर श्रम, वात, त्रिदोषज्वर, प्यास, पित्त, पथरी, कफ और अतिसार इनका नाशक है ।

रक्ततंडुलजोग्राहीवातलोमधुरोहिमः ।
अश्मरीमेहपित्तानांनाशनःपरिकीर्तितः ।

अर्थ–लाल चावलोंका मांढ ग्राही, वातकारक मधुर, तथा शीतल होकर पथरी, प्रमेह, और पित्तका नाशक कहा है ।

श्वेततंडुलजोग्राहीवातलःशीतलःस्मृतः ।
किंचिच्छ्लेष्मकरःशोषाश्मरीमेहप्रणाशनः ॥

अर्थ–सपेद चावलोंका भात ग्राही वातल, शीतल, और किंचित् कफकारी है तथा शोषरोग, पथरी, प्रमेह, इनको दूर करे ।

वाद्यमंड और लाजामंड ।

वाद्यमंडोयवैर्भ्रष्टैर्लाजामंडस्तुशालिभिः। वाद्यमंडःकषायोष्णःपाचनोदीपनोलघुः। ग्राहीत्रिदोषविष्टंभशूलानाहप्रणाशनः। पटोलपिप्पलीयुक्तस्त्रिदोषज्वरनाशनः। हितोयंकथितोबालेतरुणामनवज्वरे। लाजामंडोलघुर्ग्राहीप्रियःपाचनदीपनः। वातानुलोमनोबालेविरिक्तस्याहितावहः। आमयघ्नोविशेषेणविश्वकृष्णासमन्वितः ।

अर्थ–अब वाद्यमंड और लाजामंडको कहते हैं । भुने हुए जौके मंडको वाद्यमंड कहतेहैं। तथा चावलकी खीलोंके माँढको लाजामंड कहते हैं। वाद्यमंड कषेला, गरम, पाचन, दीपन, हलका, ग्राही होकर, त्रिदोष, विष्टंभ, शूल, और आनाह इनका नाशक है। यदि पटोलपत्र और पीपल इसमें मिला तो वात, पित्त, कफ ज्वर इनका नाशक है उसीप्रकार तरुणज्वर, आमज्वर, और नवज्वर इनको हितकारी है ।

लाजामंड लघु, ग्राही, प्रिय, पाचन,दीपन,वातानुलोमन करता, और जुलाब लियाहो ऐसे मनुष्योंको हितकारी है। यदि इस मंडमें शुंठी और पीपल मिलाकर देवे तो विशेष रोगनाशक होय ।

गोधूममंडोमधुरोलघुपाकोमनोहरे। उष्णःपित्तप्रशमनोयथाकांताऽधरामृतम्। जूर्णलीमंडकोग्राहीमूत्रलःकफवातकृत्। पित्तप्रणाशनोबालेकामकेलिविशारदे। अतिवातकरोमंडःक्षुद्रधान्यसमुद्भवः। कोद्रवोग्लानिकृच्छीघ्रंतथामूर्च्छाकरोऽहितः।

अर्थ–गेहूंका मंड मधुर, शीघ्र पचनेवाला; उष्ण व पित्तनाशक है। ज्वारका मंड ग्राही, तथा मूत्र, कफ, वात इनको करनेवाला और पित्तनाशक है। क्षुद्रधान्य कहिये समा पसाई आदिका मंड अतिवातकारक है। कोदोंका मंड तत्काल, ग्लानि लानेवाला तथा मूर्च्छाकारक है। इति मंडगुणागुणाः।

अथ विलेपी।

चतुर्गुणजलेसिद्धाविलेपीघनसिक्थका। साचाग्निदीपनीबल्याहृद्यासंग्राहिणीमता। आमशूलहरीस्वाद्वीलघ्वीपुष्टिरुचिप्रदा। व्रणाक्षिरोगिणांपथ्यातर्पणीतृड्ज्वरापहा।

अर्थ–अब विलेपी कहिये पतले भातके गुणदोष कहते हैं चौगुने पानीमें चावलोंको सिजावे, जब चावल सीज जावे तब ज्योंका त्यों रहने दे अर्थात् इसका मांढ न निकाले इसको विलेपी कहते हैं। यह विलेपी अग्निदीपन, बलकारक, हृदयशोधक, ग्राही, आमशूलनाशक, स्वादु, लघु, पुष्टि तथा तृप्तिदायक व्रणरोगी तथा नेत्ररोगी इनको पथ्य और तृषा तथा ज्वर इनको नाश करनेवाली है।

अथ पेया।

पेयासिक्थान्वितातोयेचतुर्दशगुणेकृता। साचकुक्षिगदक्लांतिज्वरस्तंभातिसारहा। रुच्यासंदीपनीलघ्वीमलदोषानुलोमिनी। अस्वेदिनांस्वेदकरीस्मरस्वेदलसन्मुखे।

अर्थ–एक भाग चावलोंको चौदहगुणे पानीमें सिजावे उसको पेया कहते हैं। यह पेया कूखके रोग, मुखसे पानीगिरना, ज्वर, स्तंभ, तथा अतिसार इनको नाश करे तथा रुचिकारक, जठराग्निदीपन, लघु, मल तथा वातादि दोष इनको अनुलोमन करनेवाली और जिन्होंके पसीने नहीं आतेहो उनको पसीने आवे इति।

अथ यूषविधिगुणाः ।

अष्टादशगुणेनीरेनिस्तुषान्द्विदलान्पचेत् ।
वस्त्रपूतंचतुर्थांशंयूषंविद्धिवरांगने ॥

अर्थ--एक भाग धुली हुई दाल अठारह गुने जलमें सिजावे और जब पानी चतुर्थांश रहे तब वस्त्रमें छानलेवे इसको यूष कहतेहैं । इसीको दाल-का पानी कहते हैं ।

अथ कृताकृतौ यूषौ ।

व्योषाज्यसैंधवैःसिद्धःसयूषःकृतसंज्ञकः ।
एतैर्हीनोऽकृतोयूषःक्रमात्कांतेगुरुर्लघुः ॥

अर्थ–जिस यूषमें सोंठ, मिरच, पीपल, घृत और सैंधानिमक डालके सिद्ध करे उसको कृतयूष कहते हैं । और जो केवल दालकाही यूष कहते हैं उसको अकृतयूष कहते है इनमें कृतयूष गुरू है तथा अकृतयूष हलका है ।

यूषस्तक्रेणसंसिद्धोधान्याम्लेनचवातथा । फलाम्लेनवरा-रोहेगुरुःप्रोक्तोयथोत्तरम् । रुच्यावातहराश्चेमेसर्वेयूषाघटस्तनि ।

अर्थ–छाछमें सिद्ध करा तथा धान्याम्लमें सिद्ध करा तथा फलाम्लमें सिद्ध करा यूष ये एकसे दूसरा भारी है, और ये तीनों यूष रुचिकारक तथा वातनाशक है ।

मुद्गयूष ।

मुद्गयूषस्तुमधुरोहृद्यःसंदीपनोहिमः । रक्तपित्ततृषादाहज्व-रिणांहितकारकः । कफव्रणशिरोरोगयुक्तानांचहितावहः । अयंसर्वोत्तमोयूषोयथात्वंवनितोत्तमा ।

अर्थ–मूंगका यूष मधुर, हृदयको बलदायक, अग्निदीपक तथा शीतल होकर रक्तपित्त, तृषा, दाह, ज्वर, कफ, व्रण और मस्तकसंबंधी रोगोंको हितावह है । यह मुद्गयूष सर्वोत्तम कहिये संपूर्ण यूषोंमें उत्तम है ।

अथ द्वितीयमुद्गयूष ।

मुद्गानांप्रसृतिंकांतेद्विप्रस्थेसलिलेक्षिपेत् । चतुर्थांशावशेषेतु सूक्ष्मवस्त्रेणगालयेत् । तस्मिन्सैंधवधान्याकदाडिंबत्वङ्म हौषधम् । पिप्पलीजीरकंचापिक्षिपेट्टंकंपृथक्पृथक् । कोष्णं

पीत्वाजयेत्पित्तंकफातंकंनसंशयः । तवाधरसुधापानसुर-
क्ताभ्यामिमाविव ।

अर्थ-अब मूंगके यूषकी दूसरी विधि कहतेहैं मूँगकी धुईहुई दाल एक प्रसृति लेवे, दो प्रस्थ पानीमें सिजावे जब चौथाई जल बाकी रहे तब महीन वस्त्रमें छान सैंधा नोन, धनिया, अनारकी छाल, सोंठ पीपर तथा जीरा ये पदार्थ एक २टंक ले चूर्ण कर उसमें डाले तो यह यूष किंचित् उष्णरहै इसको गरमागरम पीनेसे पित्त और कफको दूर करेहै ।

मसूरादि यूष ।

मसूरमुद्गगोधूमकुलित्थसैंधवैःकृतः । यूषोवातहरःश्लेष्मपि-
त्तयोश्चविवर्धनः । एषैवदाडिमीद्राक्षासंयुक्तोरुचिकारकः ।
पाकेतीक्ष्णश्चहृद्यश्चदीपनोवातनाशनः ।

अर्थ-अब मसूरादि यूष कहते हैं। मसूर, मूंग, गेहूं, कुलथी और सैंधानिमक इनसे बनाहुआ यूष वातनाशक, और कफ तथा पित्त इनको बढानेवाला है। यह यूष अनारदाना, और दाखके मिलानेसे रुचिकारक होताहै । और पाकके समय तीक्ष्ण, हृदयको बलदायक दीपन और वात-नाशक होवे ।

अथ शूकधान्ययूष ।

एकोभागःपटोलस्यत्रिभागाःशूकधान्यतः।द्वौभागौपारिभद्र-
स्यपचेद्यूषंविधानतः। एषसंदीपनोहृद्यःकफमेदोगदापहः।
कृमिज्वरहरश्चैवपित्तकुष्टप्रणाशनः ।

अर्थ-जब इत्यादिक धान्य जिन्होंमें कांटे होतेहैं उनको शूकधान्य कहतेहैं। इसके यूषकी विधि कहतेहैं। परवल एकभाग, शूकधान्य तीन भाग, और नीमकी छाल दो भाग, ये सर्व एकत्र कर इनका यूष करे। यह यूष दीपन, तथा हृदयको बलदायक होकर कफ, मेद, कृमि, ज्वर, पित्त और कुष्ठ इनका नाशक है ।

अथ मूलकयूष ।

मेदोवृद्धिप्रतिश्यायंकफंकासंगलग्रहम् ।
ज्वरारोचकहृल्लासाञ्जयेन्मूलकयूषकः ।

अर्थ-अब मूल, (जड) इनके यूषोंके गुण कहतेहैं। यह मूलकयूष मेदो-

वृद्धि, सरेकमां, कफ, खांसी, गलग्रह, ज्वर, अरोचक, और हल्लास कहिये सूखी रद्द इनका नाशकरे ।

अथ पंचामृतयूषः ।

कुलित्थमाषनिष्पावमुद्गाढकिसमुद्भवः । दीपनःपाचनोयूषोरुच्योधातुविवर्धनः । अंगमर्दज्वरश्लेष्मशयानांनाशनः स्मृतः । अयंपञ्चामृतोयूषःकथितोभिषगुत्तमैः ॥

अर्थ—अब पंचामृत यूष कहतेहैं । कुलथी, उडद, चौरा, मूंग, अरहर इनका यूष दीपन, पाचन, रुचिकारक, तथा धातूकी वृद्धि करनेवाला है तथा अंगोंका टूटना, ज्वर, कफ, और क्षय, इनका नाशक है ।

अथ मुद्गपर्णीयूषः ।

वनमुद्गभवोयूषोवृष्योधातुविवर्धनः ।
रक्तपित्तंज्वरंकृच्छ्रंपित्तंसंतापकंजयेत् ।

अर्थ—वनमूंग (मौठ)का यूष वृष्य तथा धातु बढानेवाला होकर रक्तपित्त, ज्वर, मूत्र कृच्छ्र, पित्त, और संताप इनको नाश करताहै।

अथ कुलित्थयूषः ।

कुलित्थसंभवोयूषःकषायोमधुरोमतः । वीर्योष्णोदीपनोबालेतथावातानुलोमनः । गुल्मार्शकफवातघ्नोमेदोमेहनिकृंतनः । अश्मरीश्वासकासघ्नः प्रतितूणीप्रणाशनः ।

अर्थ—कुलथीका यूष कषेला, मधुर, वीर्योष्ण, दीपन और वातानुलोमन करनेवाला, तथा गुल्म, बवासीर, कफ, वात, मेद प्रमेह, पथरी, श्वास, खांसी इनको नाश करेहै ।

आढकी (अरहरका) यूषः ।

आढकीसंभवोयूषोबालेस्वादुःकषायकः । नाशयेत्पीनसंश्वासंत्रिदोषंकसनंज्वरम्।रक्तंदोषंकृमीन्हन्यात्त्वंयथामदनव्यथाम्।

अर्थ—अरहरका यूष स्वादु तथा कषाय होनेसे पीनस, श्वास, त्रिदोष, कास ज्वर, रक्तदोष और कृमि इनका नाशकहै ।

चणकयूषः ।

चाणकःशीतलोयूषस्तिक्तश्चैवकषायकः ।
कासश्वासप्रतिश्यायरक्तदोषत्रिदोषनुत् ॥

अर्थ-चनेका यूष शीतल कडुआ, तथा कषेला होनेके कारण खांसी, श्वास, सरेकमा, रक्तदोष और त्रिदोष इनको नाश करताहै ।

मसूरयूषः ।

मासूरोमधुरोयूषोग्राहीमेहप्रणाशनः ।
धातुसंवर्द्धनःप्रोक्तःपीनोत्तुंगपयोधरे ॥

अर्थ-मसूरका यूष शीतल, ग्राही, प्रमेहनाशक और धातुवर्धकहै ।

अथ माषयूषः (उरदका यूष)

माषयूषोगुरुर्वृष्यःकिंचित्पित्तप्रकोपनः । वातातंकहरःकांते कफरोगप्रवर्धनः । मलाधिक्यकरश्चायंप्रस्फुरत्करकंकणे ।

अर्थ-उरदोंका यूष भारी, वृष्य, किंचित् पित्तकारक्त, वातरोगोंका नाशक कफसंबंधी रोगोंका बढानेवाला और मलवर्द्धकहै ।

निष्पावयूषः ।

निष्पावयूषकोबालेस्त्रीणांस्तन्यविवर्धनः ।
दृष्टिरोगकफातंकनाशनःपरिकीर्तितः ।

अर्थ-निष्पाव (चोराओं) का यूष स्त्रियोंके दूध बढानेवालाहै एवं नेत्रसंबंधी रोग, कफरोग इनको नाश करनेवालाहै ।

अथ पंचमुष्टिकयूषः ।

यवबदरकुलित्थमुद्गमूलैर्मुष्टिमितैःपृथगब्जलोचने । अयितुर्यगुणेजलेसुसिद्धंयूषमुशंतिहिपंचमुष्टिकम् । ज्वरपवनकफांश्चशूलगुल्मौपित्तंश्वासमपिक्षयंचकासम् । अपहरतिमनोहरे प्रयुक्तोयूषोयंनलिनाक्षिचंद्रवक्रे ।

अर्थ--जव, बेर, कुलथी, मूंग, और मूल ये पांचोंवस्तु एक एक पल लेवे, इनसे चौगुने जलमें यूष सिद्ध करे, इसको पंचमुष्टिक यूष कहतेहै । यह ज्वर वात, कफ, शूल, गोला, पित्त, श्वास, क्षय, तथा खांसी, इनको नाश करेहै ।

नवांगयूषः ।

मूलकंबदरंविश्वंमुद्गकृष्णाकुलित्थकम् । यवतंडुलकंधात्रीफलंनीरेचतुर्गुणे । एतेषांसाधितोयूषोनवांगःपरिकीर्तितः । कफपित्तहरश्चायंकीर्तितोभिषगुत्तमैः ।

अर्थ-मूली, बेर, सोंठ, मूंग, पीपल, कुलथी, जव, चामल, तथा आमरे ये

नौ पदार्थ एकत्र कर चौगुने पानीमें यूष करे इसको नवांगयूष कहतेहैं । यह कफ और पित्तको नाशकरे ।

दाडिम्बामलकयूषः ।

दाडिंबामलकैर्यूषःप्रियःसंशमनोलघुः ।
दीपनोवातपित्तघ्नोमदमूर्च्छानिवारणः ।

अर्थ–अनार, और आमले इनका यूष प्रियहै । वातादि दोषोंको शमन करनेवाला हलका, तथा दीपन होनेसे वात, पित्त, मद, और मूर्च्छा, इनका नाशक है ।

खलयूषः ।

कपित्थचिंचामरिचाग्निबिल्वाजाजीकृतोयूषकएषहृद्यः ।
वातामयंश्लेष्मभवंविकारंछर्दिंनिहन्यात्खलसंज्ञकोऽयम् ।

अर्थ--कैथ, इमली, मिरच, चीतेकी छाल, वेलगिरी और जीरा इनका यूष हृदयको बलदायक तथा वात, कफ, उलटी, इनका नाशक इसको खलयूष कहते हैं ।

कांबलिकयूषः ।

दध्यम्ललवणस्नेहतिलमाषप्रसाधितः ।
यूषःकांबलिकोहृद्यश्छर्दिवातकफप्रणुत् ॥

अर्थ–दही, आमरे, नोन, तेल, अथवा घृत, तिल तथा उरद, इनका जो यूष उसको कांबलिक यूष कहतेहैं । यह हृदयको बलदायक होनेसे ओकारी, वातरोग और कफरोग इनका नाश करताहै ।

अथ सारमाह ।

सारंभोजनसारंसारंसारंगलोचनाऽधरतः।
पिबकिलवारंवारंनोचेद्वृथाभवतिसंसारः ॥

अर्थ–भोजनमें सार सारहै । अथवा स्त्रीका अधरामृत सार है, इस लिये हे मित्र! तू वारंवार पी अन्यथा संसारमें जन्मलेना वृथाहै ।

अम्लिकायाःफलंपक्वंकुडवैकंविनिःक्षिपेत्।प्रस्थेनीरेपचेत्स-
म्यग्रसज्ञेसारकप्रिये । अर्द्धाऽवशिष्टेपूतेचमरिचंद्व्यक्षकंप्रिये ।
सैंधवंजरणंहिंगुयथायोग्यंविपेषितम् । श्लक्ष्णंपिंडीकृतंसर्वं
चार्द्रकुस्तुंबरीयुतम्।तस्मिन्क्वाथेविनिक्षिप्यपाचयेत्क्षणंपुनः।

अम्लिकासारमज्जाक्षिवातातंकप्रणाशनम्। पित्तश्लेष्मकरं किंचित्सुरुच्यंवह्निबोधकम् ॥

अर्थ–अब इमलीके सारकी विधि और गुणदोष कहते हैं। पकी इमली १६ तोले ले, ६४ तोले पानीमें ओंटावे, जब आधा जल शेष रहे तब महीन वस्त्रमें छानकर धरदेवे, पीछे दो तोले काली मिरच, सैंधानिमक जीरा हींग तथा हराकोथमीर, इन सबको अनुपानके माफिक ले पीसकर गोलाकरके उसको उस इमलीके रसमें गेरदेवे फिर एक क्षणमात्र उसे चूल्हेपर धरके पचावे इसको अम्लिका सार कहते हैं। यह वातरोगका नाशक, किंचित् पित्त और कफकर और रुचिकर तथा अग्निदीपन करता है। इसे दक्षिणी लोग भातके साथ बहुत खातेहैं।

अगस्त्यसार।

अगस्त्यकुसुमंकांतेसारेस्मिन्संक्षिपेद्यदा।
अगस्त्यसारकंप्राहुःसूपशास्त्रविदस्तदा ॥

अर्थ–यदि इसी इमलीके सारमें अगस्तियेके फूल डालदेवे तो इसीको अगस्त्यसार कहते है।

अगस्त्यसारके गुण।

अगस्त्यसारंसुस्वादुतिक्तंवातकफापहम्।
पांडुशोफारुचिप्लीहगुल्मशूलगदप्रणुत् ॥

अर्थ–अगस्त्यसार-स्वादु, तथा तिक्त होनेसे वात, कफ, पांडुरोग सूजन, अरुचि, प्लीहा, कहिये तिल्ली गोला और शूल इनका नाश करनेवालाहै।

वदसूपविधिंविद्वन्भोजनेऽस्यविशेषतः।
सूपयोगोऽस्तिनैवात्रविनानेनरुचिर्भवेत्।

अर्थ–कविकी स्त्री प्रश्न करती है कि, हे विद्वन्! आप सूपकी (दालकी) विधि मेरेको कहो, भोजनमें इसकी विशेष आवश्यकता रहती है, कारण कि, सूपके विना अन्य भोजनोंसे रुचि नहीं होती।

रसज्ञेप्रवदाम्येवशृणुसूपविधिंप्रिये।
गुणज्ञेतद्गुणांश्चापिसूपशास्त्रप्रमाणतः ॥

अर्थ–कवि उत्तर देता है कि, हे रसज्ञे! सूपशास्त्रके अनुसार मैं सूपकी विधि तथा गुण तेरे आगे कहता हूं सो सुन।

कांचनसूप (धोवादाल)

कृष्णसर्षपतैलाक्तंशिंबीधान्यंवरांगने । शोषयेदातपेचाश्मयात्राचैवविदालयेत् । उलूखलेततःपश्चात्कंडयेच्छोधयेत्ततः। शूर्पेणकांचनःसूपःकथितोयंविदांवरैः । दध्याज्यरजनीभिर्वालिप्तांबालेसुदालिकाम्।संपीड्यस्थापयेद्रांडेनिशैकांशोषयेत्ततः आतपेकंडयेत्तप्तांशोधयेच्छूर्पकेणच।अयमप्यरविंदास्येसूपः काञ्चनसंज्ञकः ।

अर्थ-काली सरसोंके तेलमें शिंबीधान्य (मूंग उडद आदि) को चुपडकर धूपमें धरदेवे; जब सूखजावे तब दरेतासे दरके दाल करे । पीछे इस दालको ओखरीमें डालकर मूसलसे छरडाले और सूपसे फटककर स्वच्छ करे । इसको कांचनसूप अर्थात् धोवादाल कहते हैं । और मालवे देशमें इसको मोगर कहते हैं ।

अथवा दालमें दही, घृत और हलदी लगाय एक पात्रमें भर१रात्रि दबाकर धरदेवे, प्रातःकाल होतेही धूपमें धरे फिर ओखलीमें कूट सूपसे फटक स्वच्छ करलेवे इसकोभी कांचनसूप कहते हैं ।

अथ सूपपाकविधि ।

रसज्ञेकांचनंसूपंप्रस्थैकंसुमनोहरम्।पचेदब्धिगुणेतोयेचार्द्धसिद्धेविनिःक्षिपेत् । हरिद्रांरामठंसर्पिर्लवणंचयथोचितम्।नातिद्रवोघनोवापिससूपोरुचिकारकः । पाचनोदीपनःस्निग्धःपथ्योबल्योवरांगने । कफवातहरश्चान्नंविनानेनवृथा भवेत् ।

अर्थ-अब धोवादालके बनानेकी विधि कहतेहैं एक प्रस्थ धोवादाल ले चौगुने पानीमें सिजावे जब आधी सीजजावे तब इसमें हलदी, हींग, घृत और निमक परिभाषामें कहे अनुसार डाले । पीछे अत्यंत पतली न हो न बहुत गाढी हो ऐसी सिजावे, यह दाल रुचिकारक पाचन, अग्निदीपन, स्निग्ध, पथ्य तथा बलदायक, होकर कफ और वात इनकी नाशक है । इसके विना अन्नमें रुचि नहींहो ।

अबसंस्कारभेदसे दालके गुण ।

भ्रष्टानांशिबिधान्यानांनिस्तुषाणांमनोहरः । शीघ्रपाकी

भवेत्सूपोरुचिकृच्चलघुर्मतः । सतुषाणामभ्रष्टानांजराकृच्च गुरुर्मतः ।

अर्थ--भुनेहुए उडद आदिकी निस्तुष दाल मनोहर जल्दी पचनेवाली, रुचिकारी, तथा हलकी है ।

हरे मूंग उरद आदिकी छिलकेवाली दाल बुढापेको लानेवाली और भारीहै ।

अथ मुद्गसूपगुणाः ।

मुद्गसूपोलघुर्ग्राहीशीतःस्वादुःकषायकः । नेत्ररोगेहितश्चायं प्रियेतृप्तिकरोमतः । संतापंरक्तपित्तंचज्वरंवातंकफंजयेत् । ग्लानिंपित्तंचलोलाक्षिवेतंडवरगामिनि ।

अर्थ-मूंगकी दाल हलकी, ग्राही, शीतल, स्वादु, कषेली, नेत्ररोगमें हित, तथा तृप्तिकारक होकर संताप, रक्तपित्त, ज्वर, वात, कफ, ग्लानि, और पित्त इनको दूर करेहै ।

अथ चणकसूपः ।

रसज्ञेचाणकःसूपःपाचनोरुचिकारकः । किंचिद्वातकरोरूक्षो बल्योबलवतिप्रिये । रक्तदोषंकफंपित्तंरक्तपित्तंतुनाशयेत् ।

अर्थ--चनेकी दाल-पाचन, रुचिकारक, किंचित् वातकर, रूक्ष, तथा, बलकारक होकर रक्तविकार, कफ पित्त, और रक्तपित्त इनको नाशकरे ।

अथ तुवरीसूपः ।

आढकीसंभवःसूपःशीतलोऽल्पकषायकः । रुचिवातकरो रूक्षःकफपित्तप्रणाशनः । यदिचाज्ययुतःसिद्धःस्निग्धःकंजविलोचने । पित्तश्लेष्मसमीराणांशामकःपरिकीर्तितः ।

अर्थ-अरहरकी दाल-शीतल, थोडी कषेली, रुचिकर, वातकारक, रूक्ष,

अरहरकी दाल-अरहरकी दाल १ शेर, घी पावभर, दही आदपाव, अदरख २ तोले, धनिया १तोला मिरच साढेचार आनेभर निमक ४ तोला, लोंग दो आनेभर, केशर एक आनेभर, छोटी इलायची दो आनेभर, दालचीनी दोआनेभर, जल चार शेर, प्रथम बीनीहुई शुद्धदालके किसी हांडीमें पानी भर चूल्हेपर चढाओ जब बोलने लगे तब दाल छोडदो, और ढकदो, जब दाल सिजजावे तब उस दालका यूष किसी दूसरे पात्रमें निकाललो और दालको अलग करलो फिर दालमें दही अदरखका रस और आधा-निमक मिलाओ सब मिलाकर एक स्वच्छ पात्रमें ४चार दंड ढाककर रक्खो चार दंडके पश्चात् हांडीमें १ छटांक घी डाल दाल छोडके उसको भूनों जब भुनजावे तब पहले धरेहुए यूषमें धनिया पिसा और बाकीका नमक छोडदो जब दाल अच्छी रीतिसे सिद्ध होजावे तब गरम मसाला और केशर पीसके उस दालमें

कफ और पित्त इनकी नाशक है । यदि यह घृत डालकर सिद्ध करी जावे तो स्निग्ध तथा वात, पित्त, कफ इनको शमन करेहै ।

माषसूपः ।

माषसूपोगुरुर्वृष्यउष्णःस्निग्धोबलप्रदः। स्वादुस्तृप्तिकरोबालेकीर्तितोरुचिकारकः। कफपित्तकरोधातुवर्द्धनोवातनाशनः। भर्जितानांलघुःकिंचिन्माषाणांसूपईरितः।

अर्थ--उरदकी दाल-भारी, वृष्य, गरम, स्निग्ध, बलदायक, स्वादु, तृप्तिकर, रुचिकर, और कफ, पित्त, धातु, इनको बढानेवाली तथा वातनाशकहै। और भुनी उडदकी दाल किंचित् लघुहै।

त्रैपुटसूपः ।

वातलस्त्रैपुटःसूपःस्वादुश्चाध्मानकारकः ।
शूलसंजनकश्छर्दिरक्तपित्तारुचिप्रणुत् ।

अर्थ--खिसारीकी दाल वातकारक, तथा स्वादु होकर अफरा, और शूल, इनको करे। और छर्दि (उलटी) रक्तपित्त, अरुचि, इनका नाशकारक है ।

मकुष्ठसूपः ।

माकुष्ठःपाचनोवृष्योलघुर्नेत्रहितावहः । दीपनोल्पबलोबाले बृंहणःपरिकीर्तितः। कफंपित्तंरक्तदोषंहंतिकुञ्जरगामिनि ।
तवाधरसुधेवाशुमारज्वरमिहस्फुटम् ।

अर्थ--मोठकी दाल, पाचन, वृष्य, हलकी, नेत्ररोगीको हितावह, दीपन, किंचित् बलकारक तथा मांसादिकोंकी बढानेवाली है । कफ, पित्त, रक्तदोष, इनकी नाशक है ।

चौराकी दाल ।

राजमाषभवःसूपोरूक्षःस्वादुःकषायकः ।
रुचिवातकरोग्राहीगुरुःस्तन्यविवर्द्धनः ॥

अर्थ--चौराकी दाल रूक्ष, स्वादु, कषेली, रुचिकारी, वातकारी, ग्राही, भारी, स्त्रियोंके दूधको बढाती है ।

डालदो फिर कलछीसे मिलाय किसीपात्रमें निकासलो और हांडिमें धोकर उसमें बाकी सब घी छोडकर उसमें लोंगका वघार देके दाल छोडदो थोडीही देरतक आंच दे कलछीसे चलायकर उतारलो तो परमोत्तम अरहरकी दाल बने ।

निष्पावसंभवःसूपोगुरुरुष्णश्चशुक्रहृत् ।विदाहीचसरःपित्त-रक्तमूत्रविवर्द्धनः । श्लेष्मस्तन्यमरुच्छोफवर्द्धनश्चप्रकीर्तितः ।

अर्थ-शिवीधान्यमात्रकी दाल-भारी, गरम, धातुनाशक, दाहकारक, तथा रेचक होकर पित्त, रक्त, मूत्र, कफ, दूध, वात और सोफ इनके बढानेवालीहै.

मटरकी दाल ।

कलायसंभवःसूपःपाकेस्वादुःप्रकीर्तितः। मेध्योरूक्षोलघुर्ग्राहीशीतलःसत्कृतिप्रिये । अरोचकंकफंपित्तंरक्तदोषंव्यपोहति।

अर्थ-मटरकी दाल-पाकके समय स्वादु होनेसे बुद्धिवर्द्धक, रूक्ष, लघु ग्राही, तथा शीतल है और अरुचि, कफ, पित्त, रक्तविकार इनकी नाशकहै।

पाकेतिक्तःकुलित्थानांसूपश्चापिकषायकः । पित्तरक्तकरः श्वासकासवातकफापहः। अश्मरीनाशनश्चापिकीर्तितस्ताद्विदैर्जनैः ।

अर्थ--कुलथीकी दाल पाककालमें कटु, तथा कषेली, पित्तरक्तकारक है । श्वास, खांसी, बादी, कफ, और पथरी इनको नाशकारक है ।

मंगल्यासंभवःसूपोलघुर्ग्राहीचशीतलः । वातलोमधुरःपाके रूक्षश्चापिप्रकीर्तितः । कफंपित्तंतथारक्तंहंतिस्वादुर्मनोहरे ।

अर्थ-मसूरकी दाल, लघु, ग्राही, शीतल, वातकारक, पाककालमें मधुर, तथा रूक्ष है, और कफ, पित्त, रक्त इनकी नाशक है तथा स्वादु है ।

मिश्रितानांचदालीनांसूपोबलकफप्रदः । गुरुश्चमधुरःपाके शुक्रलोवातनाशकः । अरोचकहरोबालेसर्वदाप्रीतिवर्द्धनः ।

अर्थ-दो चार मिली हुई दाल-बलकारक, भारी, पाककालमें मधुर, वीर्य-वर्द्धक, वात, और अरुचि, इनके नाशक और सर्वकाल प्रीतिको बढानेवाली जाननी ।

विना छिलकाकी और छिलकेकी दाल ।

रसज्ञेनिस्तुषःसूपःकफारोचकनाशकः । ज्वरक्षयहरोबालेलघुःपाकविचक्षणे । तथैवसतुषःसूपोगुरुराध्मानकारकः ।

अर्थ-छरीहुई धांसकी दाल कफ, अरुचि, ज्वर, और क्षय इनकी नाशक है लघु है, और साधारण (जिसमें छिलकाहो ऐसी) दाल भारी, और अफरा करनेवाली है ।

अथ कुल्माषः (घूंघरी)

हिंगुसैंधवसंयुक्तंधान्यंनीरेविपाचयेत् । अर्द्धस्विन्नंयदात-त्स्यात्तंकुल्माषंविदुर्बुधाः। किंवांबुप्लावितंधान्यंधूपयेद्रामठादिना। सैंधवादियुतंसिद्धंकुल्माषंतद्विदोविदुः । कुल्माषो वातलोरूक्षोगुरुश्चमलभेदकः । मंदाग्निकफमेदोरुक्पुष्टिशुक्र बलप्रदः ।

अर्थ–हींग सैंधानिमक, डालकर चने इत्यादि धान्यको पानीमें सिजावे जब आधे सीज जावे तब चूल्हेसे उतार लेवे, इसको घूंघरी कहते हैं । अथवा भीजेहुए चनाआदि धान्योंको घृत और हींगसे छोंक दे मसाला डाल सिजावे, तो घूंघरी सिद्ध हो । यह वातकारक, रूक्ष, भारी, मलको भेदन करनेवाली, मंदाग्नि, कफ, मेदरोग, पुष्टि, वीर्य और बल इनको बढानेवाली है ।

कुल्माषोमाषजोवालेमाषसूपसमोगुणैः ।
मुद्गसूपसमोमौद्गश्चान्येसर्वेस्वरूपवत् ॥

अर्थ--उडदकी घूंघरीमें उडदकी दालके समान गुण है । इसीप्रकार अन्य धान्यकी घूंघरी उसी उसी धान्यके गुणसदृश गुण करनेवाली है ।

अथ क्वथितामाह (कढी)

नात्यम्लमधुरेतक्रेचतुःप्रस्थेविमिश्रयेत् । वेसनंकुडवंसूक्ष्मं मरीचलवणान्वितम्।ततस्ताम्रादिजंभांडंवंगलिप्तंबृहन्मुखम्। चुल्ल्यांनिधायवह्निंतुकृत्वातप्तेचभांडके । क्षिपेदाज्यंतुतत्तते मेथिकांरामठंतुवा।जरिकंराजिकांवापिक्षिपेद्रक्तांमरीचिकाम्। यथारुचिरुचिप्रेष्ठसर्ववातुरसोनकम्। क्षणंचैवान्यपात्रेणछाद-येत्सुप्रयत्नतः । दृष्ट्वातुनिःसृतंधूमंशनैरुद्घाट्यसंक्षिपेत् । अर्धसवेसनंतक्रंद्रुतमाच्छादयेत्ततः । पलादुद्घाट्यशेषंतुक्षि-पेद्दर्व्याप्रचालयेत् । ततोमंदानलेनैवपाचयेदातियुक्तितः । अर्द्धशेषेत्रिपादेवासमुत्तार्यनिधापयेत् ।क्वथितामितितांप्राहुः सूपशास्त्रविशारदाः ।

अर्थ--अब कढी अथवा झोरकी विधि कहते हैं । न अत्यंत मीठा और न

अत्यंत खट्टा ऐसा दही ४ प्रस्थ लेवे, और बेसन अर्थात् चनेका बारीक चून १ कुडव मिरच और निमक उसमें अनुमानसे मिलायके सबको घोल देवे पीछे कलईके पात्र या स्वच्छ कढाईको चूल्हेपर धरे जब गरम होजावे तब उसमें घृत डाले जब घृत तपजावे तब उसमें मेथी, हींग, जीरा, राई, अथवा लाल मिरच कोईसी वस्तु डालके अथवा कहीहुई सर्व वस्तु डाले अथवा लहसन डाले और क्षणमात्र उसको ढक देवे पीछे उसमें धूआँ निकलने लगे तब युक्तिसे उसको उघाड उसमें दही बेसनमिलाहुआ पानी आधा डाल देवे, और ढक देवे फिर थोडी देरमें उघाड शेष आधेकोभी डाल देवे, कलछीसे चलाय देवे जब वह औंटकर पौन अथवा आधा रहे तब उतार लेवे इसको कढी कहते हैं और माथुर जन इसको झोर कहते हैं । इसमें इतनी वस्तू और अनुमान माफिक डाले जैसे धनिया दोनों जीरे सोंठ, लौंग, इलायची, दालचीनी काली मिरच, तेजपात, इनको कूट पीसकर डाले, इस कढीको ब्रजवासी राँडकढी कहते हैं ।

क्षिपेत्तस्यांवटीर्वापिचाणकीर्घृतसाधिताः । तैलसिद्धास्तु वाकांतेतत्कृतिंप्रवदाम्यहम् ।सुसूक्ष्मंचाणकंपिष्टंपानीयेनविलोडयेत् । लवणंमरिचंजीरंहरिद्रामत्रनिःक्षिपेत् । नातिद्रवंघनंवापिहस्तेनैवप्रमंथयेत् । निःक्षिप्यभुवनेदृष्टायदावारितरंभवेत् । तदाहस्तेनतन्नीत्वाघृतेतैलेऽथवाप्रिये । कोलंकोलंक्षिपेत्तत्तप्रफुल्लास्तुविचालयेत् । कुंकुमाभायदाताःस्युर्द्रुतंनिष्कासयेत्तदा । तावटीःकथितामध्येक्षिपेद्वाकेवलाभजेत् ।

अर्थ-यदि इस कढीमें बेसनकी पकौरी या टेटी डाले तो इसको सुहागिलकढी कहते हैं । तहां पकौरी बनानेकी विधि कहतेहैं कि, महीन बेसनमें नोन, मिरच, जीरा, और हलदी डालके फिर पानीसे इसको गाढा गाढा मथे, (परंतु बहुत गाढाभी न हो) जब खूब मथ चुके तब इसमेंसे थोडासा ले जलमें डाले यदि वह जलमें तैरने लगे तब जानेकि, पकोडी तोरने

---

१ सूखा दही बनानेकी विधि. दहीको किसी महीन कपडेमें छाने, जब उसका बिल्कुल पानी निकल जावे तब उस दहीकी छोटीछोटी वरी तोड़देवे, फिर उनको छायामें सुखाय अपनेपास धर रक्खे ये परदेशमें काम देती है जिससमय दहीकी अपेक्षा हो उसीसमय उन दहीकी वडीन्को निकाल किसी मट्टी या पत्थरके पात्रमें थोडी देर भिगोनेसे वांछित दही बनजावेगा, परंतु जैसे खट्टे या मीटे दहीकी वरी तोडोंगे वैसेही स्वादका दही स्वादमें बनेगा ।

लायक होगया, फिर उस मथे बेसनकी आधे आधे तोलेकी पकौरी घृत अथवा तेलकी कढाईमें छोडे, जब वो फूलकर सिक जावे अर्थात् केसरी रंगकी होजावे तब निकास लेवे इसप्रकार बनीहुई पकौरी उस कढीमें डाले इसको पकौरीका झोर कहते हैं । और यदि बेसनकी नुकती घृतमें बनाकर डाले तो नुकतीका झोर कहताहै । और बेसनमें मोयन डाल गाढा उसन हाथोंसें टैंटीके माफिक बटकर घृतमें तलके यदि कढीमें डाले तो उसको टेटिका झोर कहते हैं ।

अथ चणकवटीगुणाः ।

चाणकीवटिकाबल्यापुष्टिदारुचिकारिका ।
विष्टंभकारिणीकांतेकीर्तिताशास्त्रकोविदैः ।

अर्थ--बेसनकी पकौरी (मगोरी) बलदायक तथा पुष्टिदायक और रुचिकारी तथा मलको रोकनेवाली ऐसे सूपशास्त्रज्ञोंने कहा है ।

अथ क्वथितागुणाः ।

क्वथितापाचनीरुच्यादीपनीप्रीतिकारिणी । लघ्वीषत्पित्तलावातविबंधकफनाशिनी । तक्राभावेप्रियेचान्येनाम्लवर्गेण साधयेत् । अर्पयेद्धरयेप्रीत्यासकांतायततोभजेत् ।

अर्थ--केवल कढी पाचक, रुचिकारक, जठराग्निदीपनी, प्रीतिकारक, हलकी तथा किंचित् पित्तकारक, और वात, मलावरोध और कफ इनकी नाशक है यदि कहीं दही न मिलता होवे तो उसजगे इमलीआदि दूसरा खट्टा पदार्थ लेकर उसकी कढी करे और परमात्माके अर्पण करके पश्चात् आप भोजन करे ।

क्वथिताललनेसवटीसुखदा कथिताहिनटीवसुनृत्यविधौ ।
मृदुहास्यविलासकलाकुशलापरभृत्स्वरमंजुलगानपरा ।

अर्थ--हे प्रिये ! जैसे मंदहास्य करनेवाली तथा विनोदमें कुशल होकर नाचनेके समय कोकिलस्वर करके मनोहर गान करनेवाली ऐसी नटी अत्यंत सुखके देनेवाली होती है उसीप्रकार पकोडी पडी हुई कढी अत्यंत सुखदायक होती है ।

अथ पंचकोलाद्याक्वथिता ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरम् ।यवानीमरिचंधान्यं सैंधवंजीरकद्वयम् । दाडिंबामलकंपथ्यारामठंमाषकंपृथक् ।

हरिद्रांलवणंचैवनिःक्षिपेदनुमानतः । बेसनंकुडवैकंचतक्र-माढकसम्मितम् । पंचकोलादिकासिद्धाकथितैतैर्मनोहरा । हृद्यासंदीपनीवातंवातगुल्मंकफंतथा । शूलमामातिसारंच कासंश्वासंप्रणाशयेत् ।

अर्थ--पीपल, पीपलीमूल, चव्य, चीता, सोंठ, अजवायन, कालीमिरच, धनिया, सेंधानिमक, जीरा, कालाजीरा, अनारदाना, आमरे, हरड, और हींग, ये प्रत्येक पदार्थ मासे २ भर ले और हलदी तथा नोन अनुमानके माफिक तथा बेसन १६ तोले और दही २५६ तोले ये सब पदार्थ एकत्र कर कढी करे इसको पंचकोलादि कढी कहते हैं। यह हृदयको बलदायक, तथा जठराग्नि दीपन करनेवाली वातरोग, वातगुल्म, कफ, शूल, आमातिसार, खांसी और श्वास इनका नाश करे ।

अथ क्राथली (कथली)

तक्रादिसाधितंयत्स्याच्छाकमात्रंवरांगने । फलंमूलंतुपत्रंवा सुमंपद्मसुमप्रभे । क्राथलीतिसमाख्यातादीपनीपाचनीम-ता। हृद्याप्रीतिप्रदारुच्यालघ्वीवातकफापहा। त्यक्त्वास्वी-यांश्चशाकस्यगुणानेतद्गुणाभवेत् । पीनोत्तुंगघनोरोजशालि-न्यग्रसरेप्रिये ।

अर्थ–कथली कहिये दहीमें पक्क करा साग, फल, अथवा मूल, तथा पत्र, किंवा फूल, इनमेंसे किसी एक सागको दही बेसनमें ओटानेसे उसको कथली कहते हैं। यह कथली जठराग्निको दीपन करे पाचन है, हृदयको बलदायक, प्रीति तथा रुचिको करे,और हलकी है।वात कफ इनका नाश करे,यह सागकी कढी पूर्वोक्त अपने कढीके गुणोंको त्याग ऊपर कहे गुणोंको करती है अर्थात् जैसे जैसे सागके साथ बनती है उसी उसीकेसे गुणोंको करतीहै ।

अलीकमत्स्याः ।

(पानवडी)

वैसनाश्चामसेयाश्चालीकमत्स्याद्विधामताः । शृणुवेसनचा-मस्योःकृतिंतेप्रवदाम्यहम्। माषाश्चमंथास्त्वग्घीनाःपृथग्या-त्रासुपेषिताः। चामसीमाषपिष्टंस्याद्वेसनंचाढवमंथजम् ।

अर्थ-अब अलीकमत्स्य कहते हैं। तहां कहते हैं कि, अलीकमत्स्य दो प्रकारके हैं. एक बेसनके दूसरे चामसीके इनमें प्रथम बेसन और चामसी बनानेकी क्रिया कहते हैं। छिलकारहित उडद अथवा चनेकी दालको पीसे । चनेकी दालके चूर्णका बेसन, और उडदके चूर्णको चामसी कहते हैं।

चामसींवेसनंवापिमंथयेदंबुनासमम्। तत्रैवैलादिकंकांतेवेसवारंविमिश्रयेत् । नागवल्लीदलानीषत्पक्वान्येवततःप्रिये । लेपयेत्तेनपिष्टेनसूपशास्त्रविशारदः । वेष्टयेच्चप्रयत्नेनततः कुर्यादिमंविधिम्। किंचिन्नीरयुतंभांडंतृणैरर्द्धंविपूरयेत्। तस्योपरिन्यसेत्तानिपाचयेन्मंदवह्निना । यदितानिघनानि स्युर्भांडान्निष्कासयेत्पृथक्। तेषांशस्त्रेणखंडानिमत्स्यानामिवकल्पयेत् । घृतेतैलेऽथवातानिपाचयेन्नवयौवने।

अर्थ-चामसी अथवा बेसनको पानीमें सानकर उसमें परिभाषामें कहा एलादिक वेसवार डालकर खूब मथे, फिर नागरवेलके पके पानोंमें मथीहुई पीठी लगावे फिर एक पात्रमें थोडा पानी डाल उसमें आधे भागमें तिनका भरके उसमें वो लिपटेहुए पान भरे फिर उस पात्रके मुखपर कढना देकर चूल्हेपर मंद मंद अग्नि देवे, कुछ देरमें वो पान सीजकर कठोर हो जाते हैं। तब उस पात्रमेंसे काढलेवे फिर छुरीसे टुकडे करके घृतमें अथवा तेलमें तल लेवे, इसको अलीकमत्स्य कहते हैं। और लौकिकमें इनको पानवडे कहते हैं।

अलीकमत्स्योंके गुण।

प्रियास्तेऽलीकमत्स्याःस्युर्बल्यावृष्यारुचिप्रदाः। ईषत्पित्तकराःपुष्टिप्रदाधातुविवर्द्धनाः। वातार्दितहनुस्तंभहराःकोष्ठविशोधकाः। क्वथितायांक्षिपेद्वापितथाप्येतद्गुणाःस्मृताः । एवमन्यस्यशाकस्यपत्रपुष्पादिकस्यच।युक्त्याकुर्याद्गुणैस्तुल्याअलीकामत्स्यकाः प्रिये।

अर्थ-ये अलीकमत्स्य प्रिय, बलकारक, धातुवर्द्धक, रुचिकर, किंचित पित्तकारक, पुष्टिदायक, तथा वृष्य हैं उसीप्रकार वातरोग, आर्दित, तथा

हनुस्तंभ, इनके नाशक,और कोष्ठको शुद्ध करनेवाले हैं इनको कढीमें डालकर भोजन करनेसेभी उक्त गुणोंको करे है।इसप्रकार बैंगन, मूली, पालक, आदि किसी फल पत्र पुष्प आदिके अलीकमत्स्य बनावे उनके गुण जो ऊपर कहे हैं वो होते हैं। परंतु हमारे मध्यदेशमें इनको चंद्रसेनी कहते हैं । इतना भेद है कि, अलीकमत्स्योंको पात्रमें घासके ऊपर धरके सेकते हैं और यहांके मनुष्य फल फूल आदिको गाढे बेसनमें लपेटकर घीमें छोड देते हैं जब पक्क होजाते हैं तब निकाल लेते हैं ।

अथ रसाज्याः ।

प्रस्थैकंचाणकंपिष्टंप्रसृतैकंघृतंतथा । एकीकृत्यतुसंमर्द्यपचेन्नीरेचतुर्गुणे । यावद्गाढंभवेत्पश्चात्स्थाल्यांकृत्वाप्रसारयेत् । कनिष्ठिकामितोत्सेधंशीतेखंडानिकल्पयेत् । दीर्घाणिशिवि-कातुल्यान्याज्येतानिविपाचयेत् । फुल्लानिकुंकुमाभानिदृष्ट्वा निष्कासयेद्द्रुतम् । रसाज्याइतिसंप्रोक्ताः सूपशास्त्रविशारदैः । रसनातलकेहीमानर्त्तक्यःसुखदायकाः ।

अर्थ-अब रसाज्याकी विधि कहतेहैं । चनाका बेसन ६४ तोले तथा घृत ८ तोले एकत्र मिलाय चौगुने पानीमें पक्क करे जब सीजकर गाढा होजाय तब उसको कांसेकी स्वच्छ थालीमें १ अंगुल मोटी रहे इस तरह फैलाय देवे जब शीतल होजावे तब छुरीसे सेवके समान लंबे २ टूक कतर लेवे उन टूकों-को गरम घृतमें छोडदेवे, जबकि फूलकर केशरके समान रंग होजावे तब उनको निकाल ले इनको सूपशास्त्रमें रसाज्या कहते हैं ।

चेदिमाललनेक्षिप्त्वादध्यादावतिशंप्रदाः । ससितेमथितेवा-पिक्षिपेत्तक्रेसितान्विते । अम्लिकापानकेवापिक्वथितायांवि-निःक्षिपेत् । राजिकाजाजिधान्याकमरीच्यादियुतेषुच । स-पट्टुषुक्षिपेद्वापिद्रवेपूक्तेषुशोभनाः । रसाज्याःपुष्टिदारुच्याब-ल्यावीर्यकफप्रदाः । वातपित्तहराःख्याताअम्लेक्षिप्ताःकफा-पहाः । ईषत्पित्तकराबालेवातघ्नाः परिकीर्तिताः ।

अर्थ-इन रसाज्याओंको दही आदि पदार्थमें भिगोकर भोजन करनेसे अति सुखदायक होतीहै । सो इसप्रकार कि-दहीको मथकर उसमें सपेद बूरा

डालके अथवा बूरेको छाछमें मिलायके उसमें इनको डालदेवे, अथवा इमलीके पनेमें बूरा डालके भिजोदेवे, अथवा कढीमें किंवा राई, जीरा, धनिया, मिरच, और निमक इन सबको मथेहुए दहीमें डालके भिजोकर भोजन करनेसे उत्तम गुणकारी होताहै । यह रसाज्या पुष्टिदायक, रुचिकारक, बल वीर्य तथा कफ इनको बढानेवाला है । और वात पित्त इनको नाशकरनेवाला है, और खट्टेपदार्थोंमें भिगोनेसे कफनाशक, तथा किंचित् पित्तकारक और वातनाशकहै ।

अथ माषरंगी ।

माषकान्दलितान्नीरेक्षिप्त्वारात्रौचतुर्गुणे ।प्रातस्तान्निस्तुषान्कृत्वाप्रक्षाल्याद्भिःप्रयत्नतः ।ततस्तान्पेषयेत्सम्यक्पिष्टिंकृत्वाश्मनाऽश्मनि । तस्यांपिष्ट्यांहिलवणंजीरकंमरिचंनिशाम् । रामठंचानुमानेनवेसवारंतुवाप्रिये।क्षिपेदेलादिकंपश्चान्मंथयेद्भृशमेवच । कोलंकोलंक्षिपेत्तप्तेघृतेसंपाच्यतूद्धरेत् । तच्छेषांपिष्टिकामद्भिर्घोलयित्वाऽष्टभागके ।क्वाथलीमिवसंपाच्याक्षिपेदेलादिकंततः। वेसवारंचलवणंतत्रेमावटिकाःक्षिपेत्। ततोदद्यात्क्षणंवह्निंसिद्धामेवसमुद्धरेत् । एषाप्रोक्ताप्रियेतज्ज्ञैर्माषरंगीतिनामतः । माषसूपसमाज्ञेयागुणैरंबुरुहेक्षणे । मुद्गसूपसमातद्वद्गुणैर्मौद्गीविचक्षणे ।

अर्थ--अब माषरंगी (मगौरी) के बनानेकी विधि और गुणदोष कहतेहैं । उडदकी (या मूंगकी) दाल रातको चौगुने पानीमें भिजोवे (परंतु गरमियोंमें बहुत देर भीजनेसे खट्टी होजातीहै इसीसे तडकाउ भिजोवे) प्रातःकाल उसको धोकर उसके छिलके दूर करे, और सिल लोढेसे महीन पीसे फिर इसमें नोन, जीरा, मिरच, हलदी, तथा हींग, ये पदार्थ उस पीठीमें गेरके उस पीठीको मथे अथवा एलादि वेसवार डालके मथे पीछे बेरके प्रमाण गोलकर तप्त घृतमें तललेवे, तदनंतर उसी पीठीमेंसे थोडीसी बाकी राखे उसको अठगुने पानीमें मिलाय कढीके समान तयार करके उसमें तलीहुई मगोडी डालदेवे, पीछे वेसवार और नोन उसके अनुमान माफिक डाल एक क्षणभर और औटावे, इसको सूपशास्त्रमें माषरंगी कहतेहैं यदि यह माषरंगी उडदके होनेसे उडदकी दालके समान गुण करैहै । और मूंगकी होवे तो मंगकी दालके समान गुणकारी जाननी ।

अथ पत्रवटिकाः।

सुसूक्ष्मेचाणकेपिष्टेप्रियेरक्तांमरीचिकाम्। धान्याकंवह्लिजंहिंगुजीरकंपत्रकंत्वचम्।नालिकेरस्यमज्ज्ञानंकंकोलंचलवंगकम्। मरीच्यादिगणंसर्वंतैलभ्रष्टंसुपेषितम्॥ लवणंचानुमानेनसंक्षिप्याप्सुविलोडयेत्। नातिद्रवंघनंवापिघनपीनपयोधरे॥ वेसनेनदलंतेननागवल्ल्यादिजंदिहेत्। वेष्टयेत्पाचयेद्युक्त्या तांयुक्तिंप्रवदाम्यहम्॥

अर्थ–अब पानके वडेकी दूसरी विधि कहतेहैं। महीन वेसनमें (मिरच, धनिया, जीरा, लाल मिरच, हींग, पत्रज, दालचीनी, गिरीका चूर्ण, कंकोल, लोंग, आदि सर्व पदार्थ तेलमें बारीक पीसे) तथा नोन इसमें अनुमानके माफिक मिलाय पानी डालके मथे, फिर उस पीठीको नागरवेल अथवा आलू आदि में लपेटकर युक्तिसे सिजावे वो प्रकार इसरीतिपर है।

किंचिदंबुयुतंभांडंतृणैरर्द्धंप्रपूरयेत्। तत्तृणोपरिसंस्थाप्य तानिपत्राणियत्नतः। मंदाग्निनाघनीभूतान्यरंनिष्कासयेद्बहिः। ततोऽच्छूरिकयाखंडेद्द्व्यंगुलोन्मानतःस्फुटम्। घृतेतैलेऽथवाकांतेपाचयेन्मंदवह्निना। ताःपत्रवटिकारुच्याःशुक्रलाबुद्धिकांतिदाः। स्थौल्यवह्निप्रदाबल्यावातपित्तकफापहाः।

अर्थ–एक पात्रमें थोडासा जल डालके उसमें अर्धपात्रको तिनकोंसे भरदेवे और उन तिनकोंके ऊपर उन पत्रोंको अथवा आलू आदि बेसन लिपटी हुई पकोडीन्को धरे तथा मंद मंद अग्निदेकर सिजावे जब वो कठोर होजावे तब उतारकर छुरीसे टुकडे कर गरम तेल या घीमें तल लेवे इनको पत्रवटिका कहतेहैं। ये वडी रुचिकारक तथा धातु, बुद्धि, शरीरकी कांती, स्थौल्य, जठराग्नि, तथा बल इनको देतीहै। और वात, पित्त, और कफ इनकी नाशकहै।

अथ माषंडरी।

आर्द्रकंलवणंहिंगुजीरकंमाषपिष्टके। मिश्रयित्वातुनीरेणमर्दयेत्कठिनंततः। तत्पिष्टवटिकाःकृत्वापचेत्पत्रवटीरिव। गुर्वीमाषंडरीबल्याशुक्रलापौष्टिकीप्रिये। नाशयेदर्दितंवातमरोचकमसंशयम्। एवमल्पबलामौद्गीलघ्वीकंजविलोचने।

अर्थ--अब माषेंडरी (उडदकी वरी) की विधि तथा गुण कहतेहैं अदरख, नोन, हींग, तथा जीरा, ये पदार्थ एकत्र पीस उडदके चूर्णमें मिलाय उसमें जल मिलाय भलेप्रकार मथे फिर उसकी वडी कर पानवडीके समान सिजाय टुकडे कर घृतमें या तेलमें तले ये माषेंडरी भारी, बलदायक, धातुवर्द्धक, तथा पुष्टिकारक है । और अर्दितरोग, वातरोग, अरुचि इनको नाश करे, इसीप्रकार मूंगकी माषेंडरी इस्से किंचित् न्यून गुणकारी और हलकी होतीहै ।

अथ वटिकाः (मरीच भरी)

माषाश्वमंथतुवरीतंडुलादीन्विपेषयेत् । कुस्तुंबरुचबाह्लीकलवणंचानुमानतः । नातिद्रवंघनंपिष्टंमंथयेच्चभृशंततः । मरीचिगर्भावटिकाःकृत्वाचणकसन्निभाः। शोषयेदातपेचाज्येपाचयेद्रुचिकारिकाः । वातगुल्महराःख्याताभोजनेप्रीतिदायकाः । एवंमुद्गादिकानांचवटिकाःपरिकल्पयेत् । इमामरीचगर्भाख्याःकीर्तितावटिकाःप्रिये । एताएवांबुनापक्काअत्यंतं प्रीतिकारिकाः । यदिचैवाम्लवर्गेणपाचिताःकिमुतब्रुवे ।

अर्थ–उडद, चना, अरहर, अथवा चामल इत्यादिक जो धान्य ले, महीन पीस उसकी पीठी करे, उसमें कोथमीर, हींग और निमक अनुमान माफिक मिलाय फिर उस पिट्ठीको मथकर प्रत्येकमें एक एक मिरच भरके वरी तोडदेवे, प्रमाणमें चनेकी बराबर फिर उनको धूपमें सुखाय घृतमें तललेवे। ये मरीचिगर्भा बडी रुचिकारक, वातगुल्मनाशक, और भोजनविषयमें प्रीति उत्पन्न करनेवालीहै । इसीरीतिसे मूंग, मोठ आदिकी वडी करनी चाहिये ये वडी पानीमें पक्क करनेसे अत्यंत प्रीतिकारकहै । और यदि खटाई आदि पदार्थमें सिजानेसे उसके गुण कहनेमें नहीं आवे अर्थात् बहुत गुण करे ।

अथ माषवटिकाः ।

माषान्विदलितान्नीरेप्लावयेत्प्रहरद्वयम् । ततस्तोयेनसंक्षाल्य कारयेदपिनिस्तुषान् । शिलायांपेषयेत्पश्चादश्मनासूक्ष्मकं ततः । तत्पिष्टचामनुमानेनलवणार्द्रकरामठम्।संमिश्र्यमंथयेत्तावद्यावन्नीरतरंभवेत् । ततोवस्त्रेप्रकल्पेतचणकप्रमिता वटीः । शोषयेदातपेसम्यगिमामाषवटीःप्रिये । किंचिदाज्ये-

नसंभर्ज्यपाचयित्वांबुनाभजेत् । रुच्यामांषवटीहन्यात्कंप-
वातंतथार्दितम् । वातरुक्सर्पिणीचेयंकफापित्तविवर्द्धिनी ।
मुद्गसूपगुणामौद्गीचान्याःस्वान्नगुणाःस्मृताः ॥

अर्थ-अब उडदकी वरी बनानेकी विधि और गुण कहतेहैं। उडदकी दाल दो प्रहरपर्यंत भिजोवे; पछि उसको धोकर छिलका दूरकर बारीक पीसे, फिर निमक, अदरख, और हींग, इनको अनुमान माफिक मिलाय फिर थोडा पानी डारके मथे पीछे इसकी चनेके समान वडी एक बडे स्वच्छवस्त्रपर तोड देवे। इनको धूपमें सुखाय धर रक्खे, फिर उसमेंसे कार्यके समय जितनी चाहिये उतनी लेकर घीमें तलके पानीमें सिजावे, ये वडी रुचिकारक, कंपवात, अर्दितवात, और वातविकार इनको नाश करे और कफ तथा पित्तको बढावे इसीप्रकार मूंगकी वरीके गुण मूंगकी दालके समान जानने और अरहरकी, मटरकी, मोठकी इत्यादिकी वडी अपनी २ दालके समान गुणकारी जाननी।

अथ खंडवटिकाः।

सुपिष्टंचाणकंनीरेसमानेसंविपाचयेत् । मरिचंलवणंहिंगुधा-
न्याकंशर्वरींक्षिपेत् । सुसूक्ष्मंनालिकेरस्यमज्जानंचापिसंक्षि-
पेत् । घनीभूतंसमुत्तार्यघृताक्तेकाष्ठपट्टके । संक्षिप्यघृतलिप्ते
नहस्तेनैवशनैःशनैः । वर्द्धयेत्तारपाकारंशीतेखंडानिकल्प-
येत् । चतुष्कोणानिशस्त्रेणशृंगाटकनिभानिवा । ततःसंपा-
चयेदाज्येखंडाख्यावटिकाःस्मृताः । इमाबल्याःशुक्रलाश्च
कांतिपुष्टिकफप्रदाः । विष्टंभकारिकारुच्यागुर्व्योवातहराः
स्मृताः । रक्तदोषंतथापित्तंनाशयंत्यपिभक्षिताः । अकीर्तिं
मपलोकंचयथाधर्माःसुरक्षिताः ।

अर्थ-अब खंडवटिकाकी विधि कहतेहैं। वेसन और जल बराबर लेकर सिजावे, सिजतेसमय उसमें लाल मिरच, निमक, हींग, धनिया, हलद, तथा गिरीका चूर्ण, ये पदार्थ बारीक पीसके डालदेवे, जब वो वेसन सीजकर गाढा होवे तव उतारकर घी चुपडे पट्टेपर गेर बराबर हाथसे धीरे धीरे फैलाय देवे, जब शीतल होनेसे जमजावे तव छुरीसे बरफीसमान टुकडे कतरके गरम घीमें सेक लेवे,इनको खंडवटिका कहतेहैं। ये खंडवटिका बल

वीर्य, कांति, पुष्टि, कफ, विष्टंभ और रुचि इनको करेहै । भारी है, तथा वातरोग रक्तदोष और पित्त इनको नाश करेहै ।

अथ वटकाः (बडे)

माषकान्विदलीकृत्यक्षिपेन्नीरेद्वियामकम् । संक्षाल्यनिस्तुषान्कृत्वापेषयेदश्मनाश्मनि । पलैकंचपटुप्रस्थेशृंगवेरंपलं तथा । टंकैकंरामठंभृष्टंजीरकंचाद्विषाणकम् । कोलैकंमरिचं कृत्वाचैकध्यंमंथयेत्ततः । भवेन्नीरतरंयावत्ततोनीत्वापलंपृथक् । कृत्वाचंद्रसमाकारंशरच्चंद्रप्रभानने । मध्यच्छिद्रंततश्चाज्येतैलेवापाचयेच्छनैः । कुकुमाभान्निरीक्ष्यैवपृथक्कृत्वानिधापयेत् । माषाणांवटकारुच्याःकफवातविवर्द्धनाः । कंपवातमरुत्पक्षाघातकार्श्यहराःस्मृताः ।

अर्थ--अब वडे बनानेकी विधि और गुण कहते हैं । उडदकी दालको दो प्रहर पानीमें भिजोवे फिर उसको धोय छिलके दूरकर महीन पीसे फिर १ प्रस्थ दालमें १ पल निमक डाले, १ पल अदरख, १ टंक भुनी हींग, २ टंक, जीरा तथा दो टंक मिरचका चूरा इन सबको मिलाय फिर उस पीठीको अच्छीरीतिसे मथे फिर उसमेंसे एक एक पल पिठी ले गोल गोल चंद्रके समान हाथोंसे चुपडकर वडे बनावे, उसके बीचमें एक छिद्रकर गरम घीमें अथवा तेलमें छोड देवे, जब पक्व हो केशरके समान लाल रंगहो तब निकास जलमें गेर देवे, इसको वडा कहते हैं । ये उडदके वडे रुचिकारक कफ और पित्त इनको बढावे और कंपवात,वातरोग, पक्षाघात, तथा कृशत्व इन रोगोंको नाश करे हैं ।

अथैतेषामन्यां कृतिमाह ।

त्वग्घीनांमाषजांदालींयात्रासूक्ष्मांविपेषयेत् । दध्नातत्पिष्टकंमथ्यकृत्वातद्वटकान्प्रिये । गोघृतेपाचिताबल्यास्तेहिताः स्त्रीप्रसंगिनाम् । वातघ्नाःशुक्रलाःश्लेष्मरक्तपित्तप्रकोपनाः ।

अर्थ--उडदके दालके चूनको दहीमें मथकर उसके वडे बनावे उनको गौके घीमें सेके, ये वडे बलदायक, स्त्रीप्रसंग करनेवालोंको परम हितकारी, वातनाशक, तथा धातुबढानेवाले एवं कफ और रक्तपित्त इनको कुपित करनेवाले हैं ।

अथ कांजिकवाटिकाः ।

मृद्भांडंकटुतैलाक्तंधूपयेद्रामठाज्यतः । तत्रकोष्णोदकंजीरं राजिकांपटुविश्वकम् ।संक्षिप्यवटकांस्तत्रक्षिपेत्सम्यग्विमुद्र-येत् । त्रिदिनानंतरंभांडात्समुद्धृत्यनिषेवयेत् । कांजिकाव-टकारुच्याःकफपित्तविवर्धनाः । वातदाहप्रशमनाःशूलाजी-र्णविभंजनाः ।

अर्थ--अब कांजीके वडेन्की विधि कहते हैं । माटीके पात्रमें कडुआ तेल चुपड उसमें हींग और घीकी धूनी देवे, फिर उस पात्रको आधा गरम जलसे भरे, फिर उस पानीमें जीरा, राई, निमक, और सोंठ इनका चूर्ण अनुमान माफिक डालकर उसमें उडदके वडे भिजोय देवे, फिर उस पात्रका मुख बांध तीन दिन पर्यंत धरा रहने दे, फिर उसमेंसे जितने वडे निकालने हो उतने निकाल फिर उसपात्रका मुख बांधकर धरदेवे ये कांजिक वडे रुचिकारक, तथा कफ पित्तको बढानेवाले और वात, दाह, शूल, और अजी-र्ण इनके नाशक है ।

अथ तक्रवटकाः ।

मृद्भांडंकटुतैलाक्तंधूपयेद्रामठाज्यतः । तत्रतक्रंसलवणंसा-जाजीशुंठिराजिकम् ।संक्षिप्यवटकांस्तत्रधौतानुष्णोदकेनच। मुद्रयित्वाष्टयामांतंस्थापयेच्चततोभजेत् । तेहृद्याःशुक्रला बल्याःपौष्टिकालघवःस्मृताः । वातातंकप्रशमनारक्तपि-त्तकफप्रदाः ।

अर्थ-अब छाछके वडेन्के गुणदोष कहते हैं । माटीके पात्रके भीतर कडुआ तेल चुपडकर उसको हींग और घीकी धूनी दे उसको छाछसे आधा भर देवे उस छाछमें निमक, जीरा, और सोंठ तथा राई इनको पीसके डाले, फिर वडोंको गरम जलसे धोयकर उस छाछमें भिजोय देवे तथा उसपात्रका मुख बांधकर आठ प्रहरतक धरा रहने देवे फिर उस-मेंसे वडा निकाल भोजनमें लेने चाहिये । ये वडे हृदयको बलदायक, धातुवर्द्धक, बलकारी, पुष्टिकर्ता, हलके, तथा वातनाशक है । और रक्तपित्त तथा कफ इनको बढानेवाले हैं ।

पानकवटकाः ।

अम्लिकापानकेकांतेप्लाविताविटकायदि ।
लोलाक्षिगुणतःप्रोक्तास्तक्रार्द्रवटकाइव ।

अर्थ--इमलीके पनेमें भीजेहुए वडे--छाछमें भीगेहुए वडान्के समान गुणकारी जानने ।

मुद्गवटकगुणाः ।

मुद्गानांवटकारुच्याःपौष्टिकाःकफकारकाः । कोमलागुरवो
बल्याःशुक्रलाःसुरतप्रिये।रक्तदोषप्रहरणावातपित्तहराःस्मृताः ।

अर्थ–मूंगके वडे रुचिकारक, पुष्टिकर, कफकारक, कोमल तथा भारी एवं बल वीर्य इनको बढानेवाले और रक्तदोष, वात तथा पित्त इनके नाशक है ।

अथ सूरणवटकाः ।

सूरणंखंडशःकृत्वापाचयेत्पेषयेत्ततः । लवणंमरिचंतत्ररामठंजीरकंतुवा । संक्षिप्यमंथयेत्पश्चात्पाचयेद्वटकान्घृते ।
तेचाग्निदीपनारुच्याअर्शोवातविभंजनाः ।

अर्थ–अब सूरण (जमीकंद) के वडेन्की विधि और गुणदोष कहते हैं जमी कंदके टुकडे कर उनको इमलीके पानीमें भिगोवे. और उनमें नीमक हींग, अथवा जीरा डालकर पीसे फिर हाथोंमें घृत चुपड खूब मथे पीछे इसके वडे बनाय घृतमें तल लेवे, ये वडे जठराग्निदीपक तथा रुचिकारी एवं बवासीर तथा वातरोग इनको नाश करते हैं ।

अथ कूष्मांडवटकाः ।

कूष्मांडंखंडशःकृत्वासूक्ष्मंतच्चापिवाससा । निष्पीड्यनिर्जलंकृत्वाततस्तस्मिन्विमिश्रयेत् । बेसनंमाषपिष्टंवानिशाधान्याकरामठम्।लवणंमरिचंसर्वंमंथयेद्वटिकाद्वयम् । ततः
संरचयेत्तस्यवटकानतिशोभनान् । शोषयित्वातपेचैतान्पाचयेद्घृतभर्जितान् । लवणंत्वनुमानेनक्षिपेदंबुप्रमाणतः ।
कूष्मांडवटकारुच्यावातातंकविनाशनाः ।

अर्थ–कुम्हडा (पेठे) के वडे बनानेकी विधि कहते हैं । पेठेके वारीक टुकडे कर (अथवा घीयाकसमें कसके) उसको कपडेमें बांधके खूब

निचोड लेवे, फिर उसमें बेसन अथवा उडदका चून मिलावे और हलदी धनिया, हींग, निमक, और मिरच ये पदार्थ मिलाय उसको दो घडीपर्यंत खूब मथे फिर उसके वडे करके उनको धूपमें धरदेवे, जब सूखजावे तब उठायकर धर रक्खे जब वडे करने हो तब उनको घीमें सेक पानीमें भिगोदेवे और उनमें पानीके प्रमाण निमक डाले ये कुम्हडेके वडे रुचिकारक तथा वातनाशक है।

अथैतेषामन्यां कृतिमाह।

कूष्मांडंनिस्त्वचंसूक्ष्मंखंडितंनिर्जलीकृतम्। तत्समंमाषजं पिष्टंमिश्रयित्वावरांगने। मरिचंलवणंधान्यंहरिद्रांचतिलानपि। प्रमाणेनक्षिपेन्मथ्यकारयेद्वटकान्प्रिये। संशुष्कानातपेचाज्येभर्जितान्केविपाचयेत्। पूर्ववच्चगुणांश्चैवपूर्ववद्विद्धिसुंदरि। एवमन्यफलादीनांशाकार्हाणांघनस्तनि। मारलोलविशालाक्षिकारयेद्वटकान्प्रियान्।

अर्थ–अब वडीकी दूसरी विधि कहतेहैं। पेठेको छील उसके छोटे छोटे टुकडे कर उनका पानी निकाल डाले फिर उस पेठेकी बराबर उडदका चून या पिट्ठी मिलाय मिरच, निमक, धनिया, हलदी, और तिल ये इसके अनुमान माफिक लेकर उसमें मिलावे पीछे हाथोंसे खूब फैटकर इसकी वडी तोडदेवे, उनको धूपमें सुखाय धररक्खे, जब कामहो तब पूर्वोक्तविधिके अनुसार पानीमें सिजावे इसके गुण पूर्वगुणोंके समान जानने। इसीप्रकार अन्यशाककी और फलादिकोंकी वरी बनानी चाहिये इनको पेठेकी वरी कहतेहैं।

अथ पर्पटाः। तत्रमाषपर्पटकृतिमाह।

निस्तुषाणांचमाषाणांपिष्टंवस्त्रविगालितम्। लवणंमरिचंजीरंकिंवारामठकंक्षिपेत्। क्षारांबुमर्दितंगाढंनिशायामुषितंततः। कुट्टयेदश्मनासम्यक्पाषाणेकोमलंयथा। ततस्तद्वर्तिकांकृत्वामृणालसदृशींशुभाम्। शुक्तिमानानिखंडानितस्याःकुर्याच्चतंतुना। वेल्लयेत्पर्पटांस्तेषांचंद्रमंडलसन्निभान्। सूक्ष्मान्स्नेहेऽथवांगारेभर्जयेत्तांश्चशोषितान्। पर्पटामाषजाबल्या दीपनारुचिकारकाः। कफकांतिप्रदाःकांतेपाचनावातनाश-

नाः । सारकागुरवःपुष्टिरक्तपित्तप्रवर्द्धनाः । चेदाज्येपाचिता स्तेचन्यूनाःस्युर्गुणतस्ततः ।

अर्थ–अब पापडोंकी विधि कहतेहैं । उज्ज्वल और छिलका रहित उडदोंकी दालके चूर्णको किसी वस्त्रमें छान उस चूनके प्रमाण माफिक निमक, काली मिरच, जीरा, और हींग, ये पदार्थ पीसकर मिलाय देवे, पीछे पापडखार अथवा और किसी क्षारके पानीमें उस चूनको उसन कर रात्रिभर धरा रहने देवे, प्रातःकाल ओंखली मूसलसे कूटे जब कूटते कूटते अतिनम्र होजावे तब इसकी कमलकंदके सदृश लंबी बत्ती करे उसबत्तीमें डोरीसे दो दो तोलेके गँडेरीके समान टुकडे करे, फिर चकला और वेलनमें कुछ तेल लगाकर उस टुकडेन्को बहुत पतला वेलकर गोल पत्रके समान करे और उनको धूपमें सुखाता जावे, फिर इनको घीमें तलके अथवा अंगारोंपर भूनकर भगवान्‌के भोग धरे । ये उडदके पापड बलकारक जठराग्निदीपन, रुचिकारी, कफकारक, तथा कांतिदायक, पाचन, वातनाशक, किंचित् रेचक, तथा भारी, एवं पुष्टता और रक्तपित्त इनको बढातेहैं घृतके भुने पापड अंगारोंपर भुने पापडोंकी अपेक्षा अल्पगुणवालेहैं ।

अथ मुद्गपर्पटानाह ।

निस्तुषाणांचमुद्गानांपिष्टंवस्त्रविगालितम् । मरिचंलवणंहिंगु जीरकंवात्रामिश्रयेत् । मर्दयेत्क्षारनीरेणपूर्ववत्कुट्टनंविना । वर्तिकादीनिकृत्यानिकुर्यात्संवेल्लयेत्ततः । घृताक्तेपट्टकेकांतेवेल्लनेनेंदुबिंबवत् । शोषयेदातपेसम्यग्मृद्भांडेसन्निधापयेत् । तेऽगारभर्जिताःश्रेष्ठामध्यमावृतभर्जिताः । मुद्गानांपर्पटाःस्निग्धागुरवश्चज्वरेहिताः । त्रिदोषशमनाःप्रोक्ताहिताःकर्णाक्षिरोगिणाम् ।

अर्थ–अब मूंगके पापडोंकी विधि और गुणदोष कहतेहैं, छिलका रहित मूंगकी दालको पीस कपडेमें छान उसमें निमक, काली मिरच, जीरा, और हींग पीसके मिलावे, और पापडखार अथवा कोई दूसरा खारके पानीमें उसन कर मले जब मलते मलते नम्र हो जावे तब उडदके पापडोंकी विधिके समान उसकी आकृतिकर चकलापर वेलनेसे वेलकर पत्तेके समान पतले पापड बनावे, और धूपमें सुखायलेवे, फिर इनको अंगारोंपर भूनके अथवा घीमें तलकर भोजन करे, अँगारोंपर भूनेहुए पापड घृतमें तलेहुए

पापडोंकी अपेक्षा गुणोंमें अधिक श्रेष्ठहै। ये पापड स्निग्ध, भारी, ज्वर-रोगीको-पथ्य, तथा त्रिदोषनाशक, एवं कान और नेत्रसंबंधी रोगोंको अत्यंत हितकारी है।

अथ तंडुलपर्पटाः।

धौतानांतंडुलानांचपिष्टंनीरेविपाचयेत् । मरीचपटुबाह्लीकं मिश्रयेदनुमानतः । पर्पटास्तद्भवामिष्टाबल्यावृष्यारुचिप्रदाः । धातुसंवर्धनाहृद्यागुरवःपाचनाःसराः । त्रिदोष शमनाःख्यातामंजुकोकिलभाषिणि । अंगारभर्जिताःश्रेष्ठामध्यमाघृतभर्जिताः। अस्यैववटकाकाराःकृताश्चाज्येविभर्जिताः। गुणैर्गुणवतिज्ञेयाहृद्यावातकफापहाः।

अर्थ--अब चामलके पापडोंकी विधि कहतेहैं।शुद्ध धुलेहुए चावलके चूनको पानीमें पककरे और पकतेसमय काली मिरच, निमक और हींग इनका चूरा प्रमाण माफिक डाले, पीछे शीतल होनेपर उसके पापड करे, ये पापड मीठे, बलदायक, वृष्य, रुचिकारी, धातुकी वृद्धि करनेवाले, हृदयको बल देनेवाले, भारी पाचन, रेचक, तथा त्रिदोषनाशकहै। अँगारोंपर भुनेहुए पापड श्रेष्ठ और घृतमें तले मध्यम होतेहैं। यदि इसी सिजेहुए चामलके चूनकी वडी करके घृतमें तलकर खावे तो हृदयको बलदायक और वात तथा कफ इनकी नाशक जाननी ।

अथ भरित्रं (भरता)

वृंताकादिफलंवापिकंदंचांगारभर्जितम्।यत्नात्तन्निस्त्वचं कृत्वाहस्तेनैवविमर्दयेत् । आर्द्रकुस्तुंबरुंतत्रपटुरक्तांमरीचिकाम् । हरितामपिवाकांतेभर्जितंहिंगुमिश्रयेत्।तद्भरित्रस्य लोलाक्षिगुणास्तत्तत्फलैःसमाः ।

अर्थ-अब भरित्र (भरते-) की विधि कहते हैं। बैंगनसे आदि ले फल अथवा कोईसा कंद ले मंदाग्निसे भून उसका छिलका निकाल डाले पीछे उसको हाथोंसे मीडके उसमें अदरख, कोथमीर, निमक, लाल मिरच, अथवा हरी मिरच, और भूनी हींग मिलावे इसको भरता कहते हैं। जिस फलका अथवा कंदका भरता होता है उसके गुण उसी फल कंदके प्रमाण होते हैं। कोई कहता है इस भरताको घीमें भून फिर मसाला मिलावे।

अथ पोलिकाः (प्रामृठे)

अयिगोधूमपिष्टकंजलेनगाढंविमर्दयेत्कांते । किंचित्किंचिन्नीरंततश्चदत्वाविमर्दयेद्भूयः । यावन्मंजुतरंस्यान्मदनसमानंमदनकलाकुशले । तस्यपोलिकांकृत्वाचंद्रबिंबाच्चपत्रमिवसूक्ष्माम् । आज्यविलिप्तांबालेलोहतप्तकेविपाचयेच्छनकैः । पुनःपुनर्लोलाक्षिप्रवर्त्तयित्वोत्तारयेच्चपक्वाम् । अर्पयेच्चहरयेतांमदनवर्द्धिनींबल्यांपित्तघ्नीम् । कोष्ठशुद्धिकर्त्रीमपिवातनिहंत्रींभजेत्ततःसततम् ॥

अर्थ–अब प्रामृठे बनानेकी विधि और गुणदोष कहते हैं । गेहूंके चूनको पानीसे कुछ गाढा उसनकर थोडा जल छिडककर थोडी देर भीजने दे फिर उसमें थोडे थोडे जलकी छींटा देकर मुक्की मारके उसने जब नरम होजावे तब उसकी लोई तोड उसको चकलेपर पलोथन लगायकर वेलनसे गोल और पतली वेले फिर उसमें घी लगाकर गरम तवेपर डालदेवे जब सिकजावे तब दूसरी तरफ घृत लगाकर उलट देवे जब दोनों तरफसे सिक जावे तब उतारकर परमात्माको अर्पण करे । इसको प्रामृठे उपरांमठे, कठ्योंरा, मंजेडोरे, पलेटा, आदिभी मथुरा दिल्ली आगरेवाले कहते हैं । यह प्रामृठे कामदेवको बढावे, बलदायक, पित्तघ्न कोष्ठशोधक, और वातनाशकहैं.

अथ द्विदलपोलिका (पुरतदार प्रामृठे)

गोधूमपिष्टकंपूर्वमष्टमांशाज्यमिश्रितम् । मर्दयेत्पूर्ववच्चैनंकृत्वैतस्यैवपोलिकाम् । ततश्चाज्येनसंलिप्यकृत्वातांचचतुर्गुणाम् । पुनश्चंद्रसमाकारांवेल्लयकृत्वाप्रपाचयेत् । पुनःपुनःप्रवर्त्त्यैवलघुहस्ताविचक्षणा । पक्वामुत्तारयेदेनांपोलिकेवगुणैरियम् ।

अर्थ–अब पुरतदार प्रामृठे बनानेकी विधि और गुणदोष कहते हैं । गेहूंके चूनमें अष्टमांश घी मिलाय उसको पूर्वोक्त विधिके अनुसार उसनें और उसके प्रामृठे करे, फिर उसमें घी लगाय चौपट घडी करे पीछे वेलकर तवेपर डालदेवे और वारंवार हलके हाथसे उलट पुलट कर सेके इसके गुणभी पूर्वोक्त प्रामृठेके समान हैं ।

अथ पूलिका तत्रतत्कारणभूतांसमितांप्रथममाह ।

गोधूमान्धवलान्धौतान्कुट्टयेषच्छोषयेत्ततः॥शूर्पेणप्रोक्षयेद्वा लेयंत्रेणापिप्रपेषयेत् । ततिपिष्टंसूक्ष्मवस्त्रेणगालितंसमितामता ।

अर्थ–अब पूरी बनानेकी क्रिया कहते हैं। परंतु प्रथम जिस्से पूडी बनती है ऐसी मैदाके बनानेकी विधि कहते हैं उत्तम सपेद गेहूंओंको धोय ओखली- में छरे, फिर धूपमें कुछ सुखाय सूपसे फटक डाले फिर उनको चक्कीसे म- हीन पीस बारीक वस्त्रमें छान लेय इसको समिता (मैदा) कहते हैं ।

समिताषोडशमांशंघृतंविधिज्ञोविमर्दयेत्सम्यक् । गाढंतत- श्चांबुनाविमर्दयेत्तांरचयेत्तल्लोम्नीं। शुक्तिमितांवास्वेष्टांततश्च क्रिकांकृत्वातल्लोम्न्याः॥संवेल्ल्यतांचसूक्ष्मांविपाचयेद्वकटाह- केसघृते । सापूलिकेतिकथितास्निग्धागुर्वीमरुत्पित्तहर्त्री । शुक्रवर्द्धिनीकांतेतथादुर्जराजरापहाचापि । सैषैवाघृतामिश्रे- णगोधूमपिष्टकेनच । कृतालघ्वीगुणैःख्यातापूर्ववत्पूल्लिकाप्रिये।

अर्थ--मैदामें सोलहवाँ हिस्सा घी मिलाय फिर पानी डाल धीरेधीरे खूब उसने जब नरम होजावे तब उस लूँडमेंसे दोदो तोलेकी लोई करे फिर उन- मेंसे एक एक ले वेलनसे वेल बहुत पतली पत्तेके समान गोल पूरी करे उस- को गरम घीके कढावमें छोडता जावे जब फूलकर सिकजावे तब उतारकर झालमें धरता जाय, ये मैदाकी पूरी स्निग्ध, भारी, वातघ्न, पित्तनाशक, धातु- वर्द्धक, और वृद्धको तरुणता देनेवाली ऐसी है।यदि इसी पूरीको विना घीका मोयन दिये करे तो हलकी तथा पूर्ववत् गुणकारी होती है।

अथ करपट्टिका [रोटी]

गोधूमचूर्णकंकांतेमर्दयेदंबुनाघनम् । किंचित्किंचिज्जलंदत्वा मर्दयेच्चपुनःपुनः॥यावन्मृदुतरंकुर्यात्ततोलोम्नींपलोन्मिताम् । पश्चात्तच्चक्रिकांकृत्वाहस्ताभ्यांतांविवर्द्धयेत् । संवेल्ल्यवर्द्धये- द्वापिचंद्रमंडलसन्निभाम् । तांक्षिपेल्लोहजेतप्तेक्षणैकेनप्रवर्तये- त् । पुनरंगारचक्रेचक्षिपेन्निर्धूमकेहिता । प्रफुल्लांवैयदादृष्ट्वा तदाशीघ्रंसमुद्धरेत् । सर्पिषालिप्यतांसम्यक्स्थापयेद्भाज- नेशुभे । अर्पयेद्धरयेबल्यांरुच्यांपुष्टिप्रदांप्रिये । धातुसंवर्द्धि-

नींगुर्वीश्लेष्मलांवातनाशिनीम् । भक्षयेत्सनरश्चैनांयस्याग्निः प्रबलोभवेत् ।

अर्थ--अब गेहूंकी रोटी बनानेकी विधि और गुणदोष कहते हैं । गेहूंके चूनको पानीसे गाढा उसन थोडा थोडा जल डालकर वारंवार मर्दन करे इसप्रकार करनेसे चून नरम होजाता है । फिर उस चूनकी चारचार तोलेकी अनुमान लोई बना हाथोंसे गोलकर चकला वेलनसे वेल तवेपर डालदेवे अथवा हाथोंसे रोटी करके तवेपर डाले, थोडी देरमें इसको उलट देवे, जब चित्ती पडजावे तब तवेपरसे उतार चूल्हेके अंगारोंपर रख देवे, जब फूलकर सिकजावे तब अंगारोंसे उतार झाडकर उनपर घी चुपडकर पात्रमें धर देवे इसको संस्कृतमें कर पट्टिका और भाषामें रोटी कहते हैं । कोई इसको फुलका, चपाती, ऐसे कहते हैं । ये रोटी बलकरता, रुचिकारक, पुष्टिदायक, धातुवर्द्धक, भारी, कफकारक, वातनाशक है । जिसकी जठराग्नि प्रबल हो उसको ये रोटी भोजन करनी चाहिये । परंतु यह नियम दक्षिणी बंगाली आदिको है मध्यदेश आदिके रहनेवालोंको नहीं है ।

अथांगारकर्कटीमाह ।

गोधूमचूर्णकेपूर्वंकिंचिदाज्यंविमिश्रयेत् । मर्दयेदंबुनासम्यक्पूर्ववच्चातियत्नतः । ततोनिंबुमितांलोप्त्रींकृत्वांगुष्ठेनपीडयेत् । निर्धूमेगोमयांगारचक्रेसंपाचयेच्चताम् । प्रवर्त्त्यबहुधापश्चादंगारैश्छादयेद्दृढम् । क्षणादुद्धृत्यतद्वह्नौपूर्ववत्परिवर्त्तयेत् नीत्वाविकसितांपक्कांस्फोटयित्वाघृतेक्षिपेत् । सांगारकर्कटीबल्यापौष्टिकीशुक्रवर्द्धिनी । अग्निसंदीपनीलघ्वीकफातंकप्रणाशिनी । कासश्वासप्रहरणीपीनसातंकनाशिनी ।

अर्थ–अब अंगारकर्कटी अर्थात् वाटी और अंगाकरकी विधि और गुणदोष कहते हैं । गेहूंके चूनमें घृतका मोमन देकर फिर जलसे करडा उसन फिर जल डालकर थोडी देर भीजने देवे, फिर जलके थोडेथोडे छींटा देकर हाथोंसे गूंदे, जब अत्यंत नम्र होजावे तब उसमेंसे बडे नींबूके सदृश लोई तोड कुछ चपटी कर उसके बीचमें अँगूठेसे दबाय गड्ढा कर फिर निर्धूम अंगारोंपर डालकर उलट पुलट करकै सेके, जब सिकजावे तब उनको इकट्ठी कर गरम राखमें दाब देवे, फिर उसमेंसे निकाल राखमें उलट पुलट

करके सेके जब सिकते २ फुंटके माफिक एक तरफसे फटजावे तब जाने कि सिकगई, इसको मुट्ठीसे दावे जब खिलजावे तब घृतमें डबोयकर धरदेवे ?सको अंगारकर्कटी (वाटी) कहतेहैं यह बलकर, पौष्टिक, वीर्यवर्धक, अग्नि, दीपक, तथा हलकी है, एवं कफ, श्वास, और पीनस इनको दूर करे है। परंतु अंगाकर करडे चूनकी मठरीके समान चपटी और गोल बनती है।

अथ बलभद्रिकागर्गरीकृतिगुणानाह।

माषपिष्टकृताकांतेरोटिकाबलभद्रिका । माषाणांनिस्तुषाणांचेतिपिष्टजागर्गरीमता। रूक्षोष्णावातलाबल्याकीर्त्तिताबलभद्रिका। गर्गरीवातलाकिंचित्कफपित्तहरास्मृता।

अर्थ—अब बलभद्रिका और गर्गरी इनके बनानेकी विधि तथा गुणदोष कहते हैं। उडदके चूनकी रोटीको बलभद्रिका और उडदकी धुलीहुई दालके चूनकी रोटीको गर्गरी कहते हैं। इनमें बलभद्रिका रूक्ष, उष्ण, वातकारक, तथा बलदायक, एवं कफ, तथा पित्त इनको नाशक है।

अथ वेढमिकाकृतिगुणानाह।

तत्रपूर्वपिष्टीमाह।

माषकान्विदलीकृत्यप्लावयेदंबुनिप्रिये । संक्षाल्यनिस्तुषीकृत्यपेषयेदश्मनाऽश्मनि । सापिष्टीतिसमाख्यातासूपशास्त्रविचक्षणैः।

अर्थ—अब बेढईके बनानेकी विधि कहते हैं। परंतु ये बेढई विना पिट्ठीके हो नहीं सकती इस कारण प्रथम पिट्ठीके बनानेकी विधि कहते हैं। उडदकी दाल पानीमें भिगो उसके छिलके दूर कर फिर उसको बारीक पीसे इसको सूपशास्त्रज्ञ पिष्टी अर्थात् पिट्ठी कहते हैं।

पिष्टचामेलादिकंकांतेवेसवारंविमिश्रयेत् । शृंगवेरंचलवणं रामठंजीरकंतथा । ततोगोधूमजंपिष्टमंबुनामर्दितंभृशम् । तन्मध्येपिष्टिकांन्यस्यतन्मुखंचविमुद्रयेत् । ततश्चंद्रसमाकारांकृत्वासंवेल्लययत्नतः। पाचयेल्लोहजेतप्तेत्वंगारेहिविधूमके। प्रफुल्लामुद्धरेदाशुमतावेढमिकाहिसा । बल्यावेढमिका वृष्यारुच्योष्णातृप्तिकारिणी। गुर्वीपुष्टिप्रदाधातुमेदःस्तन्य-

विवर्द्धिनी । परिणामभवंशूलंगुदकीलंमरुद्व्यथाम् । अर्दितं श्वसनंहंतिभेदिनीकफपित्तकृत् ।

अर्थ--उडदकी पिट्ठीमें एलादिक वेसवार (मसाला)और अदरख,निमक, हींग, और जीरा मिलाय फिर गेहूंके चूनको पानीसे उसन उसमेंसे लोई तोड मूसके समान बनावे, उसमें पीठी भर मुख बंद कर गोल करे, फिर चकला वेलनसे गोल चन्द्रमाके आकार वेले फिर इसको तवेपर गेरके सेंकै जब दोनों ओरसे सिकजावे तब तवेसे उतार चूल्हेके अगाडी अंगारोंपर सेंके जब फूलजावे तब निकास साफ कर घीसे चुपड देवे इसको वेढई कहते हैं । वेढई बलदायक- वृष्य, रुचिकारक, गरम, तृप्तिकारक, भारी, तथा पुष्टिदायक है । एवं धातु, मेद, और स्त्रियोंके दूध बढानेवाली उसीप्रकार परिणामशूल, बवासीर, वातरोग, अर्दित रोग, तथा श्वास, इनकी नाशक मलभेदक, और, कफ तथा पित्त इन्होंको करे है ।

भ्राष्ट्रजा (खापरपोली) ।

धौतानांतंदुलानांहिपिष्टंवस्त्रविगालितम् । ततोऽष्टमाषकंसर्पिर्मिश्रयेदंबुनाततः । मंथयित्वाचतद्घोलंमृन्मयेखर्परेशुभे । शुद्धभस्मप्रलिप्तेचमंदवह्निप्रतापिते । क्षिप्त्वाप्रसारयेच्छीघ्रमुत्सेधमंगुलोन्मितम् । पूर्णचंद्रसमाकारांपाचयेन्मंदवह्निना । छादितामन्यपात्रेणसुपक्कांतुसमुद्धरेत् । सच्छिद्रां तांक्षिपेदुष्णांतप्तेक्षीरेसशर्करे । भाष्ट्रजैषास्मृताकांतेसूपशास्त्रविचक्षणैः । प्रोक्तैषादुर्जरागुर्वीवृष्योष्णाधातुवर्द्धिनी ।

अर्थ—अब भ्राष्ट्रजा (चावलकी रोटी) विधि तथा गुणदोष कहतेहैं । धुलेहुए चावलोंका चून वस्त्रसे महीन छान उसमें आठवाँ भाग घीका मोमन दे पानीसे सानलेवे, फिर उसको मथकर राख लगेहुए मट्टीके खिपडेंमें उस उसने हुए चूनका १ अंगुल मोटा लेप करे, पीछे उसके ऊपर दूसरा माटीका खीपरा ढकके अग्नि देवे, उसमें जगे जगे बहुत छिद्र पडनेसे जाने कि, अब पक्क होगई फिर उसको निकाल मिश्री मिले दूधमें भिगों देवे इसको भ्राष्ट्जा कहतेहैं । यह खापरपोली दुर्जर, जड, वृष्य, उष्ण और धातुवर्द्धक है ।

अथ वेष्टनी ।

माषपिष्टेहिलवणंशृंगवेरंचरामठम् । मिश्रयेदनुमानेनमर्दयेदं-

बुनाघनम्। तस्यामोचाफलाकारांचपेटामर्द्धचंद्रवत् । वेष्टनीं रचयेद्रम्यांरमणीयेसुलोचने । किंचिन्नीरयुतंभांडंतृणैरर्द्धप्र- पूरयेत् । तत्तृणोपरिसंस्थाप्यपाचयेदतियत्नतः । वेष्टनीशु- क्रलागुर्वीबल्यापित्तकफप्रदा । पाककालेचमधुरामार्गस्था- नांहितावहा । वातरुग्नाशिनीचैषाघृतेपक्वायदाभवेत् । कचवल्लीतितत्ख्यातागुर्वीबल्याचपौष्टिकी । वृष्यातृप्तिप्र- दातेजःश्लेष्मपित्तप्रवर्द्धिनी । वातघ्नैषातुमुद्गानांगोधूमानां भवत्यापि ।

अर्थ–अब वेष्टनीकी कृति और गुणदोष कहतेहैं । उडदके चूनमें निमक, अदरख, और हींग मिलाय पानी डालके उसने, फिर उसका स्वरूप केलाकी फलीके आकार बनावे, फिर मिट्टीके पात्रमें थोडा जलभर आधेमें तिनका भरे, उसके ऊपर उन फलेन्को धरे और सिजवावे जब सिक जावे तब निकास लेवे, इसको, वेष्टनी कहतेहैं । ये वेष्टनी वीर्यवर्द्धक, भारी, बल- दायक, पित्तकरता, कफकारी, पाकके समय मधुर, रस्तागीरोको हितकारी, तथा वातनाशकहै यदि येही फली घीमें तललीनी जावे तो इनको कचवल्ली कहतेहैं यह कचवल्ली भारी, बलकारक, पौष्टिक, वृष्य, तथा तृप्तिकारक एवं तेज, कफ, और पित्त नइको बढावे तथा वातघ्न है ये गेहूं और मूंग इत्यादिकीभी करतेहैं ।

अथ पूर्णगर्भापूलिका (पूरनपोली)।

प्रस्थैकंचाणकंसूपमाढकीसंभवंतुवा । पाचयेत्केप्रियेताव- द्यावदंगुलिमार्दितम् । ज्ञात्वानीरंपृथक्कृत्यसंक्षिप्यपाककोवि- दः । गुडंप्रस्थंसपादंवाशर्करांसार्द्धप्रस्थिकाम् । क्षणादुत्तार्य वामोरुपेषयेदश्मनाश्मनि । यत्नतोललनेरम्येशुभेऽमत्रेनि- धापयेत् । ततोगोधूमजंचूर्णमर्दयेदंबुनाभृशम् । तस्मान्निंबु- मितंपिष्टंपृथङ्नीत्वाविचक्षणे । कृत्वाचमूषिकाकारंतन्म- ध्येतुप्रपूरयेत् । तत्पूर्णमुद्रयेत्तस्यमुखंकृत्वासुगोलकम् । चंद्रवत्पूलिकांतस्यकृत्वातप्तेविपाचयेत् । किंचिदाज्यसमा- लितेभूयोभूयःप्रवर्त्तयेत् । पक्वांज्ञात्वासमुत्तार्यभूमिजापत-

येऽर्पयेत् । पूर्णगर्भापूलिकेयंलघ्वीस्वाद्वीचशीतला । दीप-नीराजयक्ष्मघ्नीप्रमेहघ्नीचकीर्तिता । सैषैवसर्पिषापक्वाविशेषे-णगुणोत्तमा ।

अर्थ-अब पूरणपोलीकी विधि कहते हैं। एक प्रस्थ चनेकी अथवा अरहरकी दाल जबतक सीजे नहीं तबतक जलमें पचावे जब दाल उँगलीके दाबनेसे पिसने लगे तब चूल्हेसे उतार इसके पानीको निकाल डाले और इसमें गुड एक अथवा सवाप्रस्थ और खांड डेढप्रस्थ डालकर फिर थोडी सिजावे, तद-नंतर उतारकर बारीक पीसे इसको पूरण कहते हैं, जब पूरण तयार होजावे तब गेहूंका बारीक चून पानीसे उसनकर तयार करे फिर उसकी लोई तोड उसके भीतर पूरणको भर मुख बंदकर गोल करे, फिर उसको चंद्रमाके समान गोल वेलकर पूरनपोली करे,इसको तवेपर सेककर उतार ले, इसको घीसे चुपडे यह पूरनपोली हलकी, स्वादु, शीतल, तथा दीपन एवं राजय-क्ष्मा और प्रमेह, इनको नाश करे । यदि यह पूरनपोली घीमें तलीजावे तो विशेष गुणयुक्त होवे ।

चाणकीरोटिकारूक्षाकफासृक्पित्तनाशिनी ।
स्मृताविष्टंभिनीगुर्वीहितावैनेत्ररोगिणाम् ।

अर्थ-चनेकी रोटी रूक्ष, कफपित्तनाशक, विष्टंभकारक, भारी, और नेत्र-रोगीन्को हितकारी है ।

अथ रागः ।

अम्लिकांतुल्यनीरेणमर्दयेद्ग्राहयेद्रसम् । तत्समंमातुलुंगस्य क्षोदंसिंधूद्भवंसिताम्।क्षोदंपरूषकस्यापिजंभनीरंचराजिकाम्। अनुमानेनचैकध्यंकृत्वारागोयमीरितः । कांतरुचिप्रदोहृद्यः शुक्रलश्चसुखप्रियः । पौष्टिकस्तिक्तकःस्वादुःक्षारश्चाम्लःप्र-कीर्त्तितः । मुखजिह्वाशुद्धिकरोरक्तपित्तप्रकोपनः । नेत्रयो-रहितोवृष्यःकफकुष्ठप्रकोपनः।जडोऽतऊर्द्ध्वगःकुर्यात्कफमा-ध्मानकारकः । तृषांमूर्छाभ्रमच्छर्दिमेददोषंचनाशयेत् ।

अर्थ-पकी इमलीमें समानभाग पानी मिलाय उसका रस काढे, फिर उसमें समभाग विजोरेका जीरा डाले और सैंधानिमक, चूरा, कूटेहुए फलसे, जंभीरीका रस, तथा राई ये पदार्थ अनुमानमाफिक लेकर, पीसकर

मिलावे, इसको राग ऐसा कहते हैं। यह राग रुचिकारी, हृद्य, वीर्यवर्द्धक, मुखप्रिय, पौष्टिक, कडुआ, स्वादु, खट्टा, खारी, मुख, जिह्वा इनको शुद्धि करता, रक्तपित्तवर्द्धक, नेत्रोंको अहितकर, अवृष्य, कफ और कुष्ठ इनको कुपित करनेवाला और भारी है। इसीसे कफको ऊर्द्धगामी करे है उसीप्रकार अफराकारक होनेसे प्यास, मूर्च्छा भ्रम, ओकारी, और मेदरोग, इनको नाश करे है।

अथ खांडवः ।

बीजपूराम्रदाडिंबांचंचादधिफलादिकाः । एषामन्यतरस्यापिचिकीर्षाखांडवंप्रति । तद्गृहीत्वाविनिःक्षिप्यतत्रसैंधवशर्करे। गुडंवाहिंगुसहितंदृषदाचविपेषयेत् । कथितोमुनिभिर्वैद्यैः खांडवोरागवद्गुणैः ।

अर्थ-बिजोरा, अमचूर, अनारदाना, इमली, कैथ इनमेंसे जिसका खांडव करना हो उसको ले उसमें काली मिरच, सैंधानिमक, हींग, तथा गुड, अथवा खांड डालके शिलाके ऊपर पीसकर उसकी चटनी करे इसको खांडव अर्थात् चटनी कहते हैं इसके गुण रागके समान जानने ।

अथ रागखांडवः (मुरब्बा)

आम्रमामंसमीचीनंत्वगष्टीराहितंप्रिये । द्विधात्रिधाचतुर्द्धावाफलमानेनखंडयेत् । एवंप्रस्थंरसालानांखंडानांमधुराप्रिये। सर्पिषाभर्ज्यतानीषन्मृत्पात्रेचानिधापयेत् । प्रस्थत्रयासितापाकेत्रितारेतानिसंक्षिपेत् । अंगुलीद्वितयेपश्चात्पाकंनीत्वानिरीक्षयेत् । भूयोभूयःप्रयत्नेनचैकतंतुर्यदाद्वयोः । अंगुल्योरंतरेपश्येज्जानीयाच्चैकतारकम्।यदितंतुर्नदृश्येतार्किंचिदन्यांसितांक्षिपेत् । दृष्ट्वातंतुंसमुत्तार्यमरीचैलादिभावितम्। कृत्वा सुशीतलंपश्चात्काचपात्रेनिधापयेत् । अथवामार्तिकेपात्रे लाक्षालिप्तांतरेप्रिये । अयंहिपौष्टिकःस्निग्धोगुरुःस्वादुर्बलप्रदः। तृप्तिदश्चवरारोहेवातपित्तारुचिप्रणुत्। हंतिरक्तविकारंचातुरक्तेरागखांडवः ।

अर्थ–उत्तम छिले और भीतरकी गुठली निकली पकी अँबियाके दो तीन किंवा चार टुकडे करे, इसप्रकार ६४ तोले टुकडेन्को घीमें कुछ भून मिट्टीके कुंडमें धरे, तदनंतर१९२तोले खांडकी तितारी चासनी करे उसमें उन अँबियाके टुकडेन्को डालके कुछ देरतक चूल्हेपरही रहने देवे, फिर चुटकीसे देखे यदि एक तार न निकलता होवे तो उसमें कुछ थोडीसी खांड मिलायके देखे जब एक तार निकलने लगे तब इसमें काली मिरच, और छोटी इलायची, इनका चूर्ण करके गेरे, फिर उतार लेवे जब शीतल होजावे तब कांचके पात्रमें अथवा ईमरतवानमें या चीनीके पात्रमें भरके धर रक्खे यह रागखांडव अर्थात् मुरब्बा पुष्टि करे, स्निग्ध,भारी, स्वादु, बलकारी तथा तृप्तिदायक, ऐसा है। उसीप्रकार वात, पित्त, अरुचि और रुधिरविकार इनको नाश करे।

अथान्यफलरागखांडवविधिः ।

फलान्यामलकादीनांभित्त्वाकंटकतोभृशम्।त्रुटिनीरेसुमग्नानित्रिरात्रंस्थापयेत्ततः। सुधौतान्यन्यनीरेणतानीषत्स्वेदयेत्प्रिये। आम्रवच्चाक्रियाशेषातत्तुल्याश्चगुणामताः।

अर्थ–यदि आमले आदि छोटे फलोंका मुरब्बा बनाना होवे तो उन फलोंको कांटेसे खूब गोदकर तीन दिनतक फिटकरीके पानीमें डुबोयकर धरदेवे, फिर दूसरे पानीसे धोय किंचित् सिजावे फिर आमके मुरब्बेके सदृश तयार कर लेवे इनके गुण आम्रके अथवा अपने फलके समान होते हैं। इसीप्रकार सर्व प्रकारके मुरब्बा बनाय लेवे।

अथान्यप्रकारः।

आमंयष्टित्वचाहीनंकृत्वाम्रंपेषयेद्दृशम्। तत्समंचगुडंकिंचित्तैलंविश्वंचमिश्रयेत्। स्थापयेन्मार्तिकेपात्रेरसज्ञेरागखांडवः। किंचिन्न्यूनगुणःपूर्वात्कीर्तितोभिषगुत्तमैः।

अर्थ–कच्ची अमियाको छील बीज निकाल बारीक पीसे और उसमें उसके समभाग गुड तथा किंचित् तेल और सोंठ मिलावे, इनको रागखांडव कहते हैं। यह गुणोंमें पहलेके समान कुछहीन है।

अथाम्रलेहः।

भर्जयेत्तरुणंस्वाम्रंतद्रसेचविमिश्रयेत्। शर्करांसुगुडंवापितत्समंमधुराधरे। ततोविंशांशकंचूर्णपटुवह्निजहिंगुजम्।आ-

म्रलेहोऽयमब्जाक्षिहृद्यस्तृप्तिप्रदोगुरुः।स्निग्धोरुचिप्रदः कांते मधुरोमधुरस्वरे। मीनलोलविशालाक्षिप्रियेबिल्वफलस्तनि ॥

अर्थ- उत्तम आमको भूनकर उसका रस निकाल उसमें उसके समान सपेद बूरा अथवा गुड मिलावे उसीप्रकार रसका बीसवाँ भाग नोन, काली मिरच, तथा भुनी हींग इनका चूर्ण मिलावे, इसको आम्रलेह कहते हैं । यह लह हृद्य, तृप्तिकारक, भारी, स्निग्ध, रुचिकारी, तथा मधुर है ।

अथ फलवृष्याशिखरिणी ।

प्रियेपक्वांचिंचामायिसुदातिमर्दैत्समजले सिताद्राभ्यांतुल्या त्रुटिमरिचचूर्णतदुचितम् । विमिश्र्यैतद्भांडिसकलमपिमार्त्ते सुललिते जनैर्विख्यातेयंजगतिफलवृष्याशिखरिणी । इयंवृष्याकांतेसुभगजघनेकंकणकरे सराहृद्यागुर्वीसुगुरुकुचयुग्मेसुरुचिदा । अतःश्रीरामायार्पयझटितिमांदेहिचततोवरारोहेभुंक्ष्वत्वमपिरसिकेकंजवदने ।

अर्थ—उत्तम पकी इमलीको समभाग पानीमें मर्दन करके रस निकाले फिर उस रसमें उस रसके समान सपेद बूरा तथा इलायची, काली मिरच, आदि मसाला उसके अनुमान माफिक डाले, और अच्छी रीतिसे मिलाय मट्टीके बर्तनमें भरकै धरदेवे, इसको फलवृष्य शिखिरणी कहतेहैं । यह वृष्य, सारक, हृद्य, भारी तथा रुचिकारक ऐसी है ।

अथ पानकान्याह (पने)

द्राक्षाम्लिकापरूषादिफलान्यंबुरुहेक्षणे । नीरेसप्तगुणेक्लिन्नान्यब्जहस्तेविमर्दयेत् । वस्त्रपूतेक्षिपेत्तास्मिञ्छर्करांद्रव्यतः समाम्।विंशांशंपत्रमरिचत्वगार्द्रैलागजोद्भवम्। सकर्पूरंक्षिपेच्चूर्णपानकंतत्प्रकीर्तितम्।पानकंमूत्रलंहृद्यंतृप्तिकृत्तृण्मदापहम्। वातवांतिश्रमग्लानिघ्नंमूर्च्छापित्तदाहनुत् । तद्विधाम्लंचमधुरंगुणैस्तुल्यौप्रकीर्तितौ । द्राक्षायाःपानकंदाहश्रमग्लानितृषापहम्। रक्तपित्तंचमूर्च्छांचानिहन्यादब्धिजानने। विष्टंभकारकंहृद्यंबादरंचपरूषजम् । अम्लिकाफलसंभूतंपानकंच

श्रमापहम्।दाहच्छर्दितृषावातकृमिभ्रांतिनिवारणम्। कंठताल्वद्रवंशोषंनाशयेदितिकीर्तितम् ।

अर्थ–दाख, इमली, फालसे इत्यादि फलोंको सातगुने पानीमें कुचल उस पानीको वस्त्रमें छानले, तथा फलके समान मिश्री मिलावे, तथा फलोंका बीसवाँ भाग पत्रज, काली मिरच, दालचीनी, अदरख, इलायची, नागकेसर, तथा कपूर इनका चूर्ण, उस रसमें डाले, सबको मिलाय ले इसको पानक कहतेहैं। यह पानक मूत्रल, हृद्य, तथा तृप्तिकारक होनेसे तृषा, मद, वात, वांती, श्रम, ग्लानि, मूर्च्छा, पित्त, और दाह इनका नाश करे । इसमें खट्टा और मिष्ट ऐसे दोप्रकारका रस है । परंतु उनके गुण समानही है। अब प्रत्येकके विशेष गुण कहतेहैं । दाखका पनादाह, श्रम, ग्लानि, तृषा, रक्तपित्त, तथा मूर्च्छा इनको नाश करे बेरके और फालसेका पन्हा विष्टंभकारक तथा हृद्य है। एवं इमलीका पना श्रम, दाह, हृल्लास, तृषा, वायु, कृमि, भ्रांति, कंठशोष और तालुशोष इनको नाश करेहै।

अथ पंचसाराभिधं पानकम् ।

द्राक्षापरूषखर्जूरदाडिंबबदरोद्भवम् । गुडेक्षुरसकर्पूरचातुर्जातोषणैर्युतम् । पंचसाराभिधंपानंतृप्तिकृद्गुरुमूत्रलम्। विष्टंभकारकंहृद्यंश्रमग्लानितृषापहम् ।

अर्थ–दाख, फालसे, खजूर, अनार, बेर, तथा गुड इनका ईखके रसमें पन्हे करके उसमें कपूर, दालचीनी, तमालपत्र, इलायची, और नागकेसर, इनका चूर्ण डाले इसको पंचसारक पन्हा कहते हैं । यह तृप्तिकर, भारी, मूत्रल, विष्टंभकारक, तथा हृद्य ऐसा है। उसीप्रकार श्रम, ग्लानि, तृषा इनका नाशकरे।

अथ वर्द्धमानसट्टकः ।

घनंदधिप्रियेप्रस्थंप्रस्थार्द्धांशुभ्रशर्करा। व्योषाजाजीभवंचूर्णं कर्षैकंमदिरेक्षणे । पक्वदाडिंबबीजानिचतुराम्राणिमिश्रयेत्। हस्तेनालोडयेत्सिद्धःसट्टकोऽयमुदाहृतः । वर्द्धमानाभिधोबल्योदीपनोरुचिकारकः।गुरुस्तृप्तिकरःस्वर्यःश्रमग्लानितृषापहः । वातापित्तहरःपीनोरोजकेमधुराधरे ।

अर्थ–गाढा दही १ सेर, सपेद बूरा आद सेर, तथा सोंठ, मिरच, पीपल, जीरा इनका चूर्ण १ तोला, और पके अनारके दाने पावभर, इन सबको

एकत्र करके मिलावे और हाथसे मथकर तयार करे इसको वर्द्धमानसट्टक कहतेहैं । यह बलकारी, अग्निदीपन करता, रुचिकर, स्वरशोधक, भारी, तथा तृप्तिकर, एवं श्रम, ग्लानि, तृषा वात, और पित्त इनका नाशक है ।

अथ सोमसट्टकः ।

घनंदध्याढकंकांतेसिताद्धांढकसंमिता । त्रिकट्वग्निभवंचूर्णं पलैकंचविमिश्रयेत् । गालयेत्सूक्ष्मवस्त्रेणततोभांडेनिधापयेत् । पक्कदाडिंबबीजानिप्रस्थैकानिघनस्तानि । मिश्रयित्वाजनैःख्यातःसोमास्येसोमसट्टकः । वर्द्धमानकवच्चायं गुणैर्गुणवतिप्रिये ।

अर्थ–गाढा दही २५६ तोले, सपेद बूरा १२८ तोले,और सोंठ मिरच, पीपल, तथा चित्रक, इनका चूर्ण ४ तोले, ये सब एकत्र मिलाय बारीक कपडेमें छाने फिर इसमें पके अनारके दाने ६४ तोले मिलाय किसी उत्तम पात्रमें भरकर धरदेवे इसको सोमसट्टक कहतेहैं । यह गुणोंमें वर्द्धमान सट्टकके समानहै ।

अथ प्रमोदसट्टकः ।

सुघनंहिदधिप्रस्थंप्रस्थार्द्धांशर्कराप्रिये । चंद्रव्योषलवंगानां चूर्णंकर्षप्रमाणकम् । मिश्रयेद्गालयेच्चापिसूक्ष्मवस्त्रेणयत्नतः । पक्कदाडिंबबीजानिचतुर्बिल्वानिमिश्रयेत् ।स्थापयेन्मृन्मयेभांडेप्रमोदायनृणामयम् ।प्रमोदसट्टकःख्यातोवर्द्धमानसमोगुणैः ।

अर्थ–गाढा दही ६४ तोले, खांड ३२ तोले, और कपूर, सोंठ, मिरच, पीपल तथा लवंग इनका चूरा १ तोला ये सब एकत्र मिश्रितकर बारीक वस्त्रमें छान लेवे और उसमें पकेहुए अनारके दाने १६ तोले मिलाय मिट्टीके बरतनमें भरकर धरदेवे इसको प्रमोदसट्टक कहतेहैं ।

अथ कांजिका ।

यवाद्यंनिस्तुषंधान्यंप्लावयेदंबुनित्र्यहम् । तन्नीरंतुपृथङ्नीत्वालवणंतत्रानिःक्षिपेत् । राजिकाजीरमरिचहिंगुचूर्णप्रमाणतः । तदेवात्यम्लतांप्राप्तंकांजिकंपरिकीर्तितम् । एवंकुर्याद्वरारोहेयुक्त्यामंडतुषोदयोः । कांजिकंपाचनंरुच्यंभेद्युष्णंच

लघुस्मृतम् । वातश्लेष्महरंपीतंदेहेदिग्धंचदाहनुत् । ज्वरघ्नं चभवेन्नूनमंगलघ्नंनसंशयः ।

अर्थ–छिलका रहित जौ इत्यादि धान्योंको ३ दिन पानीमें भिगो देवे, फिर उनमेंसे पानीनिकाल ले उस पानीमें निमक, राई, जीरा, मिरच, और हींग, इनका चूर्ण अनुमानमाफिक मिलावे, और इसको मट्टीके बरतनमें भरकर धर रक्खे, तो यह अत्यंत खट्टा होजावे इसको कांजी कहतेहैं । इसीप्रकार मंड और तुषोदककीभी कांजी बनातेहैं । यह कांजी पीनेसे पाचन रोचन, भेदक, उष्ण, हलकी, वातहर, कफनाशक है ।और इसका देहमें लेप करनेसे दाह, तथा ज्वर इनका नाश होय ।

अथ दुग्धगुणानाह ।

गव्यंमाहिषमाजंचकारभस्त्रैणमाविकम् ।
औष्ट्रमेकशफंचेतिदुग्धमष्टविधंस्मृतम् ॥

अर्थ–दूध गौका, भैंसका, बकरीका, हाथिनीका, स्त्रीका, मेंडाका, ऊंटनीका, और घोडी इत्यादि एक नखवाले जनावरोंका ऐसे आठ प्रकारकाहै ।

दुग्धंतुमधुरंस्निग्धंसद्यःशुक्रकरंमतम् ।पौष्टिकंचसरंशीतंसर्वेषांचाहितावहम् । बलप्रदंजीवनंचधातुवृद्धिकरंमतम् ।वयसः स्थापनंचैववाजीकरणमुत्तमम् । रसायनंकांतिकरंक्षुधितेबालवृद्धयोः । अतिव्यवायेक्षीणेचक्षतक्षीणेहितावहम् ।

अर्थ–साधारणसर्वप्रकारका दूध-मधुर, स्निग्ध तत्काल वीर्यकारक, पौष्टिक, सारक, शीतल सबको हितकारी, बलप्रद, जीवन, सप्तधातुवर्द्धक, वयःस्थापक, वाजीकरण, रसायन, तथा कांतिकारक है । उसी प्रकार क्षुधित, बाल, वृद्ध, अतिमैथुन करनेसे जो क्षीण होगया हो और क्षतक्षीण इनको हितकारी है ।

गोदुग्धके गुण ।

गोदुग्धंमधुरंशीतंगुरुहृद्यंरसायनम् । वयसःस्थापनंस्वादु स्निग्धंपथ्यतमंमतम्।रुच्यंबल्यंशुक्रलंचमेध्यंपुष्टिप्रदायकम्। कांतिकृत्तुष्टिजनकंवातेपित्तेविषेभ्रमे । रक्तपित्तेवातरक्तेदाहे चैवातिसारके । उदावर्त्तेमदेकासेश्वासेजीर्णज्वरेतृषि । उदरेमूत्रकृच्छ्रेचगुल्मेशूलेऽम्लपित्तके।आधावर्शस्यपस्मारेक्षये

पांडावतिश्रमे । योनिरोगेगंर्भपातेनेत्ररोगेहितावहम् । पथ्यं प्रवाहिकायांचप्रवदंतिभिषग्वराः ।

अर्थ–गौका दूध-मधुर, शीतल, भारी, हृद्य, रसायन, वयःस्थापक, स्वादु, स्निग्ध, अति पथ्यकर, एवं वात, पित्त, विष, भ्रम, रक्तपित्त, वातरक्त, दाह, अतिसार, उदावर्त, मद, खांसी, श्वास, जीर्णज्वर, तृषा, उदर, मूत्रकृच्छ्र, गुल्म, शूल, अम्लपित्त, मनोविकार, बवासीर, अपस्मार, क्षय, पांडुरोग, अतिश्रम, योनिरोग, गर्भपात, नेत्ररोग, और प्रवाहिका, इन रोगोंपर पथ्य है ।

गौकी जातिपरत्व दूधके गुण ।

कृष्णायागोर्वरंक्षीरंवातपित्तकफप्रणुत् । पीतायावातपित्तघ्नंरक्तायावातहृत्परम् । वातघ्नंचित्रवर्णायाःश्वेतायाःकृफकृद्गुरु । बालवत्साविवत्सानांगवांक्षीरंत्रिदोषकृत् । बष्कयण्यास्त्रिदोषघ्नंतर्पणंबलदंपयः । पिण्याकाम्लान्नभोक्तृणांक्षीरंगुरुकफप्रदम् ।निद्रारेतोबलस्थौल्यवह्निमांद्यकरंहिमम्। गवांपलालभोक्तृणांदुग्धंयवसभोक्तृणाम्।कथितंमुनिभिर्वैद्यैः सर्वरोगेहितावहम्।तरुणीनांगवांदुग्धंमधुरंचरसायनम् । त्रिदोषनाशकंचैववृद्धायादुर्बलंस्मृतम्।सगर्भायाःसमुद्दिष्टंत्रिमासोर्ध्वंचपित्तलम्।क्षारंचमधुरंचैवस्मृतंवैशोषकारकम्। धारोष्णंतुगवांदुग्धंवृष्यंधातुविवर्द्धनम् । निद्राकांतिकरंस्निग्धं पथ्यंस्वाद्वग्निदीपनम्॥अमृतेनसमंप्रोक्तंसर्वातंकविनाशनम् । सपादप्रहरादूर्ध्वंत्रिदोषजनकंभवेत् ।

अर्थ–काली गौका दूध श्रेष्ठ तथा वात, पित्त, कफ, इनका नाशक है । पीली गौका दूध-वातपित्तनाशक, लाल गौका दूध वातनाशक, चित्रवर्ण गौका दूध वातनाशक, सपेद गौका दूध कफकारक, और भारी, बालवत्सा कहिये दो महिनेके भीतर ब्याई हुई तथा विवत्सा कहिये जिसका बछडा मरगयाहो ऐसी गौका दूध त्रिदोषकारक है। जिसको ब्याये हुये १ वर्ष होगयाहो ऐसी गौका दूध त्रिदोषनाशक,तृप्तिकर,बलकर है खल,और खट्टा अन्न खानेवाली गौका दूध भारी एवं कफ, निद्रा, वीर्य, बल, स्थूलता, तथा अग्निमान्द्य इनको करे है, और शीतल है कडवी, फटेरे, घास इत्यादि खानेवाली

गौका दूध सर्व रोगोंमें हितकारी है । तरुण गौका दूध मधुर, रसायन, तथा त्रिदोषनाशक है । वृद्ध गौका दूध दुर्बल है, और गाभिन गौका तीन महिने उपरांतका दूध पित्तकर, खारी, मधुर, और शोषकारक है । धारोष्ण दूध वृष्य, धातुवर्द्धक, निद्राकारक, कांतिकर, स्निग्ध, पथ्यकर, स्वादु, अग्नि-दीपन, और अमृतके तुल्य सर्व रोग नाशक है दूधको काढके धरदेनेसे वह सवापहरके उपरांत त्रिदोषकारक होता है ।

भैंसके दूधके गुण ।

महिष्यामधुरंदुग्धंपाकेशीतंचपौष्टिकम् । स्निग्धंनिद्राकरंबल्यं गुरुवृष्यंचशुक्रलम् । पित्तदाहश्रमघ्नंचकफालस्यरुचिप्रदम् । अभिष्यंदिचसंप्रोक्तमग्निमांद्यकरंमतम् ।

अर्थ–भैंसका दूध-मधुर, पाककालमें शीतल, पौष्टिक, स्निग्ध, निद्राकारक, बलकर, वृष्य, गुरु, व वीर्यप्रद, एवं पित्त दाह तथा श्रम, इनका नाशक है । उसीप्रकार कफ, आलस्य, रुचि, इनको करता अभिष्यन्दी और अग्नि-मांद्यकारक है ।

बकरीके दूधके गुण ।

आजंगव्यगुणंग्राहिविशेषाद्दीपनंलघु । क्षयार्शोऽतिसृतिंहन्यात्रिदोषास्त्रभ्रमज्वरान् । अजानामल्पकायत्वात्कटुतिक्तनिषेवणात् । अल्पांबुपानाद्व्यायामात्सर्वदोषहरंपयः ।

अर्थ–बकरीका दूध गुणोंमें गौके दूधके समान है, परंतु विशेष करके अग्निदीपनकारक होकर क्षय, बवासीर, अतिसार, त्रिदोष, रक्तविकार, भ्रम, तथा ज्वर इनका नाश करे । बकरीका छोटा शरीर होनेसे वह कटु और तीखी ऐसी वनस्पति भक्षण करती है और पानी थोडा पीती है, और व्यायाम अर्थात् परिश्रम अधिक करतीहै इसी कारण उसका दूध सर्व दोषनाशक है ।

अथ विशेषः ।

धाराशीतंमहिष्यास्तुधारोष्णंचगवांपयः । शृतशीतमजादुग्धंकेपिश्रेष्ठंवदंतिहि । अन्यच्च । शृतोष्णंकफहृत्प्रोक्तंशृतशीतंतुपित्तहृत् । अतप्तंदोषलंप्रोक्तंभोजनेत्वौषधंविना । अन्यच्च । गवांदुग्धंहिपूर्वाह्णेमहिष्यास्त्वपराह्णके । तत्तुशर्करयायुक्तंहितमाजंतुसर्वदा ।

अर्थ-भैंसका धाराशीत अर्थात् काढकर शीतलकरा, गौका धारोष्ण और बकरीका औटायकर शीतल ऐसा दूध श्रेष्ठहै । गरम करके जो दूध पीया जाय वो कफको नाश करेहै । और गरम कर फिर शीतल कराहुआ दूध पित्तका नाशक है । और विना औटाया दूध औषधके विना अन्य भोजनमें दोषकारक है, पूर्वाह्णमें गौका दूध, व अपराह्णमें भैंसका दूध, और बकरीका दूध, सर्वदा हित है, परंतु कोईसा दूध हो उसमें खांड मिलाकर पीना चाहिये, और यदि मिश्रीगेरके पीवेतो बहुतही उत्तमहै क्योंकि आगे कहेंगे।

आविकादिकदुग्धानामुपयोगोनप्रायशः।
भोजनेदृश्यतेऽस्माकंततोनोक्ताहितद्गुणाः ।

अर्थ-मेंढी (भेड) इत्यादिकोंके दूधका उपयोग अपने आर्यलोग भोजनमें नहीं करते इसीकारण उनके गुणदोषभी यहां नहीं कहे ।

शृतोष्णंकफवातघ्नंपित्तघ्नंशृतशीतलम् । अर्द्धोदकंक्षीरशिष्टंशृतंलघुतरंहितत् । आमंसपादप्रहरंशृतंसार्द्धद्वियामकम् ।
दुग्धंपथ्यमधश्चोर्ध्वमम्लत्वाद्धिविनिंदितम् ।

अर्थ-औंटाया हुआ दूध पीना कफ, तथा वायु इनको नाश करेहै, और औंटाकर शीतल कराहुआ दूध पित्तका नाश करेहै, दूधमें अर्धभाग जलमिलाय औंटावे जब दूधमात्र शेष रहे तब उतार कर शीतल करे यह हलका तथा अति हितावह है । विना औंटा दूध सवाप्रहर और औंटा दूध ढाईप्रहरपर्यंत पथ्यहै, उपरांत खट्टा होजाताहै ।

अथ कालविशेषणगुणाः ।

बल्यंबृंहणमग्निवृद्धिजनकंपूर्वाह्णकालेपयोमध्याह्नेबलदायकं रतिकरंकृच्छ्राश्मरीनाशनम् । बालेष्वग्निकरंक्षयेबलकरंवृद्धेचरेतःप्रदंरात्रौक्षीरमनेकदोषशमनंसेव्यंततोमानवैः ।

अथ कालविशेषकरके गुण कहतेहैं ।

प्रातः कालमें पीयाहुआ दूध बलकर बृंहण तथा अग्निवर्द्धक है, मध्याह्नकालमें सेवन करा हुआ बलदायक तथा प्रीतिकर एवं मूत्रकृच्छ्र और पथरी इनको नाश करे, रात्रिमें सेवन कराहुआ दूध बालकोंकी जठराग्निको बढावे, क्षयरोगीके बलको बढावे, बुड्ढे मनुष्यके वीर्यको बढावे, और सर्व दोषोंका नाशक है इसीसे मनुष्योंको सर्वकाल दूध सेवन करना चाहिये ।

अथ दुग्धाहारवर्ज्यरोगाः ।

नवज्वरेचाग्निमांद्येकुष्ठेचैवामदोषके ।
प्रशस्तंनपयःपानंकृमिरोगेविशेषतः ॥

अर्थ–नवीन ज्वर, अग्निमांद्य, कुष्ठ, आमदोष, और कृमिरोगी इनको दूध अपथ्यकारक है ।

अथ द्रव्यसंयोगेन गुणदोषाः ।

शर्करासहितंक्षीरंरुचिकृद्वातनाशनम्।तथासितोपलायुक्तंशुक्रदंदोषनाशकम् । सगुडंमूत्रकृच्छ्रघ्नंपित्तश्लेष्मकरंमतम् ।

अर्थ–अब पदार्थोंके संयोगसे दूधके गुणदोष कहतेहैं । खांडमिला दूध रुचिकर तथा वातनाशक है । मिश्री मिला दूध वीर्यवर्द्धक और त्रिदोषनाशक है । गुडमिला दूध मूत्रकृच्छ्रनाशक और पित्त तथा कफको नष्ट करे ।

दक्कमाम्रंसुमधुरंगोस्तनीमाक्षिकंघृतम् । नवनीतंशृंगवेरंश्यामाचश्यामभूषणम्।सिताशिवाचपृथुकापटोलंनागराशिवाः । क्षीरेणसहसंसेव्याहिताःस्युःसेविताइमे ।

अर्थ–पक्क मीठा आम, दाख, सहत, घी, मक्खन, अदरख, पीपल, काली मिरच, खांड, हरड, चिरवा, परवल, सोंठ और आंवले, ये पदार्थ दूधके साथ भक्षण करनेसे हितकारी होतेहैं ।

मत्स्यमांसपटुमुद्गमूलकैःकुष्ठमावहतिसेवितंपयः। शाकजांबवसुरादिकैस्तथामारयत्यबुधमाशुसर्पवत् । नैकध्यंपयसाऽश्नीयात्सर्वमुष्णंद्रवाद्रवम् । तैलंकपित्थंजंबीरंपनसंमातुलुंगकम्।वांशंकरीरंबदरंकदल्यम्लंचदाडिमम् । फलमीदृग्विधंचान्यंतद्वद्बिल्वफलानिच । जनःक्षीरविरुद्धानिभुंजीयाच्चेद्धितत्सह । बाधिर्य्यंमूकतांचैववैरूप्यंचाग्निमंदताम् । मरणं चाप्यवाप्नोतिकरकंकरकादिव ।

अर्थ–मछली, मांस, निमक, मूंग और, मूली इन पदार्थोंके साथ सेवन करा हुआ दूध कुष्ठरोग उत्पन्न करेहै । शाक कहिये बैंगन इत्यादिक और जामुन, तथा मद्य इनके साथ सेवन कराहुआ दूध मृत्युके समान अथवा बहुत सेवन करे तो अवश्य सर्पके समान मृत्यु करे । सर्वप्रकारके पतले तथा घट्ट पदा-

र्थ उनको गरमागरम दूधके साथ न भक्षण करे । तेल, कैथ, नींबू, पनस, बिजोरा, वंशके अंकुर (अर्थात् बांसके कोंपल) करील, बेर, हरेकेला, खट्टा अनार तथा इसीप्रकारके दूसरे फल और बेलफल ये पदार्थ क्षीरविरुद्ध हैं । इसीसे जो पुरुष ये पदार्थ दूधके साथ खाताहै उसके बहरापना गूंगापना कुरूपता तथा अग्निमांद्य ये व्याधि प्राप्तहो और अतिभक्षण करनेसे अंतमें मृत्युको करैहै ।

अथ भोजनकुतूहलात्सुषेणवाक्यम् ।

क्षीरंनभुंजीतकदाप्यतप्तंतप्तंचनैतल्लवणेनसार्द्धम् ।
पिष्टंनसंधानकषायमुद्गकोशातकीकंदफलादिकैश्च ।

अर्थ-भोजनकुतूहलनामक ग्रंथमें ग्रंथकारने दूधके विषयमें सुषेणका वाक्य इसप्रकार लिखा है कि विना औंटा दूध किसीकालमें न पीवे, और औंटे हुए दूधमें निमक डालकर न पीवे उसीप्रकार पीठीके पदार्थ (कचौडीआदि) संधान (अचार) कषेले पदार्थ मूंग तोरई, कंद, तथा फल इनके साथ दूध न पीवे ।

अथ मथितक्षीरगुणाः ।

क्षीरंगव्यमथाजंवाकोष्णंदंडाहतंभवेत् ।
लघुवृष्यंज्वरहरंवातपित्तकफापहम् ॥

अर्थ-गौका अथवा बकरीके दूधको तपाय कुछ गरम रहते उसको रई डालकर मथनेसे यह दूध हलका, तथा वृष्य, एवं ज्वर, वात, पित्त, और कफ इनका नाशक होता है ।

अथ क्षीरपाकपात्रगुणाः ।

ताम्रेतापहरंपात्रेसौवर्णेपित्तनाशनम् । रौप्येश्लेष्महरंप्रोक्तंकांस्येरक्तप्रसादनम् । आयसेतुशृतंक्षीरंकृमिपित्तकफप्रणुत् । कांतसारमयंश्रेष्ठंत्रिदोषघ्नंरसायनम्।कुष्ठप्रमेहपिडिकाकृमिगुल्मास्रशूलनुत् । मृत्पात्रेतुशृतंक्षीरंताम्रपात्रशृतंयथा ।

अर्थ-तामेके पात्रमें तपाया हुआ दूध तापनाशक होता है । सोनेके पात्रमें तपाया हुआ दूध पित्तनाशक, चांदीके पात्रमें तपाया हुवा दूध कफनाशक, कांसेके पात्रमे औटाया हुआ दूध रक्तशोधक, लोहके पात्रमें औटाया हुआ दूध कृमि, पित्त, तथा कफ इनको दूर करे । कांतिसारके पात्रमें

तपायाहुआ दूध त्रिदोषनाशक, तथा रसायन होनेसे कुष्ठ, प्रमेह, पिडिका, कृमि, गुल्म, रक्तदोष, और शूल इनका नाशक। तथा मट्टीके पात्रमें औटायाहुआ दूध तापनाशक जानना, तामेके पात्रमें दूधका औटाना बहुतसे मनुष्य वर्जित कहते हैं।

दुग्धसंतानिकास्निग्धारुच्याबल्याचशुक्रला । तर्पणीवातपित्तघ्नीदाहपित्तास्रनाशिनी । स्वाद्वीपाकेरसेगुर्वीदीपनीकफवर्द्धिनी ।

अर्थ--दूधकी मलाई स्निग्ध, रुचिकारी, बलप्रद, वीर्यवर्द्धक, तथा तृप्तिकर, ऐसी होनेसे वात, पित्त, दाह, तथा रक्तपित्त, इनको नाश करे उसीप्रकार रस कालमें और पाककालमें स्वादु, भारी, अग्निदीप्तकर तथा कफवर्द्धक है।

प्रियेसद्यःप्रसूतानांशृतेक्षीरेतुयद्भवेत् । पीयूषंतद्भवादीनांपीयूषमधुराधरे । दुग्धेचातिश्रृतेयत्स्याद्घनंकिट्टंतदुच्यते । किलाटंविकृतेक्षीरेभृतेगाढतरंतुयत् । यच्चामंविकृतंक्षीरंक्षीरशाकंतदेवहि । विकृतस्यचदुग्धस्यनीरंमोरटमुच्यते।प्रोक्तमेतद्गणंसर्वंपौष्टिकंधातुवर्द्धनम् । गुरुश्लेष्मकरंबल्यंदीप्ताग्नीनांहितावहम् । वातपित्तहरंहृद्यंनिद्रासंजननंपरम् । हितंमैथुनशक्तानांसुजंघेमोरटंविना । मोरटस्तुलघुर्बल्योरोचकःससितोपलः । आस्यशोषतृषादाहरक्तपित्तज्वरापहः ।

अर्थ--हे प्रिये ! नई व्याईहुई गौ भैंस इत्यादिकोंके दूधको औटाकर गाढा करते हैं उसको पीयूष कहते हैं। तथा दूधको अत्यंत ओंटाकर जो खोहा करते हैं उसको संस्कृतमें किट्ट कहते हैं। उसीप्रकार दूधको फाडकर जो खोहा करते हैं उसको संस्कृतमें किलाट कहते हैं। और कच्चे फटे दूधको क्षीरशाक कहते हैं। और फटे दूधके जलको मोरट कहते हैं। ये पीयूषादिक पदार्थ पौष्टिक, धातुवर्द्धक, भारी, कफकर, बलकारी, दीप्ताग्निमनुष्यको हितकारी, वातपित्तनाशक, हृद्य तथा निद्राको प्रगट करता है। उसीप्रकार मैथुनासक्त पुरुषको मोरटके विना सर्व पदार्थ हितकारी हैं मिश्रीमिला मोरट हलका, बलकारी, तथा रोचक होनेसे मुखशोष, तृषा, दाह, रक्तपित्त और ज्वर इनका नाशक है।

अथ दधिगुणानाह ।

दधिपंचविधंप्रोक्तंमंदंस्वादुसुभाषिते । स्वाद्वम्लमम्लंचात्यम्लंशरच्चंद्रनिभानने।मंदंकिंचिद्घनंस्वादुदुग्धवच्चप्रकीर्तितम्।मूत्रलंचसरंदाहित्रिदोषजनकंमतम् । दधिस्वादुघनंजातरसंमेदःकफप्रदम्।अत्याभिष्यंदिपाकेचमधुरंपवनापहम् ।पुष्टिदंप्रेयसिप्रोक्तंरक्तपित्तविशोधनम्।घनंस्वाद्वम्लकंप्रोक्तंमधुरंसकषायकम् ।तदुष्णंदीपनंस्निग्धंपाकेऽम्लंगुरुकीर्तितम्।ग्राह्यतीसारशमनंरक्तपित्तकफप्रदम् । मेदःशोथकरंबालेबलवीर्यविवर्द्धनम्।मूत्रकृच्छ्रप्रतिश्यायशीतांगविषमज्वरान् । नाशयेदरुचिंकार्श्यंपीनोत्तुंगपयोधरे । यत्त्वम्लंदीपनंतत्स्याद्रक्तपित्तप्रकोपनम् । श्लेष्मलंसुरतस्वेदप्रोल्लसन्मुखपंकजे । अत्यम्लंदीपनंचैवरोमहर्षप्रदंमतम् । दंताम्लतारक्तपित्तकंठदाहकरंभवेत् ।

अर्थ--अब दहीके गुण कहते हैं । १ मंद, २ स्वादु, ३ स्वाद्वम्ल, ४ अम्ल ५ अत्यम्ल, ऐसे दही पांचप्रकारका है । जो दही किंचित् गाढा तथा जिसका स्वाद दूधके समान हो उसको मंद कहते हैं । यह मूत्रल, सारक दाहकारक, तथा त्रिदोषकारक है । जो गाढा तथा मीठा दही हो उसको स्वादु कहते हैं । यह मेद तथा कफ इनको उत्पन्न करे है । और अति अभिष्यंदकारक है । पाककालमें मधुर, वातनाशक, पुष्टिकर, तथा रक्तपित्तशोधक है। जो दही गाढा तथा मधुरतायुक्त खट्टा, होय उसको स्वाद्वम्ल कहते हैं । यह मधुर कषेला, उष्ण, दीपन, स्निग्ध, पाककालमें खट्टा, भारी, ग्राहक, तथा अतिसारनाशक, होकर रक्तपित्त, कफ, मेद, सूजन, बल, और वीर्य इनको बढावे, और मूत्रकृच्छ्र, सरेकमाँ, शीतांग, विषमज्वर, अरुचि, और कृशता, इनको नाश करनेवाला है ४ अम्ल कहिये खट्टा दही दीपन, रक्तपित्तको कुपित करनेवाला, और कफकारी है ५ अत्यम्ल कहिये अत्यंत खट्टा दही दीपन, रोमहर्षकारक, तथा दांतोंको खट्टा करनेवाला होकर रक्तपित्त तथा कंठदाह, इनको उत्पन्न करता है ।

गव्यंदध्युत्तमंबल्यंपाकेस्वादुरुचिप्रदम् । दीपनंपौष्टिकंग्राहि

शीतलंवातनाशनम् । माहिषंदधिसुस्निग्धंश्लेष्मलंवातपित्त-नुत् । स्वादुपाकमभिष्यंदिवृष्यंगुर्वस्रदूषणम्।आजंदध्युत्त-मंग्राहिलघुदोषत्रयापहम् । प्रशस्तंश्वासकासार्शःक्षयकार्श्ये-षुदीपनम् ।

अर्थ-गौका दही उत्तम बलकारी, पाककालमें मधुर, रुचिकर, दीपन, पौष्टिक, ग्राहक, शीतल, तथा वातनाशक, ऐसा है । भैंसका दही स्निग्ध और रक्तदूषक है । बकरीका दही उत्तम ग्राहक, हलका, लघु, तथा त्रिदोषनाशक होनेसे श्वास, खांसी, बवासीर, क्षय, और कृशता इन रोगोंको पथ्यकर और दीपन है ।

तप्तदुग्धोद्भवंप्रोक्तंदधिस्निग्धंरुचिप्रदम्। सर्वधातुबलाग्नीनांव-र्द्धकंचगुणोत्तमम्।वातपित्तहरंचैवकीर्त्तितंमुनिसत्तमैः । ततो हीनगुणंप्राहुरामदुग्धोद्भवंदधि ।

अर्थ-औटाहुआ दूधका दही स्निग्ध, रुचिकारी, तथा सर्वधातु, बल,अग्नि इनको वढानेवाला, गुणोंमें उत्तम और वातपित्तनाशक है । कच्चे दूधका दही उस दहीकी अपेक्षा गुणोंमें न्यून है ।

हीनसांतानिकोत्पन्नंदधिशीतंलघुस्मृतम् । विष्टंभवातलंग्रा-हिदीपनंमधुरंमतम्।रुच्यमीषत्पित्तलंचप्रदिष्टंभिषगुत्तमैः ।

अर्थ-औटाकर मलाई निकाले हुए दूधका दही शीतल, हलका, विष्टंभी, वातल, ग्राहक, दीपन, मधुर, रुचिकारी, और किंचित् पित्त करता है ।

अथ संयोगविशेषगुणानाह ।

सशर्करंदधिश्रेष्ठंतृष्णापित्तास्रदाहनुत् । सगुडंवातजिद्वृष्यं बृंहणंतर्पणंगुरु ।

अर्थ-बूरा मिला दही श्रेष्ठ एवं प्यास, रक्तपित्त, तथा दाह इनको नाश करे । गुड मिला दही वातनाशक, वृष्य, बृंहण, तृप्तिकर, तथा गुरु ऐसा है।

मूत्रकृच्छ्रेप्रतिश्यायेशीतगेविषमज्वरे । अतिसारेऽरुचौका-र्श्येदिवाचदधिशस्यते ।शस्यतेदधिनोरात्रौशस्तंचांबुघृता-न्वितम् । रक्तपित्तकफोत्थेषुविकारेषुनशस्यते ।

अर्थ-मूत्रकृच्छ्र, सरेकमा, शीतसे उत्पन्न विषमज्वर, अतिसार, अरुचि,

तथा कृशता, इन रोगोंमें दिनमें दही खाना उत्तम है। रात्रिमें दही खाना वर्जित है। यदि रात्रिमेंही दही खाना होय तो पानी और घी डालके खाय, रक्तपित्त और कफके रोगोंमें दही खाना सर्वथा अहितकारी है।

दध्नस्तूपरियत्तोयंतन्मस्तुपरिकीर्तितम्।मस्तुक्लमहरंबल्यंल-घुभक्ताभिलाषकृत्। स्रोतःशोधनमाह्लादिकफतृष्णानिला-पहम्। अवृष्यंप्रीणनंशीघ्रंभिनत्तिमलसंग्रहम्।

अर्थ–दहीके पानीको मस्तु कहते हैं। यह मस्तु ग्लानिनाशक, बलकर, लघु, भोजनमें रुचिकारक, इन्द्रियशोधक, आनंदकारक, तथा कफ, तृषा, वातके रोग इनको नाश करे,अवृष्य, तृप्तिकर।और मलसंग्रहभेदक,ऐसा है।

दध्नस्तूपरिसांतानीसरइत्यभिधीयते। सरःस्वादुर्गुरुर्वृष्योवा तवह्निप्रणाशनः। साम्लोबस्तिप्रधमनःपित्तश्लेष्मप्रवर्द्धनः।

अर्थ–दहीके ऊपरकी मलाईको सर कहते हैं। यह स्वादु,गुरु, वृष्य, वायु तथा अग्नि, इनको नाश करे। खट्टी, मूत्राशयको अहित, और पित्त तथा कफ इनको बढानेवाली है।

अथ तक्रगुणानाह।

घोलंमथितमुदश्वित्तक्रमाहुश्चतुर्विधम्। ससरंनिर्जलंघोलंम-थितंरसवर्जितम्।तक्रंपादजलंप्रोक्तमुदश्विच्चार्द्धजीवनम्।के-चित्तुच्छच्छिकांप्राहुर्बहुनीरांहिपंचमीम्।वातपित्तहरंघोलंमथि-तंकफपित्तनुत्। तक्रंत्रिदोषशमनमुदश्वित्कफकारकम्।छ-च्छिकाश्रमपित्तघ्नीशीतातृड्वातनाशिनी। गुर्वीश्लेष्मप्रदाप्रो-क्तादीपनीलवणान्विता।

अर्थ–अब तक्रके गुण कहते हैं। छाछ चार प्रकारकी है, जैसे १ घोल, २ मथित, ३ उदश्वित्, ४ तक्र जो पानीके विना मथते है परंतु उसमेंसे मक्खन नहीं निकालाहो उसको घोल कहते हैं, और पानीके विना मथके मक्खन निकालते हैं उसको मथित कहते हैं, जिसमें चौथा भाग पानी डालके मथे उसको तक्र, और अर्द्धभाग पानी मिलाय मथते है उसको उदश्वित्, ऐसे कहते हैं, इसके शिवाय जिसमें बहुत पानी मिलायके मथते है, उसको कोई छच्छिका कहते हैं। यह पांचवां प्रकार है। घोल वातपित्तनाशक, मथित

कफ पित्तनाशक, तक्र त्रिदोषनाशक, उदश्वित् कफकारक, और छच्छिका यह श्रम तथा पित्तनाशक है, शीतल, वात, तथा तृषानाशक, कफकर, और गुरु है, इसमें निमक डालनेसे दीपक होती है ।

अथ तक्रविशेषगुणानाह ।

तक्रंग्राहिकषायाम्लंस्वादुपाकेरसेलघु । वीर्योष्णंदीपनंप्रोक्तं पौष्टिकंवातनाशनम् । ग्रहण्यादिकरोगेषुतक्रंपथ्यतमंमतम् । राजिकालवणाजाजीरामठैःसंयुतंयदि । पाचनंदीपनंरुच्यं विशेषादुदरापहम् । वातेम्लसैंधवोपेतंपित्तेस्वादुसशर्करम् । पिबेत्तक्रंकफेरूक्षंव्योषक्षारसमन्वितम् । मूत्रकृच्छ्रेतुसगुडंपांडुरोगेसचित्रकम् । हिंगुजीरयुतंघोलंसैंधवेनावधूलितम् । तद्भवेदतिवातघ्नमर्शोऽतीसारनाशनम् । सुरुच्यंपुष्टिदंबल्यंबास्तिशूलहरंमतम् ।

अर्थ–अब तक्रके विशेष गुण कहते हैं । तक्र ग्राहक, कषेला, खट्टा, पाककालमें तथा रसकालमें स्वादु, लघु, वीर्यकालमें उष्ण, दीपन, पौष्टिक, वातनाशक, तथा संग्रहणी, इत्यादि रोगोंमें अति पथ्यकर है । यदि तक्र (छाछ)में भुना जीरा भुनी हींग डाले तो विशेषकरके पाचन, दीपन, रुचिकारी, तथा उदरविकारनाशक, होय है । वादीके रोगमें खट्टी छाछमें सैंधानिमक डालके देवे, पित्तके रोगमें मीठी छाछमें बूरा डालके देवे, कफके रोगमें रूक्ष अर्थात् जिस छाछमें मक्खनका लेश भी न होवे उसमें सोंठ, मिरच, पीपल, तथा जवाखार डालके देवे, मूत्रकृच्छ्रमें गुड मिलायके देय, पांडुरोगमें चित्रककी छाल डालके देय, घोल इसमें भूनी हींग, जीरा, तथा सैंधानिमक, डालके देय तो यह अतिवात, बवासीर, तथा अतिसार, इनको नाश करे । रुचिकर, बलकर, पौष्टिक, और वस्ति शूल, नाशक ऐसा है ।

शीतकालेऽग्निमांद्येचकफवातामयेषुच । अरुचौस्रोतसांरोधे तक्रंस्यादमृतोपमम् । तक्रंतुलवणोपेतंदीपनंग्रहणीगदे । लवणेनविनायत्तद्ग्रहण्यर्शोविवर्द्धनम् ।

अर्थ–शीतकालमें तथा अग्निमांद्य, कफ, वात, अरुचि, और नाक, कान, इत्यादि इन्द्रियोंके अवरोध इन रोगोंमें तक्र अमृतके तुल्य है, निमक पडी

छाछ संग्रहणी रोगमें अग्निदीपक है, और निमक विना संग्रहणी और बवासीरको बढातीहै ।

नमूर्च्छाभ्रमदाहार्तोरक्तपित्तीक्षतीनरः ।
दुर्बलोऽद्यान्नवैतक्रमुष्णकालेपिनिंदितम् ॥

अर्थ—मूर्च्छा, भ्रम, दाह, तथा रक्तपित्त, इन रोगवाले पुरुषोंको तथा दुर्बलको तक्र (छाछ) नहीं पीना चाहिये, और उष्णकालमें तो किसीकोही तक्र नहीं पीना चाहिये ।

स्वर्गेसुराणाममृतंयथास्तितक्रंनराणांभुवितद्ववदेव ।
तक्रप्रदग्धानपुनर्भवेयूरोगानतक्राद्व्यथतेकदाचित् ॥

अर्थ—जैसे स्वर्गमें देवताओंको अमृत प्रधानहै, उसीप्रकार पृथ्वीमें मनुष्योंको तक्र है । तक्रसे जो दग्धहुए रोग वो फिर नहीं होते और तक्र सेवन करता पुरुष बहुधा रोगी नहीं हो । " तक्रमत्तीति तक्रात् "

गव्यंतुदीपनंतक्रंमेध्यंश्वित्रत्रिदोषजित् । कुष्ठगुल्मातिसारघ्नंप्लीहार्शोग्रहणीप्रणुत् । माहिषंश्लेष्मलंतक्रंसांद्रंशोफकरंगुरु । सुस्निग्धंछागलंतक्रंलघुदोषत्रयापहम् । गुल्मार्शोग्रहणीशोफपांडुरोगप्रणाशनम् ।

अर्थ—गौकी छाछ दीपन तथा बुद्धिवर्द्धक होकर श्वेतकुष्ठ, त्रिदोष, गलित कुष्ठ, गुल्म, अतिसार, प्लीहा, अर्श, और संग्रहणी इनको नाश करे । भैंसकी छाछ कफकर स्निग्ध, शोथकर, तथा गुरु है । बकरीकी छाछ स्निग्ध तथा लघु होनेसे त्रिदोष, गुल्म, अर्श, संग्रहणी, सूजन, और पांडुरोग इनका नाश करे ।

अथ नवनीतगुणानाह ।

नवनीतंहितंगव्यंवृष्यंवर्णबलाग्निकृत् । संग्राहिवातपित्तास्रक्षयार्शोऽर्दितकासजित् । तद्बालेसुहितंवृद्धेविशेषादमृतंशिशोः । वीर्यसंवर्द्धनंयूनांरोचकंचप्रकीर्तितम् ।

अर्थ—गौकी लौनी (मक्खन) हितकर, वृष्य, वर्णकारक, बलकर, जठराग्निदीपक, तथा ग्राहक हो वात, पित्त, रक्तविकार, क्षय, अर्श, अर्दित, वायु, और खांसी, इनका नाश करता है । उसीप्रकार वृद्धमनुष्योंको

हितकारक, बालकोंको अमृतके समान, और तरुणोंको वीर्यवर्द्धक, तथा रुचिकारी है ।

माहिषंनवनीतंतुवातश्लेष्मकरंगुरु । दाहपित्तश्रमहरंमेदः-शुक्रविवर्द्धनम् । आजंत्रिदोषशमनंनवनीतंतयोर्वरम् ।क्षीरो-त्थंमंथजंश्रेष्ठमतिस्निग्धंबलप्रदम् । चक्षुष्यंमधुरंवृष्यंशीतं ग्राह्यस्रापित्तनुत् । नवनीतंतुसद्यस्कंस्वादुग्राहिहिमंलघु । मेध्यंकिंचित्कषायाम्लमीषत्तक्रांशसंभवात् । श्लेष्मलंगुरुमे-दस्कंनवनीतंचिरंतनम् । सक्षारंकटुकाम्लत्वाच्छर्द्यर्शःकुष्ठ-कोपनम् ।

अर्थ-भैंसकी लोनी वातकारक, कफकर, तथा भारी, एवं दाह, पित्त, श्रम, इनकी नाशक और मेद, वीर्य, इनको बढावे । बकरीकी लोनी त्रिदो-षनाशक, तथा गौकी लोनी भैंसकी लोनीकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। दूधमेंसे निकाली हुई लोनी श्रेष्ठ अतिस्निग्ध बलदायक, नेत्रोंको हितकारक, मधुर, वृष्य, शीतल, और ग्राहक होनेसे रक्तपित्तनाशकहै । दूधसे अथवा दहीसे निकाली ताजी लोनी स्वादु, ग्राहि, शीतल, लघु, बुद्धिवर्द्धक छाछके योगसे कुछ कषेली, तथा खट्टी ऐसी है । बहुत दिनोंकी लोनी कफकर, भारी, मेद-वर्द्धक, किंचित् चरपरी, तथा खट्टी ऐसी है । इसीसे उसमें क्षारांश उत्पन्न होता है । यह वमन बवासीर इनको कुपित करे है ।

अथ घृतगुणानाह ।

गव्यंस्नेहवरंघृतंगुरुहिमंवृष्यंसुराणांप्रियंमेध्यंनेत्रहितंविपाक-मधुरंमांगल्यमारोग्यदम् । ओजःपुष्टिकरंरसायनवरंबल्यं वपुःस्थैर्यदंतेजःकांतिविवर्द्धनंस्मृतिकरंरुच्यंसुधास्पर्द्धक-म् । स्वर्यंवह्निविवर्द्धनंश्रमहरंवातंचपित्तंविषंहन्यादेवकफं सरोजवदनेग्लानिंत्वलक्ष्मीमापि । नातःश्रेष्ठतरंवदंतिमुन-योलोकत्रयेमन्मतेगव्यंसर्पिरथोऽधरामृतमयेतुल्यंकुरंगीदृशाम् ।

अर्थ-गौका घी सर्वस्नेह पदार्थोंमें श्रेष्ठ भारी, शीतल, वृष्य, देव-ताओंको प्रिय, बुद्धिदायक, नेत्रोंको हितकर, पाककालमें मधुर मंगली-क, आरोग्यदायक, इन्द्रियोंको बल, तथा पुष्टि देनेवाला, श्रेष्ठ रसा-

यन, बलकर, शरीरको स्वस्थता देनेवाला, तेज तथा कांति इनको बढानेवाला, स्मृतिकारक, रुचिकर, अमृतके समान स्वरकारक, और अग्निवर्द्धक, ऐसा है उसी प्रकार श्रम, वातपित्त, विष, कफ, ग्लानि तथा अलक्ष्मी इनको नाश करे।

आज्यंमाहिषमग्निदीपनमपिस्निग्धंचहृद्यंहिमंनेत्र्यंस्वादुरसायनंगुरुमतंसौख्यप्रदंबुद्धिदम्। धैर्यश्लेष्मबलप्रदंरुचिकरंकांतिप्रदंपौष्टिकंवर्ण्यंपित्तमरुद्भ्रमग्रहणिकाश्रांत्यस्रापित्तप्रणुत्। अर्शोघ्नंमहिषीभवंचकथितंत्वग्दोषसंनाशनमाजंचाज्यमथोऽग्निकृल्लघुमतंवृष्यंचपाकेकटु। नातिस्वादुरसेदृशोर्हितकरंबल्यंकफार्शःप्रणुत्कासश्वासविनाशनंक्षयहरंपूर्णेंदुबिंबानने।

अर्थ–भैंसका घी अग्निदीपक, स्निग्ध, हृद्य, शीतल, नेत्रोंको हितकारी, स्वादु, रसायन, भारी, सुखदायक होकर बुद्धि, धैर्य, कफ तथा बल इनको बढावे। रुचिकारी, कांतिकारक, पौष्टिक, वर्णकारक, ऐसा है उसीप्रकार पित्त, वात, भ्रम, संग्रहणी, श्रम, रक्तपित्त, और बवासीर संबंधी रोग इनको नाश करे बकरीका घी अग्निदीपक, लघु, वृष्य, पाककालमें तीक्ष्ण, रसकालमें अल्पस्वादु; नेत्रोंको हितकारी, तथा बलकारी है। उसीप्रकार कफ, अर्श, खांसी, श्वास, और क्षय इनको नाश करे।

योजयेन्नवमेवाज्यंभोजनेतर्पणेश्रमे। बलक्षयेपांडुरोगेकामलानेत्ररोगयोः। राजयक्ष्मिणिबालेचवृद्धेश्लेष्मगदान्विते। सामेरोगेविषूच्यांचविबंधेचमदात्यये। नवज्वरेऽग्निमांद्येच नसर्पिर्बहुमन्यते।

अर्थ–भोजनमें, तर्पणमें, तथा श्रम, बलक्षय, पांडुरोग, कामला, नेत्ररोग इनमें नवीन घी लेना चाहिये। परंतु राजयक्ष्मा (खई) बालक, वृद्ध, कफरोगी, आमरोग, विषूचिका, विबंध, मदात्यय, नवीन ज्वर, तथा अग्निमांद्य इनरोगोंमें घी हितकारी नहीं है।

अथ सक्तुकृतिगुणाः।

धान्यानांभ्राष्ट्रभृष्टानांपिष्टंसक्तुरुदाहृतः। शीतलःसारकोरूक्षोलघुशुक्रविवर्द्धनः। कफश्रमग्लानिदाहभ्रमपित्तापहारकः।

अर्थ--अब सत्तू अर्थात् भुनेहुए अन्नके चूनकी विधि तथा गुणदोष, कहते हैं । प्रथम गेहूं चना आदि धान्यको भाड़में भूने फिर चक्कीसे पीसे उस चूनको सत्तू ऐसा कहतेहैं । यह सत्तू शीतल, सारक, रूक्ष, बलकारी, तथा वीर्यवर्द्धक हो कफ, श्रम, ग्लानि, दाह, भ्रम, तथा पित्त इनका नाश करे है सत्तू काशी पटना आदि प्रांतोंमें उत्तम बनताहै ।

चाणकाःसक्तवःशीतारूक्षास्तृप्तिकरामताः । ग्राहिणोवातलाश्चैवरक्तशुद्धिकराअपि ।पित्तघ्नाश्चकफघ्नाश्चस्मृताःपाकविदुत्तमैः । सक्तुर्लाजोद्भवःशीतोलघुर्ग्राहीत्रिदोषजित् । छर्दिरक्तप्रशमनःपथ्यस्तृप्तिप्रदायकः ।

अर्थ–चनेका सत्तू शीतल, रूक्ष, तृप्तिकर, मलग्राहक, वातल, रक्तशोधक तथा पित्तकफनाशक है, और खीलोंका सत्तू शीतल, हलका, ग्राहक, तथा त्रिदोषनाशक ऐसा होकर वमन तथा रक्तविकार इनको नष्ट करे । और पथ्यकर तथा तृप्तिकारक है ।

अथ यवसक्तुगुणाः ।

यवसक्तुर्विलोलाक्षिसितानीरप्रसेवितः । हंतिपित्तंकफंबाले शीतलोदीपनोलघुः। लेखनोरेचनोरूक्षोबल्योधातुविवर्द्धनः। मधुरोभेदनोरुच्यःक्षुत्तृषाश्रमनाशनः। घर्मदाहप्रहरणःकर्णनेत्रामयापहः । मार्गव्यायामखिन्नानांहितःपीतोनभक्षितः ।

अर्थ–जौका सत्तू मीठेके साथ पानीमें सानकर खानेसे पित्त तथा कफ इनका नाश करे, उसीप्रकार शीतल अग्निदीपक, हलका, लेखन कहिये शरीरका मल शुष्क कर छुडायके काढनेवाला, रेचन, रूक्ष, बलकर धातु बढानेवाला, मधुर, भेदन, तथा रुचिकारी है । उसी प्रकार क्षुधा तृषा, श्रम, पसीने दाह, कर्णरोग, और नेत्ररोग, इनका नाशक तथा मार्ग किंवा दंडकसरतसे जो क्षीणहुए उनको हितकारी यह सक्तू पानीमें घोलकर पीनेसे उत्तम है। परंतु गाढा करके भक्षण कराहुआ अवगुण करे है ।

सक्तवःशालिसंभूतावह्निदालघवोहिमाः ।
मधुराग्राहिणोरुच्याःपथ्याश्चबलशुक्रदाः ।

अथ-चावलाका सत्तू अग्निदीपक लघु, शीत, मधुर, ग्राहक, रुचिकारी, तथा पथ्यकारी हो बल वीर्य इनको उत्पन्न करे है।

अथ सक्तूनांद्रव्यसंयोगेनगुणाः।

तत्रप्रथमतोमंथकृतिगुणाः।

सक्तून्घृतेमिश्रयित्वाजलेनसहघोलयेत्। नातिद्रवंनातिघनं समंथोबलदःस्मृतः। परिणामेबलहरोमधुरःशीतलस्तथा। वर्णपुष्टिस्थैर्यकारीदाहतृट्छ्रमछर्दिहा। प्रमेहक्षयकुष्ठानां नाशकःपरिकीर्तितः।

अर्थ-अब सत्तूमें दूसरा पदार्थ डालकर उसके साथ भक्षण करनेसे उसके गुण कहते हैं। तिनमें प्रथम मंथकी कृति और गुणदोष कहते हैं. सत्तूको उत्तम घीमें मिलाय फिर पानी डाल न बहुत पतला न बहुत गाढा ऐसा करे। इसको मंथ ऐसा कहते हैं। यह बलकारी, परिणाममें बलहरणकर्त्ता, मधुर तथा शीतल ऐसा होकर, वर्ण, पुष्टि, स्थैर्य इनको देनेवाला तथा दाह, तृषा, भ्रम, वमन, प्रमेह, क्षय, तथा कुष्ठ, इनको नाश करे।

सगुडाम्लघृतैःसार्द्धंभक्षितोमूत्रकृच्छ्रहा। उदावर्तहरश्चैवस-सितेक्षुरसैर्युतः। द्राक्षाभिर्भक्षितोनित्यंवातरक्तविनाशनः। पित्तस्यनाशकश्चोक्तःसद्राक्षामधुनासह। जलेनघोलितश्चा-त्तःकफनाशकरोमतः। अम्लेक्षुघृतसिताभिर्मधुद्राक्षागुडैः सह। भक्षितश्चमलान्दोषान्यथामार्गेणवाहकः। सक्तुश्च शर्करासर्पिर्युक्तोग्रीष्मेऽतिपूजितः। शुक्रलश्चलघुर्बल्यःशीत स्तृप्तिरुचिप्रदः।

अर्थ-गुड, इमली, घी इनके साथ सत्तू भक्षण करनेसे मूत्रकृच्छ्रका नाश करे। खांड और ईखके रसकेसाथ भक्षण करे तो उदावर्त्त दूर होय। दाखके साथ भक्षण करनेसे वातरक्तका नाश करे। दाख और सहतके साथ पित्तनाशक केवल पानीमें मिलायकर भक्षण करनेसे कफनाशक होता है। खटाई, घृत, खांड, ईखका रस, सहत, दाख, गुड, इनके साथ भक्षण करनेसे वातादि दोष और मल इनको यथामार्गकरके लानेवाला होता है।

परंतु इस कहे हुए सर्व योगोंमें पानी मिला लेना उचित है । खांड तथा घी, युक्त सत्तू ग्रीष्मऋतुमें अतिश्रेष्ठ धातुवर्द्धक, लघु, बलकारी, शीतल, तृप्तिकारी, तथा रुचिकारी है ।

सक्तुसेवीजनःकांतेदशकर्माणिवर्जयेत् । तान्यहंतेप्रवक्ष्यामि शृणुकंजविलोचने । एकस्मिन्दिवसेसक्तून्भुक्त्वानाद्यात्पुनःक्वचित् । केवलान्नरदैश्छित्त्वासामिषापयसानिशि। भोजनांतेबहूँश्चोष्णमश्नन्कंनापिबेत्पृथक् ।

अर्थ–हे कान्ते ! सत्तू खानेवाले मनुष्यको आगें कहेहुए दशप्रकारके आचरण वर्जित हैं । एक दिनमें एक वार सत्तू भक्षण करके फिर नहीं खाना चाहिये विना पानीके न खाय, दांतोंसें चबायकर न खाय, मांसके साथ दूधके साथ. रात्रिमें, भोजन करनेके पश्चात्, बहुत गरम करके, तथा सत्तू भक्षण करतेसमय पृथक् पानी न पीवे ।

अथ धानाकृतिगुणाः ।

धानाभृष्टयवागुर्व्योमेदश्छर्दिकफापहाः । लेखनादुर्जरारूक्षावातलास्तृप्तितृट्प्रदाः । मलबंधकराःख्यातारूपशीलधनाग्रगे ॥

अर्थ–अब धाना (बोहरी) की कृति तथा गुण कहते हैं । भूनेहुए जौंको धाना वा बोहरी कहते हैं । ये धाना भारी होकर मेदरोग, वमन, कफ, इनका नाशक लेखन कहिये शरीरके धातु तथा मलको शुष्क करके काढनेवाले दुर्जर कहिये शीघ्र न पचे,रूक्ष, वायुकारक, तृप्तिकर, तृषादायक, और मलबंधक है ।

अथ लाजाकृतिगुणाः ।

शालयःसतुषाभृष्टाःप्रफुल्लानिस्तुषीकृताः । लाजाख्यामधुरालघ्व्योरूक्षाःसंदीपनाहिमाः । स्वल्पमूत्रमलाबल्यादाहपित्तकफापहाः। छर्द्यतीसारतृण्मेदोरक्तमेहापहाश्चताः ।

अर्थ–अब लाजा कहिये खील इनकी विधि और गुण कहते हैं । जिनके चावल होते हैं । ऐसे शालीधानको छिलकासहित भूने जब भूनकर फूलजावे तब उनका छिलका दूर करे इनको लाजा अर्थात् खील कहते हैं यह मधुर, लघु, रूक्ष, दीपन, शीतल, किंचित् मूत्रकारक, बलकारी, तथा दाह

पित्त, कफ, इनको नाशक, और वमन, अतिसार, मेदरोग, तृषा, रक्तप्रमेह, इनकोभी नाश करे है । दिवालीके दिन सर्व गृहस्थी इनसें लक्ष्मीका पूजन करते हैं ।

अथ पृथुककृतिगुणाः ।

वालुकायांसुतप्तायामार्द्राञ्छालीन्विभर्जयेत् । शीघ्रमुष्णांस्ततःकुट्टेदुलूखलगतान्भृशम् । चर्पटास्तुयदातेस्युस्तदा शूर्पेणशोधयेत् । अभावेचार्द्रशालीनामत्युष्णेंबुनिसंक्षिपेत्। शालीपर्य्युषितान्नीत्वाजलाद्वस्त्रेनिपीड्यच । निर्जलान्भर्ज्यसंकुट्यशूर्पेणैवचशोधयेत् । तेस्मृताःपृथुकाःकांतेगुरुवःकफकारकाः । वातातंकहराश्चापिविशेषमपरंशृणु । सितादुग्धान्वितावल्याःसारावृष्याश्चशुक्रलाः । वातघ्नाःकफलाः प्रोक्ताःपृथुकाःपृथुकान्विते । वालुकायांपुनर्भृष्टाश्चिपिटास्ते प्रफुल्लिताः । स्वादुपाकास्त्रिदोषघ्नाविशेषाद्रुचिकारकाः ।

अर्थ—अब पृथुक कहिये चिरवा इनकी विधि तथा गुणदोष कहते हैं। लाल साटी चावल इत्यादि जातीके नवीन कच्चे चावल खिपडेमें वालू डालकर भूने, और गरमागरमोंको ओखलीमें डालकर कूटे, कूटतेकूटते जब पतले चिरवा होजावे तब सूपमें डालके फटककर धर रक्खे, यदि कच्चे चावल न मिले तो सूखेही चावलोंको अत्यंत गरम जलमें एक दिन भिजोवे दूसरे दिन काढकर कपडेमें दाबकर निचोडे फिर उनको भाडमें भुनायकर ऊपर कहीहुई विधिके अनुसार चिरवा करलेवे, ये चिरवा जड, कफकारी, और वातनाशक है । दूध बूरेकेसाथ चिरवा खानेसे बलकारी, रेचक, वृष्य, धातुवर्द्धक, वातहर, और कफकारी होते हैं यदि ये चिरवा फिर वालूमें भूनके चुरमुरा करनेसे पाककालपें स्वादु, त्रिदोषनाशक, और विशेष करके रुचिकारक होते हैं।

अथौलंबीकृतिगुणाः ।

गोधूमान्वायवानार्द्रानर्द्धपक्वान्समाहरेत् । सनालान्कूर्चिकांबद्ध्वानालेग्राह्यविभर्जयेत् । तृणप्रज्वालितायांचज्वालायामतियत्नतः । तन्मंजरीश्च्युतान्नासात्तस्मिन्नग्नौचपूरयेत् । क्षणादुद्धृत्यसंमर्द्यशूर्पेणचविशोधयेत् । सौलंबीवातपित्तघ्नी गुर्वीश्लेष्मबलप्रदा ।

अर्थ-अब ओलंबी कहिये कच्चे नाजको भूनकर जो पदार्थ बनता है उसके गुणदोष कहते हैं। गेहूं किंवा जौ अधपके और हरे जडसहित ले उनकी गुच्छी बांध जड पकडके युक्तिसे भूने भुनते भुनते जब वो जडसे पजरकर गिरपडे उनको थोडी देर उनी तिनकोंमें रहने देवे फिर काढकर हाथोंसे मीड मसलकर उनदानेनको सूपसे न्यारे फटक लेवे, इसको संस्कृतमें ओलंबी कहते हैं यह ओलंबी वातपित्तहर, भारी, कफकरता, और बलदायक है।

अथ होलककृतिगुणाः।

समूलान्यर्द्धपक्वानिशिंबिधान्यानिचाहरेत्। तृणाग्नौभर्जये-त्तानितदग्नौचप्रपूरयेत् । क्षणादुद्धृत्यशूर्पेणशोधयेद्धोलको मतः। होलकोदुर्जरःशीतोवातमेदःकफंकरः। श्रमघ्नश्चगुरूरूक्षोमलावष्टंभकारकः। यद्यद्धान्यकृतश्चायंतत्तद्धान्यगुणोभवेत्।

अर्थ-अब होलक कहिये होरा इनकी विधि तथा गुणदोष कहते हैं। शिंबिधान्य कहिये बूंटआदि अधपके लावे, फिर तिनका इकट्ठे कराय ऊपर कहे प्रमाण उनको भूनकर एक क्षण उसी तिनकाकी आगमें रहने देवे फिर निकालकर सूपसे फटक भूनेहुए दानेनको इकट्ठे करलेवे इनको होलक कहते हैं और भाषामें होरा कहते हैं। ये होरा दुर्जर, शीतल, तथा वात, मेद, कफ, इनको उत्पन्न करनेवाले, श्रमनाशक, भारी रूक्ष, और मलका अवरोध करनेवाले इसप्रकार जिसजिस धान्यके होलक कहिये होरा करे जावें उनके गुण उसी उसी धान्यके समान होते हैं।

अथ चणकगुणाः संस्कारभेदात्।

वाजिमंथोहिमोऽपक्वोरोचनस्तर्पणस्तथा। तृषादाहाश्मरीमेदोदोषघ्नश्चकषायकः।ईषत्कफकरोऽकालेशुक्रलःपरिकीर्तितः। सचांगारैश्चसंभृष्टस्तैलभृष्टश्चतद्गुणः। आर्द्रभृष्टोबलकरोरोचनश्चप्रकीर्तितः। शुष्कभृष्टोऽतिरूक्षःस्याद्वातकुष्ठप्रकोपनः। स्विन्नःपित्तकफौहन्याद्गुरूरूक्षश्चवातलः। आर्द्रोऽतिकोमलो रुच्योरक्तपित्तहरोहिमः।

अर्थ--अब संस्कारका भेद करके चनाके गुणदोष कहते हैं। कच्चे चना शीतल, रोचन, तथा तृप्तिकारी हैं। तृषा, दाह, पथरी, मेदरोग, इनके नाशक

हैं। तथा कषेले हैं। उसीप्रकार किंचित् कफकर और वीर्यवर्द्धक हैं। ये चने अंगारोंपर भूनेहुए अथवा तेलमें भुने होय तोभी पूर्वोक्तगुणकारी जानने। यदि ये चना गीले भूने तो बलकारी, रुचिकारक होते हैं। यदि वालूमें भूने जांय तो अति रूक्ष और वातापित्त इनको कुपित करनेवाले जानने। सीजे हुए चना पित्त कफ इनके नाशक, भारी, रूक्ष, तथा वातल हैं और गीले होनेसे हरे और अति नम्र होय तो रुचि करे एवं रक्तपित्तनाशक जानने।

अथ कुंकमौदनकृतिगुणाः।

रसिकेशरसज्ञोसिब्रूह्यतोमधुरप्रिय।कथंकुर्यामहंकांतत्वत्प्रियंकुंकुमौदनम्।शृणुलोलाक्षिवक्ष्येऽहंकुरुत्वंमधुराधरे। अर्पयस्वारविंदाक्षिलक्ष्मीकांतायसत्वरम्।प्रस्थैकंतंदुलानांभोजीर्णानामलिकुंतले। सूक्ष्माणामाढकेनीरेपाचयस्वशनैःशनैः। अर्धपक्केचविस्राव्यततश्चेमंविधिंकुरु। तंडुलांस्तान्बृहत्पात्रे कृत्वादर्व्याप्रसार्यच।बादामंकुडवंद्राक्षाकुडवैकंसुशोधितम्। सार्द्धप्रस्थांसितांशुद्धांकुडवैकंनिकोचकम्।कुंकुमंनीरसंपिष्टं सर्वंयत्नाद्विमिश्रय।भांडमन्यत्ततश्चुल्ल्यांततंकृत्वाघृतंक्षिप। सार्द्धप्रस्थंघृतेतप्तेकोलंदेवसुमंक्षिप। क्षणमाच्छाद्यचोद्घाट्य यद्द्रव्यंतंदुलादिकम्। तत्सर्वंचघृतेतस्मिन्क्षिप्त्वासंचाल्यझंपय। ततःशीघ्रंसमुत्तार्यनिर्धूमांगारकेन्यस। यावन्मृदुततश्चान्येविस्तीर्णेभाजनेकुरु।तत्रपुष्पासितांकांतेकुडवैकांकणाकृतिम्। कर्षमेलारजःकोलंलवंगंचविमिश्रय। इदंबल्यंस्वादुवृष्यंपुष्टिदंकुंकुमौदनम्।

अर्थ-अब केशरिया भातकी विधि तथा गुणदोष कहते हैं। एक प्रस्थ कहिये ६४ तोले बहुत उत्तम बारीक और पुराने चावल लेकर स्वच्छ धोयकर २५६ तोले पानीमें सिजावे, जब अधपक्क होजावे तब उनका मांढ निकाल डारे, और उसको परातमें करके कलछीसे बराबर फैलाय देवे, फिर इसमें १६ तोले बादामकी मिंगी, गिरी १६ तोले, दाख १६ तोले, पिस्ते १६ तोले, शुद्ध सपेद बूरा ३२ तोले, और ४ तोले, पानीमें घुटीहुई केशर १ तोला, इन सबको एकसाथ समान डालके फिर उलट पलट कर एकसा

मिलाय देवे, फिर एक बडा बर्तन चूल्हेपर चढाय उसमें ९६ तोले घी डालके अच्छीरीतसे तपावे जब खूब गरम होजावे तव ६ मासे कुटी हुई लौंग डाल थोडी देर ढक देवे फिर उसमें वो सब सामान मिलाहुआ भात डालके कलछीसे चलाय देवे, और ढकनासे ढक देवे, फिर जल्दी उतार अंगारोंपर धरदेवे जब चावल सीजजावे तब एक बडी परातमें निकाल लेवे, और उसमें कंदका चूरा १६ तोले इलायचीके दानेका चूरा १ तोला, और लौंगका चूरा आधे तोला मिलावे, इसे केशरियाभात कहते हैं। यह बलदायक, स्वादु, वृष्य, और पुष्टिकारक है।

अथेक्षुरसौदनकृतिगुणाः ।

तंदुलानांसुधौतानांप्रस्थैकमैक्षवेरसे । पाचयत्वंवरारोहेपक्के तूत्तारयेद्द्रुतम् । कुडवैकंघृतंतत्रकर्षमेलाभवंरजः । मिश्रयित्वाततःकोष्णंभूमिजापतयेऽर्पय । इदंबल्यंचवृष्यंचरुच्यमिक्षुरसौदनम् । विश्वचूर्णयुतंचेत्स्यादामदोषहरंभवेत् ।

अर्थ--अब इक्षुरसौदनकी कृति कहते हैं। उत्तम धुलेहुए चावल ६४ तोले लेकर ईखके रसमें सिजावे और उसमें १६ तोले घी तथा १ तोला इलायचीके दानेकी चूर मिलावे इसको इक्षुरसौदन कहतेहैं । यह बलकर, वृष्य, तथा रुचिकारी है। यदि इसमें सोंठका चूरा मिलाय दीया जाय तो यह आमदोषनाशक होता है।

अकबरी--चावलका आटा १ शेर घी तीनपाव चीनी १ सेर, दही पावभर प्रथम आध सेर घीको किसीपात्रमें हाथोंसे खूब मथो जब मथतेमथते सपेद होजावे तब उसमें आटा और दही मिलाकर सानकर चारगोला बनाकर पानीमें रक्खो जब वह पानीमें तरने लगे तो जलसे निकाल डेढ डेढ तोलेके अन्दाजकी टीकरी बनावे फिर घी मधुरी आंचपर चढावे जव तयार हो जावे तब उसटीकरीको छोडदेवे और बडी सावधानीसे टिकरीको भूने आंच नेकभी तेज होजायगी तो मठरी करडी पडजावेगी इसीसे मध्यम आंचपर भूनकर साढेतीन तारी चासनीमें भिगोकर निकाल ले यह परमोत्तम वालू साई बनैंगे।

थालीपीट दक्षिणी–गेहूं १ सेर, बाजरी १ सेर, चनाकी दाल २॥ पाव उडदकी दाल आध सेर, यह सब पृथक् पृथक् भुनवाकर पिसवाओ फिर धनिया जीरा मिरच इनके चूर्णको कुछ थोडा थोडा भून पीसकर उसी चूनमें मिलाय देउ, हींग और निमकभी अनुमानमाफिक मिलाओ पीछे दूध या जलमें रोटीके आटेकी भांति

सानकर कढाईमें घी चढाय गरम होनेपर उसकी हथेलीसे पतली रोटीके भांति बना कर डालदेवे जब केसरकेसमान लाल होजावे तब निकाललो।

अथ शाककृतिमाह।

शाकपाकविधिंवक्ष्येशृणुपाकविशारदे । पत्रंपुष्पंफलंनालं कंदंसंस्वेदजंतथा । शाकंषड्विधमुद्दिष्टंगुरुविद्याद्यथोत्तरम् ।

अर्थ–हे पाकविशारदे! शाककी विधि कहता हूं तू सुन--शाक छःप्रकारका है। जैसे पत्र, पुष्प, फल, नाल, मूल, और संस्वेदज, तिनमें पत्रका चौंलाई, वथुआ आदि, पुष्प केलाका फूल अगास्तियाका फूल इत्यादि, फल-बैंगन करेला आदि, नाल-मूली आदि, कंद-जमीकंद अरई आदि, संस्वेदज छतोना आदि, इन शाकोंमें अनुक्रमसे एकसे दूसरा भारी है।

दीपनार्थंहिपत्रेषुजीरकंलशुनंमतम्। रक्तामरीचिकाचापिरामठंवाविचक्षणे । पुष्पेषुराजिकाहिंगुजीरकंचरसोनकम्। मरीचिकातथारक्तादीपनेमादिरेक्षणे । चतुर्ष्वपिफलाद्येषुपृथ्वीकाऽजाजिमेथिकाः । रसोनंराजिकाहिंगुवातुरक्तामरीचिका ।

अर्थ–पत्रशाक अर्थात् पालिक, मेथी चौंलाई, आदिमें जीरा, लहसन, लाल मिरच, तथा हींगका छौंक देवे। फूलके शाकमें राई, हींग, जीरा, लहसन, तथा लाल मिरचका छौंक देवे। और फलादिक चार शाकोंमें कलौंजी, जीरा, मेथी, लहसन, राई, हींग, तथा लालमिरचका छौंक देना चाहिये।

धूपनार्थंघृतंश्रेष्ठंतैलमेवाधमंमतम् । लवणंहिपलंप्रस्थेवेसवारमुदुंबरम्। तदप्येलादिकंवापिसौरभंचयथारुचि । टंकैकांरजनींक्षिप्त्वासाम्लंवानम्लमेवच । सगुडाम्लंतुवाकांते लसन्नीलनिचोलके । सजलंनिर्जलंवापिपाचयेन्मंदवह्निना ।

अर्थ–छौंक देनेमें घी उत्तम है। और तेल अधम है। ६४ तोले सागमें ४ तोले निमक, एलादि वेसवार अथवा सौरभ वेसवार इनमेंसे जो अपनेको प्रिय होय वो १ तोले, हलदी ३ मासे डाले, इस शाकमें खटाई डाले अथवा विना खटाईकी अथवा खटाई और गुड डालके रसेदार या गाढी जैसी इच्छा हो ऐसी करे।

अथ सौरभमाह ।

षट्पलंधान्यकंप्रोक्तंराजिकाश्चद्विकार्षिकाः। त्रिपलंरक्तमरिचंत्रिकर्षंवेल्लजंमतम्। निशात्रिकर्षिकाप्रोक्ताकंकोलंदेवपुष्पकम्।शिलाजंत्वक्चिरफलंप्रत्येकंचार्द्धकार्षिकम् । नारिकेलफलंशुष्कंबहुशःसूक्ष्मखंडितम्।हिंगुशाणमितंग्राह्यंकिंचिदेरंडजात्वचा । तैलभृष्टंचतत्सर्वंपाषाणेसूक्ष्मपेषितम्।सौरभाख्यमिदंप्रोक्तंवृंताकादिषुयोजयेत् ।

अर्थ–धनिया २४ तोले, राई २ तोले, मिरच १२ तोले, हलदी २ तोले, कंकोल, लोंग, पत्थरका फूल, दालचीनी, चिरफल, ये प्रत्येक आधे आधे तोला लेवे एक सूखेगोलेका बारीक टुकडा, हींग ३ मासे, और थोडी अंडकी जडकी छाल, ये सबको तेलमें तलके महीन पीसे इसको सौरभ अथवा गरम मसाला कहते हैं । यह बैंगन आदि सागमें डालना चाहिये ।

अथैलादिकवेसवारमाह ।

एलात्वक्पत्रमरिचश्रीसुमश्यामजीरकैः ।
वेसवारःसधान्याकैरेलादिःकथ्यतेबुधैः ॥

अर्थ–इलायची, दालचीनी, तेजपात, मिरच, लौंग, काला जीरा और धनिया, इन सबको पीस बारीक चूर्ण करे इसको एलादि वेसवार कहतेहैं।

अथ केसरादि वेसवार ।

केशरत्रिकटुधान्यजीरकैस्त्वक्तिलत्रुटिशताह्वपत्रकैः । कासमर्ददलधर्मपत्तनैरामठारुणमरीचिकान्वितैः । दाडिमीरजनिनालिकेरकैराजिकातरुणमूलमासुमैः । चूर्णितैरपिनवाज्यभर्जितैर्वेसवारइतिकेशरादिकः ।

अर्थ–अब केशरादि वेसवार कहतेहैं । नागकेशर, सोंठ, मिरच, पीपल, धनिया, जीरा, दालचीनी, तिल, इलायची, सौंफ, तेजपात, कसोंदीके पत्ते, मिरच, हींग, लाल मिरच, खट्टा अनार दाना, हलदी, नरियलका गोला, राई, अंडकी जड, और लोंग, ये पदार्थ घीमें भूनकर चूर्ण करे। इसको केशरादि वेसवार कहते हैं ।

उक्तेष्वपिचशाकेषुपुष्पादिष्वेवयोजयेत् ।
वेसवारान्भवेत्तेनशाकंदोषविवर्जितम् ।

अर्थ–ऊपर कहे पुष्पादि शाकोंमें इनमेंसे कोईसा एक मसाला डाले तो साग निर्दोष होय।

विशेषंचप्रवक्ष्यामिशृणुपद्मविलोचने । वृंताककारवेल्लादि फलमर्द्धविदीर्यच । तत्रेदंपूरयेत्सर्वंवक्ष्यमाणंनिबोधमे । रसोनस्यपलंहिंगुभार्जितंकोलसंमितम्।धान्याकंद्विपलंभृष्टंजीरकस्यचतिंदुकम्।अम्लवर्गपलैकंचपलांरक्तांमरीचिकाम्।नातिसूक्ष्मीकृतंसर्वंकर्षाष्टलवणान्वितम्। वृंताककारवेल्लादिद्विप्रस्थेपूरयेदिदम् । ततःसूत्रेणसंबध्यघृतेतैलेऽथवाप्रिये। युक्त्या संपाचयेच्छुष्कंरसार्थंवाजलान्वितम्।

अर्थ–अब सागकी विधि कुछ कहते हैं। बैंगन, करेला, इत्यादि फल खडे एक तरफसे चीरकर उनमें उक्त मसालेको भरे लहसन ४ तोले, भुनी हींग ६ मासे, भुनाहुआ धनिया ८ तोले, भुना जीरा एक तोले, अमचूर ४ तोले लाल मिरच ४ तोले, तथा निमक ८ तोले, ये सब पदार्थ कुछ बारीक कूटकर १२८ तोले करेलेमें यह कुटा मसाला भरे, फिर डोरेसे उनको बांध घीमें अथवा तेलमें तले यदि रसेदार बनाने होय तो तलकर फिर ज़ल डालके सिजावे।

पटोलादिफलेष्वेवमिदंसंपूर्यपाचयेत् ।
पाचनंदीपनंतत्स्याद्भोजनेसुरुचिप्रदम् ॥

अर्थ–जो विधि करेला बैंगन आदिमें मसाले भरने आदिकी है उसी रीतिसे परवल आदिमें मसाला भरके सिजानेसे दीपन, पाचन, तथा रुचिकारी होता है।

पर्णशाकेविशेषंचकंजास्येशृणुसांप्रतम् । येनस्याद्रुचिरंस्वादु भोजनेप्रीतिवर्द्धनम्।रामठंदीपनेदद्यात्तथारक्तांमरीचिकाम् । रसोनंचपलांडुंवानिःक्षिप्यच्छादयेत्ततः । धूम्रंदृष्ट्वासमुद्धाट्यशाकंनिःक्षिप्यछादयेत् । क्षणादुद्धाट्यप्रस्थंचेच्छाकंपटुपलार्द्धकम्।यथारुचितुवाकांतेधान्यकादिरजःक्षिपेत् । तथा कुस्तुंबरुंचार्द्राःक्षिपेज्ज्वालामरीचिकाः । हरिताअरुणावापिकृताःशस्त्रेणखंडशः। अम्लवर्गंचानिःक्षिप्यपक्कमुत्तारयेच्चहि।

अर्थ–अब पर्णशाक कहिये पत्ताके साग जिसप्रकार करनेसे रुचिकारी और स्वादु होवे ऐसे प्रकारकी विशेषविधि कहते हैं । हींगका छौंक देकर उसमें मिरच, लहसन, और कांदा आदि गेर उस पात्रका मुख ढकदे, फिर थोडी देरमें उघाड, ६४ तोले सागमें २ तोले अथवा रुचिप्रमाण निमक डाले, तथा धनिया आदिका चूरा, कोथमीर, हरी अथवा सूखी लाल मिरचके टुकडे, और अमचूर आदिकी खटाई डाले जब पक्क होजावे तब उतार ले ।

अथ हलुवादिकानाह ।

हलुवाबरफीपेडालोकेख्याताःसुशोभनाः ।
तेषांकृतिमहंवक्ष्येशृणुकुंजरगामिनि ॥

अर्थ–हे प्रिये ! हलुआ, बर्फी, और पेडा ये पदार्थ लोकमें प्रसिद्ध हैं इसीसे उनके बनानेकी विधि और गुणदोष कहते हैं ।

अथ हलुवाकृतिमाह ।

गोधूमान्प्लावयेन्नीरेत्रिदिनंवाचतुर्दिनम् । ततःकराभ्यांसंमर्द्य पृथक्कृत्वाजलाच्चतान् । तन्नीरंवाससागाल्यनिःशेषंस्थापयेत्ततः । स्थिरीभूतेजलंयत्नात्पात्रान्निष्कासयेच्छनैः । अन्यमंबुविनिःक्षिप्यास्थिरीभूतेतुपूर्ववत् । जलंनिष्काशयेदेवंयावद्यातिविगंधताम् । तावत्पुनःपुनर्नीरंदत्वानिष्कास्यशोधयेत् । पिष्टवद्यद्भितत्पात्रेंभवेत्तत्सत्वमीरितम् ।

अर्थ–गेहूं तीन किंवा चार दिन पानीमें भिगोवे फिर उनको हाथोंसे मसलकर छिलका दूर करे और उसके सत्वको वस्त्रसे छानलेय, जब वो छनेहुए पानीका गाद नीचे बैठजाय और जल तरने लगे तब उस जलको नितारकर फेंक देवे, और नया पानी डारके हाथसे चलाय देवे जब गाद बैठजाय तब ऊपरके पानीको फैंकदेवे, इस प्रकार उस गेहुंके चूनकी वास जबतक रहे तबतक धोता रहे जब जानेकि अब इसमें वास नहीं है तब उसको निकाल. धूपमें सुखाय चूर्ण करके धर रक्खे इसको गेहूंका सत्व और उर्दू बोलीमें इसीको निशास्ता कहते हैं ।

१ अदरखका हलुआ–अदरख १ शेर, घी ॥ शेर, चीनी १॥ शेर, मैदा १ छटांक प्रथम अदरखको उबाल उसी जलमें पीस (कि जिसमें उबाला जायगा) मैदा मिलाकर आंचपर चढाकर भूनो पश्चात् १ तारबंध चासनीमें छोडदो और नरम आंचपर भलेप्रकार पचाओ जब पक्क होजावे तो उसको उतारलो ।

सार्द्धभागांहिसत्वस्यासितांनीरेसमेपचेत्। द्वितारेचसितापा-
केतत्सत्वंचशनैःशनैः । क्षिपन्संचालयेद्दर्व्यायावद्गाढंभवे-
त्प्रिये। ततस्त्वाज्यंक्षिपन्युक्त्याचालयित्वातिवेगतः । सि-
द्धंज्ञात्वासमुत्तार्यघट्टयेच्चभृशंदृढम्।तत्रबादामखंडानिचैला-
चूर्णादिकंक्षिपेत्। हलुवेतिजनैःख्यातःपौष्टिकोयंबलप्रदः ।
गुरुःश्लेष्मकरोहंतिवातपित्तेरुचिप्रदः।

अर्थ—सत्वसे ड्योढी खांड लेकर उसमें बराबरका पानी मिलाय उसकी चासनी करे, जब दुतारी चासनी होजावे तब पूर्वोक्त सत्वको थोडा थोडा डालता जाय और चलाता जाय जबतक गाढा न होय, जब गाढा होने लगे तब उसमें थोडा थोडा घी डाल युक्तिसे जल्दी जल्दी चलावे जब तयार होजावे तब चूल्हेसे उतारलेय, खूब उलटे पलटे जब विशेष गाढा होय तब बादामके टुकडे और इलायचीदानेका चूरा मिलावे इसको हलुआ कहते हैं। यह हलुआ पौष्टिक, बलकारी, भारी, कफकारी, वातपित्तनाशक तथा रुचिकारी है।

अथ पेडाकृतिगुणाः।

दुग्धकिट्टेसितांक्षिप्यषोडशांशंचभर्जयेत् । यावच्छुष्कंभवे-
त्तावद्धृतमीषदपिक्षिपेत् । ततःकिट्टसमांकिट्टेशुभ्रांपुष्पासि-
तांप्रिये। मिश्रयित्वाचतस्याशुरचयित्वाहिपिंडकान्। लो-
केपेडाइतिख्यातावातपित्तहरामताः ॥ धातुसंवर्द्धनाःकांते
वृष्याबल्याःकफप्रदाः ।

अर्थ—अब पेडा बनानेकी विधि और गुणदोष कहते हैं। दूधके खोहामें खोहाका ६ वाँ हिस्सा बूरा मिलाय भुनावे भूनतेसमय थोडा घी डाल जब अच्छी रीतिसे भुनजावे तब उसकी बराबरका बूरा मिलाय उसके गोल गोल पेडे बनावे ये पेडा वातपित्तनाशक, धातुवर्द्धक, वृष्य, बलकारी, और कफकारक है।

भुनीमलाई—दूध ४ शेर, चीनी ॥ शेर, घी पावभर, प्रथम दूध कढाईमें रख आगपर ओंटाओ जब गाढा होजावे तब गरमागरमकोही मथनियासे उसी कढाईमें धीरेधीरे मथो इसप्रकार मथनेसे अत्यंत झाग निकलैंगे फिर उस दूधाके

फेनसमेत अंगारोंपर रखदो थोडी देरमें उस दूधमें गाढी मलाई पडजावेगी उसको झरनेसे थाली आदिमें उतारलो फिर उसको छुरीसे कतरकर चौकोन बनाओ पश्चात् कढैयामें घी भर उसको आगपर चढाओ जब घी खूब गरम होजावे तब उसमें उस मलाईको छोडदो जब भुनजावे तब उतारकर एकतारी चासनीमें छोडदो थोडी देरमें किसी पात्रमें निकाललो फिर इसके ऊपर छोटी इलायचीका चूरा बुरकादेवे तो परम स्वादिष्ठ बने ।

मठरी (सकलपारे)–मैदामें घीका मोमन दे जीरा, अजमायन हींग, और निमक मिला जलसे खूब करडा सानलो फिर चकलेपर वेलकर चौखूटे कतर ले पश्चात् घी की कढाईमें छोड दो और मंद मंद आंचसे सेको और उलत्ते रहो जब सिककर लाल रंग होजावे तब उतारलो ।

यदि चुटकीसे इसी मैदाको तोड तोड कर और अँगूठेसे दबा दबा कर घीमें छोड देवे तो इनकोभी मठरी कहतेहैं परंतु ये छःमासेके अनुमान होनी चाहिये और इसी मैदाकी लोई तोड पूडीके माफिक वेलकर घीमें सेकनेसेभी मठरी कहातीहै ।

अथ बर्फीकृतिगुणाः ।

दुग्धकिट्टेसितांक्षिप्यषोडशांशघृतान्विताम्।भर्जयेल्ललनेताव-द्यावच्छुष्कतरंभवेत्।किट्टतुल्यांसितांशुद्धांपाचयित्वाविधा-नतः । त्रितारेचापितत्पाकेतत्किट्टंमिश्रयेत्ततः । समुत्तार्य द्रुतंदर्व्याघट्टयेच्चातिवेगतः । यदापाकेकणान्दृष्ट्वातदाशीघ्रं विनिःक्षिपेत्।घृताक्तेविस्तृतेपात्रेयुक्त्यातंचप्रसारयेत्।द्व्यंगु लोत्सेधकंशीतंकृत्वाखंडान्ययेप्रिये।चतुष्कोणानिखंडानिब-रफीतिजनैरियम्।विख्यातापौष्टिकीवृष्याबल्यादोषत्रयापहा।

अर्थ–अब बर्फीके बनानेकी विधि और गुणदोष कहते हैं। दूधके खोहा-में उस खोहाका १६ वाँ हिस्सा बूरा और थोडा घी डालके भूने फिर इसके समान खांडकी तितारी चासनी कर उसमेंसे यह भुनाहुआ खोहा डाले और कौचासे खूब चलावे, जब चलाते चलाते उसमें रवाके समान कण दीखने लगे तब एक परात घी चुपडीमें निकाल समान करदेवे, और शीतल होनेपर इसके चौकोने टुकडे कतर लेवे, इसको बर्फी कहते हैं । यह बर्फी पुष्टिकारी, वृष्य, बलकरता, और त्रिदोषनाशक है ।

जैपुरमें इसमें कंदके टुकडे और सुगंधित वस्तु डालतेहैं और इसको कलाकंद कहते हैं ।

मीठी पूरी-मैदा १ सेर, घी डेढपाव, मिश्री पावभर, पिस्ता आधपाव, बदाम आधपाव, अदरखका रस २ तोले, दालचीनी दो मासे, लोंग २ मासे प्रथम मिश्रीका रवा पीसकर उसमें बादाम और पिस्तेके टुकडे टुकडे करके और लोंग तथा अदरखका रस मिलाकर तयार रक्खो फिर मैदेमें आधपाव घीका मोमन देकर मलके गरम जलसे सानलो जब अच्छीरीतिसे सानलो तब चूल्हेपर कढाई चढाय घी छोडदो, फिर उस सनीहूई मैदाकी लोइ तोड उस लोईके भीतर उक्त मिश्री मेवा आदिके चूर्णको भर कचोरीके सदृश वेलकर घीमें छोडदो जब सिक जावे तब उतारलो ।

अमानुषीयभक्षण ।

अथ पलगर्भापूलिका ।

पलंनिरस्थिप्रस्थैकंकृतंसूक्ष्मतरंनवम् । पलैकमार्द्रकक्षोदमाम्र मा्म्रस्यचूर्णकम् । भृष्टधान्यरजश्चाम्रमर्द्धाम्रंचरसोनकम् । सा- र्द्धाम्रंलवणंप्रस्थंघृतंटंकंमरीचकम् । समितांप्रस्थैकमितांचतु राम्रंपलांडुतः । कर्षमेलादिकंसर्ववेसवारंसमाहरेत् । चु ह्ल्यांतप्तेक्षिपेद्भांडेघृतस्यकुडवत्रयम् । घृतेतप्तेक्षिपेत्तत्रसूक्ष्मं खंड्यपलांडुकम् । ताम्रीभूतेपलांडौचपलंक्षिप्यविचालयेत् । श्रृंगवेरंचलवणमाम्रचूर्णरसोनकम् । मरिचंवेसवारंचधान्यकं पाचयेच्छनैः । शुष्केमांसरसेनीरंक्षिपेत्तत्रानुमानतः । केशु ष्केचपलेपक्केकुर्याच्छीतंमनोहरे । ततोघृताक्तांसमितांमर्दये दंबुनाभृशम् । तस्याअर्द्धपलंनीत्वाकूपिकांरचयेत्प्रिये । त- न्मध्येपूर्यतन्मांसंमुद्रायित्वाचवेल्लयेत् । तांपूलिकांपचेदाज्ये पलगर्भाहिसास्मृता । बल्यापुष्टिप्रदावृष्यारुच्यावातहरामता ।

अर्थ--अब यहाँसे आगे राक्षसीभक्षण पदार्थ लिखते हैं तहां पलगर्भा पूडीकी विधि और गुणदोष कहते हैं । हड्डी रहित उत्तम मांस शस्त्रकरके

प्रथम बारीक कराहुआ ६४ तोले लेय, बारीक कुटाहुआ अदरख ४ तोले, अमचूर ४ तोले, भुनाहुआ धनियेका चूरा ४ तोले, लहसन २ तोले निमक ६ तोले, घी ६४ तोले, और एलादिक वेसवार एक तोले, ये सब समान तयार करके फिर एक पात्र चूल्हेपर धर नीचे आग जलावे जब पात्र गरम होजावे तब उसमें ४८ तोले घी डालके तपावे फिर उसमें कांदेके टुकडे करके गेरे जब वो लाल होजावें तब उसमें अदरखआदि जो ऊपर कह आए वो सर्व वस्तू मांसमें मिलायके गेरे और कलछीकी दंडीसे बराबर चकाय देवे, जब मांसका रस सूखजावे तब उसमें अनुमानमाफिक जल गेरके सिजावे; जब पानी सूखके मांस पकजावे तब उसको चूल्हेसे उतार लेवे फिर गेहूंकी मैदाको उसन उसकी दो तोलेकी लोईमें वो मांस भरके चकला वेलनसे वेलकर पूरी करे, उसको घीमें सेके तो इसको पलगर्भा पूडी कहते हैं । यह बलकारी, पुष्टिकारक, वृष्य, रुचिकर, और वातनाशक है ।

अथ मांसकृतिगुणाः ।

प्रस्थैकमामिषंसर्पिःसद्यस्कंचशरावकम्।कुडवैकःपलांडुःस्या-द्द्विपलेचरसोनतः । पलमेकंचलवणंशृंगवेरंपलंमतम्।दधिप्र-स्थार्द्धकंकांतेसंतानीतुचतुःपला । द्राविडीश्रीप्रसूनंचका-श्मीरंधर्मपत्तनम् । पृथक्टंकमितंचैवबादामंकुडवोन्मितम्। मांसखंडानिसंक्षाल्यत्रिधानीरेणयत्नतः । लवणंशृंगवेरांबुद-धितत्राविनिःक्षिपेत्।घृतंभांडेसुसंताप्यतत्रक्षिप्त्वापलांडुकम् । ताम्रवर्णंचतद्दृष्ट्वातदामांसादिकंक्षिपेत् । भर्जयेद्भर्जनेकाले क्षिपेन्नीरंरसोनजम् । किंचित्किंचिन्मुहुस्तावद्यावत्स्याद्घृत-शेषकम्।लवंगैलामरीचानांकिंचिन्नीरंततःक्षिपेत् । आमिषंच मृदुंदृष्ट्वाबादामापिष्टकंक्षिपेत् । संतानिकांचतत्सार्द्धंक्षिपेदंबु रुहेक्षणे । पंचनिंबुकनीरेणसंपिष्टंकुंकुमंक्षिपेत् । अंगारेषुक्षणं न्यस्यसमुत्तार्यनिषेवयेत् । इदंबल्यंचवृष्यंचगुरुकांतिकफ-प्रदम् । वातघ्नंरुचिकृत्कांतेकिंचित्पित्तकरंमतम् । सूपशास्त्र-विधानज्ञैःकीर्तितंललनोत्तमे ।

अर्थ-अब मांसकी विधि और गुणदोष कहते हैं । मांस ६४ तोले, घी ३२ तोले, प्याज १६ तोले, लहसन ८ तोले, निमक ४ तोले, अदरख ४

तोले, दही ३२ तोले, दूधकी मलाई १६ तोले, इलायचीके दाने तीन मासे, लोंग तीन मासे, केशर ३ मासे, मिरच ३ मासे, और बादाम १६ तोले, ये सब वस्तू तयार करके धर रक्खे, फिर मांसके टुकडेनको पानीसे तीन दफे धोय उनमें निमक, अदरखका रस, और दही मिलायकर धर रक्खे, फिर चूल्हेपर देग चढाय उसमें घी डालके तपावे, जब घीमें धूंआ उठने लगे तब लहसनके टुकडे गेरे जब वो लाल होजावे तब मांस गेरके भूने, भूनते समय उसमें थोडा थोडा लहसनका रस वारंवार डारे जबतक घी शेष रहे तबतक चलावे फिर लोंग, इलायची, मिरच, ये पानीमें पीस उसमें गेरे और सिजावे जब मांस सीजकर नरम होजावे तब बादाम पीसके और उसमें मलाई मिलायके डाले, पीछे पांच नींबुओंका रस काढके उस रसमें केशर पीसके उस मांसमें मिलावे फिर अंगारोंपर आध घडी धरकर उतार लेवे यह मांस बलकारी, वृष्य, भारी, कांति, और कफ करता, वातनाशक, रुचिकर, और किंचित् पित्तकारी है।

अथान्यप्रकारमाह।

प्रस्थैकमामिषंसद्यंक्षालयेदंबुनात्रिधा। कुडवैकंघृतंभांडेतापयेत्तत्रनिःक्षिपेत्। पलांडुंद्विपलंक्षुण्णंतत्पक्केचामिषंक्षिपेत्। टंकमेकंहरिद्रातोलवणंपलसंमितम्।भर्जत्यस्मिन्नसोनस्यकर्षैकस्यजलंपलम्। किंचित्किंचित्क्षिपंस्तत्रचालयेच्चशनैःशनैः। घृतशेषंभवेद्यावत्ततोनीरजलोचने। तप्तंनीरंक्षिपेत्तत्रसार्द्धप्रस्थप्रमाणकम्। धान्यकस्यपलंधन्येभर्जितस्यार्द्रकंपलम्। कोलैकंमरिचंपत्रंत्वचंचैलांलवंगकम्। पृथक्टंकंवरारोहेपेषयित्वाविनिःक्षिपेत्। मृद्वीभूतंसमुत्तार्यभजेद्बलयंरुचिप्रदम्॥

अर्थ—अब मांसकी दूसरी विधि कहते हैं मांस ६४ तोले लेकर उसको तीनवार जलसे धोय धर देवे, फिर चूल्हेपर देग चढाय १६ तोले घी डालके तपावे और उसमें ८ तोले कांदेके बारीक टुकडे करके डाले जब वो लाल होजावे तब मांस डालके उसमें पाव तोला हलदी डाले, तथा चार तोला निमक, डाल कलछीसे चलाता जाय तथा उसमें १ तोला लहसन, ४ तोले पानीमें पीसके थोडा थोडा वारंवार गेरे, इस प्रकार जब पानी जरके

घी बाकी रहे तबतक भूने, और चलाता रहे फिर ९६ तोले गरम पानी डाल उसमें भूनाहुआ धनियाका चूरा ४ तोले, अदरख ४ तोले, मिरचका चूरा आध तोला, तथा तेजपात, दालचीनी, इलायचीके दाने और लौंग इनका चूरा प्रत्येक पाव पाव तोला डालके सिजावे, जब नरम हो जाय तब उतार लेवे यह बलकारी, तथा रुचिकारक है ।

अथ शाकामिषकृतिगुणाः ।

आमिषंप्रस्थकंसर्पिःसद्यस्कंचशरावकम् । पलांडोःकुडवैकं स्याद्रसोनस्यपलद्वये । लवणंचपलंकांतेशृंगवेरंपलंप्रिये । निंबुकाःपंचलोलाक्षिदधिप्रस्थार्द्धमेवच । मरिचंकुंकुमंचैव पृथक्टंकंमनोहरे । धान्यकंपलमेकंचहरिद्राकोलसंमिता । यच्चेष्टपत्रपुष्पादिशाकंकंदादिकंतुवा । प्रस्थंशस्त्रेणसंशोध्य पृथक्पात्रेनिधापयेत् । त्रिधानीरेणसंक्षाल्यचामिषंसुप्रयत्नतः । शृंगवेरांबुलवणंदधिधान्याकमेवच । आमिषेसकलंकांतेमिश्रयित्वानिधापयेत् । ततस्ताप्यघृतंभांडेक्षिपेत्तप्तेपलांडुकम् । ताम्रीभूतेपलांडौचक्षिपेत्तत्रविभावरीम् । ततःक्षिप्रंक्षिपेत्तत्रयत्सर्वंचामिषादिकम् । भर्जयन्संक्षिपेत्तत्ररसोनांबुपुनः पुनः । केशुष्केचाक्षिपेच्छाकंभर्जयेच्चततःपुनः । किंचिन्नीरंविनिःक्षिप्यपाचयेच्चशनैःशनैः । पक्कंज्ञात्वाक्षिपेत्तत्रनिंबुनीरं सकुंकुमम् । समुत्तार्यनिषेवेतवीर्यवृद्धिकरंपरम् । शाकामिषमिदंकांतेकांतिदंरुचिकारकम् ।

अर्थ–अब शाकामिषकी विधि तथा गुणदोष कहते हैं । मांस ६४ तोले, घी ३२ तोले, कांदा १६ तोले लहसन आठ तोले, निमक, ४ तोले अदरख ४ तोले, नींबू ५ तोले, दही ३२ तोले, मिरच, तथा केशर पाव पाव तोले, भूना धनिया ४ तोले, हलदी आधे तोले, और जो शाक, पत्र फूल, अथवा कंद अपनेको प्रिय होय वो बनराहुआ ६४ तोले, इसप्रमाण सर्व पदार्थ न्यारे तयार करके धर देवे फिर मांसको तीनवार पानीसे धोयकर उसमें अदरखका पानी, निमक, दही, और धनिया मिलायकै धरे, फिर चूल्हेपर देगची चढाय घी डालके गरम करे जब घी गरम होजावे तब उसमें प्याजके कतरे

हुए टुकडे डाले जब वो लाल होजावे तब उसमें हलदी डाले फिर मांसादि सर्व वस्तू डाल देवे, और कलछीसे चलावे, भूनते वख्त उसमें थोडा थोडा लहसनका पानी वारंवार डालता जाय और चलाता जाय जब पानी सूखजाय तब उसमें शाक (भाजी) डाल मंद आंचसे सिजावे जब पकजावे तब निंबूका रस निचोड उसमें केसर पीसके डाल देवे, और उतार कर धर देवे यह शाकामिष धातुवर्द्धक, कांतिकारक, और रुचिकारक है।

अथ शूलपक्कमांसकृतिगुणाः।

आमिषंशस्त्रसंक्षुण्णंप्रस्थैकंलवणंपलम्। शृंगवेरंशरावार्द्धंवल्लिजंशुक्तिसंमितम्। धान्यकंचपलंबालेपलांडुर्द्विपलोन्मितः। दधिप्रस्थार्द्धकंटंकंकुंकुमंचलवंगकम्। संतानिकाचसर्पिश्चबादामंकुडवंपृथक्। टंकमेलारजोबालेरसंनिंबुचतुष्कजम्। धान्याकंभर्जितंपिष्ट्वाचान्यत्सर्वमभार्जितम्। वस्त्रबद्धविनिर्मस्तुदध्निसर्वंविमिश्रयेत्। लेपयित्वात्विदंशूलेततःसूत्रेणवेष्टयेत्। निर्द्धूमांगारकेशूलंसन्निधायविपाचयेत्। शूलपक्वमिदंमांसंधातुपुष्टिकरंमतम्। बल्यंवृष्यंतथारुच्यं कफकांतिविवर्द्धनम्।

अर्थ—अब शूलपक्कमांसकी विधि और गुणदोष कहते हैं। शस्त्रसे बारीक काटाहुआ मांस ६४ तोले, निमक ४ तोले, अदरख १६ तोले, मिरच २ तोले, धनिया ४ तोले, प्याज ८ तोले, दही ३२ तोले, केशर तीन मासे, लौंग ३ मासे, दूधकी छाछ १६ तोले, घी १६ तोले, बादाम १६ तोले, इलायचीके दाने ३ मासे और चार निंबुओंका रस ये सर्व वस्तु तयार करके धरे, फिर इनमेंसे धनियेको भूनके पीसे, और बाकीकी सब जिनस बिना भूनी पीसे, फिर इन सब वस्तुओंको एकत्र कर पानीरहित दहीमें डालके मिलायले और लोहेके कांटेपर इसका एक अंगुल मोटा लेप करे और डोरासे लपेट देवे, फिर अंगारोंपर भूने यह शूलपक्कमांस धातुपुष्टिकारक, बलकर, वृष्य, तथा रुचिकर हो, कफ, तथा कांति, इनको बढानेवाला है।

शूलपक्कस्यान्यो विधिः।

पिशितंशस्त्रसंक्षुण्णंप्रस्थैकंलवणंपलम्।शृंगवेरंपलांडुश्चधान्य-

कंचपलंपृथक् । सद्यमाज्यंचकर्षाष्टंसर्पिषोद्विगुणंदधि । कोलैकंमरिचंसर्वंमिश्रयित्वाचपूर्ववत् । पाचयेच्चगुणैश्चापिकिंचिन्नयूनंहिपूर्वतः । शूलपक्कमिमंचापिमांसंतद्विद्भिरीरितम् ।

अर्थ–अब शूलपक्कमांसकी दूसरी विधि कहते हैं । छुरेसे बारीक टुकडा कराहुआ मांस ६४ तोले, निमक ४ तोले, अदरख, प्याज, धनिया, ये प्रत्येक चार चार तोले घी ८ तोले, दही १६ तोले, और मिरच ६ मासे, ये सब वस्तु लेकर ऊपर कहीहुई विधिके अनुसार बनाय ले इसकोभी शूलपक्क मांस कहते हैं ।

अथाखंडितखगामिषकृतिगुणाः ।

अंत्रेणरहितंशुद्धंतित्तिरंनिर्दलीकृतम्।भृशंशूलेनसंभेद्यस्थापयेत्तंचभाजने । शृंगवेरंपलंधान्यंकुडवार्द्धंसुभर्जितम् । लवंगंद्राविडीबीजंमाषमात्रंपृथक्प्रिये । द्विपलंदधिनिर्नीरंपलांडुःपलसंमितः । संतानिकाचतुःकर्षाकर्षैकश्चरसोनकः । कर्षद्वयंसुलवणंलेपयित्वाविधानतः । तित्तिरंपाचयेदाज्येत्रिदोषापहमुत्तमम् । बलवर्णप्रदंवृष्यंप्रमदामदगंजनम् । एवमन्यंखगंपक्त्वागुणास्तत्तत्खगोद्भवाः । संप्रोक्तंनामतश्चेदमखंडितखगामिषम् । खंडितंपाचयेद्युक्त्यासामान्यामिषवत्प्रिये ।

अर्थ--अब अखंडित पखेरूके मांसकी विधि तथा गुणदोष कहते हैं आंतडे तथा पंख कटेहुए तीतरको ले उसको कांटेसे जगेजगेपर गोंदे, एक बासनमें धरे फिर अदरख ४ तोले. भूनाहुआ धनिया ८ तोले, लौंग, इलायची दाने, प्रत्येक एक एक मासे पानी निकलाहुआ दही ८ तोले, कांदा ४ तोले, दूधकी मलाई ४ तोले, लहसन १ तोला और निमक २ तोले, ये सर्व पदार्थ एकत्र मिलाय इसका तीतरके ऊपर लेप करे तथा घीमें तले यह खगामिष त्रिदोषनाशक है, इसीप्रकार और कोई दूसरे प्रकारके पक्षीको पकाना चाहिये उसके गुण उसीउसी पक्षीके समान होते है । इसको अखंडित खगामिष कहते हैं, अथवा इच्छा होय तो टुकडे करके सामान्य मांसके सदृश पचावे ।

अथ मांसवटककृतिगुणाः ।

सूक्ष्मंशस्त्रेणसंक्षुण्णमामिषंद्विशरावकम्।लवणंपलमेकंचशृं-

गवेरंचतुःपलम्।पलांडोर्द्विपलंकोलंवल्लिजस्यवरांगने । द्राविडीश्रीसुमंटंकंपृथग्धान्यंपलोन्मितम्। शरावंदधिलोलाक्षि संतानीतुचतुःपला। बादामंकुडवंशुद्धंटंकमेणाक्षिकुंकुमम् । ।पिष्ट्वातिसूक्ष्मकंसर्वंमिश्रयित्वासकुंकुमम्।वस्त्रबद्धंप्रयत्नेनदधीहनिर्जलीकृतम् । तत्संतानिकयासार्द्धंमिश्रयेत्सकलंपले। एतस्यवटकान्कृत्वातप्तेसंपाचयेद्घृते।कुंकुमाभान्सुनिष्कास्य स्थापयेद्राजनेशुचौ। मांसस्यवटकाबल्यावृष्याःकांतिरुचिप्रदाः ।

अर्थ—अब मांसके वडान्की विधि तथा गुणदोष कहते हैं । शस्त्रसे बारीक कतरा हुआ मांस ६४ तोले, निमक ४ तोले, अदरख १६ तोले, कांदा ८ तोले, मिरच ६ मासे, इलायची ३ मासे, लौंग ३ मासे, धनिया ४ तोले, दही ३२ तोले; दूधकी मलाई १६ तोले, बादाम १६ तोले, तथा केसर ३ मासे, इस प्रमाण सब वस्तु ले इनमें जो पीसनेलायक हो उनको पीस पानी निकले हुए दहीमें मलाईकेसाथ सब मांसादिक मिलाय देवे फिर उस मांस के वडे करे और घीमें उनको सेक लेवे ये बलकारी, वृष्य, कांतिकारी और रुचिकारी है ।

अथ मत्स्यपाककृतिगुणाः ।

मत्स्यमांसंशरावैकंद्विपलंसर्पिरुत्तमम्।शृंगवेरंद्विकर्षंचपलांडुश्चपलार्द्धकः। संतानिकापलमिताकुडवंनिर्जलंदधि ।धान्यकंचद्विकर्षंस्याद्वेसनस्यपलंमतम्।टंकैकंमरिचंचैलालवंगं माषकंपृथक्।कोलैकंलवणंचाम्लंपलमेकंघटस्तनि । मत्स्य खंडानिशूलेनभित्त्वातेषुचयत्नतः । बेसनंदिह्यसंक्षाल्यभूयो नीरेणचत्रिधा। ततःसंपेषितंसूक्ष्मंशृंगवेरंमदोद्धते । धान्यकंभर्जितंपिष्टंमरिचादिविचूर्णितम्। दध्निसंतानिकायांचसर्वं चूर्णंविमिश्र्यच। लेपयेन्मत्स्यखंडेषुततःकुर्यादमुंविधिम् । चुल्ह्युपरिस्थितेभांडेतप्तेसद्यंघृतंक्षिपेत् । घृतेतप्तेपलांडुंच

संक्षिपेत्खंडशःकृतम् । ताम्रीभूतेपलांडौचमत्स्यखंडानि संक्षिपेत् । संवर्त्यपाचयेत्सम्यग्बल्यंवृष्यंरुचिप्रदम् ।

अर्थ-अब मत्स्य अर्थात् मछलीके बनानेकी विधि और गुणदोष कहते हैं । मछलीका मांस ३२ तोले, घी ८ तोले, अदरख २ तोले, कांदा २ तोले, दूधकी छाछ ४ तोले, पानी निकला दही १६ तोले, भूना धनिया २ तोले, बेसन ४ तोले, मिरच ३ मासे, इलायचीके दाने १ मासा, लौंग १ मासा, निमक २ तोले, और खटाई ४ तोले, इस प्रमाण सब वस्तु तयार रक्खो फिर मछलीके टुकडोंको कांटेसे गोंद उसमें बेसन लगाय पानीसे तीन बार धोवे, फिर अदरख, भूना धनियां, मिरच आदिका चूरा, दही, तथा मलाई, इनको मिलाय उसको मछलीके टुकडेपर लेप कर धरदेवे, फिर चूल्हेपर बरतन चढाय उसमें घी डाले जब वो गरम होजावे तब उसमें कांदेके टुकडे गेरे जब वो भुनकर लाल होजावे तब मछलीके टुकडे डालके कलछीसे बराबर चलायकर भूने ये मछलीका मांस बलकारी, वृष्य, और रुचिकारक है ।

अथ मत्स्यवटीकृतिगुणाः ।

ईषद्वेसनलिप्तानिमत्स्यखंडान्ययेप्रिये । क्षालयेदंबुनासम्यक्त्रिधापात्रेन्यसेत्ततः । प्रस्थंचेन्मत्स्यखंडानामार्द्रकस्यपलं तदा । पलमेकंपलांडोश्चरसोनस्यैकमक्षकम् । दध्यर्द्धकुडवंरात्रीटंकैकाचात्रसंमता । कुडवार्द्धमसूरस्यपिष्टंवाचणकस्यच । तंदुलानांतुवाकांतेलवणस्यपलार्द्धकम् । शृंगवेरादिकंसर्वसूक्ष्मंपिष्ट्वाविमथ्यच । गाढंनीरेणलोलाक्षिमत्स्यखंडेषुलेपयेत् । घृतेतैलेऽथवायुक्त्यापाचयेद्धिकटाहके । मत्स्यवट्यइमावृष्याःशुक्रलारुचिपुष्टिदाः । कफापित्तकरा यर्हितैलपक्वाघटस्तनि ।

अर्थ-अब मत्स्यवटी अर्थात् मछलीकी वडी बनानेकी विधि और गुणदोष कहते हैं मछलीके टुकडे कर उनमें थोडा बेसन चुपड तीन वार जलसे धोकर ६४ तोले ले, अदरख ४ तोले, कांदा ४ तोले, लहसन १ तोला, दही ८ तोले, हलदी पाव तोला, मसूरका अथवा चनेका किंवा चावलका चून ८ तोले, निमक २ तोले, ये सर्व वस्तु लेकर उनमें जो कूटनेके लायक हो,

उनको कूट सबको एकत्र कर पानीसे मथे फिर उन टुकडोंपर लेप कर गरम घी या तेलमें सेके, ये मछलीके वडे वृष्य, वीर्यदायक, और रुचि तथा पुष्टिको देते हैं। परंतु यदि तेलमें तलेजावे तो कफ और पित्त इनको उत्पन्न करता होते हैं।

अथ मत्स्यौदनम्।

प्रस्थैकंमत्स्यजंमांसंप्रस्थैकंतंडुलंप्रिये। पाचयेत्तैलसंयुक्त-मिदंमत्स्यौदनंमतम्। अयिमत्स्योदनंबालेत्रिदोषामयका-रकम्। वह्निमांद्यप्रदंतद्वद्विशेषात्कफकारकम्।

अर्थ—सेर १ मच्छीका मांस तथा एक सेर चावल इन दोनोंको प्रथम तेलमें भून फिर भातकी विधिसे इसको बनावे इसको मत्स्यौदन कहतेहैं। यह मत्स्योदन त्रिदोषसंबंधी रोग मंदाग्नि और कफ इनको करैहै।

अथ मांसौदनम्।

तंडुलानांसुसूक्ष्माणांप्रस्थंप्रस्थंनवंघृतम्। छागमांसंतथा प्रस्थंलवणंपलसंमितम्। द्राविडीश्रीप्रसूनंचपृथक्टंकंवरां-गने। पृथक्कोलंवरारोहेवह्लिजंकृष्णजीरकम्। दधिमिष्टंशरा वैकंसंतानीतुचतुःपला। कुडवैकंप्रियेदुग्धंपलांडुस्तत्समो मतः। शृंगवेरंपलंकांतेतत्समोहिरसोनकः। मांसखंडानिसं-क्षाल्यसप्तधावारिणाभृशम्। तंडुलांश्चत्रिधाधौतान्स्थापये-त्पृथगंबुनि। लवणार्द्धंपृथक्पेष्यमांसखंडानिसंदिहेत्। शे-षार्धंलवणंनीरमार्द्रकस्यरसोनकम्। क्षिपेन्मांसेमिश्रयित्वा स्थापयेद्भाजनेशुचौ।

अर्थ—अब मांसौदनकी कृति तथा गुणदोषको कहतेहैं महीन चावल १ सेर नवीन घृत १ सेर, नोन १ पल, इलायची, और लोंग ये प्रत्येक एक २ टंक, काली मिरच और काला जीरा आधे २ कर्ष, मीठा दही आधसेर, दूधकी मलाई १६ कर्ष, दूध १६ कर्ष, प्याज १६ कर्ष, अदरख १ पल, और लहसन १ पल, ये पदार्थ तयार करके धरे प्रथम मांसके टुकडे पानीसे सात-वार धोवे, और चावल ३ वार धोकर भीजने देवे पीछे २ कर्ष पिसा नोन मांसमें मिलावे और दोकर्ष नोन अदरखका रस और लहसन ये उसमें मिलाय शुद्ध बटलोई या देगमें चढाय देवे।

घृतंभांडेसुसंताप्यक्षिपेत्तत्रपलांडुकम्। ताम्रवर्णंचतंदृष्ट्वामांसंतत्रविनिःक्षिपेत् । भर्जयेद्घृतशेषंतंदुग्धसंतानिकांततः । वस्त्रपूतंक्षिपेत्तत्रतंडुलांश्चविचक्षणः । लवंगादिभवंकल्कंतप्तंकंप्रस्थकद्वयम्। क्षिपेद्वह्निंशनैर्दत्वासिद्धमंगारकेन्यसेत् । क्षणादुत्तार्यसंस्थाप्यभजेत्कोष्णं वरानने । तेनवीर्यबलंकांतिकफंप्राप्नोतिमानवः । वातातंकविमुक्तःसन्रामयेद्रमणींभृशम् । इदंमांसौदनंस्निग्धंगुरुतज्ज्ञैःप्रकीर्तितम् ।

अर्थ--प्रथम उक्त भांडमें घृतको तप्तकर उसमें कांदेके टुकडे डाले जब वो लाल होजावें तब उसमें मांसको गेरे पीछे उसमेंसे पानीको सुखाता हुआ जबतक घृत शेष रहे तबतक करछीसे धीरे धीरे भूने, तदनंतर दूध और दूधकी मलाई वस्त्रसे छानके उसमें डाले पीछे चावल डाले और लोंग वगैरह पानीमें पीसके डाले तथा दोसेर गरमजल उसमें गेरे पीछे मंदाग्निपर पकायकर अंगारोंपर धरदेवे,फिर एकक्षणमें उतार किंचित् किंचित् गरमागरमको भोजनकरे इस्से वीर्य, बल, कांति, तथा कफको मनुष्य प्राप्त होवे, और वातसंबंधी रोगोंसे छूट अनेक स्त्रीभोगनेकी सामर्थ्यको प्राप्तहोवे, यह मांसौदन स्निग्ध और भारी है । इति भोजनविधिः ।

भोजनके समयवर्जित दृष्टि ।

हीनदीनक्षुधार्त्तानांपापपाखंडरोगिणाम् ।
कुक्कुटाहिशुनांदृष्टिर्भोजनेनैवशोभना ।

अर्थ–हलके मनुष्य, भिखारी, भूखा, पापी, पाखंडी, रोगी, मुरगा, सर्प, और कुत्ता, इनकी दृष्टि भोजनपर गिरनेसे उत्तम नहीं है । इसीसे मनुष्यको उचित है कि, इनकी दृष्टि बचायकर भोजन करे । तथा बिल्ली घुघ्घु और शत्रु आदिकीभी दृष्टि उत्तम नहींहै ।

शुभ दृष्टि ।

पितृमातृसुहृद्वैद्यपाककृद्धंसबर्हिणाम् ।
सारसस्यचकोरस्यभोजनेदृष्टिरुत्तमा ।

अर्थ--माता, पिता, सुहृद् (भाई, मित्र, और संबंधी) वैद्य, रसोय्या, हंस, मोर, सारस, और चकोर [तथा मृग, खबूतर, तोता, मैना आदि) की दृष्टि भोजनके समय पडना उत्तम है । परंतु बहुत भूखे होतो इन-

कीभी दृष्टि वर्जित है। और किसी किसी दुष्ट माता पिता भाई आदिकीभी दृष्टि दुष्ट होती है। राजा महाराजा और सेठ साहूकारोंको विषमिश्रित अन्नकी प्रथम परीक्षा कर फिर भोजन करना चाहिये सो लिखते हैं।

विषमिश्रित अन्नकी परीक्षा।

ध्वांक्षःस्वरान्विकुरुतेऽत्रपिकात्मजश्चबभ्रुःशिखंडितनयश्चभवेद्धिहृष्टः। क्रौंचःप्रहृष्यतिविरौतिचताम्रचूडश्छर्दिंशुकःप्रकुरुतेविलपन्तिकीशाः। हंसाःस्खलन्तिगतिषुप्रसभंचकोरोधत्तेविरक्तिमचिरेणविलोक्यदृष्ट्वा। अन्नाद्विषेणकलितादतएवतेभ्योदत्त्वाऽल्पमन्नमथपात्रगतात्ततोद्यात्।

अर्थ-विषमिश्रित अन्नके भक्षणसे कौएका शब्द बिगड जाता है, और कोकिल, नौला, मोर ये विष मिले अन्नको खायकर प्रसन्न होते हैं। क्रौंचपक्षी आनंदित होता है। मुरगा विष मिले अन्नको खायकर पुकारता है। तोता वमन करता है। और बन्दर विलाप करतेहैं। हंस विषमिश्रित अन्न भक्षणसे गमन करना भूल जावे। और चकोरपक्षी विष मिले अन्नको देख अत्यंत विरक्तताको धारण करता है इसीसे मनुष्यको उचित है कि, भोजनके थालमेंसे कुछ थोडा अन्न प्रथम इनको देकर फिर आप भोजन करे।

विषमिश्रित अन्नकी अन्य परीक्षा।

भक्तंपर्युषितोपमंविषयुतंसूपोहरित्फेनिलोमांसंनीरसनीलराजिझटितिव्याशुष्यतिव्यंजनम्। क्षीराद्यन्तुपिशंगपीतततियुक्पुष्पंविगन्ध्यंबरंश्यामंचांबुनिचान्यदेवमुदितंवैरस्यवैवर्ण्ययुक्।

अर्थ-विष मिलाहुआ ताजा भात-बासेके समान होजाता है, विष मिली दाल हरी, और झागदार होजाती है, ताजा मांस विषके मिलनेसे तत्काल रसहीन नीली रेखाओंसे व्याप्त होजाता है। आर्द्र व्यंजन विषके मिलापसे सूख जाता है। दूध आदि पदार्थमें विषके मिलाप होनेसे कुछ पिलास अथवा हलदीके समान पीली रेखाओंसे व्याप्त होजाता है। फूलमें विषके मिलापसे दुर्गंध और कालौच आय जाती है। इसीप्रकार सूखा अन्न, फल, नल, बीडी, आदिमें विष (जहर) मिलनेकी परीक्षा करे।

दृष्टिदोषनिवारणोपायः ।

अन्नंब्रह्मारसोविष्णुर्भोक्तादेवोमहेश्वरः ।
इतिसंचिंत्यभुंजानोदृष्टिदोषैर्नलिप्यते ॥

अर्थ–अन्न ब्रह्मा, रस विष्णु, और इसका भोजन कर्त्ता महेश्वरदेव है । इस प्रकार मनमें चिंतवन करके भोजन करनेसे फिर दृष्टि नहीं लगे ।

अंजनीगर्भसम्भूतंकुमारंब्रह्मचारिणम् ।
दृष्टिदोषविनाशायहनुमन्तंस्मराम्यहम् ॥

अर्थ–अंजनीके गर्भसे प्रगट कुमारअवस्थासेही ब्रह्मचारी ऐसे हनूमानका दृष्टिदोषनिवारणार्थ मैं स्मरण करताहूं ।

भोजनपात्र ।

हैमेवाराजतेकांस्ये आयसेकाचनिर्मिते ।
पात्रेपत्रमयेवापिनरःकुर्वीतभोजनम् ॥

अर्थ--सुवर्ण, चांदी, कांसा, लोह, और कांचके पात्रमें तथा पत्तलमें भोजन करना चाहिये ।

पात्रोंका पृथक् पृथक् फल ।

दोषहृद्दृष्टिदंपथ्यं हैमंभोजनभाजनम् । रौप्यंभवतिचक्षुष्यं पित्तहृत्कफवातकृत् । कांस्यंबुद्धिप्रदंरुच्यं रक्तपित्तप्रसादनम् । पैत्तलंवातकृद्रूक्षमुष्णंकृमिकफप्रणुत् । आयसेकाचपात्रेचभोजनंसिद्धिकारकम् । शोथपाण्डुहरंबल्यं कामलापहमुत्तमम् । शैलजेमृन्मयेपात्रे भोजनंश्रीनिवारणम् । दारूद्भवंविशेषेण रुचिदंश्लेष्मकारिच । पात्रंपत्रमयंरुच्यंदीपनंविषपापनुत् ।

अर्थ–भोजनके पात्र (थाली, कटोरी, आदि) यदि सुवर्णके होवे तो त्रिदोषनाशक, दृष्टि बढानेवाले और पथ्य ऐसे जानने । चांदीका भोजनपात्र नेत्रोंको हितकारी, पित्त हरणकर्त्ता, तथा वात कफकारी जानना । कांसेका पात्र बुद्धि बढावे, रुचि प्रगट करे, और रक्तपित्तको शांति करे । और पीतलका पात्र वातकारक, रूखा, तथा शूल, कृमि और कफका नाशक है । लोहेका पात्र वा चुंबक इनका पात्र सिद्धिकारक, तथा सूजन, पांडुरोग, इनका नाशक और बलकारक तथा कामलानाशक है । पत्थरके पात्रमें वा

मट्टीके पात्रमें भोजन करना लक्ष्मीनाशक जानना परंतु चीनीका पात्र इतर जातको शुभ है । लकडीका पात्र विशेष करके रुचि कर्त्ता, और कफकारक जानना। ढाक आदिके पत्तोंकी पत्तलमें भोजन करना रुचिकारी, दीपन और विष, पापको नाश करता जानना ।

तथा च ।

रम्भापत्रेऽशनंहृद्यंरुच्यंवृष्यंबलाग्निदम्। विषश्रमानिलास्रेषु हितंपाण्डौनशस्यते । पालाशपत्रंचमरुच्छ्लेष्मगुल्मोदरकृमीन् । निहन्यात्पीनसंकासंज्वरंचैवातिदारुणम् । अर्कपत्रं स्मृतंरूक्षंकृमिघ्नंपित्तकृत्परम् । गुल्मशूलविषश्वासपांडुकुष्ठकफानिलान्। हन्यात्परमचक्षुष्यंदीपनंपाचनंलघु। पत्रन्तुक्षीरवृक्षाणांतृष्णादाहास्रपित्तनुत् । नलिनादिदलंरूक्षं निंदितंभोजनेहिमम् ।

अर्थ—केलाके पत्तेपर भोजन करना रुचिकारक, हृद्य, वृष्य, बल और अग्निको देनेवाला जानना । तथा विष, श्रम, वातरक्त रोगमें हित है । परंतु पांडुरोगमें वर्जित है। ढाकके पत्तेकी पत्तलमें भोजन करना वात, कफ, गुल्म, उदर, कृमि, पीनस, खांसी, और अतिदारुण ज्वरको नाश करता है। आकके पत्ते रूखे हैं, कृमिको दूर करे और पित्तकर हैं। तथा गोला, शूल, विष, श्वास, पांडुरोग, कुष्ठ, कफ और वातको नाशकर नेत्रोंको परम हित, दीपन, पाचन और हलका है। क्षीरवृक्ष (गूलर वड, आदि) के पत्तोंकी पत्तलमें भोजन करना तृषा, दाह, और रक्तपित्तको दूर करे है। कमलके पत्ते रूक्ष और भोजनमें निंदित कहे हैं।

जलपात्रमाह ।

जलपात्रंसुवर्णस्यतदभावेतुरौप्यकम् । तदभावेचताम्रस्य तदभावेतुपैत्तलम् । इतिचत्वारिपात्राणिबलबुद्धिप्रदानिच ।
पवित्रंशीतलंपात्रंवैदूर्यस्फाटिकोद्भवम् ।
तद्वत्काचभवंप्रोक्तंसर्वाभावेतुमृन्मयम् ॥

अर्थ—पानी पीनेके पात्र (लोटा, झारी, अमूखोरा, गिलास, घंटी आदि) सुवर्णका वा चांदीका तामेका वा पीतलका ये चारही पात्र उत्तम हैं, इन्हींको एकके अभावमें दूसरा लेना चाहिये । ये चारों पात्र बल बुद्धिके देनेवा-

लेहैं। वैदूर्यमणि अथवा स्फटिक अथवा कांचका पात्र ये पवित्र तथा शीतल हैं। इनमेंसे कोई न मिले तो इनकी एवजी मट्टीका पात्र (कुल्हडा आदि) लेना चाहिये।

भोजनके पूर्व भक्षणीय।

भोजनाग्रेसदापथ्यंलवणार्द्रकभक्षणम्।
रोचनंदीपनंवह्निजिह्वाकण्ठविशोधनम्॥

अर्थ-भोजन आरंभ करनेके पूर्व सैंधानिमक और अदरख खाना पथ्य है। रुचिकर, अग्निसंदीपक, तथा जीभको और कंठको शोधन करे है।

शिष्य-लवणको पित्तकरता होनेसे और अदरखको कटुत्व करके पित्तकारी कहाहै। और क्षुधित पुरुषके प्रथमही पित्त प्रबल होता है, फिर लवणार्द्रक भक्षण कैसे लिखा है?

गुरु-इस जगे त्रिदोषनाशक सैंधव लवणका ग्रहण है। यथा-

सैंधवंलवणंस्वादुदीपनंपाचनंलघु।
स्निग्धंरुच्यंहिमंवृष्यंसूक्ष्मंनेत्र्यंत्रिदोषहृत्।

अर्थ--सैंधानिमक स्वादु, दीपन, पाचन, हलका, स्निग्ध, रुचिकर, शीतल, वृष्य, सूक्ष्म, नेत्रोंको हितावह और त्रिदोषनाशक है, अतएव भोजनके पूर्व इसका ग्रहण है।

उसी प्रकार आर्द्रक कटुकभी है परंतु मधुरपाकी होनेसे पित्तका विरोधी नहीं है।

यथा।

आर्द्रिकाभेदनीगुर्वीतीक्ष्णोष्णादीपनीचसा।
कटुकामधुरापाकेरूक्षावातकफापहा।

अर्थ-अदरख मलको तोडनेवाला, भारी, चरपरा, गरम, दीपन, कटु-पाकके समय मधुर और रूक्ष है। तथा वात कफ नाशक है।

दूसरे संयोगस्वभावसेभी पित्तविरोधी नहीं है अतएव " भोजनाग्रे सदा पथ्यं " यह श्लोक लिखा है, " लवणं सैंधवंज्ञेयं चन्दनं रक्तचंदनम् "

द्रवाद्यन्नंतुचेत्सेवेत्तत्राम्बुनपिबेद्बहु। मध्येतुकठिनेभक्ष्येयथेष्टंशस्यतेजलम्। तथाचभोजनस्यान्तेपीतमम्बुबलप्रदम्। परन्तुतन्मुहूर्तेनवातदर्द्धेनचेत्पिबेत्। द्रवप्रधानभुक्तान्तेतत्रापिमात्रयापिबेत्॥

अर्थ-पतले पदार्थ खायकर बहुत जल नहीं पीना चाहिये । कठिन पदार्थ खानेके समय बीच बीचमें यथेष्ट जल पीना चाहिये । उसीप्रकार भोजन के अंतमें जल पीना बलदायक जानना । परंतु वह भोजन करनेके दो घडी अथवा एक घडीके बाद पीवे, यदि पतले (कढी आदि) पदार्थ खानेके पीछे प्यास लगे तो थोडा पानी पीये ।

गुरुपिष्टमयंद्रव्यंतण्डुलान्पृथुकानपि । नजातुभुक्तवान्खादेन्मात्रांखादेद्बुभुक्षितः । घृतंपूर्वंसमश्नीयात्कठिनंप्राक्ततो मृदु । अन्तेपुनर्द्रवाशीतुबलारोग्यंनमुञ्चति ।

अर्थ-भारी पदार्थ, पिसे अन्नके, अथवा पिट्ठीके पदार्थ, चावल, और चिरवा इनको भोजन करके न खावे । यदि अति क्षुधित होवे तो थोडे खाने चाहिये । भोजनमें प्रथम रोटी इत्यादि कठिन पदार्थ, घृतसे चुपडे, या घृत मिले खाने चाहिये । पीछे मृदु भात, मूंग, खाय । और पीछे छाछ, दही, दूध, पीवे इसप्रकार भोजन करनेसे इस पुरुषको बल और आरोग्य कभी नहीं छोडते किंतु सदैव बने रहते हैं ।

स्वादु अन्नके लक्षण ।

यद्यत्स्वादुतरंतद्धिविदध्यादुत्तरोत्तरम् ।
भुक्तायत्प्रार्थ्यतेभूयस्तदुक्तंस्वादुभोजनम् ।

अर्थ-जो जो पदार्थ अति स्वादु होवे उसी उसीको उत्तरोत्तर भोजन करे । जो पदार्थ वारंवार भोजन करकेभी इच्छित होवे उसको स्वादु भोजन कहते हैं ।

स्वादु अन्नके गुण ।

सौमनस्यंबलंपुष्टिमुत्साहंरसनासुखम् ।
स्वादुसञ्जनयत्यन्नमस्वादुचविपर्य्ययम् ।

अर्थ-स्वादु पदार्थ मनको आनंद, बल, पुष्टि, उत्साह, और जिह्वाको सुख करे है और कडुआ पदार्थ मनको दुःख, निर्बलता, कृशता, अनुत्साह, और जीभको दुःख प्रगट करे है ।

योग्यायोग्य अन्न ।

अत्युष्णान्नंबलंहन्तिशीतंशुष्कंचदुर्जरम् । अतिक्लिन्नंग्लानि-

करंयुक्तियुक्तंहिभोजनम् । अतिद्रुताशिताहारोगुणान्दोषा-न्नविन्दति । भोज्यंशीतमहृद्यंचस्याद्विलंबितमश्नतः ।

अर्थ-अति गरम अन्न बलका नाश करता है, तथा शीतल और सूखा अन्न दुर्जर होता है अर्थात् बडी कठिनतासे पचे है । और अत्यंत गीला अन्न ग्लानि करता है । इसीसे युक्तायुक्त विचार करके भोजन करना चाहिये । अत्यंत जल्दी और अत्यंत देरीमें भोजन नहीं करना चाहिये, जल्दी भोजन करनेसे बडा भारी यही दोष है कि, उस भोज्य पदार्थका गुणदोष मालूम नहीं होता है, उसीप्रकार वह अच्छीरीतिसे चर्वित नहीं होता इसीसे शीघ्र जीर्ण नहीं होवे । और विलंब पूर्वक भोजन करनेसे भोज्य पदार्थ शीतल और स्वादरहित होजाता है ।

त्रिविध गुरु अन्नका वर्जन ।

मन्दानलोनरोद्रव्यंमात्रागुरुविवर्जयेत् । स्वभावतश्चगुरुय-त्तथासंस्कारतोगुरुः । मात्रागुरुस्तुमुद्गादिर्माषादिःप्राकृतो गुरुः । संस्कारगुरुपिष्टान्नंप्रोक्तमित्युपलक्षणम् ।

अर्थ-जिन्होंकी मंदाग्नि है उनको भारी (गरिष्ठ) भोजन नहीं भक्षण करना चाहिये, मात्रा, स्वभाव, और संस्कार, इन तीन भेद करके भारी पदार्थ तीन प्रकारका है, मूंग मोठ इत्यादि मात्रा गुरु है अर्थात् अधिक खानेसे भारी होती है । उडद आदि स्वभावसेही भारी है, और पिष्टान्न (चून, मैदा, सूजी आदि) संस्कार गुरुहोते हैं । अर्थात् जब उसकी पूडी रोटी आदि करो तब गरिष्ठ होता है ।

आहारको षड्विधत्व ।

आहारंषड्विधंचोष्यंपेयंलेह्यंतथैवच ।
भक्ष्यंभोज्यंतथाचर्व्यंगुरुविद्याद्यथोत्तरम् ॥

अर्थ--आहार छः प्रकारके हैं, १ चोष्य (जो चूसा जावे जैसे ईख, आम्र आदि) २ पेय है, (जो पीया जावे जैसे पने शर्बत आदि) ३ लेह्य है, (जो लेईके माफिक उंगलियोंसे लिपट जावे जैसें लहपसी, सिखरन, कढी आदि) ४ भक्ष्य (जो भक्षण करा जावे जैसे लड्डू, पेडा, बर्फी, आदि) ५ भोज्य (जो भोजन करा जावे जैसे भात मूंग आदि) ६ चर्व्य (जो चबाये जावे जैसे चने, चिरवा, पापड आदि) ये उत्तरोत्तर भारी है

अर्थात् चोष्य पदार्थसे पेय, पेयसे लेह्य, लेह्यसे भोज्य, भोज्यसे भक्ष्य, और भक्षसे चर्व्य, पदार्थ अधिक भारी अर्थात् अधिक गरिष्ठ है।

गुरुआदिअन्नका परिमाण।

गुरूणामर्धसौहित्यंलघूनांतृप्तिरिष्यते । द्रवोद्रवोत्तरश्चापि नमात्रागुरुरिष्यते । पेयलेह्यादिभक्ष्याणांगुरुंविद्याद्यथोत्तरम् । द्रवाढ्यमपिशुष्कन्तुसम्यगेवोपपद्यते ।

अर्थ—भारी अन्नसे मनुष्यको अर्ध तृप्ति अर्थात् जितने खानेकी इच्छा हो उससे आधा खावे, और हलके पदार्थ पेटभर खाने चाहियें, द्रवपदार्थ कढी, पेयादि भोजन कर पश्चात् तक्रादि अधिक भक्षण कराहुआभी है परंतु उनकी मात्रा बहुत नहीं माननी चाहिये, क्योंकि पीनेके सब पदार्थ हलके हैं, पेय लेह्य इत्यादि भोजन करनेमें उत्तरोत्तर भारी जानने, और, जो पदार्थ शुष्क है उसको आर्द्र पदार्थ मिलायकर भोजन करनेसे उत्तम रीतिसे पाचन होते हैं।

केवल शुष्कान्नके दोष।

विशुष्कमन्नमभ्यस्तंनपाकंसाधुगच्छाति । पिण्डीकृतमसंक्लिन्नंविदाहमुपगच्छति । शुष्कंविरुद्धंविष्टंभिवह्निव्यापदकृद्भवेत् ।

अर्थ—शुष्क अन्न वारंवार भोजन करनेसे अच्छे प्रकार पाकको नहीं प्राप्त होता, वह शुष्क पदार्थ उदरमें पिंडीके सदृश विना आर्द्रताके विदग्ध होजाता है। अतएव शुष्क पदार्थ न खाय, सूखे पदार्थके दोष कहते हैं कि, सूखा अन्न (चिरवा, आदि) विरुद्ध पदार्थ (दूध मछली आदि) और विष्टंभि पदार्थ (चना मसूर आदि) इनके खानेसे ये मंदाग्नि करता होते हैं।

चतुर्विधअग्निपरत्व भोजन।

मन्दस्तीक्ष्णोविषमःसमश्चवह्निश्चतुर्विधःपुंसाम् ।
लघुमन्देगुरुतीक्ष्णेस्निग्धंविषमेसमेसमंभोज्यम् ॥

अर्थ—मंद, तीक्ष्ण, विषम, और सम ऐसे पुरुषोंके चार प्रकारकी जठराग्नि होती है, इसलिये मंदाग्निवालोंको हलके पदार्थ, तीक्ष्णाग्निवालेको भारी, विषमाग्निवालेको स्निग्ध पदार्थ. और समान अग्निवालेको समान अर्थात्, जो न भारी हो न हलके हो ऐसे पदार्थ भोजन करने चाहिये।

पत्नींविहितशृङ्गारांप्राप्यभोजनमण्डपम् । यथाचाग्निबलं वीक्ष्यकुर्याद्भोजनकंनरः।एकएवनभुंजीतयदीच्छेत्सिद्धिमात्मनः । द्वित्रिभिर्बहुभिःसार्द्धंभोजनन्तुदिवानिशम् ।

अर्थ--भोजन मंडपमें शृंगारयुक्त अपनी प्राणप्रियाको प्राप्त हो यथाग्नि बलको देखकर मनुष्यको भोजन करना चाहिये । यदि अपने कल्याणकी इच्छा होवे तो अकेला भोजन कदाचित् न करे दो तीन अथवा बहुतसे कुटुम्बके या अन्य पुरुषोंको लेकर दिन और रात्रिमें भोजन करना चाहिये ।

उपलिप्तेशुचौदेशेचतुरस्रंत्रिकोणकम् ।
वर्त्तुलंचार्धचन्द्रंचविप्रादीनांचमण्डलम् ।

अर्थ--लिपाहुआ पवित्रस्थानमें ब्राह्मणको चौकोन, क्षत्रीको त्रिकोन, वैश्यको गोल, और शूद्रको अर्धचंद्रके आकार चौका लगाना चाहिये ।

पञ्चाशत्पलिकंकांस्यंस्थापयेत्तत्रराजतम् ।
सौवर्णंवाथपत्रैर्वानिर्मितंभाजनंशुभम् ॥

अर्थ--भोजन करनेको ५०पलका, कांसेका थाल, वा चांदीका वा सुवर्णका अथवा पत्रनिर्मित पत्तल शुभ है ।

शाकादीन्पुरतःस्थाप्यभक्ष्यंभोज्यंचकामतः ।
अन्नंमध्येप्रतिष्ठाप्यदक्षिणेघृतपायसौ ।

अर्थ--भोजन करतेसमय शाकादि (साग, चटनी, मुरब्बा आदि) को आगे धरे और भक्ष्य भोज्य पदार्थोंको यथा इच्छानुसार अगल बगल धरे, और अन्न (भात दाल) आदिको थालके बीचमें धरे, और घी तथा खीरको पात्रमें दहनी तरफ धरने चाहिये ।

हस्तौपादौतथैवास्यंप्रक्षाल्यान्नंप्रणम्यच ।
ततोग्रासान्समुद्धृत्यगवांचविनिवेदयेत् ॥

अर्थ--हाथ पैर और मुखको धोय शुद्ध हो भोजनको बैठे उस समय अन्नको प्रणामकर [परमात्मासे प्रार्थना करे कि इसीप्रकार अन्न हमको नित्य मिलाकरे] इसप्रकार कहकर फिर गोग्रास निकालकर आप भोजन करे ।

बालसुवासिनीवृद्धगर्भिण्यातुरकन्यकाः ।
संभोज्यातिथिवृद्धांश्चदंपत्योःशेषभोजनम् ।

अर्थ–प्रथम बालक, नवविवाहिता वधू वृद्ध, गर्भवती, रोगी, कन्या, अतिथी और अपनेसे बडोंको भोजन कराके फिर गृहस्थी स्त्रीपुरुष आप भोजन करे।

भोजनसमयके नियम।

भुंजानोनबहुब्रूयान्ननिन्देदपिकञ्चन।
जुगुप्सितकथांनैवशृणुयादापिवावदेत्॥

अर्थ–भोजन करतेसमय बहुत बोले नहीं (न हँसे, न शोक करे, न जँभाई, और छींक लेवे) न किसीकी निन्दा करे। तथा निंदित बातको सुनेभी नहीं, और न आप निंदित कथा कहे। अन्नकी स्तुति करताहुआ भोजन करे।

भोजनक्रम।

अश्नीयात्तन्मनाभूत्वापूर्वन्तुमधुरंरसम्। मध्येऽम्ललवणौपश्चात्कटुतिक्तकषायकान्। फलान्यादौसमश्नीयाद्दाडिमादीनिबुद्धिमान्। विनामोचाफलन्तद्वद्वर्जनीयाचकर्कटी। मृणालबिसशालूककन्देक्षुप्रभृतीनिच। पूर्वमेवहिभोज्यानि नतुभुक्ताकदाचन।

अर्थ–भोजनकेसमय भोजनकी तरफ मन लगायकर प्रथम मिष्ट रस भोजन करना चाहिये भोजनके मध्यमें खट्टे रस और निमकीन पदार्थ खाने चाहिये पीछे कडुए चरपरे, और कषेले रसके पदार्थ खाने चाहिये। परंतु मंदाग्निवालेको प्रथम लवण आदिकेही पदार्थ भोजनीय हैं। परंतु इनमेंभी अनार, अमरूद आदि फल प्रथम खाने चाहिये। किंतु मोचाफल (केला) और ककडी प्रथम खाना वर्जित है। मृणाल (कमलकी नाल) बिस (भसीडे)और शालूककंद, तथा ईख इत्यादि पदार्थ भोजनके पूर्वही खाने चाहिये। भोजनके पश्चात् नहीं खावे।

सक्तु (सत्तू) भक्षणमें निषेध।

नभुक्त्वानरदैश्छित्त्वाननिशायांनवाबहून्। नजलान्तरितान्नद्भिःसक्तूनद्यान्नकेवलान्। पुनर्दानंपृथक्पानंसामिषंपयसानिशि। दन्तच्छेदनमुष्णंचसप्तसक्तुषुवर्जयेत्।

अर्थ--भोजन करके, दांतोंसे चाबकर, रात्रिमें बहुतसा, तथा जलान्तरित, अथवा विना जलके केवल सत्तू न खाय, तथा सत्तू खायकर फिर सत्तू न

खाय, एकबार देकर फिर दूसरे देना, भोजनसे पृथक् सत्तू पीना, मांसके साथ दूधके साथ, रात्रिमें, दांतोंसे छेदन और गरम ये सात प्रकार सत्तू खानेमें वर्जित है ।

विषमाशनके लक्षण ।

बहुस्तोकमकालेवाज्ञेयंतद्विषमाशनम् ।

अर्थ--कुसमय, बहुत वा थोडे भोजनको विषमाहार कहते हैं ।

अल्प किंवा अधिक भोजनके दोष ।

आलस्यगौरवाटोपशब्दांश्चकुरुतेभृशम् ।
हीनमात्रंतनोःकार्श्यंकरोतिचबलक्षयम् ॥

अर्थ--बहुत अन्न भक्षण करनेसे आलस्य, देहमें भारीपना, पेटमे गुड-गुडाहट शब्द, ये होतेहैं । उसीप्रकार अल्प भोजन करनेसे देहमें कृशता और बलक्षय होता है ।

अकाल भोजनका निषेध ।

नाप्राप्तकालंभुंजीतहीनाधिकमथापिवा । अप्राप्तकालेभुंजा-नोअसमर्थतनुर्नरः । तांस्तान्व्याधीनवाप्नोतिमरणंचाधि-गच्छति । कालेतीतेश्नतोजंतोर्वायुनोपहतेनले । कृच्छ्राद्विप-च्यतेभुक्तंनस्याद्भोक्तुंपुनःस्पृहा । तस्मात्सुसंस्कृतंयुक्त्या दोषैरेतैर्विवर्जितः । सुखासन्नोगुणैर्युक्तमुपसेवेतभोजनम् । दौर्मनस्यंभयंक्रोधंभुंजानःपरिवर्जयेत् ।

अर्थ--विनाकालके थोडा या बहुत भोजन न करे, क्योंकि विना समयके भोजन करनेसे देह सामर्थ्यरहित होता है, तथा शिरोव्यथा, अतिसार, विलं-बिका, अलसक, इत्यादि अनेक प्रकारकी व्याधि होती हैं । यदि वो व्याधि शांति न होवे तो यह प्राणी मरणदशाको प्राप्त होता है । और भोजनकाल व्यतीत होनेपर भोजन करनेसे वातके कोपसे जठराग्नि मन्द होती है । और भोजन कराहुआ अन्न बडी कठिनतासे पचन होता है । तथा फिर भोजन करनेकी इच्छा नहीं होती है । अतएव उक्तदोषरहित, सुसंस्कृत तथा उपयुक्त गुणसंपन्न आहार भोजनकरे तथा सुखपूर्वक बैठकर आहार करे । भोजन करते समय दौर्मनस्य, भय, क्रोध, इत्यादि सर्व वस्तु त्यागदेनी चाहिये ।

रसेनान्नस्यरसनाप्रथमेनोपतर्पिता ।
नतथास्वादमाप्नोतिततःसेव्यंतुनान्तरा ।

अर्थ–जिह्वा प्रथम अन्नरस करके तृप्त होती है ऐसी इतर पदार्थोंकरके तृप्त नहीं हो इसीसे एकपदार्थके साथ दूसरा पदार्थ सेवन न करे ।

भोजनका प्रमाण ।

कुक्षेर्भागद्वयंभोज्यैस्तृतीयंवारिपूरयेत् ।
वायोःसंचारणार्थायचतुर्थमवशेषयेत् ।

अर्थ–मनुष्य कूखके दो भाग अन्नसे पूर्ण करे, तथा तीसरा भाग जलकरके पूर्ण करे और चतुर्थ भाग वायुके संचारणार्थ खाली रहने देवे ।

जलका प्रमाण ।

अत्यम्बुपानान्नविपच्यतेन्नंनिरम्बुपानाच्चसएवदोषः । तस्मान्नरोवह्निविवर्द्धनायमुहुर्मुहुर्वारिपिबेदभूरि । भुक्तस्यादौजलं पीतंकार्श्यमन्दाग्निदोषकृत् । मध्येग्निदीपनंश्रेष्ठमन्तेस्थौल्यकफप्रदम् ।

अर्थ–अत्यंत जल पीनेसे अन्न परिपक्क नहीं हो तथा विना जलके पीनेसे भी वही दोष होता है अर्थात् अच्छीरीतिसे परिपाक नहीं होता अतएव मनुष्य अग्नि बढानेके अर्थ वारंवार थोडा थोडा जल पीवे। भोजनके आदिमें जल पीना कृशता, और मंदाग्नि आदि दोष करे हैं । भोजनके मध्यमें पीनेसे अग्नि संदीपन करे और भोजनान्तमें जल पीना स्थूलता और कफप्रद जानना ।

तृषाक्षुधामें व्यत्यय उपचारका निषेध ।

तृषितस्तुनचाश्नीयात्क्षुधितोनपिबेज्जलम् ।
तृषितस्तुभवेद्गुल्मीक्षुधितस्तुजलोदरी ।

अर्थ- तृषामें भोजन न करे, और क्षुधामें प्रथम जल न पीवे, कारण कि प्यासमें भोजन करनेसे गोलेका रोग होवे है, और भूखमें जल पीनेसे जलंधरका रोग होता है ।

शिष्य--शिष्टपुरुष भोजनके अंतमें दूध पीते हैं सो यह अनुचित है, क्योंकि भोजनकालके तीन भाग करनेसे भोजनका प्रथमकाल वातका है, दूसरापित्तका और तीसरा कफका इसीसे लिखा है । यथा " अश्नीयात्तन्मना भूत्वापूर्वंतुमधुरंरसम् । मध्येम्ललवणौ पश्चात्कटुतिक्तकषायकान् " इसका यह तात्पर्य है कि, भोजनके पूर्व मधुर रस भोजन कराहुआ बुभुक्षित मनुष्यके वातपित्तका शमन करता होता है । और भोजनके मध्यमें खट्टे

और निमकीन रसोंके खानेसे वो पित्ताशयमें जठराग्निकी वृद्धि करतेहैं तथा भोजनके अंतमें भक्षण करेहुए कटु तिक्त और कषेले रस कफको शमन करते हैं, अतएव हे गुरो ! मेरी यह प्रार्थना है कि, भोजनके अंतमें कफका काल है उसमें कफकारी दुग्ध पीना तो सर्वथा अनुचित है, फिर क्यों पीते हैं ? जैसे दूधके गुण लिखे हैं "दुग्धंस्वादुरसंस्निग्धमोजस्यं धातुवर्द्धनम् । वातपित्तहरं वृष्यं श्लेष्मलं गुरुशीतलमिति"

गुरु–तुम्हारा कहना बहुत ठीक है परंतु भोजनके अंतमें दूध पीनेका यह कारण है ।

विदाहीन्यन्नपानानियानिभुंक्तेहिमानवः ।
तद्विदाहप्रशान्त्यर्थंभोजनान्तेपयःपिबेत् ॥

अर्थ--भोजनके समय मनुष्य विदाही अन्न और पने आदि पीता है उनके विदाहशांति करनेको भोजनके अंतमें अवश्य दूध पीवे, यदि केवल मिष्ट पदार्थ आदि भोजन करा होवे तो अंतमें दूध पीनेकी कुछ आवश्यकताभी नहीं है । परंतु भोजनमें एक रसही न खावे जैसे ।

ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है ।

नचैकरससेवायांप्रसज्येतकदाचन । एकैकशःसमस्तान्वानाप्यश्नीयाद्रसान्सदा । कुर्यात्क्षीरान्तमाहारंनदध्यन्तंकदाचन ॥ लवणाम्लकटूष्णानिविदाहीन्यत्तियानितु । तद्दोषंहर्त्तुमाहारंमधुरेणसमापयेत् ।

अर्थ--प्राणीको उचित है कि, निरंतर एकही प्रकारके रसयुक्त द्रव्य अथवा एकवारमें अनेक प्रकारके रस मिलायकर भोजन न करे (किंतु कभी मीठा, कभी खट्टा, कभी निमकीन, आदि रसोंको भोजन करे) और यहभी स्मरण रहे कि,क्षीरान्त भोजन करे, दध्यन्त भोजन न करे, अर्थात् भोजनके अंतमें दूध पीवे तो अनेक गुण होते हैं और भोजनके अंतमें दही खानेसे अनेक प्रकारकी व्याधि होती है (परंतु आरंभमें दही खाना लिखा है) नोनके, खट्टे, चरपरे, गरम, और जो विदाहकारी रस खाये हैं उनकी शांतिके लिये मधुर रससे भोजकनी समाप्ति करनी चाहिये ।

अथवा दूसरा उत्तर यह है कि, भोजनके अंतमें दुग्धादि मधुर भोजन करके बढा जो कफ सो लवणाम्ल कटु भोजनजनित पित्तकी वृद्धिको नाश करे है । पित्तकी वृद्धि नाश होनेसे कफकी अतिवृद्धि स्वयं क्षीण हो जाती

है। अतएव क्षीण कफ वृद्धि अग्निमांद्यादि व्याधि उत्पन्न करनेको समर्थ नहीं होवे।

शिष्य-हे गुरो ! शत्रुनाश होनेपर शत्रुहन्ताकी वृद्धि होती है, क्षीणता नहीं होती फिर आप पित्तनाश होनेसे कैसे कफकी क्षीणता कहते हो ?

गुरु--इसका यह उत्तर है कि बलवान् शत्रुके मारनेसे मारनेवालेकी क्षीणता होती है। जैसे लिखा है " नाशनात्प्रत्यनीकस्य स्वयंचक्षीयते यथा। वह्निसंतप्तलोहस्य तप्ततानाशनाज्जलम् " इस श्लोकका यह अर्थ है कि, दूसरेको नाश करनेसे आप क्षीण हो जाता है। इसमें दृष्टान्त है कि, जैसे अग्निमें तपेहुए लोहकी उष्णता शांति करनेसे जल क्षीण हो जाता है, अर्थात् गरम लोहपर शीतल जल डालोगे तो प्रथमतो शीतत्व गुण नष्ट हो कर गरम हो जाता है दूसरे वो जल वाफरूप होकर उडजाता है तो तोलमेंभी कम होता है इसीप्रकार यहां जानो।

कदाचित् तुम ऐसा मानो कि भोजनके अंतमें कटु तिक्त कषाय रसोंके सेवनेसे कफकी शांति हो वात प्रबल होयगी तो उसका यह प्रत्युत्तर है कि, कट्वादि रस क्षीण शक्ति होनेसे वात प्रबल नहीं करसकते जैसे लिखा है।

यदेकंनाशयेद्दोषंतदन्यंवर्द्धयेत्कुतः।
नाशनेह्येकदोषस्ययतस्तत्क्षीणशक्तिकम् ॥

अर्थ--जो दोष एक दोषको नष्ट कर चुकाहै वो दूसरेको कैसे बढावेंगा क्योंकि एक दोषके मारनेसे वह दोष क्षीण शक्ति होजाता है।

वास्तवसे यह सिद्धांत है कि, यह प्राणी जिस रसको अधिक भोजन करता उसी रसके अन्य सब रस वशीभूत हो जाते हैं।

जग्धाःसर्वेऽपिगच्छन्तिबलिनोवश्यतांरसाः।
यथाप्रकुपितादोषावशंयान्तिबलीयसः।

अर्थ-संपूर्ण भक्षण करेहुए रसोंमें जो अधिक रस होता है उसीके वश अन्य सब रस होजाते हैं अर्थात् अधिक रसकाही गुण होता है। उसीप्रकार कुपितदोष बलवान् दोषके वशीभूत हो जातेहैं।

एवंभुक्त्वासमाचामेदन्तग्रहणपूर्वकम् ।भोजनेदन्तलग्नानिनिर्हृत्याचमनंचरेत् । दन्तान्तरगतंचान्नंशोधनेनाहरेच्छनैः । कुर्यादनिर्हृतंताद्धिमुखस्यानिष्टगन्धताम्। दन्तलग्नमनिर्हार्यं लेपंमन्येतदन्तवत् । नतत्रबहुशःकुर्याद्यत्नंनिर्हरणंप्रति।

अर्थ–इसप्रकार भोजन करके आचमन करे फिर जलसे हाथमुखको धोवे और कुरले करे जिस्से दांतोंमें अटकाहुआ अन्न बाहर निकल जावे फिर आचमन करे। यदि कुरले करनेसे भी दांतोंमें अटकाहुआ अन्नादि न निकले तो उसको तिनके आदिसे निकालना चाहिये, क्योंकि दांतोंमें लगेहुये अन्नको न निकालनेसे मुखमें दुर्गंध आने लगती है। यदि कोई वस्तु दांतोंमें ऐसी अटक जावे कि निकालनेसे भी न निकले तो उसको बहुत यत्नभी न करे क्योंकि बहुत कुरेदनेसे मसूढेन्को हानी पहुँचती है। उस अटके पदार्थको दांतोकेही समान जानना उसका कुछ दोष नहीं है। कहीं दंतग्रहणपूर्वकी जगे " द्रूक्षग्रहणपूर्वकम् " ऐसा पाठांतर है।

द्राक्षादीनिफलानीक्षून्पयोमूलंघृतंदधि।
ताम्बूलमौषधंपत्रंहविर्भुक्त्वापिनाचमेत्।

अर्थ–दाखसे आदि ले फल, ईख, दूध, कंद, घृत, दही, तांबूल, औषध, पत्र, और हविष्यपदार्थको भोजन करनेपर भी आचमन न करना चाहिये क्योंकि इनके ऊपर आचमन करनेसे श्वास कासादि रोग प्रगट होते हैं।

भोजनानन्तर क्रिया।

आचम्यजलयुक्ताभ्यांपाणिभ्यांचक्षुषीस्पृशेत्। भुक्त्वापाणितलेघृष्ट्वाचक्षुषोर्यदिदीयते । अचिरेणैवतद्वारितिमिराणि व्यपोहति।

अर्थ–इसप्रकार हाथोंको धोय गीले हाथोंसे नेत्रोंको स्पर्श करे इस विषयमें ऐसा लिखा है कि भोजन कर हाथ धोवे फिर हाथसे हाथ मलकर नेत्रोंपर फेरनेसे उन हाथोंका पानी नेत्रोंमें लगाहुआ शीघ्र नेत्ररोगोंको नाश करे है।

भुक्त्वाचसंस्मरेन्नित्यमगस्त्यादीन्सुखावहान् । विष्णुरात्मा तथैवान्नंपरिणामश्चवैयथा । सत्येनतेनमेभुक्तंजीर्यत्वन्नमिदन्तथा।

अर्थ–भोजन करनेके पश्चात् सुखदायक अगस्त्यादि ऋषियोंका स्मरण करे, इसप्रकार कि, भोजनकर्त्ताभी विष्णु है और अन्नभी विष्णु है तथा उस अन्नका परिणाम जो है वोभी विष्णुही है, यदि यह सत्य है तो मेरा भोजन करा हुआ यह आहार पाचन होउ।

अगस्तिरग्निर्वडवानलश्चभुक्तंसमानंजरयंत्वशेषम् ।
सुखंचमेतत्परिणामसम्भवंयच्छत्वरोगंममचास्तुदेहम् ।

अर्थ-अगस्ति, अग्नि, और वडवानल, ये मेरे भोजन करेहुए अन्नको पाचन करो, उस अन्नके परिणामसे जो सुख होता है वह मुझको देउ, और मेरी देह नैरोग्य होओ ।

अङ्गारकमगस्तिश्चपावकंसूर्यमश्विनौ ।
पंचैतान्संस्मरेन्नित्यंभुक्तंतस्याशुजीर्यति ।

अर्थ-मंगल, अगस्त्यऋषि, अग्नि, सूर्य, और अश्विनीकुमार, इन पांचोंका जो पुरुष नित्य स्मरण करता है उसका भोजन कराहुआ शीघ्र पच जाता है।

अगस्तिंकुंभकर्णंचशनिंचवडवानलम् । आहारपाचनार्थाय स्मरेद्भीमश्चपश्चमम् । शर्यातिंचसुकन्यांचच्यवनंशक्रमश्वि नौ। भुक्तमात्रःस्मरेद्यस्तुचक्षुस्तस्यनहीयते ।

अर्थ-अगस्त्य, कुंभकर्ण, शनिदेव, वडवानल, और पंचम भीमसेन इनकों मैं आहार पचनेके अर्थ स्मरण करताहूं । जो मनुष्य भोजन करके शर्याति, सुकन्या, च्यवन, इन्द्र और अश्विनीकुमार इनका स्मरण करता है, उसके नेत्र कभी नष्ट नहीं होते ।

इत्युच्चार्यस्वहस्तेनपरिमार्ज्यतथोदरम् । अनायासप्रदायी-निकुर्यात्कर्माण्यतन्द्रितः । " अतन्द्रितः " निरंतरंजागृत-स्तिष्ठेन्नतुसुप्यात् । कुतः " भुक्तमात्रस्यतुस्वप्नाद्धन्त्यग्निंकु-पितःकफः । "

अर्थ-[शर्याति] इस श्लोकको त्याग कर बाकीके श्लोकोंका उच्चारण करता हुआ पेटपर हाथ फेरे तथा जिससे परिश्रम न होवे, ऐसे कर्मोंका अनुष्ठान करे (अतन्द्रितः) इस पदके कहनेका यह प्रयोजन है कि भोजन करके निरन्तर जगा करे सोवे नहीं क्योंकि सोनेंसे कफ कुपितहो मंदाग्निको प्रगट करता है ।

शब्दान्स्पर्शांश्चरूपाणिरसान्गंधान्मनःप्रियान्। भुक्तवान्सा-धुसेवेततेनान्नंसाधुतिष्ठति । शब्दःस्पर्शस्तथागन्धोरसोरूपं जुगुप्सितम् । भुक्तमप्रयतस्यान्नमतिहासंचवामयेत् ।

अर्थ-भोजनके पश्चात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, ये मनको आनंददायक ऐसे पांच विषय सेवन करने चाहिये, इसप्रकार करनेसे भोजन कराहुआ अन्न स्वस्थानमें भलेप्रकार स्थित होता है । परंतु निंदित शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, और अति हास्य इनके योग करके वमन हो जातीहै इसीसे सुंदर गीत, बाजे, आदिको सुने । सुंदर वस्तु आदिको देखनी चाहिये ।

भोजनोत्तर दोषवृद्धि ।

जीर्णेऽन्नेवर्द्धतेवायुर्विदग्धेपित्तमेधते ।
भुक्तमात्रेकफश्चापिक्रमोऽयंभोजनोपरि ।

अर्थ-अन्न पचनेपर वात बढती है, और अन्न पचतेसमय पित्त बढता है, और भोजन करतेही कफ बढता है। यह क्रम भोजनकरनेके उपरांत जानना।

कफप्रतीकार ।

धूमेनापोह्यह्द्यैर्वाकषायकटुतिक्तकैः। कंफचभक्षयेद्युक्तंताम्बूलंक्रमुकादिभिः। पूगकर्पूरकस्तूरीलवंगसुमनंफलैः। फलैः कटुकषायैर्वामुखवैशद्यकारिभिः। ताम्बूलपत्रसहितैःसुगंधैर्वाविचक्षणः।

अर्थ-भोजनके पश्चात् मुखशोधन करके बाद धूमपान आदि करके अथवा कषेले चरपरे और कडुए रसोंके सेवन करके कफको नष्टकर तदनंतर सुपारी आदि करके युक्त ताम्बूल (बीडा) खाना चाहिये ।

ताम्बूलभक्षणके गुण ।

कामंप्रदीपयातिरूपमभिव्यनक्तिसौभाग्यमावहतिवक्रसुगन्धिताञ्च । ऊर्ज्जकरोतिकफजांश्चनिहन्तिरोगांस्ताम्बूलमेवमपरांश्चगुणान्करोति।

अर्थ-कामोद्दीपन करे, रूपको उज्ज्वल करे, तथा सुभगता और मुखको सुगंधित करे, बल करे, तथा कफजन्य रोगोंको दूर करे इसीप्रकार अन्य गुणोंकोभी ताम्बूल भक्षण करना करता है ।

चन्द्रश्चन्द्रनिभाननेचखदिरंपत्रंत्वगेलासुधाजातीपत्र्ययिपत्रयुक्तवदनेकङ्कोलजातीफलम् । कस्तूरीचलवङ्गमेणिनयनेबाह्लीकपुगीफलंद्रव्यैरेभिरपित्रयोदशमितैस्ताम्बूलमित्युच्यते ।

अर्थ-कपूर, कत्था, तमाखू, दालचीनी, छोटी इलायचीके बीज,चूना, जा-

वित्री, कंकोल, जायफल, कस्तूरी, लोंग, केशर, और सुपारीके वर्क इन १३ पदार्थोंको बीडाके पानमें धरके तांबूल कहते हैं उसको बीडा बनायकर भक्षण करना चाहिये ।

पानके सत्ताईस गुण ।

ताम्बूलंकटुतिक्तमुष्णमधुरंक्षारं कषायंसरंरुच्यंवीर्यकरंलघुप्रियतमंवैशद्यसौगन्ध्यकृत । आस्यस्याभरणंप्रसेकशमनंदौर्गन्ध्यहृच्छुद्धिकृज्जन्तुश्लेष्ममरुद्गलामयहरंकान्तिप्रदंवश्यकृत् । वृष्यंदन्तविरञ्जनंश्रमहरंसौभाग्यदंकीर्त्तितंजिह्वाजाड्यगदापहंमुनिवरैर्नक्षत्रगुण्यंमतम् ।

अर्थ--ताम्बूल चरपरा, कडुआ, गरम, मीठा खारी, कषेला, दस्तावर, रुचिकर, वीर्यकारक, लघु,स्वच्छताकारक, सौगन्ध्यकारक, मुखको शोभित करता, मुखसे जो लार गिरती है उसको रोकनेवाला, मुखकी दुर्गंधतानाशक, शुद्धिकर, और कृमिनाशक, तथा कफ, वायु, गलरोग, इनका नाशक कांतिकर, वशीकरणकरता, वृष्य, दांतोंको रंगनेवाला, श्रमनाशक, सौभाग्यदायक, और जीभकी जडता नाशकारक, ऐसे ताम्बूलमें २७ गुण हैं ।

चूनाकत्थाके न्यूनाधिकमें कथन ।

युक्तेनचूर्णेनकरोतिरागंरागक्षयंपूगफलातिरिक्तम् । चूर्णाधिकंवक्त्रविगंधकारिपत्राधिकंसाधुकरोतिगंधम् । पत्राधिकंनिशिहितंसफलंदिवाचप्रोक्तान्यथाकरणमस्यविडम्बनैव । कंकोलपूगलवलीफलपारिजातैरामोदितंमदमुदामुदितंकरोति ।

अर्थ--उचित चूनेसे बीडा मुखमें रंग करता है। और बीडेमें सुपारी अधिक होवेतो रंगका नाश होता है । यदि पानमें चूना अधिक लगायाजाय तो मुखमें दुर्गंध करता है। और पत्राधिक होयतो सुगंध करे रात्रिमें पत्राधिक बीडा खाना हित है, और दिनमें सुपारी सहित खाना हित है, इस्से विपरीतबीडा खाना केवल विडंबन मात्र हैं । कंकोल, सुपारी, लोंग जायफल, इनसे सुगंधित ताम्बूल मनुष्यको मदोन्मत्त आनन्दसे आनंदित करता है ।

चूनेकत्थेआदिका प्रमाण ।

गुंजार्द्धचूर्णकंचैवतत्समंखादिरंमतम् । माषैकंक्रमुकंसर्वंकर्पूरादिगणंचयत् । मिश्रितंपूगतुल्यंस्यात्ताम्बूलेमानमीरितम् ।

अर्थ–चूना और कत्था आध आध रत्ती लगावे, सुपारीका चूरा ६ रत्ती और कपूर लोंग आदिका चूर्ण ६ रत्ती इस प्रमाणसे बीडा बनाना चाहिये ।

बीडाखानेका समय ।

रतौसुतोत्थितेस्नातेभुक्तेवान्तेचसंगरे ।
सभायांविदुषांराज्ञांकुर्यात्ताम्बूलचर्वणम् ।

अर्थ–स्त्रीसंभोगके समय, शयनसे उठकर, स्नान पूजादिसे निवृत्त होकर, भोजन करके, वमन करके, युद्धमें (कुश्ती, वा संग्राममें) राजा अथवा पंडितोंकी सभामें, इतनी जगह बीडा खाना चाहिये ।

नवंतदेवमधुरंकषायानुसरंगुरु । बलासजनकंप्रायःपत्रशाकसमंस्मृतम् । पर्णपुराणमकटुक्षुल्लकंतनुपांडुरम् । विशेषाद्गुणवज्ज्ञेयमन्यद्धीनगुणंमतम् ।

अर्थ–नया पान मीठा, कषेला, भारी, कफकारक, और पत्रशाकके समान गुणोंमें है यदि पान पुराने होवे तो चरपरे नहीं हो और हलके, पतले, पीले होते हैं । वो विशेष गुण करते हैं । और कोमल (मुरझे) पान हीनगुण होते हैं ।

सुपारीके गुण ।

पूगंगुरुहिमंरूक्षंकषायंकफपित्तनुत् ।
मोहनंदीपनंरुच्यमास्यवैरस्यनाशनम् ॥

अर्थ–सुपारी भारी, शीतल, रूखी, कषेली, कफपित्तनाशक, मोहकर्त्ता, दीपन, रुचिकारी, और मुखकी विरसताको नाश करे हैं ।

पूगंस्याद्दृढमध्यंयत्स्विन्नंवापित्रिदोषनुत् ।
सरसंगुर्वभिष्यन्दितद्भृशंवह्निनाशनम् ॥

अर्थ–सुपारी जो बीचमें कठोर तथा सिजायकर तयार करी अर्थात् चिकनी सुपारी त्रिदोषनाशक, स्वादिष्ठ, भारी, लार बहानेवाली और वह्निनाशक है ।

कत्थे चूने और पानके मिलेहुए गुण ।

खदिरःकफपित्तघ्नश्चूर्णवातबलासनुत् ।
संयोगतस्त्रिदोषघ्नःसौमनस्यंकरोतिच ।

अर्थ–कत्था कफपित्तको नाश करता है, चूना वातकफको दूर करे, इन कत्थे चूने और पानके मिलनेसे त्रिदोषघ्न होजाता है । और मनको प्रसन्न करे है । यदि बीडीमें चूनेकी अधिकतासे मुख फटजावे तो उत्तम कत्थेका चूर्ण उस फटे स्थानमें बुरकनेसे अच्छा होता है कोई कोई चूने कत्थेको गुलाबजल आदिमें भिजोकर सुगंधित करते हैं ।

पानके त्याज्य अंग ।

आयुरग्रेयशोमूलेलक्ष्मीर्मध्येव्यवस्थिता । तस्मादग्रंतथामूलंमध्यंपर्णस्यवर्जयेत् । पर्णमूलेभवेद्व्याधिःपर्णाग्रेपापसंभवः । चूर्णपत्रंहरत्यायुः शिराबुद्धिविनाशिनी ।

अर्थ–पानके अग्रभागमें आयुष्य, मूलमें यश, मध्यभागमें लक्ष्मी रहती हैं । इसीसे पानका मूल मध्य, और अग्रभाग त्यागकर भक्षण करना चाहिये । पानका मूल भक्षण करनेसे व्याधि प्रगट हो, अग्रभाग खानेसे पाप हो, तथा पानका चूरा करके खानेसे आयुष्य नष्ट हो, और शिरायुक्त (पानकी लकीर होती है उनके बिना निकाले) खानेसे बुद्धिका नाश होता है ।

पानकी पीकके गुणागुण ।

आद्यंविषोपमंपीकंद्वितीयंभेदिदुर्जरम् ।
तृतीयादितुपातव्यंसुधातुल्यंरसायनम् ॥

अर्थ–बिडी चबायकर उसकी प्रथम पीक थूक देवे, यह विषके समान मारक है। और दूसरी पीक रेचक और दुर्जर है। तथा तीसरी पीक न थूके उसको निगल जावे यह अमृतके तुल्य हितकारक है । तथा जरा व्याधि इनको नाशक है ।

बिना पानके सुपारीखाना निषेध ।

अनिधायमुखेपर्णंपूगंखादतियोनरः ।
दशजन्मदरिद्रःस्यात्ततश्चाधोगतिंव्रजेत् ॥

अर्थ–बिडीके पान विना जो मनुष्य सुपारी खाता है वह दशजन्म दरिद्रीहो फिर अधोगतिको जाता है । परंतु यह निषेध बिडी खानेवालेके प्रति है अन्यको नही हैं ।

ताम्बूलनिषेध ।

ताम्बूलंनातिसेवेतनविरिक्तोबुभुक्षितः । देहदृक्केशदन्ताग्नि-

श्रोत्रवर्णबलक्षयः । शोषःपित्तानिलास्रंस्यादतिताम्बूलभक्षणात् । ताम्बूलंनहितंदन्तदुर्बलेक्षणरोगिणाम्। विषमूर्च्छामदार्त्तानांक्षतिनांरक्तपित्तिनाम् ।

अर्थ--जिसको विशेष दस्तहुये हो, तथा भूख लग रहीहो इनको बीडा नहीं खाना चाहिये, यदि खाय तो देह, दृष्टि, केश, दांत, अग्नि, कान, कांति और बल इनका क्षय हो। तथा शोष, पित्त, वातरक्त, ये विकार होते हैं और जिसके दांत दुर्बल हो नेत्ररोग, विष, मूर्च्छा, मद, इनसे पीडित उरःक्षती, तथा रक्तपित्ती, इनको तांबूलभक्षण अहितकारी जानना।

शतपदगमन।

भुक्त्वाशतपदींगच्छेच्छनैस्तेनतुजायते । अन्नसंघातशैथिल्यंग्रीवाजानुकटीसुखम् । भुक्तोपविशतस्तुन्दंशयानस्यतु पुष्टता । आयुश्चंक्रममाणस्यमृत्युर्धावतिधावतः ।

अर्थ–भोजनानंतर धीरे धीरे सौंपैड (सौकदम) चलना चाहिये, इस्से अन्न समूह शिथिल होता है और ग्रीवा (नाड) जानु और कमर इनको सुख होता है। जो मनुष्य भोजन करतेही बैठ जाता है उसकी थौद छिटक पडती है। सोनेसे मेद बढकर पुष्टता होती है । और धीरे धीरे डोलनेसे आयु बढती है। तथा भोजनकरके दौडनेसे उसके साथ, मृत्यु दौडती है।

शयनक्रम ।

श्वासानष्टौसमुत्तानस्तान्द्विःपार्श्वेतुदक्षिणे ।
ततस्तुद्विगुणान्वामेपश्चात्सुप्याद्यथासुखम् ॥

अर्थ–भोजनानंतर सौ कदम डोलकर आठश्वासपर्यंत चित्त लेट जावे, फिर सोलहश्वास दहनी करवट सोवे फिर ३२ श्वास निकले इतनी देरतक बाँई करवट सोवे पीछे अपनी इच्छानुसार चाहिये जिधरकी करवटसे सोवे।

वामपार्श्वशयनका कारण ।

वामदिशायामनलोनाभेरूर्ध्वोऽस्तिजंतूनाम् ।
तस्मात्तुवामपार्श्वेशयीतभुक्तप्रपाकार्थम् ॥

अर्थ–बांई तरफ नाभीके ऊपर अग्नि स्थान है, इसीसे भोजन करे हुए मनुष्यको अन्नके परिपाकार्थ बांई करवट शयन करनी चाहिये।

खट्वादिके गुण।

त्रिदोषशमनीखट्वातूलीवातकफापहा। भूशय्याबृंहणीवृष्या काष्ठपट्टीतुवातला। मतान्तर। भूशय्यावातलातीवरूक्षा पित्तास्रनाशिनी।

अर्थ--खाट (चरपाई) त्रिदोषको शमन करती है, और रूई वातकफको नाश करती है। पृथ्वीमें शयन करना स्थूलता और वृष्यताको करे है। लकडीकी पट्टीपै (मैज कौच) आदिपर सोना वादी करे है। किसीके मतसे पृथ्वीमें शयन बादीकरे, और अतीव रूक्ष तथा रक्तपित्तको नाश करे है।

श्रेष्ठ शय्याके गुण।

सुशय्याशयनंहृद्यंपुष्टिनिद्राधृतिप्रदम्।
श्रमानिलहरंवृष्यंविपरीतमतोऽन्यथा॥

अर्थ–सुंदर सेजपर शयन करना प्रियकारक तथा पुष्टि, निद्रा, और धैर्यको करे है। तथा श्रम और वायु इनका नाश करे तथा स्त्रीविषयमें बँधेज करे इस्से विपरीत अर्थात् दुष्टशय्या होय तो इस्से विपरीत गुण करे अर्थात् अप्रिय तथा कृश, अनिद्रा, और धैर्यच्युति, तथा श्रम और वायुको प्रगट करे।

पादसंवाहन।

संवाहनंमांसरक्तत्वक्प्रसादकरंपरम्।
प्रीतिनिद्राकरंवृष्यंकफवातश्रमापहम्।

अर्थ–पैरोंका दबाना मांस, रक्त, और त्वचा इनको स्वच्छ करे, तथा प्रीति, निद्रा, इनको उत्पन्न करे, और कफ, वायु, श्रम, इनका नाश करे हैं।

शयनोत्तर पवन खाना निषेध।

प्रवातंरौक्ष्यवैवर्ण्यस्तम्भहृद्दाहपित्तनुत्।
स्वेदमूर्च्छापिपासाघ्नमप्रवातमतोऽन्यथा।

अर्थ–निद्रा लेकर हवा खाना रूक्ष है, तथा विवर्णता, स्तंभ, इनको करे है। और दाह, पित्त, पसीने, मूर्च्छा, प्यास, इनको नाश करे तथा हवा न खानेसे उक्तगुण विपरीत होते हैं।

हवा खानेका काल।

सुखंप्रवातंसेवेतग्रीष्मेशरदिचान्तरा।
निर्वातमायुषेसेव्यमारोग्यायचसर्वथा।

अर्थ–गरमीकी ऋतुमें तथा शरदऋतुमें सुखपूर्वक हवा खानी चाहिये । परंतु आयु और आरोग्यकेलिये निर्वात स्थानही सेव्य है । निर्वात कहनेसे अत्यंत पवनका निषेध है क्योंकि हवादार मकानमें रहना इसमें सबकी संमति है ।

पूर्वदिशाकी पवन ।

पूर्वोनिलोगुरुःसोष्णस्निग्धःपित्तास्रदूषकः । विदाहीवातलः श्रांतिकफशोषवतांहितः । स्वादुःपटुरभिष्यन्दीत्वग्दोषा र्शोमुखकृमीन् । सन्निपातज्वरंश्वासमामवातंचकोपयेत् ।

अर्थ–पूर्वकी वायु भारी, गरम, स्निग्ध, और पित्त तथा रक्तको कुपित करनेवाली, दाहक, वातकर, ऐसा है । तथा श्रमी, कफवाला, और शोषी इनको हितकारी है । स्वादु, खारी, पुष्टिकारक, त्वचाके दोष, बवासीर, दांतोंमें कीडा, सन्निपात, ज्वर, श्वास, तथा आमवात इनको कुपित करता है ।

दक्षिणपवनके गुण ।

दक्षिणःपवनःस्वादुःपित्तरक्तहरोलघुः ।
वीर्येणशीतलोबल्यश्चक्षुष्योनतुवातलः ।

अर्थ--दक्षिणकी पवन स्वादु, रक्तपित्तका नाशक, वीर्य करके शीतल, बलकारक, नेत्रोंको हितकारी और अवातल है । अर्थात् बादी नहीं करे इसीसे बहुतसे मनुष्य प्रातःकाल इसका सेवन करते हैं ।

पश्चिमपवनके गुण ।

पश्चिमःपवनस्तीक्ष्णःशोषणोबलहृल्लघुः ।
मेदपित्तकफध्वंसीप्रभंजनविवर्द्धनः ।

अर्थ--पश्चिमकी पवन तीक्ष्ण, और शोषण, (अर्थात् सर्व वस्तुओंको सुखानेवाली) बलहरणकर्त्ता, और हलकी है । तथा मेद, पित्त, और कफनाशक, तथा वातबढानेवाली है ।

उत्तरपवनके गुण ।

उत्तरोमारुतःशीतःस्निग्धोदोषप्रकोपकृत् ।
क्लेदनःप्रकृतिस्थानां बलदोमधुरोमृदुः ।

अर्थ–उत्तरकी पवन शीतल, स्निग्ध, और दोषोंको कुपित करता है । वातप्रकृतिवालोंको ग्लानिकारक और बलकारक, मधुर तथा नम्र है ।

आग्नेयादि विदिशाकी पवनके गुण ।

आग्नेयोदाहकृद्रूक्षोनैर्ऋतोनचदाहकृत् ॥
वायव्यस्तुभवेत्तिक्तऐशानःकटुकःस्मृतः ।

अर्थ--अग्निकोणकी पवन दाहकर्त्ता और रूक्ष है, नैर्ऋतकी दाह नहीं करे वायव्यकी पवन कडुई है । और ईशानकी हवा चरपरी है ।

अनेक दिशाकी संयुक्तपवनके गुण ।

विष्वग्वायुरनायुष्यःप्राणिनांबहुरोगकृत् ।
अतस्तंनैवसेवेतसेवितःस्यान्नशर्मणे ।

अर्थ--अनेक दिशाकी पवन मिलीहुई आयुष्यनाशक, तथा प्राणियोंके अनेक रोग करनेवाली है इसीसे ऐसी पवन कभी नहीं सेवन करनी । यदि सेवन करे तो सुख नहीं हो किंतु दुःख हो ।

पंखेकी पवनके गुण ।

व्यजनस्यानिलोदाहस्वेदमूर्च्छाश्रमापहः । तालवृन्तभवो वातास्त्रिदोषशमनोमतः । वंशव्यजनजस्तूष्णोरक्तपित्तप्रकोपनः । चामरोवस्त्रसंभूतोमायूरोवेत्रजस्तथा । एतेदोषजिता वातःस्निग्धाहृद्याःसुपूजिताः ।

अर्थ--पंखेकी पवन दाह, पसीने, मूर्च्छा, और श्रम, इनका नाशक है । ताडके पंखेकी पवन त्रिदोषनाशक जानना । बाँससे बना पंखा गरम और रक्तपित्तको कुपित करनेवाला जानना, तथा चमर, कपडेका पंखा मोरपंखकी पंखी, वा मोरछल, और बेतका पंखा, इनकी पवन त्रिदोषनाशक, स्निग्ध, प्रिय और उत्तम जानना इसीप्रकार हाथीदांत आदिकी पंखियोंके गुण विचार लेने ।

दिनमें सोनानिषेध ।

दिवास्वापंनकुर्वीतयतोसौस्यात्कफावहः ।
ग्रीष्मवर्ज्येषुकालेषुदिवास्वापोनिषिध्यते ।

अर्थ--दिनमें नहीं सोना चाहिये, क्योंकि दिनमें सोना कफ करता है, परंतु ग्रीष्मऋतुको त्याग कर अन्य ऋतुमें दिनका सोना निषेध है । गरमियोंमें तो अवश्य मध्याह्नमें सोवे ।

दिनमें सोनेकी आज्ञा ।

उचितोहिदिवास्वापोनित्यंयेषांशरीरिणाम् । वातादयःप्रकु-

प्यन्तितेषामस्वपतांदिवा । व्यायामप्रमदाध्ववाहनरता-न्क्लांतानतीसारिणः शूलश्वासवतस्तथापरिगतान्हिक्का-मरुत्पीडितान्। क्षीणान्क्षीणकफाञ्छिशून्मदहतान्वृद्धांस्त-थाजीर्णिनोरात्रौजागरितान्नराब्निरशनान्कामंदिवास्वापयेत्।

अर्थ–जिनके दिनमें न सोनेसे वातादिक दोष कुपित होतेहो उन प्राणियोंको दिनमें सोना उचित है इसजगे [वातादयः] इस पदमें जो आदि शब्द है वो पित्तका बोधक है कफका नहीं है ।

दंडकसरत, स्त्रीसंग, और मार्ग चलनेसे जो थकित है, तथा सवारीमें बैठनेवाले, ग्लान, अतिसारी, शूलवाला, श्वास, हिचकी, वात, क्षीण, और क्षीणकफवाला इतने रोगियोंको तथा बालक, मादक पदार्थ भक्षण करने-वाला, वृद्ध, अजीर्णरोगी, रात्रिमें जगाहुआ, और जिसने उपवास कराहो इतने रोगियोंको दिनमें यथेच्छ सुलाना चाहिये ।

स्वाधीननिद्राके गुण ।

दिवावायदिवारात्रौनिद्रासात्मीकृतातुयैः ।
नतेषांस्वपतांदोषोजाग्रतांचोपजायते ।

अर्थ–दिनमें या रात्रिमें जिन मनुष्योंने निद्रा अपने आधीन कर रक्खी है, उनको दिनमें सोना न सोना तथा रात्रिमेंजागना न जागना दोषकारी नहीं होता ।

भोजनोत्तर निद्राके गुण ।

भोजनानन्तरंनिद्रावातंहरतिपित्तकृत्। कफंकरोतिवपुषःपु-ष्टिंसौख्यंतनोतिहि । शयनंपित्तनाशायवातनाशायमर्दनम्। वमनंकफनाशायज्वरनाशायलंघनम् । आसीनघूर्णितंयत्तु नाभिष्यंदिनरूक्षणम् ।

अर्थ–भोजनके पश्चात् शयन करना वातहरण करे, और पित्तको बढावे, कफ करे, देहको पुष्ट करे, और सुख करे । जैसे किसीने लिखा है कि–पित्त-नाशके अर्थ निद्रा, वात नाशनार्थ तेल आदिका मर्दन, कफके दूर करनेको वमन, और ज्वर नाशनार्थ लंघन करना चाहिये । यदि बैठे बैठे निद्रा लेवे तो वह पुष्टि और रूक्षताको नहीं करे ।

भोजनोत्तर अन्य वस्तु वर्जित ।

शयनंचासनंचातिनभजेन्नद्रवाधिकम् । नाग्न्यातपौनप्लवनं नयानंनापिवाहनम् । व्यायामंचव्यवायंचधावनंयानमेवच । युद्धंगीतंचपाठंचमुहूर्त्तंभुक्तवांस्त्यजेत् ।

अर्थ-अत्यंत निद्रा, अति भोजन, अत्यंत पतले पदार्थोंका भक्षण, अग्नि धूपखाना, जलमें तैरना, मार्ग चलना, सवारीपर बैठना, व्यायाम करना, स्त्रीगमन, दौडना, चलना, युद्ध (कुश्ती) करना, गान करना, और पढना ये भोजनकरके दो घडीपर्यंत न करे ।

अग्न्यादि तापनेके निषेधमें प्रमाण ।

अग्न्यातपप्लवनयाननिषेवणैश्चव्यायाममैथुनविधावनयुद्धगीतैः । एभिश्चतत्क्षणकृतैर्विषमाशनाच्चह्यन्नंनपाकमुपयात्यपिजागराच्च ।

अर्थ-अग्निसेवन, धूपमें बैठना, उछलना, कूदना, सवारी, दंडकसरत, मैथुन, दौडना, कुश्ती, तथा गाना, ये भोजन करनेपर तुरंतही करनेसे तथा विषमाशन और जागरण इनके करनेसे अन्न परिपाक नहीं होता ।

अजीर्णमें भोजनका विधिनिषेध ।

प्रातराशेत्वजीर्णेपिसायमाशोनदुष्यति ।
सायमाशेह्यजीर्णेचप्रातर्भुक्तंविषोपमम् ।

अर्थ-प्रातःकालमें भोजन करा अन्न यदि न पचाहोय तथापि सायंकालमें भोजन करे तो कुछ दोष नहीं है । परंतु सायंकालका भोजन न परिपक्व भयाहो और प्रातःकाल भोजन करे तो वह विषके समान जानना ।

भवेद्यदिप्रातरजीर्णशङ्कातदाभयानागरसैन्धवाभ्याम् ।
विचूर्णितांशीतजलेनभुक्त्वाभजेत्ततोऽन्नंमितमन्नकाले ॥

अर्थ--यदि प्रातःकाल अजीर्णकी शंका होवे तो छोटी हरड, सोंठ और सैंधानिमक, इनका चूर्ण शीतलजलसे लेय, और भोजनके समय परिणाम का भोजन करे ।

प्राग्भुक्तेत्यनलेमन्देद्विरह्नोनसमाहरेत् ।
पूर्वभुक्तेविदग्धेऽन्नेभुंजानोहंतिपावकम् ।

अर्थ-रात्रिका भोजन न पचाहोय तो दिनमें दोवार न भोजन करे, और सायंकालके अजीर्णमें दूसरे दिन भोजन करनेसे मंदाग्नि होती है ।

तथा अन्य कारण ।

अत्यम्बुपानाद्विषमाशनाच्चसंधारणात्स्वप्नविपर्ययाच्च ।
कालेऽपिसात्म्यंलघुचापिभुक्तमन्नंनपाकंभजतेनरस्य ॥

अर्थ-अत्यंत जल पीनेसे, भोजनके ऊपर भोजन करनेसे मलमूत्र आदि वेगोंको धारण करनेसे निद्राके विपरीततासे अर्थात् निद्राके समय जागना और जागनेके समय सोनेसे, इन उक्त कारणोंकरके समयपर मनवांछित और हलकाभी भोजन कराहुआ अन्न अच्छेप्रकार नहीं पचता । इसप्रकार दैहिक कारण कहकर अब मानसिक कारणोंको कहते हैं ।

ईर्ष्याभयक्रोधपरिप्लुतेनलुब्धेनरुग्दैन्यनिपीडितेन ।
विद्वेषयुक्तेनचसेव्यमानमन्नंनसम्यक्परिपाकमेति ।

अर्थ-ईर्ष्या, भय, क्रोध, इनकरके युक्त पुरुषोंके तथा लोभी, रोगी, दीनता करके पीडित और द्वेषयुक्त चित्त जिसका ऐसे पुरुषोंके सेवन कराहुआ अन्न भलेप्रकार परिपाक नहीं होता ।

अध्यशनके लक्षण ।

अजीर्णेभुज्यतेयत्तुतदध्यशनमुच्यते ।

अर्थ-अजीर्णमें फिर दूसरे भोजन करनेको अध्यशन कहते हैं ।

दिनमें स्त्रीगमननिषेध ।

आयुःक्षयभयाद्विद्वान्नाह्निसेवेतकामिनीम् ।
अवशोयदिसेवेततदाग्रीष्मवसन्तयोः ।
आस्यावर्णकफस्थौल्यसौकुमार्यसुखप्रदा ।

अर्थ--विद्वान् पुरुषोंको आयुक्षयके भयसे दिनमें स्त्रीसेवन नहीं करना चाहिये । यदि इन्द्रियोंके वश होकर करेभी तो ग्रीष्मऋतु, और वसंतऋतुमें करे । तथा बैठना वर्ण, कफ, स्थूलता, सुकुमारता, और सुख इनको देय है ।

मार्गसेवन ।

अध्वावर्णकफस्थौल्यसौकुमार्यविनाशनः । यत्तुचङ्क्रमणं नातिदेहपीडाकरंभवेत् । तदायुर्बलमेधाग्निप्रदमिन्द्रियबोधनम् ।

अर्थ–मार्ग चलना कफ, स्थूलता, सुकुमारता, इनका नाश करे है। और बागोंमें डोलना फिरना देहको पीडाकारी नहीं है। किंतु आयुष्य, बल, बुद्धि, अग्नि इनको बढाता है। और इन्द्रियोंको चैतन्य करे है।

उष्णीष (पगडी) के गुण।

उष्णीषंकांतिकृत्केश्यंरजोवातकफापहम्।
लघुतच्छस्यतेयस्माद्गुरुपित्ताक्षिरोगकृत्।

अर्थ–पगडीका धारण करना कांति करे, बालोंको हित, धूल, वायु, कफ, इनको नाश करे परंतु पगडी हलकी हो, यदि भारी होवे तो पित्त, और नेत्ररोग करती है। परंतु दक्षिणी ब्राह्मणोंने कदाचित् यह श्लोक न सुना होगा।

उपानह (जोडा) धारण।

उपानद्धारणंनेत्र्यमायुष्यंपादरोगहृत्।
सुखप्रचारमोजस्यंवृष्यंचपरिकीर्तितम्।

अर्थ–पैरोंमें जोडा अथवा मौजा पहरना नेत्रोंको हित है, आयु बढे, तथा पैरोंके रोग नष्ट हों, और सुखपूर्वक फिरना होता है, ओज बढे और वृष्य है। परंतु जाडोंके दिनोंमें तो अवश्य मोजा पहन कर फिर जोडा धारण करने चाहिये। जोडा पहननेमें अपनी अपनी रुचि है कोई देशी, कोई पंजाबी और कोई अंगरेजी जोडा पसंद करता है।

जोडा नपहननके अवगुण।

पादाभ्यामनुपानद्भ्यांसदाचङ्क्रमणंनृणाम्।
अनारोग्यमनायुष्यमिन्द्रियघ्नमदृष्टिदम्।

अर्थ--सदैव विना पैरोंमें जोडा पहनने डोलनेसे रोग करे, अनायुष्य करे, और इन्द्रियोंको नष्ट करे तथा नेत्रकी ज्योति मंद करे है।

छत्रधारणगुण।

छत्रस्यधारणंवर्षातपवातरजोपहम्।
हिमघ्नंहितमक्ष्णोश्चमाङ्गल्यमपिकीर्तितम्।

अर्थ–डोलतेसमय मस्तकपर छत्रीका लगाना वर्षा, धूप, हवा, शीत, और धूलीको नाश करे। और नेत्रोंको हितकारक तथा मांगल्यकारक जाननी। राजे महाराजेन्के योग्य छत्रधारणका निर्णय बृहत्संहिताकी ७२ अध्यायमें लिखा है।

दण्डधारण ।

सत्वोत्साहबलस्थैर्यधैर्यवीर्यविवर्द्धनम् ।
अवष्टम्भकरंचापिभयघ्नंदण्डधारणम् ।

अर्थ–बाहर फिरनेके समय हाथमें लकडी रखनी चाहिये, इसके रखनेसे सत्व, उत्साह, बल, स्थिरता, धैर्य, वीर्य, इनको बढावे । तथा आश्रय देवे और भयको दूर करे है ।

शिबिकारोहण ।

ऊर्ध्वाच्छादनसंयुक्ताशिबिकासर्ववल्लभा ।
तस्यामारोहणंनृणांत्रिदोषशमकंमतम् ।

अर्थ–जिसके ऊपर पडदा पडाहो ऐसी पिन्नस या पालकीमें बैठना सबको प्रिय है । यह त्रिदोषको दूर करती है ।

नौकायान ।

वातश्लेष्मगदार्त्तानामहिताभ्रमकृत्तरी ।

अर्थ–नावमें बैठकर दर्यावकी शैर करना वातकफवाले रोगियोंको अहित है । क्योंकि इनको भ्रम करे है ।

हास्तियान ।

पित्तानिलकरोहस्तीलक्ष्म्यायुःपुष्टिवर्धनः ।

अर्थ–हाथीकी सवारी वातपित्त करे है । और लक्ष्मी, आयुष्य, तथा पुष्टि इनको बढावे है ।

अश्वयान ।

घोटकारोहणंवातपित्ताग्निश्रमकृन्मतम् ।
मेदोवर्णकफघ्नंचाहितंतद्बलिनांवरम् ।

अर्थ–घोडेकी सवारी वातपित्त, अग्नि, और श्रमको करे है । तथा मेद, वर्ण, और कफ इनका नाश करे । परंतु घोडेपर चढना बलीपुरुषोंको कहा है । और बलीपुरुषोंको हितकारक जानना ।

धूप और छायाके गुण ।

आतपःस्वेदमूर्च्छास्रपित्ततृष्णाक्लमश्रमान् ।
दाहंविवर्णतांकुर्यादेतांश्छायाव्यपोहति ।

अर्थ–धूप, पसीने, मूर्च्छा, रक्तपित्त, तृषा, ग्लानि, श्रम और दाहको करती है । तथा वर्णको पलट देती है और छाया इन सब विकारोंकोनाश करती है।

वर्षाके गुण ।

वृष्टिर्वृष्याहिमाबल्यानिद्रालस्यविधायिनी ।
भयावहामोहकरीकुवृष्टिःकफवातला ।

अर्थ–मेघोंकी वृष्टि–वृष्य, शीतल, बलकारी, निद्रा, और आलस्य इनको देती है । तथा अतिवृष्टि, भय, मोह और कफ वातको करे है । कोई यह गुण कुहरके कहता है ।

अग्निगुण ।

अग्निर्वातकफस्तंभशीतवेपथुनाशनः ।
आमाभिष्यन्दशमनोरक्तपित्तप्रकोपनः ।

अर्थ–अग्नि–वायु, कफ और अंगके जिकड जानेको, शीत, तथा शरदीके योगसे कंप, आम,और अभिष्यन्द (नेत्ररोग)इनका नाशक है । तथा रक्तपित्तको कुपित करनेवाला है ।

धूम (धूँए) के गुण ।

सद्यःश्लेष्मकरोधूमोनेत्रयोरहितोभृशम् ।
शिरोगौरवकृच्चापिवातंपित्तंचकोपयेत् ।

अर्थ–धूआं सद्य कफकारी है और नेत्रोंको अत्यंत अहित है, मस्तकको भारी करनेवाला तथा वात पित्तको कुपित करनेवाला ऐसा है ।

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारेबृहन्निघंटुरत्नाकरे दिनचर्यावर्णनंनाम सप्तविंशतितमस्तरंगः ॥ २७ ॥

अब सदाचार कहनेके अर्थ इन्द्रियोपक्रमणीय अध्यायको चरकसे लिखते हैं ।

अथात इन्द्रियोपक्रमणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ–अब इन्द्रियोपक्रमणीय अध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

इहखलुपञ्चेन्द्रियाणि, पञ्चेन्द्रियद्रव्याणि, पञ्चेन्द्रियाधिष्ठानानि, पञ्चेन्द्रियार्थाः, पञ्चेन्द्रियबुद्धयोभवन्तीत्युक्तमिन्द्रियाधिकारे। अतीन्द्रियं पुनः मनः सत्वसंज्ञकञ्चेत्याहुरेके तदर्थात्मसम्पत्तदायत्तंचेष्टम् ।

अर्थ–इस आयुर्वेदशास्त्रमें पांचइन्द्री, पांच इन्द्रियोंकी द्रव्य, पांच इन्द्रियोंके अधिष्ठान, पांच इन्द्रियोंके अर्थ, और पांचही इन्द्रियोंकी बुद्धि होती है

यह इन्द्रियाधिकारमें कहा है। और कोई आचार्य मनको इन्द्रियोंसे अति-रिक्त सत्वसंज्ञक कहते हैं। उसीमनके अर्थ आत्मसम्पत् है । और उसीके आधीन संपूर्ण देहकी चेष्टा कही है।

चेष्टा और सत्व।

चेष्टाप्रत्ययभूतमिन्द्रियाणाम् । स्वार्थेन्द्रियार्थसङ्कल्पव्यभि-चाराणाञ्चानेकमेकस्मिन्पुरुषेसत्वम् ।

अर्थ-इन्द्रियोंके प्रत्ययभूत (अर्थात् इन्द्रियोंको प्रतीतभूत) को चेष्टा कहते हैं। तथा स्वार्थ (अपना प्रयोजन) इन्द्रियार्थ (इन्द्रियोंका विषय) संकल्प और व्यभिचार ये एकपुरुषमें अनेक सत्व होते हैं।

रजस्तमःसत्वगुणयोगाच्चनचानेकत्वंनानेकंह्येककालमनेकेषु प्रवर्त्तते। तस्माच्चानेककालासर्वेन्द्रियप्रवृत्तिः । यद्गुणंचा-भीक्ष्णंपुरुषमनुवर्त्ततेसत्वंतत्सत्वमेवोपादिशंतिऋषयोबाहु-ल्यानुशयात् ।

अर्थ-रजस्तमःसत्वगुणयोगसेही सत्वको अनेकत्व है। परंतु अनेकत्व और अनेक सत्व एक कालमेंही अनेक वस्तुओंमें प्रवृत्त नहीं होता है। इसीसे अ-नेक काल इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति है। जिस गुणका सत्व वारंवार पुरुषमें वर्त्ते उसकी बाहुल्यतासे ऋषीश्वर उस पुरुषमें तद्गुणसत्व कहते हैं।

मनःपुरस्सराणीन्द्रियाण्यर्थग्रहणसमर्थानिभवंति ।

अर्थ-मनहै अग्रगामी जिन्होंमें ऐसी इन्द्री अर्थको ग्रहण करनेको समर्थ होती है। अर्थात् प्रथम जिसवस्तुको मन ग्रहण करता है, उसीको पीछे इन्द्रीगण ग्रहण करे है।

पंचइन्द्री।

तत्रचक्षुःश्रोत्रंघ्राणंरसनंस्पर्शनमितिपंचेन्द्रियाणि ।

अर्थ-तहां नेत्र, कान, नासिका, जीभ, और त्वचा ए पांच इन्द्री हैं।

पंचेन्द्रियद्रव्याणिखंवायुर्ज्योतिरापोभूरिति ।

अर्थ-आकाश, पवन, अग्नि, जल, और पृथ्वी ये पांच इन्द्रियोंकी द्रव्यहैं।

पञ्चेन्द्रियाधिष्ठानान्यक्षिणीकर्णौनासिकेजिह्वात्वक्चेति ।

अर्थ-ये पांच इन्द्रियोंके रहनेके अधिष्ठान हैं। दोनों नेत्र, दोनों कान, दो नों नासिकाके रंध्र, जीभ और त्वचा।

पञ्चेन्द्रियार्थाःशब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः । पञ्चेन्द्रियबुद्धयश्च-क्षुर्बुद्ध्यादिकास्ताः ।

अर्थ--शब्द, स्पर्श, रूप,रस, गंध, ये पांच इन्द्रियोंके अर्थ अर्थात् विषय हैं। और पांचही इन्द्रियोंकी बुद्धि हैं। वो चक्षु बुद्धि, कर्णबुद्धि, नासिकाबुद्धि। आदि जाननी ।

पुनरिन्द्रियेन्द्रियार्थस्वत्वात्मसन्निकर्षजाः क्षणिकानिश्चयात्मिकाश्चेत्येतत्पञ्चपञ्चकम् ।

अर्थ-वोही बुद्धि, इन्द्रिय, इन्द्रियार्थ और सत्व इनके आत्मसन्निकर्षसे पैदा होती है।

मनोमनोर्थोबुद्धिरात्माचेत्यध्यात्मद्रव्यगुणसंग्रहः ।
शुभाशुभवृत्तिनिवृत्तिहेतुश्चद्रव्याश्रितंकर्मयदुच्यतेक्रियेति ।

अर्थ-मनोर्थ, बुद्धि, आत्मा, यह अध्यात्मद्रव्य गुणसंग्रहवाला मन शुभाशुभ कर्ममें प्रवृत्तिनिवृत्तिका हेतु है। जिस द्रव्यके आश्रित जो कर्म है उसीको क्रिया कहते हैं।

तत्रानुमानगम्यानांपञ्चमहाभूतविकारसमुदायात्मकानामपिसतामिन्द्रियाणां तेजश्चक्षुषीश्रोत्रेखंघ्राणेक्षितिरापोरसनेस्पर्शनेऽनिलोविशेषेणोपदिश्यते ।

अर्थ-तहां अनुमानगम्य पंचमहाभूतविकार समुदायात्मक इंद्रियोंका नेत्रमें तेज, कानोंमें आकाश, नाकमें पृथ्वी, जिह्वामें जल, और त्वचामें पवनका वास है।

तत्रयद्यदात्मकमिन्द्रियंविशेषात्तदात्मकमेवार्थमनुधावति तत्स्वभावाद्विभुत्वाच्च ।

अर्थ--तत्स्वभाव और उस तत्वके प्रबल होनेसे जो इन्द्री जिस तत्वात्मक है वो विशेषकरके तदात्मक तत्वार्थको ग्रहण करती है।

तदर्थातियोगायोगमिथ्यायोगात्समनस्कमिन्द्रियम्।
विकृतिमापद्यमानंयथास्वबुद्ध्युपघातायसम्पद्यते ।

अर्थ-वो इद्रियोंके अर्थ अतियोग, अयोग, और मिथ्यायोगसे मनस

हित इन्द्रियोंको विकृतित्वको प्राप्त होकर अपनी अपनी बुद्धिके उपघातके अर्थ होते हैं ।

समयोगायोगात्पुनःप्रकृतिमापद्यमानः
यथास्वंबुद्धिमाप्याययति ।

अर्थ--फिर वही इन्द्रियोंके अर्थ समान योग और अयोगद्वारा प्रकृतिको प्राप्त हो उसीप्रकार अपनी बुद्धियोंको बढाते हैं ।

मनसस्तुचिन्त्यमर्थः । तत्रमनसोबुद्धेश्चतएवसमानातिहीनमिथ्यायोगाःप्रकृतिविकृतिहेतवोभवन्ति ॥

अर्थ--मनकरके जिसका चिंतवन कराजाय उस वस्तुको अर्थ कहते हैं तहां मन और बुद्धिके अर्थ समान, अति, हीन, और मिथ्या योग प्रकृति और विकृतिके हेतु होते हैं ।

तत्रेन्द्रियाणांसमनस्कानामनुपतप्तानामनुपतापायप्रकृतिभावेप्रयतितव्यमेभिर्हेतुभिः ।

अर्थ--तहां पीडारहित मनसहित इंद्रियोंको पीडाके बचानेको इन हेतुओं करके प्रकृतिभावमें लानेका प्रयत्न करना चाहिये ।

तद्यथा।साम्येन्द्रियार्थसंयोगेनबुद्ध्यासम्यगवेक्ष्यावेक्ष्यकर्मणां सम्यक्प्रतिपादनेनदेशकालात्मगुणविपरीतोपसेवनेनचेति ।

अर्थ--वो प्रकृतिभावमें समनस्क इन्द्रियोंको लानेका यह उपाय है कि साम्य और इन्द्रियार्थ संयोगकरके अपनी बुद्धिसे भलेप्रकार देखदेख कर और कर्मोंको भली भांति करनेसे; तथा देश, काल, और आत्मगुण इनके विपरीत औषधान्नविहारादिकोंके सेवन करनेकरके प्रकृतिभावमें लाना चाहिये ।

तस्मादात्महितंचिकीर्षतासर्वेणसर्वसर्वदास्मृतिमास्थायसद्वृत्तमनुष्ठेयम् । तद्ध्यनुष्ठानंयुगपत्सम्पादयत्यर्थद्वयमारोग्यमिन्द्रियविजयश्चेति । तत्सद्वृत्तमखिलेनोपदेक्ष्यामः ।

अर्थ--इसीसे आत्महितेच्छु सबको संपूर्ण और सदैव बुद्धिका आश्रय लेकर सत्पुरुषोंके आचरणका अनुष्ठान करना चाहिये । यह अनुष्ठान आरोग्य और इन्द्रियोंका विजय इन दोनों अर्थोंका एकही साथ संपादन करता है । उस संपूर्ण सद्वृत्तको कहते हैं ।

सदाचार।

तद्यथा। देवगोब्राह्मणगुरुवृद्धसिद्धाचार्यानर्चयेत्। अग्निम-
नुचरेत्। औषधीःप्रशस्ताधारयेत्। द्वौकालावुपस्पृशेत्।
मलायतनेष्वभक्ष्णिंपादयोश्चवैमल्यमादध्यात्।

अर्थ--देव, गौ, ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध, सिद्ध इन्होंका अर्चन करना चाहिये। अग्निहोत्र करे, दिव्य औषधोंको धारण करे, दोनों कालमें अर्थात् सायंकाल और प्रातःकालकी संध्या करनी चाहिये। जिनमें मल होवे ऐसे नाक, मुख, गुदा, आदिको और पैरोंको सदैव उज्ज्वल रखने चाहिये।

त्रिपक्षास्यकेशश्मश्रुलोमनखान्संहारयेत्। नित्यमनुपहत-
वासाःसुमनःसुगन्धिःस्यात्। साधुवेशःप्रसाधितकेशोमूर्द्धश्रो
त्रपादतैलनित्योधूमपःस्मितपूर्वाभिभाषीसुमुखः।

अर्थ--पांचवेंदिन क्षौरकर्म अर्थात् बाल, मूंछ, डाढी, रोम और नखोंको कटाकर सुधारता रहे। सदैव विना फटा वस्त्र, प्रसन्नचित्त, और सुगंधका लगाने वाला साधुवेश, कंगेसे बालोंको सह्मारना, मस्तक, कान, और पैर, इनमें तैल नित्य डाले और लगाता रहे। धूम्रपान (हुक्केका पीना) तथा सुंदर मुखसे मंदमुसकानके साथ प्रथम बोलनेवाला इस मनुष्यको होना चाहिये।

दुर्गेष्वभ्युपपत्ता होता यष्टा दाता चतुष्पथानांनमस्कर्त्ता
बलीनामुपहर्ताऽतिथीनांपूजकः पितृणांपिण्डदःकालेहित
मितमधुरार्थवादी।

अर्थ-किलोंका रक्षा करता, हवन करता, यजन करता, दाता, और चौराहेओंको नमस्कारका करनेवाला, बलिदानका देनेवाला, अतिथियोंका पूजक, पितृयोंको पिंड देनेवाला, तथा बोलनेके समय हित भरा अनुमानका मीठा अर्थयुक्त वचन बोले।

वश्यात्माधर्मात्माहेतावीर्ष्यःफलेनेर्षुः निश्चिन्तोनिर्भी-
कोधीमान्ह्रीमान् महोत्साहः दक्षः क्षमावान् धार्मिकः
आस्तिकः विनयबुद्धिः विद्याभिजनवयोवृद्धसिद्धाचार्या-
णामुपासिता।

अर्थ-आत्माको वशीभूत करनेवाला, धर्मात्मा, और हेतुपर ईर्ष्या कर-

नेवाला (अर्थात् अमुक मनुष्य कौन कारणसे धनाढ्य हुआ वही यत्न मैंभी करूंगा) और फलपर ईर्षाका त्यागनेवाला (अर्थात् पराई द्रव्यादिकी इच्छाका त्यागनेवाला) चिंतारहित, भयरहित, बुद्धिवान्, लज्जावान् महोत्साही, चतुर, क्षमावान्, धार्मिक, आस्तिक, विनय, बुद्धि, विद्या, अभिजन और अवस्था इनकरके वृद्ध ऐसे पुरुषोंका तथा सिद्ध और आचार्योंकी उपासना करनेवाला होना चाहिये ।

छत्रीदण्डीमौनीसोपानत्कोयुगमात्रदृक्‌विचरेत् । मङ्गलाचारशीलःकुचेलास्थिकण्टकामेध्यकेशतुषोत्करभस्मकपालस्नानबलिभूमिनांपरिहर्त्ताप्राक्छ्रमाद्व्यायामवर्जीस्यात् ।

अर्थ-छत्री लकडीको ले मौनहो, पैरोंमें जूती जोडे पहन, मार्गको प्रथम देखकर चले,मंगलाचारका करनेवाला,पुराने और मलिन वस्त्र, हड्डी, कांटे खोबरे, अमेध्य (मलमूत्रादि) बाल, तुष, उत्कर, (धानआदिके तिनके) राख,कपाल, स्नानकी पृथ्वी, और बलिदानकी पृथ्वीका परित्याग करनेवाला और श्रमके प्रथमही दंडकसरतका त्यागनेवाला होना चाहिये ।

सर्वप्राणिषुबन्धुभूतःस्यात् । क्रुद्धानामनुनेता । भीतानामाश्वासयिता । दीनानामभ्युपपत्ता । सत्यसंधः । सामप्रधानः । परपरुषवचनसहिष्णुः।अमर्षघ्नः। प्रशमगुणदर्शी। रागद्वेषहेतूनांहन्ता ।

अर्थ-सर्व प्राणियोंमें बांधवकीसी प्रीति करनेवाला । क्रोधियोंको शांति करनेवाला । भयभीतोंको आश्वासन कहिये धीरज देनेवाला । दीनोंका रक्षक। सत्यसंध। सामप्रधानः (अर्थात् जो कार्यकरे उसको एक राहके साथकरे)औरोंके खोटे वचनोंको सहनकरनेवाला, क्रोधको जीतनेवाला, प्रशमगुण (शांतिकोही गुणका देखनेवाला) तथा रागद्वेष जिनसे उत्पन्न हो उनहेतुओंको जीतनेवाला होना चाहिये ।

नानृतंब्रूयात् । नान्यस्वमाददीत । नान्यस्त्रियमभिलषेत् । नान्यश्रियंनवैरंरोचयेत् । नकुर्य्यात्पापंनपापेऽपिपापीस्यात् । नान्यदोषान्ब्रूयात् । नान्यरहस्यमागमयेत् । नाधार्मिकैर्ननरेन्द्रद्विष्टैःसहासीत ।

अर्थ-झूठ न बोले, दूसरेका धन न हरणकरे, तथा अन्यस्त्रीकी इच्छा न

करे, दूसरेकी श्री और वैरसे रुचि न करे, पाप न करे, पापियोंके साथ आप पापी न हो, दूसरेके दोषोंको न कहे, तथा दूसरेकी रहस्यवार्ताको प्रकाशित न करे, अधर्मि, और राजद्रोहीके साथ न बैठे ।

नोन्मत्तैर्नपतितैर्नभ्रूणहन्तृभिर्नक्षुद्रैनर्दुष्टैःनदुष्टयानान्यारोहेत् । नजातुसमंकठिनमासनमध्यासीत । नानास्तीर्णमनुपहितमविशालमसमं वा शयनंप्रपद्येत । नगिरिविषममस्तकेष्वनुचरेत् ।

अर्थ-उन्मत्त पतित, भ्रूणहत्यारा, क्षुद्र, और दुष्टोंके साथ नहीं रहना तथा दुष्ट घोडा हाथी आदि सवारियोंपर न बैठे तथा घोटुओंके बराबर कठोर आसनपर न बैठे । तथा विनाबिछी विना बिछोनेके छोटी और ऊंची नीची शय्यापर न सोवे । पर्वत, विषमस्थल इनके ऊपर न डोले ।

नद्रुममारोहेन्नजलोग्रवेगमवगाहेत् । कूलच्छायांनोपासीत । नाग्न्युत्पातमभितश्चरेत् । नोच्चैर्हसेत् । नशब्दवन्तंमारुतं मुञ्चेत् । नासंवृतमुखोजृम्भांक्षवथुंहास्यंवाप्रवर्त्तयेत् ।

अर्थ-वृक्षके ऊपर न चढे । अत्यंत उग्रवेगवाली नदीमें स्नान न करे । (किंतु जहां जलका वेगहो वहां पर उसमें धसे भी नहीं) किनारेके वृक्षके नीचे न बैठे । जहांअग्नि लगरहीहो वहांपर न जावे । उच्चशब्दसे न हँसे शब्दवान् पवन अर्थात् अत्यंत शब्दके साथ अधोवायु नहीं छोडनी । विना मुखढके जंभाई, छींक, हास्य, आदि न करे ।

ननासिकांकुष्णीयात् । नदन्तान्विघट्टयेत् । ननखानङ्गांश्च वादयेत् । नास्थीन्यभिहन्यात् । नभूमिंविलिखयेत् । नछिंद्यात्तृणम् । नलोष्टंमृद्नीयात् । नविगुणसङ्गैश्चेष्टेत । ज्योतींष्यग्निश्चामेध्यमशस्तञ्चनाभिवीक्षेत । नहुंकुर्याच्छवम् ।

अर्थ-हरदफे नासिकाको न कुरेदे । दांतोंको न चबायाकरे। नख और अपने अंगोंको न बजायाकरे, अपनी हड्डियोंमें प्रहार न करे, हाथसे या पैरसे पृथ्वीको न लिखाकरे, तिनके न तोडाकरे, मट्टीके डेलेको न तोडाकरे, निर्बुद्धियोंके साथ न रहाकरे, ज्योतिवाले पदार्थ(सूर्य चंद्र बिजलीआदि) और अग्नि, अपवित्र और बुरीवस्तु [वमन, राध, रुधिर आदिको] न देखे । और मुर-

देको देखकर हुंकार न करे। अर्थात् इसप्रकार मरतेई रहतेहैं इसप्रकार तिरस्कार न करे, क्योंकि इसीप्रकार आपकोभी मरना है।

नचैत्यध्वजगुरुपूज्याशस्तच्छायामाक्रामेत् । नक्षपास्वमरसदनचैत्यचत्वरचतुष्पथोपवनश्मशानायतनान्यासेवेत । नैकशून्यगृहंनचाटवीमनुप्रविशेत् । नपापवृत्तान्स्त्रीभृत्यान्भजेत् ।

अर्थ–चैत्य (बौद्धोंका मंदिर अथवा गामके बाहर देवताकी भावना करके स्थापित वृक्ष) मंदिरकी ध्वजा, गुरु, पूज्य, और अशस्त वस्तु (मलमूत्रादि) इनकी और छायाको उल्लंघन न करे। रात्रिमें देवमंदिर, चैत्य, चौराहा, बगीचा, श्मशान (जहां मुरदे जलतेहों वा गढतेहों) इन स्थानोंमें नहीं रहना चाहिये सूने घरमें अकेला न रहे। तथा वनमेंभी अकेला न जावे। पापकरता स्त्री और भृत्य (नोकर) को न रक्खे।

नोत्तमैर्विरुध्येत । नावरानुपासीत । नजिह्मंरोचयेत् । नानार्यमाश्रयेत् । नभयमुत्पादयेत् । नसाहसातिस्वप्नजागरस्नानपानाशनान्यासेवेत । नोर्ध्वजानुश्चिरंतिष्ठेत् । नव्यालानुपसर्पेत् । नदंष्ट्रिणः नविषाणिनः । पुरोवातातपावश्यायातिप्रवाताञ्जह्यात् ।

अर्थ–उत्तम पुरुषोंसे विरोध न करे। ओछे पुरुषोंकी उपासना न करे। कपट करनेको प्रसन्न न करे। अनार्य पुरुष (जो वेदमार्ग त्यागकर अन्यमार्गका आश्रयलेनेवाले हैं) उनका आश्रित न हो। अत्यंत साहस, अतिस्वप्न-अत्यंत जागना, अति स्नान, अति पान, और अत्यंत भोजन न करे। घोटुओंके बल बहुत देरपर्यंत न खडारहे। साँप, बिच्छु आदिके पास न जावे। डाढावाले (कुत्ता, सिंह, व्याघ्र, वृकआदि) और सींगवाले (गौ भैंस आदि) इनके भी पास न जावे। सन्मुखकी पवन, धूप, तुषार, और अत्यंत पवन त्यागदेवे।

कलिंनारभेत् । नानिभृतोऽग्निमुपासीत । नोच्छिष्टोनाधःकृत्वाप्रतापयेत्।नाविगतक्लमोनानाप्लुतवदनोननग्नमुपस्पृशेत् । नस्नानशाट्यास्पृशेदुत्तमाङ्गम्।नकेशाग्राण्यभिहन्यात्।

अर्थ-कलह न करे। जो अपने वशीभूत न हो ऐसी अग्निका सेवन न करे उच्छिष्ट मुखसे तथा अपने नीचे रखकर अग्निसे न तापे। जबतक विगतक्लम और मुखको न धोयाहो तथा नग्नहोकर स्नान न करे। स्नानकी धोतीसे मस्तक न पोंछे बालोंके अग्रभागोंको न तोडे।

नोपस्पृशेत्तएववाससीविधृयात्। नास्पृष्ट्वारत्नाज्यपूज्यमङ्गलसुमनसोऽभिनिष्क्रामेत्। नपूज्यमङ्गलान्यपसव्यंगच्छेत्। नेतराण्यनुदक्षिणम्।

अर्थ-अन्यके स्पर्शकरेहुए वस्त्रको [भोजनके समय] न धारण करे। रत्न, घृत, पूज्य, मंगलीक वस्तु, और पुष्प इनके स्पर्शकरे विना घरके बाहर न जावे। पूज्य, मंगलीक पदार्थोंको अपसव्यहोकर अर्थात् वाम देकर न जावे। और अपूज्य तथा अमंगली पदार्थोंको दहना देकर न जावे।

नारत्नपाणिर्नास्नातोनोपहतवासानाजपित्वानाहुत्वादेवताभ्योनानिरूप्यपितृभ्योनादत्वागुरुभ्योनातिथिभ्योनोपाश्रितेभ्योनापुण्यगन्धोनामालीनाप्रक्षालितपाणिपादवदनोनाशुद्धमुखोनोदङ्मुखोनविमनाभक्ताशिष्टाशुचिक्षुधितपरिचरोनापात्रीष्वमेध्यासुनादेशेनाकालेनाकीर्णेनादत्वाग्रमग्नयेनाप्रोक्षितंप्रोक्षणोदकैर्नमन्त्रैरनभिमन्त्रितंनकुत्सयन्नकुत्सितं नप्रतिकूलोपहितमन्नमाददीत।

अर्थ-विना रत्नपाणि अर्थात् सुवर्ण आदि रत्नकी अंगूठी, छल्ला, आदिके धारण विना, विना स्नान करे, फटे वस्त्रोंसे, विना गायत्रीके जप करे। विना हवन करे, विना देवताओंको निवेदन करे। विना पित्रेश्वरोंके दिये, गुरु, अतिथी, उपाश्रित (जो अपने आश्रित हैं) इनको विना दिये, दुर्गंधयुक्त, विना माला धारण करे, विना हाथ पैर मुखकी शुद्धिके, और उत्तरमुख अप्रसन्नचित्तके, विना भातके, तथा दुष्ट, अपवित्र, और जिसके भृत्यवर्ग क्षुधितहो विना पात्रोंके तथा अपवित्र पात्रोंमें, विना देशकालके (अर्थात् श्मशानआदि देश और प्रातःकालआदिसमयमें) विना प्रस्फुट स्थानके विना प्रथम अग्निमें आहुति दिये, विना प्रोक्षणके मंत्रोंसे प्रोक्षित करे, विना मंत्रोंसे अभिमंत्रित करे; न निंदा करता हुआ तथा निंदित और अपने प्रतिकूल (वैरी)के लाए हुये इत्यादि गुणविशिष्ट अन्नको नहीं भोजन करना चाहिये।

नपर्युषितमन्यत्रमांसहरितशुष्कशाकफलभक्ष्येभ्यः। नाशे-षभुक्स्यादन्यत्रदधिमधुलवणसक्तुसर्पिर्भ्यः । ननक्तंदधिभु-ञ्जीत। नसक्तूननेकानश्नीयात् । ननिशिनभुक्त्वानबहून्न-द्विर्नोदकान्तरितान्नछित्त्वाद्विजैर्भक्षयेत् ।

अर्थ–मांस,हरित और शुष्क शाक,फल, और भक्ष्य (लड्डू, पेडे, आदि) इनके विना और वस्तु बासी नहीं खानी चाहिये । दही, सहत, नोन, सत्तू, और घृतके सिवाय और किसी वस्तुको निःशेषकरके न खावे । रात्रिमें दही न खावे । अकेला सत्तू न खाय । तथा रात्रिमें भोजन करके, बहुतसा तथा दोवार सत्तू नहीं खाना चाहिये । तथा जलके विनाभी न खाय तथा दांतों से चबायकर सत्तु भोजन न करे ।

नानृजुःक्षुयान्नाद्यान्नशयीत । नवेगितोऽन्यकार्यःस्यात् । न वाय्वग्निसलिलसोमार्कद्विजगुरुप्रतिमुखंनिष्ठीविकावातवर्चो मूत्राण्युत्सृजेत् । नपन्थानमवमूत्रयेत् । नजनवतिनान्नकाले ।

अर्थ–टेढा होकर छींकना, भोजन, और शयन न करे । जिस समय मल, मूत्र, भूख, प्यास, आदि लग रहेहों उससमय अन्य कार्यको न करे । पवन, अग्नि, जल, चंद्रमा, सूर्य, ब्राह्मण और गुरु इनके सन्मुख थूकना, अधो वायु छोडना, मलमूत्रका परित्याग इत्यादि कर्म न करे । रस्तेमें न मूते । जहां बहुत मनुष्य बैठे हों और अन्न अर्थात् भोजनके समय मूत्र न करे । भोजन-के थोडी देर प्रथमही मूत्रादिसे निश्चित होलेवे ।

नजप्यहोमाध्ययनबलिमङ्गलक्रियासुश्लेष्मसिंघाणकंमुञ्चेत् नस्त्रियमवजानीत । नातिविश्रंभयेत् । नगुह्यमनुश्रावयेत् । नाधिकुर्यात् । नरजस्वलांनातुरांनामेध्यांनाशस्तांनानिष्टरू-पाचारोपचारांनादक्षिणांनाकामांनान्यकामांनान्यस्त्रियंनान्य योनिंनायोनौनचैत्यचत्वरचतुष्पथपवनश्मशानायतनसलि-लौषधिद्विजगुरुसुरालयेषुनसंध्ययोर्नातिनानिषिद्धतिथिषुना-शुचिर्नजग्धभेषजोनाप्रणीतसंकल्पोनानुपस्थितप्रहर्षोनाभु-क्तवान्नात्याशितोनविषमस्थोनमूत्रोच्चारपीडितोनश्रमव्या-यामोपवासक्लमाभिहतोनारहसिव्यवायंगच्छेत् ।

अर्थ-जप, होम, अध्ययन (पढना) बलिदान, और मंगलक्रिया इनमें कफ, तथा देहका मैल न गेरे । स्त्रीका तिरस्कार न करे । न अत्यंत स्त्रीका विश्वास करे । तथा इसके आगे गुह्य (छिपी) वार्ता न कहे । न इसको अनुचित कर्मका अधिकार देवे । तथा रजस्वला, रोगिणी, अपवित्रा, अप्रशस्ता, कुरूप, आचार, और उपचार, गहने कपडे आदि को धारण करनेवाली, अचतुरा, तथा जिसका कामदेव न जागा हो । और जो अन्य पुरुषकी इच्छा करती हो, तथा दूसरेकी स्त्री, तथा अन्य योनि (बकरी कुत्ते आदिकी) तथा अयोनि (गुदाभंजनआदि) और चैत्य, आंगन, चोराहा, अत्यंत पवन लगती हो, श्मशान, यज्ञशाला जलके समीप औषधीस्थान, ब्राह्मण, गुरु इनके समीप, देवस्थान, तथा प्रातःकाल और सायंकालकी संध्यामें तथा अत्यंत मैथुन और निषिद्ध तिथियोंमें अपवित्रतामें विना औषध खानेके तथा विना कामोद्दीपन हुए विना हर्षके विना भोजन और अत्यंत पेट भरेमें तथा विषमस्थित होकर (अर्थात् टेढा वा नीचे सोकर) तथा मूत्रमलकी बाधामें परिश्रम दंडकसरत, उपवास, और ग्लानियुक्त इत्यादि कारणोंसे युक्त और सबके देखते इस पुरुषको स्त्रीगमन नहीं करना चाहिये ।

नसतोनगुरून्परिवदेत् । नाशुचिरभिचारकर्मचैत्यपूज्यपूजाध्ययनमभिनिवर्त्तयेत् । नविद्युत्स्वनार्त्तवीषुनाभ्युदितासुदिक्षुनाग्निसंप्लुवेनभूमिकल्पेनमहोत्सवेनोल्कापातेनमहाग्रहोपगमनेननष्टचन्द्रायांतिथौनसंध्ययोर्नमुखाद्गुरोर्नावपतितंनातिमात्रंनतांतंनविस्वरंनानवास्थितपदंनातिद्रुतंनविलम्बितंनातिक्लीबंनात्युच्चैर्नातिनीचैःस्वरैरध्ययनमभ्यसेत् ।

अर्थ-गुरु और सत्पुरुषोंसे विवाद न करे । अपवित्रतासे अभिचारकर्म, यज्ञशाला, पूज्योंकी पूजा तथा पढना इत्यादि कर्म न करे । बिजलीके चमकनेमें, आर्तववाली और अभ्युदित दिशा जिस समय होवे, तथा अग्निके लगनेमें । भूचाल, महोत्सव (विवाहादि) उल्कापात, महाग्रह (पूछतारेआदि) के उपगमनमें, अमावास्या, संध्या इनमें विना गुरुमुखके, अत्यंत लंबेस्वरसे दुष्टस्वरसे, अयथार्थ पदोच्चारणसे, बहुतजल्दी, बहुतधीरे, अत्यंत कायरतासे, अत्यंत उच्चस्वर, अत्यंत नीचेस्वरसे विद्यानहीं पढनी चाहिये । कोई कहता है कि स्वयं और गुरुके मुखसे बिनानिकले पढना निषेधहै ।

नातिसमयंजह्यात् । ननियमंभिन्द्यात् । ननक्तंनादेशेचरेत् । नसंध्यास्वभ्यवहाराध्ययनस्त्रीस्वप्नसेवीस्यात् । नबालवृद्धलुब्धमूर्खक्लिष्टक्लीबैःसहसख्यंकुर्यात् । नमद्यद्यूतवेश्याप्रसङ्गरुचिःस्यात् । नगुह्यंविवृणुयात् । नकञ्चिदवजानीयात् ।

अर्थ–समयको व्यर्थ न व्यतीत करे । जो पढने लिखने या भोजनादिका नियम कर रक्खाहो उसको न तोडे । रात्रिमें और जहां दुष्टस्थलहै उसजगे न डोले । संध्याके समय, भोजन, पढना पढाना, स्त्रीसंग, और निद्रा ये कर्म त्यागदेवे । बालक, वृद्ध, लोभी, मूर्ख, दुःखित और हिजडा, इनके साथ मित्रता न करे । मद्य, जूआ, और वेश्याप्रसंग इनकी इच्छा कभी न करे । जो छिपाने योग्य वार्ताहै उसको किसीके आगे न कहे । और किसीकी अवज्ञा न करे ।

नाहंमानीस्यात् । नादक्षोनादक्षिणोनासूयको नदक्षिणान्परिवदेत् । नगवांदण्डमुद्यच्छेत् । नवृद्धान्नगुरून्नगणान्ननृपान्वाधिक्षिपेत् नचातिब्रूयात् । नबान्धवानुरक्तकृच्छ्राद्धितीयगुह्यज्ञान्बाहिःकुर्यात् ।

अर्थ–अहंकारी न होवे, मूर्ख न बने, किसीसे टेढा न रहे, किसीकी निंदा न करे, जो चतुर मनुष्य है उनकी निंदा न करे, गौकेऊपर लकडी न उठावे, वृद्ध, गुरु, बहुतसे मनुष्य, और राजा, इनका तिरस्कार न करे। बहुत न बोले । तथा बांधव, स्नेही, दुखिया और अद्वितीय गुह्यज्ञ (अर्थात् जो गुप्तबातको वही जानता हो) इनको बाहर न करे ।

नाधीरोनात्युच्छ्रितसत्वःस्यात् । नाभृतभृत्योनाविश्रब्धास्वजनोनेकसुखी । नदुःखशीलाचारोपचारी । नसर्वविश्रंभी । नसर्वाभिशङ्की । नसर्वकालविचारी । नकार्यकालमतिपातयेत् । नापरीक्षितमभिनिविशेत् । नेन्द्रियवशगःस्यात् ।

अर्थ–धैर्यरहित नहीं होना । सबसे उच्च न बने । भृत्योंका भरणपोषण करता रहे । स्वजनोंमें अविश्वास न करे । अन्य दुःखितोंमें आप अकेला सुखी न बने । दुःखदायक आचार और अपचारोंको सेवन न करे । सबका विश्वासभी न करे । सबकी शंकाभी न करे । प्रत्येक समयमें विचारवान् न

२२

हो। कार्य करनेके समयको व्यर्थ न खोवे। विना परीक्षा करे किसी नोकर चाकरको न राखे। जिह्वा शिश्नेन्द्री आदिके वशीभूत न होवे।

नचञ्चलंमनोभ्रामयेत्। नबुद्धीन्द्रियाणामतिभारमादध्यात्। नचातिदीर्घसूत्रीस्यात्। नक्रोधहर्षावनुविदध्यात्। नशोकमनुवशेत्। नसिद्धावुत्सौक्यंगच्छेत्। नासिद्धौदैन्यम्। प्रकृतिमभीक्ष्णंस्मरेत्।

अर्थ–चंचल मनको भ्रमावे नहीं। बुद्धीन्द्रिय (नेत्र, नाक, कान, आदि) को अति श्रम न देवे। अत्यंत दीर्घसूत्री न हो। क्रोध और हर्षका बहुत ध्यान न करे अर्थात् बहुत न करे। शोकके वशीभूत न हो। कार्य सिद्धहोनेपर बहुत फूल न माने। और असिद्धहोनेपर दीनताभी ग्रहण न करे। और अपने स्वभावको सदैव स्मरण करता रहे। अर्थात् स्वभावको न पलटे।

हेतुप्रभावनिश्चितःस्यात्। हेत्वारम्भनित्यश्च। नकृतमित्याश्वसेत्। नवीर्यंजह्यात्। नापवादमनुस्मरेत्। नाशुचिरुत्तमाज्याक्षततिलकुशसर्षपैरग्निंजुहुयात्। आत्मानमाशीर्भिराशमानः।

अर्थ–हेतु करके प्रभाव निश्चित हो। हेतुका आरंभ करता रहे। हमने करलिया ऐसा विश्वास न करे। पराक्रमत्याग न करे। अपवाद (निंदा) का स्मरण न करे। अपवित्रतासे हवन न करे। तथा उत्तम घृत, अक्षत, तिल, कुश, और सरसों करके अग्नि हवन करे। आपको आशीर्वादोंकी इच्छा करता रहे।

अग्निर्मेनापगच्छेच्छरीरात्। वायुर्मेप्राणानादधातु। विष्णुर्मेबलमादधातु। इन्द्रोमेवीर्यंशिवमांप्रविशस्त्वापः। आपोहिष्ठेत्यपःस्पृशेत्। द्विःपरिमृज्यौष्ठौपादौचाभ्युक्ष्यमूर्द्धनिखानिचोपस्पृशेत्। अद्भिरात्मानंहृदयंशिरश्चब्रह्मचर्यज्ञानदानमैत्रीकारुण्यहर्षापेक्षाप्रशमपरश्चस्यादिति।

अर्थ–अग्नि मेरे शरीरसे मतजाओ। पवन मेरे प्राणोंको पोषण करो। विष्णुभगवान् मेरे बलकी रक्षा करो। इन्द्र मेरे वीर्यकी रक्षा करो। जल

मेरेमें प्रवेश करो । " आपोहिष्ठामयोभुवः " इत्यादि नव मंत्रोंकरके जलका स्पर्श अर्थात् मार्जन करे [और आचमनके मंत्रसे आचमन करे] दोबार होठोंको पोछैं । पैरोंका प्रोक्षण करे । मस्तक और देहके छिद्र (नेत्र, नासिका, आदि) का स्पर्श करे । जलकरके आत्मा और हृदयका स्पर्श करे । ब्रह्मचर्य, ज्ञान, दान, मित्रता, करुणा, आनंद, और शांतिपर अर्थात् इनका सेवन नित्य करे।

सुखार्थाःसर्वभूतानांमताःसर्वाःप्रवृत्तयः ।
सुखंचनविनाधर्मात्तस्माद्धर्मपरोभवेत् ।

अर्थ--संपूर्ण प्राणीमात्रोंके सुखके अर्थ कर्म है, सो सुख धर्मके विना नहींहो अतएव इस मनुष्यको धर्मपर अर्थात् धर्मात्मा होना चाहिये ।

मैत्रींसद्भिरसद्भिश्चकुर्यात्सत्सुतुसर्वथा ।
संसर्गसाधुभिःकुर्यादसत्सङ्गन्तुवर्जयेत् ।

अर्थ-साधु अथवा दुष्ट सबसे मित्रता करे, तिनमेंभी साधुजनोंसे सर्वथा करनी चाहिये । तथा संसर्ग साधुमहात्माओंकेसाथ करे असंगती त्यागदेवे ।

अपकारपरेऽपिस्यादुपकारपरःपुमान् ।
आत्मवत्सकलान्पश्येद्वैरिणोदूरतोवसेत् ।

अर्थ-कोई अपनेसाथ बुराईकरे परंतु आप उसके साथ उपकारही करता रहे । तथा संपूर्ण प्राणियोंको आत्माके समान जाने अर्थात् जैसे किसीप्रकारका आपको दुःख बुरा लगताहै उसीप्रकार दूसरेको जाने । परंतु वैरीसे दूर रहनाही अच्छाहै ।

नकंचिदात्मनःशत्रुंनात्मानंकस्यचिद्रिपुम् । प्रकाशयेन्नापमानंनचानिस्नेहतांप्रभोः । नात्मानमुदकेपश्येन्ननग्नोप्रविशेज्जलम् । तथानाज्ञातगांभीर्यंनहिंस्रप्राणिसेवनम् ।

अर्थ- आपका शत्रु किसीको न करे अथवा आप किसीका शत्रु न बने, तथा अपना और दूसरेका अपमानको तथा निस्नेह (अप्रीति) कोभी प्रकाशित न करे । अपने प्रतिबिंबको जलमें न देखे । तथा नग्नहो जलमें न धसे । उसीप्रकार जबतक किसी नदी नाला तालाब आदि जलाशयकी थाह मालूम न हो तबतक सहसा उसमें न धसे । क्योंकि जीव जंतु और डूबनेका भय रहताहै । तथा हिंसक जीव (सिंह, व्याघ्र, बाझ, बिल्ली) आदिको नपाले ।

भुंजीतमधुरप्रायंस्निग्धंकालेहितंमितम् । नरात्रौदधिभुंजीत नचानिर्लवणंतथा । नामुद्गयूषंनाक्षौद्रंनचाप्यघृतशर्करम् ।

अर्थ-भोजनके समय हितपदार्थ और अनुमानका मधुरप्राय भोजन करे । रात्रिको दही न खावे तथा विनानोनका विनामूंग भात, सहत, घी और शक्करके भोजन न करे ।

जलस्याशयमालक्ष्ययोयथापरितुष्यति । तंतथैवानुवर्तेत पराराधनपंडितः । सत्यंब्रूयात्प्रियंब्रूयान्नब्रूयात्सत्यमप्रियम् । सत्यन्तुनानृतंब्रूयादेषधर्मःसनातनः ।

अर्थ-लोकोंका अंतःकरण जानकर जो जिसप्रकार संतुष्ट होवे उसके साथ उसीप्रकार वर्त्ताव करे क्योंकि दूसरेको प्रसन्न करताही पंडित कहाताहै । सत्य और प्रिय बोले परंतु अप्रिय सत्यभी न बोले तथा झूठमिला सत्य न बोले यह सनातन धर्महै ।

दृष्टिपूतंन्यसेत्पादंवस्त्रपूतंपिबेज्जलम् ।
सत्यपूतावदेद्वाचंमनःपूतंसमाचरेत् ॥

अर्थ-दृष्टिसे पवित्र अर्थात् प्रथम मार्गको अच्छीरीतिसे देखकर पैर रखना चाहिये । वस्त्रसे छानाजल पीवे । सत्यकरके पवित्र वाणी बोले और मनसे पूत अर्थात् विचारकर आचरण करना चाहिये ।

वृद्धार्कहोमधूमंचबालास्त्रीपल्वलोदकम्।आयुष्यंवर्द्धतेतस्य रात्रौचक्षीरभोजनम् । संमार्जनीरजोनैवदेहेदध्यात्कदाचन । ननखेनतृणंछिन्द्यान्नोच्छिष्टोब्राह्मणंस्पृशेत् ।

अर्थ-सायंकालका सूर्य, होमका धूआं, सोलह वर्षकी स्त्री, तलैयाका जल और रात्रिमें दुग्ध पीना ये आयुको बढ़ातेहैं । बुहारी (झाडू) की रज देहके ऊपर कभी नहीं लेनी चाहिये । और नखोंसे तिनका नहीं तोडना, जूठे मुखसे ब्राह्मणका स्पर्श न करे ।

नोपरक्तंनचोद्यन्तंनास्तंयातंदिवाकरम्। सर्वथानसमीक्षेतनजलेप्रातिबिंबितम्। नेक्षेतसततंसूक्ष्मदीप्तामेध्याप्रियाणिच । पौरंदरंधनुर्नैवदर्शयेत्कमपिक्वचित् ।

अर्थ–ग्रहण,ऊगतेहुएको और अस्तहोते सूर्यको न देखे । जलमें अपने प्रतिबिंबको कदाचित् न देखे, तथा अत्यंत बारीक वस्तु, अत्यंत प्रकाशवान् अपवित्र और अप्रिय वस्तु इनको न देखे । इन्द्रके धनुषको (जो प्रायः वर्षाऋतुमें होता है.) किसीको न दिखावे न आप देखे ।

नेच्छेद्बलवतायुद्धंनभारंशिरसावहेत् । गात्रंनताडयेत्केशान् हस्तेनधुनुयान्नच । नगच्छेत्पूज्ययोर्मध्येदंपत्योरन्तरेणच । रिपोरन्नंनभुंजीतगणिकान्नमपिक्वचित् । प्रतिभूर्नभवेत्क्वापि नचसाक्षीवृथाभवेत् ।

अर्थ–बलिष्ठ पुरुषकेसाथ युद्ध (कुश्ती आदि) न करे । बोझेको मस्तक पर धरके न चले । हाथोंसे अंगोंको न बजावे । और बालोंको हाथसे न फटकारे । पूज्य (गुरु माता पिता आदि) के बीचमें होकर न निकले । स्त्री पुरुषके बीचमें होकर न जाय । शत्रु, और वेश्याका अन्न न खाय । किसीकी जामिनी न देय उसीप्रकार झूंटी गवाहीभी न देय ।

स्थगंनधारयेज्जातुद्यूतंदूरात्परित्यजेत् । विश्वासंनाचरेत्स्त्रीणांतास्वतंत्राश्चनाचरेत् । रक्षणीयाःसदायत्नाद्यौवनेतुविशेषतः । नभिन्नेशयनेसुप्यान्नानेकविवरेऽपिच । नैकोदेवालयेनैवरात्रौतरुतलेपिच ।

अर्थ–कपटको धारण न करे अर्थात् कपटी न होय । जूआ खेलना दूरसेही त्याग देवे । स्त्रियोंका विश्वास न करे । और स्त्रियोंको स्वतंत्र न करे यत्नपूर्वक सदैव इनकी रक्षा करे । परंतु जवानीमें स्त्रीकी विशेष करके रक्षा करनी चाहिये । स्त्रीसे पृथक् दूसरी शय्यापर न सोवे । बहुतस्त्रियोंमें तथा बिलेकेपास भी न सोवे । देवालयमें अकेला न सोवे । तथा रात्रिमें वृक्षके नीचे न सोवे ।

आचार्यःसर्वचेष्टासुलोकएवहिधीमतः ।
अनुकुर्यात्तमेवातोलौकिकेऽर्थेपरीक्षकः ॥

अर्थ--बुद्धिमान् पुरुषको संपूर्ण व्यापारोंमें लोकही आचार्यहै । अतएव उस लौकिक अर्थमें परीक्षक होकर फिरकरे । अर्थात् जैसा लोकमें व्यवहार हो उसी प्रकार आपको वर्तना चाहिये ।

हिंसास्तेयान्यथाकामंपैशून्यंपरुषानृते । संभिन्नालापव्यापा-

द्मभिध्याद्दग्विपर्ययम्। पापंकर्मेतिदशधाकायवाङ्मानसैः त्यजेत्।

अर्थ-हिंसा, चौरी, और अन्याई (गुरुस्त्रीगमनादि) ये तीन देहके पाप हैं। चुगली, कठोर बोलना, असत्य बोलना और अनर्थ बोलना ये चार वाणीके पाप हैं। प्राणियोंके मारनेका चिंतवन, परगुणको न सहना और नास्तिकता ये तीन मानसिक पाप हैं ऐसे सब कायिक वाचिक और मानसिक दशप्रकारके पापोंको त्याग देय।

आत्मवत्सततंपश्येदपिकीटपिपीलिकाम्।
प्रवृत्तिव्याधिशोकार्त्ताननुवर्तेतशक्तितः॥

अर्थ-कीडी और चैंटीकोभी आत्माके तुल्य देखे (फिर साधु असाधुको क्या देखना) जिनकी वृत्ति नहीं है और रोगी तथा शोकार्त्तहै। उनको यथाशक्ति जो आपसे बने सो देय परंतु हृष्ट पुष्ट वैरागियोंको न देय।

एवंदिनानिगमयेत्सदाचारपरःसदा। ततोरात्रिप्रयुक्तानि कुर्यात्कर्माणिमानवः। इत्याचारंसमासेनभाषितंयःसमाचरेत्। सविन्दत्यायुरारोग्यंप्रीतिंधर्मंधनंयशः।

अर्थ-इसप्रकार सदैव सदाचारयुक्त हो दिनोंको व्यतीतकरे। तदनंतर रात्रिमें करने योग्य कर्मोंको करे। यह मैंने संक्षेपसे सदाचार वर्णन करा है। जो मनुष्य इसको आचरण करेगा वह आयु, आरोग्यता, प्रीति, धर्म, धन और यशको प्राप्त होवेगा।

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरे सदाचारवर्णनं नाम अष्टाविंशातितमस्तरंगः॥ २८॥

अथातो रात्रिचर्याध्यायं व्याख्यास्यामः।

अर्थ-अब रात्रिचर्याध्यायकी व्याख्या करेंगे।

तत्रादौ संध्याकालीन नियम।

एतानिपञ्चकर्माणिसंध्यायांवर्जयेद्बुधः।
आहारंमैथुनंनिद्रांसंपाठंगतिमध्वनि।

अर्थ-अब रात्रिचर्याको कहतेहैं। तहां प्रथम संध्याकालके नियमोंको कहतेहैं। जैसे कि भोजन, मैथुन, निद्रा, पढना, और मार्ग चलना, ये पांच कर्मोंको बुद्धिमान् पुरुष सायंकाल (प्रदोषसमय) में त्याग देय।

पंचकर्मवर्जनमें हेतु ।

भोजनाज्जायतेव्याधिर्मैथुनाद्गर्भवैकृतिः ।
निद्रायांनिःस्वतापाठादायुर्हानिर्गतेर्भयम् ।

अर्थ--अब इनके फल कहतेहैं । सायंकालमें भोजन करनेसे रोग होताहै, मैथुन करनेसे बालक विकृतरूपवाला होवे । निद्रालेनेसे दरिद्रता । पढनेसे आयुकी हानि और सायंकालमें मार्ग चलनेसे भय होताहै । अतएव इन पांचों कर्मोंको न करे ।

चांदनीके गुण ।

ज्योत्स्नाशीतास्मरानन्दप्रदातृट्पित्तदाहहृत् ।

अर्थ--चांदनी शीतल, कामदेवके आनंदको देनेवाली तथा प्यास, पित्त, और दाहको हरण करेहै ।

हिम (कोहल) गुण ।

ततोहीनगुणःकुर्यादवश्यायोनिलंकफम् ।

अर्थ--चांदनीसे हीनगुण कुहलमेंहै, तथा वादी और कफको बढाता है ।

अंधकारके गुण ।

तमोभयावहंमोहादिङ्मोहजनकंभवेत् ।
पित्तहृत्कफकृत्कामवर्धनंक्लमकृच्चतत् ।

अर्थ--अंधकार-भयदाता, मोह और दिशाओंका भ्रम उत्पन्न करताहै । पित्तको हरे, कफको करे, कामदेवको बढावे, और क्लमको करे है ।

रात्रिभोजनविधि ।

रात्रौचभोजनंकुर्यात्प्रथमप्रहरान्तरे ।
किंचिदूनंसमश्नीयाद्दुर्जरंतत्रवर्जयेत् ।

अर्थ--रात्रिके प्रथम प्रहरमें भोजन (व्यालू) करे । परंतु कुछ न्यून भोजन करे अर्थात् जितनी भूख हो उस्से थोडा खाय, और दुर्जर अर्थात् कठिनतासे जो पचता है उसको रात्रिमें कदाचित् न खाय ।

स्वापविधिः ।

शुचिदेशंविविक्तंतुगोमयेनोपलेपयेत् । वैदिकैर्गारुडैर्मंत्रैरभिमंत्र्यस्वपेत्ततः । माङ्गल्यंपूर्णकुंभंचशिरःस्थानेनिधापयेत् ।

अर्थ--एकांतमें पवित्र स्थानको गोबरसे लीप (उसजगे शय्या बिछाय) गरुडसूक्तके मंत्रोंसे शय्याको अभिमंत्रित करके अर्थात् रक्षाबंधन करके

फिर गृहस्थी शयन करे और शयनके समय मंगलीक वस्तु (सरसों, पुष्पादिकों)को और जलके पात्रको सिरहाने धरके सोवे ।

उपानहौवेणुदण्डमम्बुपात्रंतथैवच । ताम्बूलादीनिरम्यानि समीपेस्थापययेद्गृही । प्राच्यांवादक्षिणायांवाशिरःकृत्वास्वपेद्गृही । नार्द्रवासाश्चनग्नश्चशून्येभ्यक्तश्चखेऽशुचिः।पुस्तकादिदर्शनेनशर्वरीप्रथमभागं नीत्वास्वपेत् ।

अर्थ--तथा जूतीका जोडा, बांसकी, लकडी, जलका पात्र, और बीडी आदि रमणीक वस्तुओंको गृहस्थी सोतेसमय अपनेपास धरके सोवे । पूर्वकीतरफ या दक्षिणकीतरफ सिरहाना करके सोवे । परंतु गीले कपडोंसे, तथा नग्न होकर शून्यघरमें, तैलादि लगायकर, अतिउच्च स्थान और अपवित्रतासे नहीं सोना चाहिये। रात्रिका प्रथमभाग पुस्तकादि देखनेकरके व्यतीत कर फिर सोवे ।

पूर्वरात्रेव्यतीतेतुसुगच्छेद्रतिमन्दिरम् ।
पादौप्रक्षालयेत्पूर्वपश्चाच्छय्यांसमाविशेत् ।

अर्थ-जब प्रहरभर रात्रि व्यतीत होजावे तब केलिघरमें (अर्थात् स्त्रीकेपास) जाना चाहिये । तहां जायकर प्रथम पैरोंको धोय और पोछकर फिर शय्यापर बैठे ।

शय्याके लक्षण ।

चतुरशीतिपर्वाणिदैर्घ्येणपरिकल्पयेत् । षष्टचंगुलानिविस्तारंमंचकंहस्तसंमितम् । एवंशय्याविधातव्यासर्वेषांशयनोचिता । मानाधिक्येदरिद्रःस्यान्यानहीनेसुखक्षयः ।

अर्थ-अब शय्याके लक्षण कहते हैं। कि चौरासी पर्व (अंगुल) लंबा और ६० अंगुल चौडा और एक हाथ ऊंचा ऐसा पलंग होना चाहिये । यह सर्व जातके मनुष्योंको उचित है । यदि इस मानसे अधिक लंबी चौंडी और ऊंची बनावे तो दरिद्री होय, और इस मानसे न्यून अर्थात् कम करनेसे सुखका क्षय होता है । अतएव यथा मानही शय्या बनानी चाहिये ।

नविशालांनवाभग्नांनासमांमलिनांनच ।
नचजंतुमयींशय्यामधितिष्ठेदनास्तृताम् ।

अर्थ-जो बहुत बडी और बहुत छोटी हो, टूटी हो, ऊंची नीची हो मलिन (मैली) हो, तथा जिसमें खटमल आदि जीव हों और जिसपर बिछैया न बिछाहो ऐसी शय्यापर न सोवे ।

पर्य्यङ्कके लक्षण ।

आयामःसप्ततालःस्याच्चतुस्तालंतुविस्तृतम् ।
द्वितालमुन्नतंज्ञेयमेतत्पर्यङ्कलक्षणम् ।

अर्थ-अब पर्यंक (पलंग) के लक्षण कहतेहैं । सात ताल लंबा चार ताल चौडा, और दो ताल ऊंचा, ऐसा पलंग उत्तम कहाहै । परंतु यह एक मनुष्यके सोनेके वास्ते है [अंगूठेसे लेकर बीचकी ऊंगली फैलानेसे जितना बीच होता है उस मानको ताल कहते हैं] जैसे आगे लिखते हैं ।

तालादिकोंका प्रमाण ।

अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तंभवेन्मानचतुष्टयम् ।
प्रादेशस्तालगोकर्णवितास्तिस्तुयथाक्रमम् ।

अर्थ-अँगूठेसे लेकर कनिष्ठिकापर्यंत क्रमसे चार मान होते हैं जैसे प्रादेश, ताल, गोकर्ण और वितस्ती अँगूठे और तर्जनीका प्रादेश, अँगूठा मध्यमाका ताल, एवं अँगूठा अनामिकासे गोकर्ण और अँगूठा तथा कनिष्ठिकासे वितस्ति अर्थात् विलायद (वालिस्त) होता है ।

व्यवायविधिगुण ।

शरीरेजायतेनित्यंदेहिनांसुरतस्पृहा ।
अव्यवायान्मेहमेदोवृद्धिःशिथिलतातनोः ।

अर्थ-देहधारियोंके देहमें नित्य मैथुन करनेकी इच्छा होती है । मैथुनइच्छा रोकनेसे इस प्राणीके प्रमेहरोग, मेदवृद्धि, और देहमें शिथिलता होती है ।

प्रशस्तस्त्रीविचार ।

बालेतिगीयतेनारीयावद्वर्षाणिषोडश । ततस्तुतरुणीज्ञेया द्वात्रिंशद्वत्सरावधि । तदूर्ध्वमाधिरूढास्यात्पंचाशद्वत्सरावधि । वृद्धातत्परतोज्ञेयासुरतोत्सववर्जिता ।

अर्थ-सोलह वर्षपर्यंत स्त्रीकी बाला संज्ञा है। तदनंतर३२वर्षकी अवस्थातक तरुणी संज्ञा है। फिर बत्तीसके उपरान्त ५० वर्षकी अवस्थातक स्त्रीकी

अधिरूढा (प्रौढा) संज्ञा है। पचास वर्षकी अवस्थासे उपरांत स्त्री वृद्धा कहाती है। यह मैथुन करनेमें वर्जित कही है।

स्त्रीजाति।

दैवीमप्सरसोयक्षकान्ताराक्षसकामिनी।
कृत्यामितिजगुर्नारींयुक्तांतैरेवलक्षणैः।

अर्थ–स्त्री दैवी, अप्सरा, यक्षिणी, राक्षसी और कृत्या इनके लक्षण होनेसे वही वही कहाती है। अर्थात् देवताओंके लक्षण मिलनेसे देवी, अप्सराके लक्षणोंसे अप्सरा, यक्षके लक्षणोंसे यक्षिणी, राक्षसकेसे राक्षसी, उसी प्रकार कृत्याके लक्षणकरके स्त्रीको कृत्या कहतेहैं। इनके लक्षण नीचेके संस्कृत श्लोकोंसे जानलेना।

पुरुषजाति।

देवगन्धर्वयक्षाणांयेराक्षसपिशाचयोः।
लक्षणैःसंयुतास्तेस्युर्नरास्तैरेवनामभिः।

अर्थ–जो देव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस और पिशाचोंके लक्षणोंसे लक्षित हैं वे मनुष्य उसी २ नाम करके कहातेहैं। जैसे देवताके लक्षणसे देवमनुष्य, गंधर्वसे गंधर्व मनुष्य, यक्षके लक्षणोंसे यक्ष मनुष्य, राक्षसके लक्षणसे राक्षस, और पिशाचके लक्षणसे पिशाच मनुष्य कहलाताहै। इनके लक्षण नीचेके श्लोकोंसे जानो।

---

१ चन्द्रमुखीमृगनयनामदनधनुर्भ्रूः शशाङ्कशिशिरायाः। समशिखरसदृशदशना मुखपरिलीनमधुपालिः १ पुंस्कोकिलमधुरोक्तिर्बिम्बोष्ठीकम्बुकण्ठकृतशोभा। कोमलमृणालबाहूरक्तोत्पलसदृशकरचरणा २ श्रीफलसमवक्षोजामध्येक्षीणागभीरनाभिश्च। त्रिभुवनजयरेखाइवयस्यास्त्रिवलीलताभाति ३ पृथुतरनितंबबिंबाहारिणीस्मरसममन्दिरोद्देशा। कामतरोरङ्कुरइवयस्यारोमावलीविभात्युदरे ४ रम्भोरुर्हंसगतिःकनकरुचिर्नीलनीरजाभायाः। सुरभक्तापतिमुक्तालज्जालुःसुरभिरतनीरा ५ सितवसनकुसुमानिरतालघ्वाहारातिकृष्णघनकबरी। सुचिरकलितपतिरमणादेवीसापद्मिनीश्यामा ६ गीतनृत्यप्रियाकेकावाणीचित्राम्बरैषिणी। सुगन्धवक्त्रेभगतिःसुन्दरीमधुराप्रिया ७ मधुगन्धरतद्रावाकोष्णाङ्गीकठिनस्तनी। गौराश्यामशरीरावासुविशालकटीतटा ८ अजालघुःस्मरावासाबाह्यसम्भोगरागिणी। नारीयाचित्रिणीचिह्नासाप्सराजातिरुच्यते ९ स्थूलाङ्गीचातितन्वीगौरीश्यामापिदीर्घकरचरणा। वडवापृथुमदनगृहारक्ताम्बररागिणीकुटिला १० विपुलकुचापृथुजघनासोष्णाङ्गीक्षारगंधरतसलिला। याशंखिनीसमानाहंसरवायक्षिणीसास्यात् ११ दीर्घास्यदन्तनासास्थूलोष्ठीस्थूलहस्तचरणाच। कपिलकचागतलज्जावारणकुम्भाभवक्षोजा १२ करिमदगन्धरतजलारोमशजंघाकषायकटुरसना। स्थूलपृथुःस्मरगेहाशीतोष्णाङ्गीचखरवचना १३ अरुणाङ्गीश्यामावापतिवर्गद्वेषिणीकुटिलचित्ता। याहस्तिनीसमानासाज्ञेयाराक्षसीनारी १४ कलहप्रियातिदीर्घाखर्वावाश्यामपीतहारितावा। लम्बोष्ठीलघुनासालम्बशिथिलस्तनविभागाच १५ शुष्ककटिःपृथुजठराविगन्धकायाचकरभिकायोनिः। यद्यस्मराशिवोक्तिःसाज्ञेयाकर्मठाकृत्या १६ अन्योन्यलक्षणैर्युक्तांनारींसंकीर्णकांविदुः। यानिजैरेवसंयुक्ताचिह्नैस्तांकेवलांविदुः १७

२ दातासत्यवचःशूरोज्ञानीसत्वरतःशुचिः। सुवर्णकान्तिःश्यामोवामहाकायोघनध्वनिः १ आजानुलंबितौबाहूक-

परस्त्रीगमननिषेध ।

लङ्केश्वरोजनकजाहरणेनवालीतारापहारकतयाप्यथकीचकाख्यः । पाञ्चालिकाग्रहणतोनिधनंजगामतच्चेतसापिपरदाररतिंनकांक्षेत् ।

अर्थ--जानकीके हरणसे रावण, तारा (रुमा सुग्रीवकी स्त्री) के हरणसे वाली, और द्रोपदीके हरणसे कीचक मारागया अतएव सत्पुरुष परस्त्रीसे रमण करनेकी इच्छा मनकरकेभी न करे ।

उर्वशीसुरतचिन्तयाययौसंक्षयंकिलपुरूरवानृपः ।
रक्षणायनिजजीवितस्यतत्संभजेत्परवधूंनकामतः ।

अर्थ–देखो पुरूरवा राजा उर्वशी अप्सराकी रमणचिंताकरके मारागया, अतएव सत्पुरुष अपने निज जीवनके अर्थ पराई स्त्रीका संग इच्छासेभी न करे।

आयुःक्षतिंविकलतात्युपहास्यताचनिन्दार्थहानिलघुताकुगतिःपरत्र । स्याद्देवयद्यपिरतेनपराङ्गनायाःप्राहुस्तथाप्यनघमित्यपिकारणेन ।

म्बुग्रीवोबलीचतुर्दंष्ट्रः । भाग्यविधिःपृथुवक्षोलघुमधुराक्षरोचपद्माक्षः २ मलयजगन्धशरीरःकामक्रोधंनिषेवते स्थाने । मृगलिंगःसुरपुरुषोभक्तोविप्रेषुविज्ञेयः ३ सत्वरजोभ्यांयुक्तःश्यामोवाचंपकाभोवा । रूपस्वीशुचिवेशोमधुराम्लरुचिर्वदान्यश्च ४ संगीतरक्तप्रमदासुसक्तोदुःखासहोदुन्दुभिधीरघोषः । मध्यप्रमाणोम्बुजगन्धिकायोगन्धर्वजातिःकथितोजलिङ्गः ५ पृथुजठरललाटःपीनकण्ठोबलीयान्विपुलनिबिडकायोरोमशःकुड्मलाक्षः । अचलमीतरमर्षीसिंहघोषोधनाढ्यानवघृतसमगन्धःकान्तरक्तान्तनेत्रः ६ दीनेषुदाताम्लरसालभोजीरजस्तमोभ्यांजनितानुषङ्गः । यत्किञ्चिदाश्यामतनुप्रदिष्टः सयक्षजातिर्वृषलिङ्गलिङ्गः ७ कृष्णोरुणोवाविकृतास्यदंष्ट्रो प्रचंडकायोबलवान्पलाशी । उष्ट्रस्वरःकोपनिधिः सुरापस्तपोमयोवारणदानगन्धिः ८ बिडालाक्षःसुरान्द्वेष्टिनित्यमूर्ध्वशिरोरुहः । रक्षोजातिर्नरोज्ञेयोहयलिङ्गाभमेहनः ९ आसवरतिर्बहुभुक्कट्वम्लाशीचकर्मठःपिशुनः । स्थूलःकृशोतिदीर्घःखर्वोवाकृष्णपीतोवा १० अतितामसोऽजगन्धिःकाकरवोह्रस्वकूर्चकःपापः । भीरुःकुधीः पिशाचोरासभलिङ्गस्तुविज्ञेयः ११ परस्परगुणान्कांश्चिद्योबिभर्त्तिसमिश्रकः । यःस्वैरेवगुणैर्युक्तःसस्वरूपोनिगद्यते १२ ।

हरिणीछागीवडवाकरणीकरभीतिपंचधानार्यः । मृगकुक्कुटवृषतुरगरासभसंज्ञानराःपञ्च १ ऋतुलोकपालपंक्तिर्द्वादशभुवनाङ्गुलोन्मितैर्गुह्यैः । अनुपूर्वतस्तुउक्ताहरिणीहरिणादयोज्ञेया २ दैवींचतुर्थयामेदिनरात्र्योरप्सरोगणंप्रथमे । यक्षींतृतीययामेद्वितीयकेराक्षसींरमयेत् ३ निखिलेष्वपिवाकृत्यांनो वाकृत्यासदाभवेद्रम्या । करभीचिह्नाकृत्याखरःपिशाचस्तयोर्युक्तम् ४

आसनेलालयेद्बालांतरुणाशिंयनेतथा । उत्थितेप्यतिरूढांचलालनंत्रिविधंस्मृतम् १ नारंभेतरतंतावद्यावन्नोत्कंठिताप्रिया । अन्यथानसुखोत्पत्तिरितिकामानुशासनम् २ पद्मजासनलयेनपद्मिनींनागरेणरमयेताचित्रिणीम् । वेणुदारितपदेनशंखिनीं स्कंधपादयुगलेनहस्तिनीम् ३ व्रजतिरतिसुखार्थाचित्रिणीमग्रयामेभजातिदिनरजन्योर्हस्तिनीचद्वितीये । रमयतिचतृतीयेशंखिनीमार्द्रभावंरमयातिरमणीयांपद्मिनींतुर्ययामे ४

अर्थ-परस्त्रीगमनसे क्या क्या अनर्थ होते हैं सो दिखाते हैं आयुकी क्षीणता, विकलता, संसारमें हँसी निंदा, धनकी हानि, तुच्छता, मरनेपर दुर्गती ये होते हैं। अतएव परस्त्रीसंग सर्वथा त्याज्य है।

ऋतुपरत्वस्त्रीविचार।

निदाघशरदोर्बालाहिताविषयिणीमता । तरुणीशीतसमये प्रौढावर्षावसन्तयोः । नित्यं सेव्यमानाहिबालावर्द्धयतेबलम् । तरुणीह्रासयेच्छक्तिंप्रौढोद्रावयतेजराम् ।

अर्थ-गरमीकी ऋतु और शरदृऋतुमें बालास्त्रीसे विषय करना अच्छा है। तरुणी स्त्री शीतकालमें हित और प्रौढा वर्षा तथा वसंतऋतुमें हित कही है। नित्य सेवन करनेसे बालास्त्री बलको बढातीहै । तरुणी स्त्रीसे नित्य विषय करनेसे देहशक्ति क्षीण होती है। और प्रौढा स्त्री वृद्धावस्था करे है अतएव इस पुरुषको बालास्त्रीकाही सेवन हितकारी है।

सद्यःप्राणदायक षट्पदार्थ।

सद्योमांसंनवंचान्नंबालास्त्रीक्षीरभोजनम्।
घृतमुष्णोदकस्नानंसद्यःप्राणकराणिषट् ।

अर्थ-ताजा मांस, नवीन अन्न, बाला स्त्री, दूधका भोजन, घी और गरम जलसे स्नान, ये छः वस्तु तत्काल प्राणदायक हैं। अर्थात् इन छः वस्तुओंका सेवन इस प्राणीको नित्य करना चाहिये।

सद्यःप्राणनाशक षट्पदार्थ।

पूतिमांसंस्त्रियोवृद्धाबालार्कंतरुणंदधि ।
प्रभातेमैथुनंनिद्रासद्यः प्राणहराणिषट् ।

अर्थ-सडामांस, बुड्ढी स्त्री, बालार्क (प्रातःकालीनका सूर्य) ताजा दही प्रातःकाल मैथुन करना और निद्रा लेना ये छः वस्तू तत्क्षण प्राण हरण कर्त्ता हैं। अतएव इन छः वस्तुओंको शुभेच्छू पुरुष सेवन न करे।

तरुणस्त्रीकी प्रशंसा।

वृद्धोपितरुणींगत्वातरुणत्वमवाप्नुयात् । वयोधिकांस्त्रियंगत्वातरुणःस्थविरायते । आयुष्मन्तोमन्दजरावपुर्वर्णबलान्विताः। स्थिरोपचितमांसाश्चभवंतिस्त्रीषुसंयताः।

अर्थ-वृद्ध पुरुषभी तरुण स्त्रीसे गमन करे तो तरुणत्वको प्राप्त होवे। और वृद्ध स्त्रीसे यदि तरुण पुरुष गमन करे तो बुड्ढा होजावे । अतएव पुरुषको

उचित है कि, वृद्धासे कदाचित् रमण न करे जो पुरुष तरुण स्त्रीसे भोग करते हैं वो आयुष्यवान् अल्प वृद्ध, देह वर्ण बलयुक्त तथा स्थिर और हृष्टपुष्ट होते हैं।

स्त्रीसेवनमें काल ।

सेवेतकामतःकामंबलाद्वाजीकृतोहिमे । प्रकामन्तुनिषेवेत मैथुनंशिशिरागमे । त्र्यहाद्वसन्तशरदोःपक्षाद्वृष्टिनिदाघयोः।

अर्थ–हेमंतऋतुमें पुरुष वाजीकरणकी विधिसे यथेष्ट स्त्रीसे रमण करना । और शिशिरऋतुमें जब इच्छाहो तभी रमण करे और वसंतऋतु और शरदऋतुमें तीनतीन दिनके अंतरसे स्त्रीगमन करे । और वर्षाऋतु तथा गरमी की ऋतुमें पक्षपक्ष अर्थात् पंद्रह पंद्रह दिनके अंतरसे स्त्रीगमन करना चाहिये।

देशपरत्व स्त्रियोंकी प्रकृति ।

रूक्षाङ्गीबहुभोजनाचलमतिर्गीतप्रियावातला । शैलाम्भोनिधिपार्श्वदेशवनिताप्रायोभवेदीदृशी । वर्षायांकुसुमागमे चबहुशःसेव्यापरंप्रीतिदा ।

अर्थ–रूखे अंगकी, बहुत भोजन करनेवाली, चपल बुद्धि, गानप्रिय, और वातप्रकृति, ऐसी पर्वत, समुद्रके समीप रहनेवाली स्त्रियां होती हैं । इनको वर्षा और वसंतऋतुमें प्रायः सेवन करे ये इसऋतुमें आनंदकी दाता हैं।

गुर्वाहारसुगंधमाल्यवसनास्निग्धाङ्गरागादिभिः। व्यक्तग्रन्थिरहर्निशंचसकलेगात्रेवहंत्युष्णताम्।अम्भोजप्रसवारुणोत्तमकराशीतालयप्रेयसी । सौराष्ट्राङ्गकलिङ्गसिन्धुयुवतीःकामं भवेत्पित्तला । हेमन्तेशिशिरेनरैरनुदिनंसेव्यायथाकांक्षया ।

अर्थ–अत्यंत भोजन करे, सुगंधित माला, वस्त्रोंको धारण करनेवाली, अंगराग (आदिशब्दसे बीडी चबाना, माँग भरना, भूषण धारण करने करके) सुशोभित, जिसके देहमें ग्रन्थि हो । और संपूर्ण देहमें उष्णताको धारण करनेवाली जिसके स्खलित होनेमें कमलकीसी गंध आवे लाल हस्तकमल जिसके, और शीतल स्थान जिसको प्रिय ऐसी सौराष्ट्रदेश, अंगदेश, कलिंगदेश और सिंधकश्मीरदेशकी पित्तप्रकृतिवाली स्त्रियां होती हैं । इनको हेमंत और शिशिरऋतुमें यथेच्छ सेवन करे ।

झेयाकोकिलकाकलीमृदुरवानन्दैषिणीशीतला । निद्रालुश्च शिरीषकोमलतनुःस्निग्धाननाश्लेष्मला । वङ्गश्रीहटकामरूपतरुणीसुस्निग्धकेशीभवेत् । गंतव्याशरदिप्रदिष्टमदनाग्रीष्मेऽपिपुंभिर्वरैः ।

अर्थ–कोकिलके समान मिष्टवचनकी बोलनेवाली, आनंदकी इच्छा जिसके और शीतल तथा निद्रालु, और शिरीषपुष्पके सदृश नम्रदेहवाली स्निग्धमुखी और कफप्रकृति ऐसी वंग (बंगाला) श्रीहट (सिलहट) और कामरूदेशकी स्त्री होती हैं। इनके बालभी सटकारे कारे होते हैं। इसी कारण मनुष्यको शरद्ऋतु और ग्रीष्मऋतुमें इनकेसाथ कामक्रीडा करनी चाहिये ।

ऋतुपरत्वस्त्रीगमनमें सुश्रुतका प्रमाण ।

त्रिभिस्त्रिभिरहोरात्रैःसमयात्प्रमदांनरः ।
सर्वेष्वृतुषुघर्मेतुपक्षात्पक्षाद्व्रजेद्बुधः ।

अर्थ–सुश्रुतमें लिखा है कि, संपूर्ण ऋतुओंमें इस मनुष्यको तीनतीन दिनके अंतरसे मैथुन करना और गरमीकी ऋतुमें पंद्रह पंद्रह दिनके अंतरसे रमण करना चाहिये ।

ऋतुपरत्व कामस्थान ।

शीतेरात्रौदिवाग्रीष्मेवसन्तेतुदिवानिशि ।
वर्षासुवारिदध्वानेशरत्सुसरसिस्मरः ।

अर्थ--शीतकालमें रात्रिमें गमन करे, गरमियोंमे दिनमें, और वसंतऋतुमें दिन रात्रि दोनोंसमय, तथा वर्षाऋतुमें जिससमय मेघ गर्ज रहाहो अर्थात् वर्षताहो उससमय और शरद्ऋतुमें सरोवरमें कामदेव वास करे है अतएव सरोवरमें या सरोवरके समीपस्थानमें कामक्रीडा करे ।

निषेधकाल ।

नोपेयात्पुरुषोनारींसन्ध्ययोर्नचपर्वसु ।
गोसर्गेचार्धरात्रेचतथामध्यंदिनेपिच ।

अर्थ–अब वर्जित समय कहते हैं। दोनों समयकी संध्या, पर्व[1], जिसमय

1 चतुर्दश्यष्टमीचैव अमावास्याचपूर्णिमा । पर्वाण्येतानिराजेन्द्र ! रविसंक्रान्तिरेवचेति ।

गौ छोडी जाती है, अर्धरात्रि तथा मध्याह्नके समय इस पुरुषको स्त्रीसे रमण नहीं करना चाहिये ।

स्त्रीसेवनविधि ।

विहारंभार्ययाकुर्याद्देशेतिशयमावृते ।
रम्येश्राव्याङ्गनागानेसुगन्धेसुखमारुते ।

अर्थ-इस पुरुषको अपनी स्त्रीकेसाथ विहार करना चाहिये । जो देश प्रायः सर्व जनोंको प्रकाशित न हो अर्थात् एकांत हो और रमणीक, जिसमें स्त्री गान कर रही हो सुगंधित और सुखदायक पवन आय रही हो ऐसी जगे संभोग करे ।

संभोगके अयोग्यस्थान ।

देशेगुरुजनासन्नेविवृतेतित्रपाकरे । श्रूयमाणव्यथाहेतुवचने चरमेन्नच ॥ वह्निब्राह्मणपूज्यवर्गनिकटेनद्यांचदेवालये दुर्गादौचचतुष्पथेपरगृहेऽरण्येश्मशानेपिवा । संक्रांतौशशिसंक्षयेथशरदिग्रीष्मेज्वरात्तौव्रते ।संध्यायांचपरिश्रमेषुसुरतंकुर्यान्नविद्वान्कचित् ।

अर्थ-गुरुजनके समीप अर्थात् जहां मातापिता आदिकी समीपता हो । खुलाहुआ, और लज्जाकारक, तथा जहां किसीप्रकारका दुःख और दुःखित शब्द सुनाई देता हो वहां कदाचित् रमण न करे अग्नि, ब्राह्मण पूज्य, इनके समीप, नदीके किनारे, देवालयमें, कोट (किले) आदिमें, चौराहेमें, पराये घरमें घोर वनमें श्मशानमें, दिनमें, संक्रातिमें, अमावस, अत्यंत शरदी, और गरमीमें, ज्वरमें, व्रतमें, संध्या (प्रातःकालकी और सायंकालकी) में इसी प्रकार परिश्रम करके इनमें विद्वान् पुरुषको कदाचित् स्त्रीसेवन नहीं करना चाहिये ।

विहितप्रदेशः ।

विस्तीर्णेसजलेसुधाधवलितेचित्रादिनालङ्कृते रम्यप्रोन्नतचत्वरेऽगरुमहाधूपादिपुष्पान्विते । सङ्गीताङ्गविराजितेस्वभवनेदीपप्रभाभासुरे । निःशङ्कंसुरतंयथाभिलषितंकुर्यात्समंकान्तया ।

अर्थ-लंबाव और चौडावयुक्त, सजल, सफेदीसे पूतरहाहो, चित्रामसे अलं-

कृत, अथवा तसबीरोंसे शोभित गानके अंग (बाजे नृत्य आदिसे)विराजित दीपकके प्रकाशसे प्रकाशित, अथवा झाड फानूससे प्रकाशित, रमणीक और ऊंचा है आंगन वा छत्त जिसकी, अगरआदि धूनीसे धूपित तथा पुष्पबिछ रहे हों ऐसे परम परमणीक अपने घरमें अपनी प्यारीकेसाथ निःशंक यथेष्ट रमण करे ।

संभोगसमयमें वेष ।

स्नातश्चन्दनलिप्ताङ्गःसुगंधःसुमनोन्वितः । भुक्तवृष्यः सुवसनःसुवेषःसमलङ्कृतः । ताबूम्लवदनःपत्न्यामनुरक्तोऽधिकस्मरः । पुत्रार्थीपुरुषोनारीमुपेयाच्छयनेशुभे ।

अर्थ–अब संभोग करनेके सयय कैसा पुरुष होय यह कहते हैं । स्नानकर चन्दन लगाया, सुगंधित अतर आदि लगाया रक्खाहो, प्रसन्नचित्त, वीर्यके बढानेवाली औषध भक्षण कर, सुंदर वस्त्र और सुंदर वेष तथा भूषण और पुष्पादिहारोंसे सजकर, बीडा चबाय, अपनी प्राणप्यारीमें अनुरागयुत, कामोद्दीपन होरहाहो, ऐसा पुरुष पुत्रकी इच्छा करके शुभ शय्यापर अपनी स्त्रीकेपास जावे ।

अयोग्य पुरुष ।

अत्याशिऽतोधृतिःक्षुद्रान्सव्यथाङ्गःपिपासितः ।
बालोवृद्धोन्यरोगार्त्तस्त्यजेद्रोगीचमैथुनम् ।

अर्थ–अब अयोग्य पुरुष कहते हैं । जिसने अत्यंत भोजन कराहो, धैर्यरहित, भूखा, देहमें पीडा होरहीहो, प्यासा हो, बालक, बुड्ढा, गरमी सुजाक आदिसे पीडित, और रोगी ऐसे पुरुषको मैथुन कदापि नहीं करना, यदि पुरुषकी इच्छाभी हो तो स्त्रीको नाहीं करदेना चाहिये ।

वर्जितमैथुनपुरुष ।

क्षुधितःक्षुब्धचित्तश्चमध्याह्नेतृषितोऽबलः । स्थितश्चहानिशु-

१ मार्जारीहिमवालुकापिशुनकं गोशीर्षकंशिल्पिनं वह्नेःप्रीतिकरं तथाम्बुपिशितास्यात्कौशिकौजांगिकम् कल्कंभागविवर्धितंगुडासितासंमूर्च्छितंसर्पिषायुक्तं मन्मथवर्त्तिरित्यभिहितास्याद्रोगिनांसर्वदा १ सुरुदारुमरुवमस्तकलाक्षागुरुशालचूर्णकर्पूरं । नृपवासदेहगेहयोग्यामनोहरादीपवर्त्तिरियम् २

२ अथांगवासः चूर्णकुष्टमुरानागकेशराणांघृतान्वितम् । मधुपींतकरोत्यङ्गंसौरभंसततंनृणाम् ॥ प्रातःकुष्ठस्ययच्चूर्णंलिहेन्मधुघृतान्वितम् । काठिन्यंसौरभंतस्यदेहेस्याच्चिरजीविता ॥

अथधूपाः शशिनखागीरिमदमांसीजलभागोमलयलोध्रयोर्भागौ । मिलितैर्गुडपीरमृदितैर्वस्त्रगृहादीनिधूपयेच्चतुरः ॥

क्रस्य वायोःकोपंचविन्दतिं । व्याधितस्यरुजाप्लीहामूर्च्छा-
मृत्युश्चजायते ।

अर्थ-भूखा- क्षोभितचित्तवाला, मध्याह्नमें, प्यासा, बलहीन और स्थित इनको मैथुन नहीं करना, यदि करेतो शुक्रकी हानी, वायुकोप होय और रोगी करेतो उसके पीडा अधिक हो, तापतिल्ली, मूर्च्छा, और मृत्यु होवे ।

योग्य स्त्री ।

भार्यारूपगुणोपेतांतुल्यशीलकुलोद्भवाम् । अभिकामोऽ-
भिकामांतुहृष्टोहृष्टामलंकृताम् । सेवेतप्रमदांयुक्त्यावाजी-
करणबृंहितः ।

अर्थ-रूप और गुणयुक्त समान स्वभाव और कुलमें प्रगट दोनोंके रमणकी इच्छा हो, और पुरुष आप प्रसन्न हो एवं प्रसन्नचित्तवाली स्त्री तथा श्रृंगार कर रक्खाहो और वाजीकरणकारक औषधी सेवन कर पुरुष अपनी भार्याको युक्तिकेसाथ सेवन करे ।

अनुरक्तस्त्रीके लक्षण ।

स्नेहंमनोभवकृतंकथयन्तिभावा नाभिभुजस्तनविभूषणदर्श-
नानि । वस्त्राभिसंयमनकेशविमोक्षणानि भ्रूक्षेपकंपितक-
टाक्षनिरीक्षणानि ।

अर्थ-अब अनुरक्त स्त्री अर्थात् जो अपनेको चाहती हो उसके लक्षण कहते हैं । कामदेवके करेहुए भाव स्नेह (प्रीती) को प्रगटकरते हैं । उन भावोंको कहते हैं जैसै नाभी, भुजा, स्तन और भूषणोंको दिखाना वस्त्रोंका संयमन अर्थात् घूंघट आदि अथवा वस्त्रोंको सुधारना, बालोंका छोडना, भौंहके मरोडने करके कंपितकटाक्षोंसे देखना ये अनुरागवती स्त्रीके लक्षण है ।

उच्चैःष्ठीवनमुत्कटप्रहसितंशय्यासनोत्सर्पणम् गात्रास्फोट-
नजृंभणानिसुलभद्रव्याल्पसंप्रार्थना । बालालिङ्गनचुंबना-
न्यभिमुखेसख्याःसमालोकनम् दृक्पातश्चपराङ्मुखेगुण-
कथाकर्णस्यकंडूयनम् ।

अर्थ-ऊंचेसे खकारकर थूकना, अत्यंत हँसना, सेजसे और विछैयेसे हटकर समीप आना अंगोंको बजाना, जँभाई लेना, सुलभ और थोडी द्रव्यकी या-

चना करना, पुरुषको देख अपने बालकको आलिंगन करना और उसका चुंबन करना, अपनी बराबरकी सहेलीके साह्मने देखना, जब पुरुषकी दृष्टी न होय तब दृष्टिका चलाना, और परोक्ष (पिछाडी) बडाई करना, तथा कानका खुजलाना ।

इमांचविंद्यादनुरक्तचेष्टांप्रियाणिवक्तिस्वधनंददाति । विलोक्यसंहृष्यतिवीतरोषाप्रमार्ष्टिदोषान्गुणकीर्त्तनेन । तन्मित्रपूजातदरिद्विषत्वंकृतस्मृतिःप्रोषितदौर्मनस्यम्। स्तनौष्ठदानान्युपगूहनंचस्वेदोऽथचुम्बाप्रथमाभियोगः ।

अर्थ--प्रियवचनोंका बोलना, अपनेपाससे धन देना, यदि क्रोधमेंभी बैठी होतो देखतेही क्रोधको छोड प्रसन्न होजावे और उसके गुणकीर्त्तन करके दोषोंको दूरकरदे, तथा अपने प्यारेके जो मित्रगणहैं उनका सत्कार करना, और जो उसके वैरीहैं उनसे द्रोह करना, तथा जो अपने प्यारेने कुछ सत्कार कराहो उसको याद रखना, उसके परदेशमें रहनेसे अप्रसन्न रहना तथा स्तनका स्पर्श और ओष्ठोंका चुंबन तथा आलिंगन करना पसीनोंका आना तथा पुरुषका चुंबन करना ये संपूर्ण लक्षण अनुरक्तस्त्रीके प्रथम समागममें होते हैं ।

विरक्तस्त्रीके लक्षण ।

विरक्तचेष्टाभ्रुकुटीमुखत्वंपराङ्मुखत्वंकृतविस्मृतिश्च । असंभ्रमोदुष्परितोषताचतद्विष्टमैत्रीपरुषंचवाक्यम् । स्पृष्ट्वाथवालोक्यधुनोतिगात्रंकरोतिगर्वंनरुणद्धियातम् । चुंबाविरामेवदनंप्रमार्ष्टिपश्चात्समुतिष्ठत्तिपूर्वसुप्ता ।

अर्थ--विरक्त कीसी चेष्टाकरे, भौंह चढायेई रहे, कभी सन्मुख न देखे, करे हुए उपकारको न माने, पतिका निरादर करे, किसीप्रकार संतुष्टही नहो, अपने पतिके द्वेषियोंसे प्रीति करना, कठोरवचन बोलना स्पर्श करनेसे तथा देखकर पीटनेलगे, गर्वकरे, तथा जातेहुएको रोके नहीं, चुंबन करतेही शीघ्र मुखको पोंछ डाले, पतिसे प्रथम सोवे और पतिके जगनेके पीछे उठे ये विरक्त अर्थात् जिसकी प्रीति नहींहो उसकी चेष्टा है ।

स्त्रीणां नाशहेतु ।

पितृसदननिवासःसङ्गतेःपुंश्चलीभिः प्रवसनमपिपत्युर्वार्ध-

कंसेर्ष्यताच । वसतिरथचपुंभिर्दुष्टशीलैस्त्ववश्यंक्षतिरपि निजवृत्तेर्योषितांनाशहेतुः ।

अर्थ-स्त्री इनकारणोंसे बिगडतीहै । जैसे पिताके घरमें रहना, दुष्ट स्त्रियों-के पास बैठना उठना. पतिके परदेशमें रहनेसे, पतिके बुड्ढे होनेसे, और ईर्ष्या करनेसे तथा खोटे पुरुषोंमें रहनेसे और निजवृत्तिके नष्ट होनेसे स्त्री व्यभिचारिणी होतीहै ।

दुष्टस्त्रियोंकी दूती ।

भिक्षुणिकाप्रव्रजितादासीधात्रीकुमारिका रजिकामालाका-रीदुष्टाङ्गनासखीनापितीदूत्यः । कुलजनविनाशहेतुर्दूत्योय-स्मादतःप्रयत्नेन । ताभ्यःस्त्रियोभिरक्ष्यावंशयशोमानवृद्ध्यर्थम् ।

अर्थ-दुष्टस्त्रियोंकी दूती कहतेहैं । भीख मांगनेवाली बैरागिन, दासी, धाय, बालिका, धोबन, मालिन, खोटीस्त्री, सहेली, और नाइन ये दूती हैं । अर्थात् खोटी स्त्री पुरुष इनके द्वारा बातचीत करते हैं। ये कुलजनविनाशकी हेतुहैं । अतएव अच्छे पुरुष इनदुष्टदूतियोंसे अपने घरकी स्त्रियोंकी रक्षा करे ।

स्त्रियोंके संकेत ।

रात्रीविहारजागररोगव्यपदेशपरगृहेक्षणिकाः ।
व्यसनोत्सवाश्चसङ्केतहेतवस्तेषुरक्ष्याश्च ॥

अर्थ-रात्रिमें घरसे निकल बाहर डोलना रातमें जागना (जैसे रज्जगे-में स्त्री इकट्ठी होती है) रोगका मिषकरके पडी रहना, पराये घरमें बहुत-सा उठना बैठना, देवदर्शनका मिष करना, व्यसन (रोगको उत्पन्न करता हेतुको लेकर दुःख सेवन करना) और विवाहादिक उत्सवोंमें जाना ये दुष्ट-स्त्रीके परपुरुषोंसे मिलनेके संकेतहेतु है अतएव चतुर पुरुष इन संकेतोंसे स्त्री-की रक्षा करे ।

त्याज्य स्त्री ।

रजस्वलामकामांचमलिनामप्रियान्तथा । वर्णवृद्धांवयोवृ-द्धांतथाव्याधिप्रपीडिताम् । हीनाङ्गींगर्भिणींद्वेष्यांयोनिरो-गसमन्विताम् । सगोत्रांगुरुपत्नींचतथाप्रव्रजितामपि । ना-भिगच्छेत्पुमान्नारींभूरिवैगुण्यशंकया ।

अर्थ-रजस्वला, अकामा, मलिन, अप्रिय वर्णवृद्ध (अर्थात् शूद्रको वैश्यकी, वैश्यको क्षत्रीकी, क्षत्रीको ब्राह्मणकी) स्त्री, अवस्थामें बडी, रोगसे पीडित, हीन अंगकी, गर्भिणी, वैरीकी स्त्री, योनिरोग (गरमीआदि रोग) वाली, एकही गोत्रकी, गुरुकी पत्नी, संन्यासिन अर्थात् बैरागिन इन स्त्रियोंमें, अनेक अवगुणकी शंका करके पुरुष गमन न करे। कोई द्वेष्याकी जगे वेश्या कहता है।

दुःसाध्या स्त्री।

भर्तृस्नेहवतीदृढैकवनिताप्रेम्णाविहीनाभृशं सेर्ष्याभूरिसुतात्रपाभरयुतागुर्वादिभीतिस्थिता । प्रायेणार्थवतीतथापरजनालापेविरक्तासदा निर्लोभाव्यभिचारकर्मणिबुधैर्दुःखेनसाध्यास्मृता ।

अर्थ-पतिमें अत्यंत प्रेम रखतीहो दृढ एकपुरुषमें आसक्त और निरंतर प्रेमहीना, ईर्षायुक्त, बहुत संतानवाली, अत्यंत लज्जावाली, गुरु (ससुर, सास जेठ) आदिकी भय करतीहो, प्रायः धनकी कांक्षा रखतीहो, तथा परपुरुषसे वार्तालाप करनेमें सदैव विरक्तहो और निर्लोभहो ऐसी स्त्रियां व्यभिचारकर्ममें चतुरोंकरकै दुःसाध्य कहीहैं अर्थात् इतनी स्त्री दुष्टपुरुषोंको प्राप्त नहीं हो सकती।

गर्भिणीसप्तमान्मासादुपरिष्टाद्विशेषतः ।
निषिद्धात्वष्टमेमासेमैथुनंनसमाचरेत् ।

अर्थ-सातवे महिनेसे गर्भिणी स्त्रीसे मैथुन करना निषेध है परंतु अष्टम महिनेमें तो सर्वथा मैथुन करना निषेध है।

रजस्वलागमननिषेध।

रजस्वलांगतवतोनिरस्यासंयतात्मनः ।
दृष्टचायुस्तेजसांहानिरधर्मश्चततोभवेत् ।

अर्थ-रजस्वला स्त्रीसे गमन करनेसे मनुष्यकी दृष्टि, आयु, तेज, इनकी हानि होतीहै। और धर्मशास्त्रके मतसे अधर्म होताहै, अतएव इस पुरुषका रजस्वला स्त्री सर्वथा त्याज्यहै।

लिंगिनींगुरुपत्नींचसगोत्रामथपर्वसु । वृद्धांचसंध्ययोश्चापिगच्छतोजीवितक्षयः । गर्भिण्यांगर्भपीडास्याद्व्याधितायांब-

लक्षयः । हीनांगींमलिनांद्वेष्यांक्षामांवंध्यामसंवृते । देशेऽभिगच्छतोरेतःक्षीणंम्लानंमनोभवेत् ।

अर्थ–वैरागिन, गुरुपत्नी, गोत्रकी स्त्री, और पर्वमें तथा वृद्धास्त्रीसे और दोनोंसंध्याओंमें गमन करनेसे जीवन नष्ट होताहै । गर्भिणीसे गमन करनेसे गर्भको पीडा होतीहै । रोगवाली स्त्रीके साथ गमनसे बल क्षीण होताहै । हीनअंगवाली, मलिन, शत्रुकी स्त्री, दुर्बल स्त्री, वंध्या स्त्रीसे, और प्रकाशित स्थानमें स्त्री गमन करनेसे वीर्यकी क्षीणता, और मनकी मलिनता होतीहै ।

स्त्रीणां वैराग्यहेतुमाह ।

कार्पण्यादतिमानरोगविरहोद्योगादिपारुष्यतो मालिन्यासमज्ञतादिभयतःशोकाद्दरिद्रादपि । भर्तॄणांतनुतादिभिश्चवपुषःकाठिण्यतःशङ्कना दोषाणांचवृथाप्रयांतिवनितावैराग्यमुच्चैःसदा ।

अर्थ–अत्यंत कृपणता (लोभी) अति मानसे, रोगी होनेसे उद्योगादि पुरुषार्थरहित होनेसे, मलिनतासे, असमानतासे, मूर्खताआदिसे भयसे शोकसे दरिद्रतासे, पतिका देह अत्यंत पतला होनेसे, तथा देहके अति कठोर होनेसे, अत्यंत शंका करनेसे, व्यर्थ दोष लगाना इन कारणोंसे स्त्रियोंके मनमें पुरुषसे वैराग्य उत्पन्न होता है ।

विरक्त स्त्रीके लक्षण ।

नाभिपश्यतिभर्त्तारंनोत्तरंसंप्रतीच्छति । वियोगेसुखमाप्नोति संयोगेचातिसीदति । शय्यामुपगताशेतेवदनंमार्ष्टिचुम्बने । तन्मित्रैर्द्वेष्टिमानंञ्चविरक्तानाभिवांछति ।

अर्थ–विरक्त स्त्रीके यह लक्षण हैं कि, पतिके सन्मुख न देखना, पतिकी बातका उत्तर न देना, जब पति कहीं चलाजाय तब प्रसन्न रहैं, और मिलनेसे दुःखी होय प्रथम तो शय्यापर जाय नहीं और जायभीतो सोय

---

१ स्त्रीवशीकरणम् नाभिहृत्कंठदेशेषुददन्श्वासशनैःशनैः । कामंसंसाधयेत्कामीगायत्रींसप्तधापठेत् । अथ कामगायत्री ॐमनोभवायविद्महे पुष्पबाणायधीमहि। तन्नःकामःप्रचोदयात् । व्याजेनचुंबनादीनामुच्छ्वासंपाययेत्प्रियाम् । तेनसावशमायातिनतुतस्याःस्वयंपिबेदिति ।

रहे, यदि पति चुंबन करे तो तत्काल कपोलको पौछ डाले। और पतिके मित्रोंसे द्वेष करना तथा पतिके सत्कार करनेको प्रसन्न नहीं करे ।

प्रीतिरुच्यते ।

नैसर्गिकीविषयजासमाचाभ्यासिकीतथा ।
चतुर्विधेतिविद्वद्भिर्दंपत्योःप्रीतिरुच्यते ।

अर्थ--स्त्रीपुरुषोंकी चार प्रकारकी प्रीति होती है। जैसे नैसर्गिकी, विषयजा, समा और अभ्यासकी अब इनके पृथक् पृथक् लक्षण लिखते हैं।

नैसर्गिकी प्रीति ।

अभ्यासविषयासाध्यादंपत्योःसहजातुया ।
सान्द्रानिगडभूताचप्रीतिर्नैसर्गिकीमता ।

अर्थ-अभ्यास विषयमें साध्य और विवाह होतेही जो प्रीति घोर बेडीके समान आपसमें होजावे अर्थात् छुडानेसे जो न छुटे उसको नैसर्गिक प्रीति कहते हैं।

विषयजा और समप्रीतिके लक्षण ।

मालाचन्दनभोज्याद्यैर्विषयैर्वर्द्धितातुया ।
प्रीतिर्विषयजाप्रोक्तासमयोगेसमास्मृता ।

अर्थ-जो माला चंदन भोज्य (मिठाई) आदिके देनेलेनेसे बढे उसको विषयजा प्रीति कहते हैं। और समान योगोंकर बढीहो उस प्रीतिको समा कहते हैं।

अभ्यासिकी प्रीति ।

आखेटदेवपूजादिकेलिसङ्गीतकर्मसु ।
अभ्यासयोगाद्यावृद्धिंयातिसाभ्यासिकीमता ।

अर्थ-सिकार देवपूजन आदि और मैथुनक्रीडा,गाना बजाना आदिकर्मोंमें अभ्यासयोगसे जो प्रीति बढती है उस प्रीतिको अभ्यासिकी कहतेहैं।

योनिस्वरूपमाह ।

योनेरभ्यंतरेकापिपद्माकिंजल्ककोमला । कापिस्याद्घाटिकाकीर्णाकाचिद्वालिचयाकुला । गोजिह्वाभाखरस्पर्शाकाचिदभ्यन्तरेभवेत् । पूर्वपूर्वतरातासुश्रेष्ठाज्ञेयाविचक्षणैः ।

अर्थ–योनि भीतरसे किसीकी कमलपरागसमान कोमल होतीहै । किसी-की योनि गुटकाके आकार संकीर्ण होती है । किसीकी अनेकवली (आंटे) युक्त होती है । किसीकी योनि भीतरसे गौके जीभके समान खरदरी होती है । इनमें पूर्व पूर्व योनि श्रेष्ठ है । और उत्तरोत्तर निंदित है ।

कामांकुश ।

योनिमध्येस्तिनाड्येकाकामांकुशसमाहिसा ।
लिंगेनक्षोभितासैवमदवारिविमुंचति ।

अर्थ–योनिके बीच एक कमांकुशा नाडी है, यदि उस नाडीको लिंगद्वारा ताडित करीजावे तो वह स्त्री मदवारिको छोडती है । अर्थात् स्त्रीस्खलित होतीहै ।

मन्मथछत्र ।

कामातपत्रात्सृजतिसस्पंदइतिकीर्त्यते । वरांगरन्ध्रदूर्ध्वतु
नासिकाभंयदस्तितत्।मन्मथच्छत्रमित्याहुराढ्यंमदशिराचयैः ।

अर्थ–अब कहते हैं कि, वह स्त्री मदवारिको कहांसे छोडती तहां मदवारि-को कामातपत्र अर्थात् कामदेवके छत्रसे प्रगटकरेहै । उसको सस्पंद कहते हैं । वह वरांगछिद्रके । ऊपर नासिकाके आकारहै । उसको मन्मथछत्र कहते हैं यह मन्मथछत्र अनेक मदशिराओंसे परिपूर्ण है ।

सुखसाध्या स्त्री ।

मार्गादिश्रांतदेहाचिरविरहवतीमासमात्रप्रसूता । गर्भाल-
स्याचनव्यज्वरयुततनुकात्यक्तमानाप्रसन्ना । स्नातापुष्पाव-
सानेनवरतिसमयेमेघकालेवसन्ते । प्रायःसंपन्नरागामृगशि-
शुनयनास्वल्पसाध्यारतेस्यात् ।

अर्थ–इतनी स्त्री सुखसाध्यहै, अर्थात् सहज प्राप्त हो सकतीहै । जैसे कि-- जो मार्ग चलनेसे थकगईहो, बहुतदिनकी विरहवती, महिने भरकी प्रसूता होचुकी हो, गर्भवती, आलसवती, नवीन ज्वरवाली, जिसने मान त्यागदी-नाहो , और प्रसन्न तथा रजोदर्शकी समाप्तिमें स्नान करचुकीहो, और नवीन रतिसमयमें, वर्षाके समय, वसंतकालमें और जो सम्यक् अनुरागवतीहो, ऐसी स्त्री रतिसमयमें अल्पसाध्य होती है । अर्थात् सहज प्राप्त हो सकती है ।

शुक्रवेगरोकनेका फल ।

उच्चारितेमूत्रितेचरेतसश्चविधारणे । उत्तानेचभवेच्छीघ्रंशुक्राश्मर्याश्चसंभवः । सर्वमेतत्त्यजेत्तस्माद्यतोलोकद्वयाहितम् । शुक्रंतूपस्थितंमोहान्नसंधार्यंकदाचन ।

अर्थ-मल,मूत्र,वीर्य, इनके वेग रोकनेसे तथा चित्त लेटनेसे इस प्राणीके शुक्राश्मरी अर्थात् वीर्यकी पथरी होजातीहै, अतएव ये संपूर्ण मलमूत्रादिका धारण करना लोकद्वयमें अहित है इसीसे त्याज्यहै । और शुक्रके उपस्थित वेगको तो सर्वथा त्यागनाही हितकारीहै ।

भर्तुःपादौनमस्कृत्यशय्यांनम्राननागता ।

अर्थ-जब स्त्री शयनकरनेको जाय तब प्रथम भर्त्ताके चरणमें प्रणामकर प्रसन्नमुख सेजपर स्थितहो ।

वातपित्त कुपितहोनेमें मैथुनवर्जित ।

प्रत्यूषस्यार्धरात्रेचवातपित्तेप्रकुप्यतः । तिर्यग्योनावयोनौवादुष्टयोनौतथैवच । उपदंशस्तथावायोःकोपःशुक्रसुखक्षयः ।

अर्थ--प्रत्यूष और अर्धरात्रिके समय वातपित्त कुपित होते हैं, अतएव ये दोनों समय त्याज्यहै । तिरछी योनि, और अयोनि (बकरी, कुतियाआदिकी) तथा दुष्टयोनि (गरमी आदिसे दूषित) इनमें गमन करनेसे उपदंशरोग, फिरंगवायु, अथवा बादी और क्षीणवीर्य ये रोग होतेहैं ।

मैथुनानंतर कर्म ।

ऋतौतुमैथुनेस्नायाद्गर्भसंभूतिशङ्कया । अनृतौतदभावाच्चशौचंत्रिर्मूत्रवच्चरेत् । एवंयथायोगंशुद्धःसन्स्वशय्यायां यथासुखंप्रबोधपर्यंतंस्वपेत् ।

अर्थ--ऋतुकालमेंतो स्त्रीको मैथुनकरके गर्भशंकाके कारण स्नान करना और अनृतु अर्थात् अन्य समय मैथुनकरनेसे गर्भ न रहनेके कारण स्नान करना और तीनबार मृत्तिका जलसे शुद्धि करनी चाहिये । इसप्रकार शुद्धहोकर अपनी २ शय्यापर यथा सुखपूर्वक प्रातःकाल जगनेके समयपर्यंत सोना चाहिये ।

मैथुनान्तमें हितवस्तु ।

स्नानंसशर्करंक्षीरंभक्ष्यमैक्षवसंस्कृतम् ।
वातोमांसरसःस्वप्नोव्यवायान्तेहिताअमी ।

अर्थ–स्नानकरना, मिश्रीमिला दूध पीना, खांडके पदार्थ (लड्डू, पेडा, बरफी, मलाई, आदि) पवन मांसरस और शयनकरना ये मैथुनान्तमें हितकारक हैं इसीसे इनका सेवन इस मनुष्यको करना चाहिये ।

दूध पीनेमें प्रमाण ।

सद्योबलहरानारीसद्योबलकरंपयः ।
स्त्रियंगच्छेत्पयःपीत्वातांचत्यक्त्वापुनःपिबेत् ।

अर्थ–स्त्री, पुरुषके बलको तत्काल हरण करतीहै, और दूध इस प्राणीके सद्यही बल करैहै । अतएव यह पुरुष स्त्रीकेपास दूध पीकर जाय और जब मैथुनकर चुके तब फिर दूध पीवे जिस्से फिर बल आयजावे ।

अतिमैथुनकरनेके दोष ।

शूलकासज्वरश्वासकार्श्यपांड्वामयक्षयः ।
अतिव्यवायाज्जायंतेरोगाश्चाक्षेपकादयः ।

अर्थ–अतिमैथुन करनेसे शूलरोग, खांसी, ज्वर, श्वास, कृशता, पांडुरोग, क्षई, और वातके आक्षेपकादि रोग होतेहैं । इसीसे मनुष्यको उचितहै कि, अतिमैथुन न करे ।

रात्रिमें जगनेके दोष ।

रात्रौजागरणंरूक्षंकफदोषविषार्त्तिजित् ।

अर्थ–रात्रिका जागना रूक्षता करैहै और कफके दोष तथा विषकी पीडाको दूर करैहै ।

निद्राके गुण ।

निद्रान्तुसेविताकालेधातुसात्म्यमतन्द्रितम् ।
पुष्टिवर्णबलोत्साहवह्निदीप्तिंकरोतिच ।

अर्थ–समयपर निद्रा सेवन करनेसे वह निद्रा धातुसाम्य, तन्द्राहीन पुष्टि

वर्ण बल उत्साह और जठराग्निकी दीप्तता करेहै। अतएव निद्राके समय निद्रा अवश्य लेना। अन्यसमय नहीं।

निद्राके पूर्व भक्षणीयद्रव्य।

योलेढिशयनसमयेमधुमिश्रंबीजपूरदलचूर्णम्।
सचपीडाकरवातप्रसरानिरोधात्सुखंस्वपिति।

अर्थ–जो मनुष्य शयनकरतेसमय बिजोरेके पत्तेके चूर्णको सहतमें मिलायकर चाटताहै, वह पीडाकरता बादीके प्रसरनिरोधसे सुखपूर्वक सोताहै।

प्रातःकाले जलपानम्।

सवितुरुदयकालेप्रसृतीःसलिलस्ययःपिबेदष्टौ। रोगजरापरिमुक्तोजीवेद्वत्सरशतंसाग्रम्। अस्यजलपानस्योपक्रमकालोरात्रेश्चतुर्थप्रहरप्रवेशः।

अर्थ–सूर्यके उदयसमय जो मनुष्य उठकर आठपस्से अथवा आठचुल्लू जल पीताहै। वह रोग और वृद्धावस्थारहितहो सौवर्षसेभी अधिक जीवे। इस जलके पीनेका समय रात्रिके चतुर्थ प्रहरप्रवेशमें जानना। जैसेलिखाहै।

यथा।

पिबतिपर्य्युषितंजलमन्वहंतिमिरिणोचरमेप्रहरेयदा।

अर्थ–जो तिमिरवान् मनुष्य नित्य प्रतिरात्रिके चतुर्थप्रहरमें पर्युषित जल पीताहै।

तथाच तन्त्रान्तरे।

अम्भसः[1]प्रसृतीरष्टौरवावनुदितेपिबेत्। वातपित्तकफाञ्जित्वाजीवेद्वर्षशतंसुखी। सलिलस्यात्रपर्युषितग्रहणंभोजवचनानुरोधात्।

अर्थ–उसीप्रकार अन्य ग्रंथान्तरमें लिखाहै कि, आठप्रसृती जल सूर्यउदयके पूर्व पीवे तो वात पित्त और कफको जीतकर सुखपूर्वक सौवर्ष जीवे यहां भोजवचनके अनुरोधसे गरम जलका ग्रहणहै।

उषःपानगुण।

अर्शःशोथग्रहण्योज्वरजठरजराकोष्ठमेदोविकाराः मूत्राघातास्रपित्तश्रवणगलशिरःश्रोणिमूलाक्षिरोगाः। येचान्येवा-

---

१ पाठान्तरं अम्भसश्चुलकान्यष्टौ रवावनुदितेपिबेदिति।

तपित्तक्षतजकफकृताव्याधयःसंतिजन्तोस्तांस्तानभ्यासयोगादपहरतिपयः पीतमन्तेनिशायाः ।

अर्थ-बवासीर, सूजन, संग्रहणी, ज्वर, उदर, कोठेके रोग, मेदके विकार, मूत्राघात, रक्तपित्त, कानके, गलेके, शिरके, कमरकी जडके विकार, नेत्ररोग, और जो वात, पित्त, क्षतज, और कफकृतविकार प्राणीके हैं वो सब रात्रिके अन्तमें जल पीनेके अभ्यास योग करके नष्ट होतेहैं ।

नासिकाद्वारा जलपान ।

विगतघननिशीथेप्रातरुत्थायनित्यं पिबतिखलुनरोयोनासिकारन्ध्रवारि । सभवतिमतिपूर्णश्चक्षुषाताक्ष्यंतुल्यो वलिपलितविहीनःसर्वरोगैर्विमुक्तः ।

अर्थ-जिसदिन बादल न होय उसदिन रात्रिके व्यतीत होनेपर प्रातःकाल उठकर नित्य जो मनुष्य नासिकाके छिद्रद्वारा जलको पीताहै, वह मतिपूर्ण (बुद्धिवान्) और गरुडके समान दूरपर्यंत देखनेवाला वलीपालितरहित और सर्वरोगोंकरकै हीन होताहै। निशीथशब्दकरके इसजगे रात्रिके अंधकारका ग्रहणहै ।

इसका प्रमाण ।

पातव्यंनासयानीरंप्रसृतित्रयमात्रकम् । व्यङ्गंवलीपलितघ्नंपीनसवैस्वर्यकासशोथहरम् । रजनीक्षयेम्बुनस्यंरसायनंदृष्टिसंजननम् ।

अर्थ-इसमें ग्रन्थांतरका प्रमाण देतेहैं कि, तीन पस्से जल इस मनुष्यको नासिकाद्वारा पीना चाहिये । यह व्यंग, वली, पलित, पीनस, स्वरभंग खांसी और सूजन इनको हरण करेहै, रात्रि व्यतीत होनेपर जलकी नासलेना रसायनहै और दृष्टिको बढावेहै ।

उषःपानकरना वर्जित ।

स्नेहपीतेक्षतेशुद्धावाध्मानेस्तिमितोदरे ।
हिक्कायांकफवातोत्थेव्याधौतद्वारिवारयेत् ।

अर्थ-जिसने स्नेह (तैलघृतादि) पान कराहो, घाववाला, अफरावाला

आर्द्र मनुष्यको, उदररोगी, हिचकीवाला, कफवातके रोगमें, प्रातःकालमें नासिकाद्वारा पानीपीना वर्जित कहाहै ।

इतिरात्रिचर्यावर्णननामैकोनत्रिंशत्तमस्तरंगः ॥

इति श्रीमाथुरकृष्णलालात्मजदत्तरामपाठकनिर्मितबृहन्निघंटुरत्नाकरान्तर्गतश्चर्याचन्द्रोदयनामको ग्रन्थः समाप्तः ।

इति चर्य्याचन्द्रोदयः परिपूर्णः ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना.
(मुम्बई.)

अथातो विशिखानुप्रवेशनीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अर्थ-अब विशिखानुप्रवेशनीयाध्यायकी व्याख्या करेंगे कर्ममार्गको विशिखा कहतेहैं । उस विशिखामें प्रवेश होना जिस अध्यायमें उसको कहतेहैं ।

कर्ममार्गप्रवेशके योग्यवैद्यके लक्षण ।

अधिगततन्त्रेणोपासिततन्त्रार्थेनदृढकर्मणाकृतयोग्येन शास्त्रार्थनिगदताराज्ञानुज्ञातेननीचनखरोम्णाशुचिनाशुक्लवस्त्रपरिहितेनछत्रवतादण्डहस्तेनसोपानत्केनानुद्धतवेशेनसुमनसाकल्याणाभिव्याहारेणाकुहकेनबन्धुभूतेनभूतानांसुसहायवतावैद्येनविशिखानुप्रवेष्टव्या ।

अर्थ-अब जैसे वैद्यको इस आयुर्वेदोक्त कर्ममार्गमें प्रवेश करनेका अधिकार है उसको कहतेहैं । पठितशास्त्र और गुरूके उपदेशसे जानेहै तंत्र (ग्रन्थ) के अर्थ जिसने, दृढकर्म जिसके, कृतयोग्य, शास्त्रके अर्थोंको कहनेवाला,राजाकी आज्ञासे (अर्थात् जिसको राजाके समीपसे सार्टीफिकिट मिलचुकाहो) नीच नखरोम (अर्थात् क्षौरकर्म करके उज्ज्वल) स्नानवस्त्रादिकरके पवित्र,स्वच्छ सपेद वस्त्रोंको धारण करता,छत्री,लकडी और जोडाको धारण कर्ता, शुभ साधुवेष (स्वरूप) उत्तम, क्रूरतारहित चित्त जिसका, कल्याणकारी वचनका बोलनेवाला, निष्कपटी, प्राणियोंसे बांधवोंकासा वरताव रखनेवाला, सुन्दर सहायवान् इत्यादि गुणविशिष्ट वैद्य विशिखा (कर्ममार्गमें) प्रवेश करने योग्यहै । अर्थात् उक्तलक्षणसंपन्न वैद्य इसशास्त्रके कर्म करनेका अधिकारीहै अन्य नहींहै ।

वैद्यके कर्म ।

ततोदूतनिमित्तशकुनमङ्गलानुलोम्येनातुरगृहमभिगम्योपविश्यातुरमभिपश्येत्स्पृशेत्पृच्छेच्च । त्रिभिरेतैर्विज्ञानोपायैरोगाः प्रायशोवेदितव्याइत्येके । तत्तुमसम्यक् । षड्विधोहिरोगाणां विज्ञानोपायःतद्यथापञ्चभिःश्रोत्रादिभिःप्रश्नेनचेति ।

अर्थ--तदनंतर दूत, निमित्त, शकुन, और मङ्गल इनके उत्तम होनेसे वैद्य रोगीके घर जाय और जायकर थोडी देर बैठे फिर आतुर (रोगी) को नेत्रोंसे देखे, हाथसे स्पर्शकरे और उससे अथवा उसके बांधवोंसे उसका हाल पूछे । (देखना. छूना,और स्पर्शकरना) ये तीन उपायोंकरके प्रायःरोग जानने चाहिये, ऐसे कोई आचार्य कहतेहैं। परंतु सुश्रुत महर्षि कहतेहैं कि,यह ठीक नहींहै, क्योंकि रोग जाननेके उपाय छःप्रकारके हैं। जैसे पांच श्रोत्रादि (कान, नाक, नेत्र, मुख, हाथ) करके और छटा उपाय प्रश्न है। इनको नीचे पृथक् पृथक् करके कहते हैं ।

श्रोत्रइन्द्रीविज्ञेयरोग ।

तत्रश्रोत्रेन्द्रियविज्ञेयाविशेषारोगेषुव्रणास्रावविज्ञानीयादिषु वक्ष्यन्तेसफेनंरक्तमीरयन्ननिलःसशब्दोनिर्गच्छतीत्येवमादयः ।

अर्थ–तहां कर्णइन्द्रिय करके जानने योग्य रोग व्रणास्राव विज्ञानीयाध्यायमें कहेंगे । जैसे पवन झागसहित रुधिरको निकालती हुई शब्दसहित निकलतीहै इत्यादि, तौ शब्दका ज्ञान कर्ण इन्द्रीसे होता है अतएव जिन रोगोंमें शब्द होता हो उनको कर्णेन्द्रीद्वारा जाने ।

स्पर्शनेंद्रियविज्ञेय ।

स्पर्शनेन्द्रियविज्ञेयाःशीतोष्णश्लक्ष्णकर्कशमृदुकाठिनत्वादयोज्वरशोफादिषु ।

अर्थ–अब स्पर्शनेन्द्री (हाथ) करके जानने योग्य रोगोंको कहतेहैं कि, ज्वर और सूजन आदि रोगोंमें शीतल, गरम, चिक्कणता, कर्कस, नम्रता, कठोरता, आदि हस्तइन्द्रीसे जाना जायहै । अतएव उनको हाथसे टटोरकर वैद्यको देखने चाहिये। कोई स्पर्शके कहनेसे नाडी देखना आदिकाभी ग्रहण करते हैं ।

दर्शनेन्द्रियविज्ञेय ।

दर्शनेंद्रियविज्ञेयाःशरीरोपचयापचयायुर्लक्षणबलवर्णविकारादयः ।

अर्थ–अब स्पर्शनेन्द्री (नेत्र) करके जानने योग्य रोगोंको कहतेहैं कि, जैसे देहकी पुष्टता, कृशता, आयु, रोगके लक्षण, बल, वर्ण (काला पीला) विकार आदिको वैद्य नेत्रोंसे देखे अर्थात् पीलिया आदि रोग देखनेहीसे जानेजातेहैं कोई देखनेकरके मल, मूत्र, जिह्वा आदि परीक्षाओंकाभी ग्रहण करतेहैं ।

रसनेन्द्रियविज्ञेय ।

रसनेंद्रियविज्ञेयाः प्रमेहादिषुरसविशेषाः ।

अर्थ--अब रसनेन्द्री (जिह्वा) करके जानने योग्य रोगोंको कहतेहैं कि, जैसे मधुप्रमेह आदिमें उस प्रमेहका रस (स्वाद) जिह्वा इन्द्रीसे जानना परंतु यह निंदित कर्मको वैद्य जहां रोगी मूत्रकरे उसपर चैंटीमक्खी आदिके पडने से अनुमान मारा जाने ।

घ्राणेंद्रियविज्ञेय ।

घ्राणेंद्रियविज्ञेयाअरिष्टलिङ्गादिषुव्रणानामव्रणानांचगन्धविशेषाः ।

अर्थ-अब घ्राणेन्द्री (नासिका) करके जानने योग्य रोगोंको कहतेहैं। कि, जैसे अरिष्टके चिह्नजाननेमें जहां कहीं ऐसा लिखाहै कि, व्रण रोगी अथवा अन्यरोगीके देहमें दुर्गंध आतीहो या सुगंध आतीहो तो वो नहीं बचे तौ उस सुगंध और दुर्गंध विशेषको वैद्य नासिकाके सूंघनेकरके जाने ।

प्रश्नविज्ञेयरोग ।

प्रश्नेनचविजानीयाद्देशंकालंजातिंसात्म्यंवेदनासमुच्छ्रयंबलंदीप्ताग्नि तांवातमूत्रपुरीषप्रवृत्त्यप्रवृत्तिकालप्रकर्षादींश्चविशेषान् ! आत्मसदृशेषुविज्ञानाभ्युपायेषुतत्स्थानीयैर्जानीयात्।

अर्थ-अब प्रश्न (पूछने) करके जानने योग्योंको कहतेहैं। जैसे कि देश, काल, जाती, सात्म्य, पीडाके घटने बढनेका समय, बल दीप्ताग्नि आदि और वात (अधोवायु) मूत्र, मल, इनकी प्रवृत्ति और अप्रवृत्ति अर्थात् मल मूत्र अधोवायु ये होति हैं या नहीं और होते हैं तो कब और कैसे होते हैं। तथा कालप्रकर्षादि अर्थात् यह रोगको प्रगट हुए कितने दिन हुए इत्यादि वार्त्ताओंको वैद्य उसरोगीसे अथवा उसकेपास रहनेवालोंसे पूछकर निश्चय करे। उसीप्रकार दोषके सदृश छः प्रकारके जाननेके उपायोंसे उस दोषोंके स्थान (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) करके जाने। तहां कहते हैं कि, जांगल, आनूप और साधारणके भेदसे देश तीन प्रकारका है। जातिशब्द करके ब्राह्मण क्षत्री आदिका ग्रहण है काल दो प्रकारका है एक नित्यग दूसरा आवस्थिक, तहां ऋतुसंबंधी काल नित्यग कहाता है। और आवस्थिक बालक जवानी आदि जानना। जो आहार विहार अपनी आत्माके अनुकूल हो अर्थात् जिसके सेवनसे सुख होय उसको सात्म्य कहते हैं। कोई देश काल

जात ऐसा कहते हैं अर्थात् इस रोगीके दोष किस जांगलादि देशमें संचित हुआ और किसमें कुपित हुआ और किस देशमें यह व्याधि उत्पन्न हुई। तथा रोगीके किस स्थानमें यह रोग प्रथम हुआथा इत्यादि वैद्य प्रश्नद्वारा जाने।

पञ्जिकाकार तीन प्रकारकीही परीक्षा मानता है। अर्थात् दर्शन, स्पर्श तथा प्रश्न और जो छः प्रकारकी परीक्षा मानते हैं उनको मूर्ख बतलाता है। परंतु हमारी समझमें छः प्रकारकी परीक्षा ठीक है।

मिथ्यादृष्टाविकाराहिदुराख्यातास्तथैवच।
तथादुःपरिमृष्टाश्चमोहयेयुश्चिकित्सकम्॥

अर्थ–अब कहते हैं रोगियोंके जो रोग वैद्य करके अच्छी रीतिसे नहीं देखेगए, अथवा रोगीने उन रोगोंका यथार्थ वर्णन न करा होय, तथा जो रोग समझमें नहीं आए, वो वैद्यको मोहवश करते हैं अतएव जो रोग समझमें न आवे उनको वैद्य त्याग देवे।

एवमभिसमीक्ष्यसाध्यान्साधयेत्। याप्यान्यापयेत्। असाध्यान्नोपक्रमेत्। परिसम्वत्सरोत्थितांश्चविकारान्प्रायशोवर्जयेत्।

अर्थ–इसप्रकार भलेप्रकार निर्णयकर साध्यको साधन करे, याप्य रोगोंको यत्न करके यापन करे, और असाध्यको त्याग देवे। तथा जे रोग एक वर्षके होगयेहों उनको प्रायः वर्जित करे अर्थात् त्यागदे, परंतु प्रायशब्दसे संपूर्ण रोगोंका त्याग नहीं है जैसे रक्तगुल्मरोग जब वर्षादिनका होजावे तब उसका यत्न करे।

ततसाध्याअपिव्याधयःप्रायेणैषांदुश्चिकित्स्यतमाभवन्ति तद्यथा श्रोत्रियनृपतिस्त्रीबालवृद्धभीरुराजसेवककितवदुर्बलवैद्यविदग्धव्याधिगोपकदरिद्रकृपणक्रोधवतामनात्मवतामनाथानाञ्चैवंनिरूप्यचिकित्सांकुर्वन्धर्मार्थकामयशांसिप्राप्नोति।

अर्थ–तहां साध्यभी व्याधि है परंतु इन प्राणियोंकी दुश्चिकित्स्य अर्थात् चिकित्सा करनेके योग्य नहीं होती, जैसे श्रोत्री (वेदपाठी, यह नित्य स्नानादिक करता है इससे इसके व्याधिवृद्धि होती है) राजा [यह स्वतंत्र है यदि कुपथ्य करे तो कोई रोक नहीं सके कोई कहता है कि, राजा परम सुकु-

मार होता है अतएव औषधको नहीं सहन करसकता अतएव त्याज्य है] स्त्री [लज्जा वश है] बाल,वृद्ध, डरपोका, राजसेवक,[राजाके आधीन है]कितव, [यह जूआ खेलनेका व्यसनी है] दुर्बल,वैद्याभिमानी,[इसको वैद्यपनेका अभिमान होनेसे वैद्यके बताए हुए यत्नको अन्यथा करनेसे] और व्याधिको जो रोगी छिपावे, दरिद्री [इसकोऔषधका अभाव है] कृपण [यह लोभवश औषध नहीं खाय] क्रोधी [इसके कोप करनेसे रोगवृद्धि होती है] अनात्मवान् [यह अपथ्य करता है] और अनाथ [यह अकेला है] इतने रोगियोंका वैद्य यत्न न करे इस प्रकार जो विचारकर वैद्य चिकित्सा करता है, वह, धर्म, अर्थ काम और यशको प्राप्त होता है ।

वैद्यके प्रति शिक्षा ।

स्त्रीभिःसहास्यंसंवासंपरिहासञ्चवर्जयेत् ।
दत्तञ्चताभ्योनादेयमन्नादन्यद्भिषग्वरैः ।

अर्थ–वैद्यको उचित है कि, स्त्रियोंकेसाथ एक स्थानमें बैठना, रहना, हाँसी ठठोरी करना त्याग देवे । और अन्नकेसिवाय अन्य वस्तु रोगीके घरकी स्त्रियोंसे न लेवे । कोई संवासंकी जगह " संवाद " ऐसा कहता है । अर्थात् स्त्रियोंकेसाथ वादविवाद न करे ।

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघण्टुरत्नाकरे त्रिंशत्तमस्तरङ्गः ॥ ३० ॥

अथाष्टविधपरीक्षा प्रारम्भः ।

तत्रादौदूतपरीक्षा ।

दूताधिकारंवक्ष्यामोलक्षणानिमुमूर्षताम् । यानिदृष्ट्वाभिषक्प्राज्ञःप्रत्याख्येयादसंशयम् । दूतदर्शनसंभाषावेषाचेष्टितमेवच । ऋक्षवेलातिथिश्चैवनिमित्तंशकुनोऽनिलः । देशोवैद्यस्यवाग्देहमनसाञ्चविचेष्टितम् । कथयन्त्यातुरगतंशुभंवायदिवाशुभम् ।

अर्थ–इसजगे दूतपरीक्षा लिखनेका यह प्रयोजनहै कि,विशिखानुप्रवेशनीयाध्यायमें लिखाहै कि " ततो दूतनिमित्तशकुनमङ्गलानुलोम्येनेति " अर्थात् दूत निमित्त शकुन और शुभमंगल होनेसे वैद्य रोगीके घरजाय, अतएव अब दूतपरीक्षा लिखतेहैं । इस दूताधिकारमें मुमूर्षु (मरनेवाले) रोगीके लक्षण कहेंगे जिनको वैद्य देखकर उसकी मृत्युको निश्चय करलेवे क्योंकि लिखाहै

कि, दूतदर्शन और उसका भाषण, उसकी चेष्टा, नत्रक्ष, मध्याह्नादि समय, तिथि, निमित्त (सर्पादिदर्शन) शकुन, पवन, देश और देह, मन वाणीकी चेष्टा ये वैद्यको रोगीके शुभाशुभको कथन (सूचना) करतीहै । अर्थात् वैद्यको इन सबका विचार, रोगीके दूतद्वारा करके रोगीका शुभाशुभ परिणाम जानना । जो लिवानेको अथवा रोगीकी ओरसे प्रश्नकरनेको आवे उसीको दूत कहतेहैं ।

दूरादेववथावह्निर्धूमाद्विज्ञायतेजनैः ।
साध्यासाध्यस्तथारोगीज्ञायतेदूतचेष्टया ।

अर्थ--जैसे बुद्धिवान् पुरुष दूरसे धूआंके देखनेसे अग्निको जानतेहैं । उसी प्रकार रोगीका साध्य और असाध्यता वैद्यको दूतकी चेष्टा करके जाना जाता है ।

यश्चिकित्सकमानेतुंयातिदूतःसकथ्यते ।
सचयादृक्समुचितस्तादृगत्रनिगद्यते ।

अर्थ--जो वैद्यके लिवानेको जाता है उसको दूत कहतेहैं । वो दूत जैसा भेजना उचितहै उसको यहांपर कहतेहैं ।

असद्दुत ।

पाषण्डाश्रमवर्णानांस्वपक्षाः[1]कर्मसिद्धये । तएवविपरीताः स्युर्दूताःकर्मविपत्तये । नपुंसकंस्त्रीबहवोनैककार्याअसूयकाः गर्दभोष्ट्ररथप्राप्ताःप्राप्तावास्युःपरम्पराः । वैद्यंयउपसर्पन्तिदूतास्तेचापिगर्हिताः ।

अर्थ–पाषंडी (कापाली) आश्रम (ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी) वर्ण (ब्राह्मणादि) ये अपने पक्षके हो,अर्थात् कापाली रोगीका कापालीही दूत, इसी प्रकार ब्रह्मचारीका ब्रह्मचारी गृहस्थीका गृहस्थी आदि दूत होयतो कर्मके सिद्धकर्त्ताहै यदि विपरीतहो जैसे कापाली रोगीका ब्राह्मण दूत, और ब्राह्मणका कापालिक दूत होयतो वो कर्मके नाशकहै । उसी प्रकार नपुंसक (हिजडा) बहुतसी स्त्री और जो केवल एकही कार्यकेलिये न आयाहो, तथा परस्पर लडते झगडते आएहो और गधे अथवा ऊंटपर बैठकर आयेहो अथवा एकके पीछे दूसरा इसप्रकार आएहो, एक पंक्ति करके आएहो, ऐसे दूत वैद्यकेपास आवेतो वो अशुभहै ।

---

१ सवर्णेतिपाठान्तरम् ।

अथ दूतोंका वेष ।

पाशदण्डायुधधराः पाण्डुरेतरवाससः। आर्द्रजीर्णापसव्यैक-मलिनध्वस्तवाससः। न्यूनाधिकाङ्गाउद्विग्नाविकृतारौद्ररूपिणः । रूक्षनिष्ठुरवादाश्चाप्यमाङ्गल्याभिधायिनः । छिन्दन्तस्तृणकाष्ठानिस्पृशन्तोनासिकांस्तनम् ।

अर्थ–पशुबांधने की बडी रस्सी, दंड और आयुध (तलवार बंदूक) आदिको हाथमें लेकर, काले लाल वस्त्रोंको धारण कर्त्ता तथा गीला, पुराना, उलटा, और एकही वस्त्रके धारण करता न्यून अंगके (लूले लँगडे) अधिक अंगके (छंगाआदि) भयभीत, विकृत, (कोढी, बौना, आदि) घोर भयंकर रूपके, रूक्ष (प्रीतिरहित) कठोर वचनके बोलनेवाले तथा अमंगललीक शब्द (जैसे गया, मरा, नष्टहुआ, रुधिरआदि) को कहतेहुए, तिनका, लकडी, आदिको तोडते हुए, तथा नासिका और स्तनको स्पर्श करते हुए जो दूत वैद्यके पास आवे वो अशुभ है ।

वस्त्रान्तानामिकाकेशनखरोमदशास्पृशः। स्रोतोऽवरोधहृद्गण्डमूर्द्धोरःकुक्षिपाणयः।कपालोपलभस्मास्थितुषाङ्गारकराश्चये । विलिखन्तोमहींकिंचिन्मुञ्चन्तोलोष्टभेदिनः। तैलकर्दमदिग्धाङ्गारक्तस्रगनुलेपनाः। फलंपक्कमसारंवागृहीत्वान्यच्चतद्विधम् ।

अर्थ–वस्त्रोंका छोर, अनामिका ऊंगली बाल, नख, रोमांच, और फटे वस्त्रके पल्लेनको स्पर्श करतेहुए, नाक कान आदि छिद्र, स्कन्धदेश, हृदय, गाल, मस्तक,छाती, कूख, इन स्थानोंपर हाथ रक्खे हुए, तथा मनुष्यका कपाल पत्थर, भस्म (राख) हड्डी तृषा, और अंगारा ये हाथमें जिनके पृथ्वीको नखसे लिखते हुए, कुछ वस्त्रको पकडकर छोडते हुए, मट्टीके डेलेको फोडते तेल, कीच देहमें लगाय रक्खी, लाल फूलमाला और लाल चंदनको लगानेवाले पकाफल परंतु भीतरसे थोथा उसीप्रकार और भी पकीहुईवस्तु और निस्तार लेकर आवे ऐसे दूत अमंगलीक हैं ।

नखैर्नखान्तरंवापिकरेणचरणंतथा । उपानच्चर्महस्तावाविकृतव्याधिपीडिताः। वामाचारारुदन्तश्चश्वासिनोविकृतेक्ष-

णाः। याम्यांदिशंप्राञ्जलयोविषमैकपदेस्थिताः।वैद्यंयउपसर्पन्तिदूतास्तेचापिगर्हिताः।

अर्थ-नखसे नखको, हाथसे चरणको पकड, तथा पैरका जोडा अथवा चमडेको हाथमें लेकर एवं विकृतव्याधि (कुष्ठादि) से पीडित, विपरीत आचरणको करते, रुदन करते, परिश्रमसे श्वास चल रही, बुरे नेत्रके, (फूलेयुक्त नेत्रवाले) दक्षिणकी दिशामें, हाथ जोडकर, टेढे एक पैरसे एक स्थानमें स्थित ऐसे दूत यदि वैद्यके पास आवे तो वोभी अशुभ है।

दक्षिणाभिमुखंदेशेत्वशुचौवाहुताशनम्। ज्वलयन्तंपचन्तंवाक्रुरकर्मणिचोद्यतम्। नग्नंभूमौशयानंवावेगोत्सर्गेषुवाऽशुचि। प्रकीर्णकेशमभ्यक्तंस्विन्नंविक्लवमेवच। वैद्यंयउपसर्पन्तिदूतास्तेचापिगर्हिताः।

अर्थ-जिससमय वैद्य दक्षिण मुखकरे बैठा हो परदेशमें हो, अपवित्र देशमें हो, आगको बराय रहा हो, पाक कररहा हो, क्रूरकर्म (पशुवधादिक) करनेको उद्युक्त हो अथवा क्षौरकर्ममें प्रवृत्त हो, नग्न पृथ्वीमें सोयरहा हो, तथा मलमूत्र कर्ममें लग रहा हो, अपवित्र हो उस वैद्यके बाल खुलरहे हो, तैल आदि लगाय रक्खा हो, पसीने निकलरहे हों, विह्वल हों, ऐसे वैद्यके समीप जो दूत जाते हैं वोभी अशुभ हैं।

वैद्यस्यपैत्र्येदैवेवाकार्य्येचोत्पातदर्शने। मध्याह्नेचार्धरात्रेवासन्ध्ययोःकृत्तिकासुच। आर्द्राश्लेषामघामूलपूर्वासुभरणिषुच। चतुर्थ्यांवानवम्यांवाषष्ठ्यांसन्धिदिनेषुच। वैद्यंयउपसर्पन्तिदूतास्तेचापिगर्हिताः।

अर्थ-वैद्यके जिसदिन श्राद्ध हो, अथवा देवसंबंधी कार्य हो, उत्पात होंनेमें मध्याह्न, मध्यरात्रि, दोनों संध्या, कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, मूल, पूर्वाफा०, पूर्वाषा०, पूर्वाभा०' और भरणी इन नक्षत्रोंमें, तथा चौथ, नौमी, छठ, और संधिदिन कहिये देव प्रेतकार्यके दिन जो दूत वैद्यके पास आते हैं वोभी गर्हित हैं।

पित्तकफरोगमें गर्हित और प्रशस्त दूत।

स्विन्नाभितप्तामध्याह्नेज्वलनस्यसमीपतः। गर्हिताःपित्तरोगे

षुदूतावैद्यमुपागताः।तएवकफरोगेषुकर्मसिद्धिकराःस्मृताः ।
एतेनशेषंव्याख्यातंबुद्ध्यासंविभजेत्तुतत् ।

अर्थ-जिनके पनीसे आयरहेहो, तपेहुएहो, और जो अग्निके समीपसे, आएहो तथा मध्याह्नमें आवे ऐसे दूत पित्तके रोगोंमें निंदित है, और जो पित्तरोगमें निंदितहै यदि वो कफरोगमें आवेतो सिद्धिकर्त्ता जानने, इसी प्रकार अन्यरोगमें वैद्य अपनी बुद्धिसे विचारले जैसे वातरोगमें शीतल, और पवनके समीपसे आएहो वो अशुभहै। परंतु येही दूत रक्तपित्तमें शुभहैं।

सुप्तेभिषजियेदूताःछिन्दत्यपिचभिन्दति ।
आगच्छतिभिषक्तेषांनभर्त्तारमनुव्रजेत् ।

अर्थ-जिससमय वैद्य सोय रहा हो उससमय, छेदन भेदन करतेहुए, यदि दूत आवे तो वैद्य उनकेसाथ उसके मालिक (रोगी) केपास न जावे ।

कथयन्त्यप्रशस्तानिचिन्तयन्त्यथवापुनः ।
वैद्येदूतामनुष्याणामागच्छतिमुमूर्षताम् ।

अर्थ-जो दूत अप्रशस्त (अशुभ) वाणीको कहते वा अशुभ बातको मनमें चिंतवन करतेहुये आते हैं, वो मरणवाले रोगीके जानने, ऐसे दूतों केसाथ वैद्य न जाय ।

विकारसामान्यगुणेदेशेकालेऽथवाभिषक् ।दूतमभ्यागतंदृष्ट्वा
नातुरंतमुपाचरेत् । अङ्गव्यसनिनंदूतंलिंगिनंव्याधितंतथा ।
संप्रेक्ष्यचोग्रकर्माणंनवैद्योगन्तुमर्हति ।

अर्थ-ज्वरादि विकारके सदृश गुणवाले देशमें, वा कालमें, दूतको सन्मुख आता हुआ देख वैद्य उस रोगीका यत्न न करे । जैसे कफज्वरमें जहां घृतादि पतली वस्तु धरी हो और अनूपदेश होवे और प्रत्यूषकाल होय तो वह दूत अशुभ है । उसीप्रकार पित्तरोगमें अग्निसे संतप्त और गरमदेशमें और मध्याह्नकालमें आया हुआ दूत अशुभ है । उसीप्रकार वातरोगमें कठोर, रूक्ष, धूल, पत्थर रेतीआदि युक्तदेशमें और सायंकालमें आयाहुआ दूत अशुभ है । जिस रोगीको अंगका व्यसन अर्थात् अपने देहको सुधारा करे, तथा जोगी रोगी और घोर कर्मका करनेवाला ऐसा दूत देखकर वैद्य उसकेसाथ न जाय ।

पलालबुससीसास्थिकेशलोमनखद्विजान् । मार्जनींमुसलंशूर्पमुपानद्भग्नविच्युतम् । तृणकाष्ठतुषाङ्गारंस्पृशन्तोलोष्टभस्मच । तत्पूर्वदर्शनेदूताव्याहरंतिमुमूर्षताम् ।

अर्थ–करवी (जिस ज्वार बाजरेके तृणमें अन्न न होय) भुस, सीसा हड्डी, बाल, रोआं, नख, दांत, बुहारी, मूसल, सूप, और जूती, इनको स्पर्श करतेहुए तथा टूटीहुई और गिरीहुई वस्तुको स्पर्श करते तथा तृण, काष्ठ, तुष, अंगार, मिट्टीका ढेला, भस्म, (रस्सी, तराजू, फांसी, और कपडेकी बत्ती) इनको स्पर्श करतेहुए जो दूत आते हैं वो रोगीके मरणकी सूचना करते हैं । ऐसा जानना ।

दूतद्वाराशकुनज्ञान ।

यस्मिंश्चदूतेब्रवतिवाक्यमातुरसंश्रयम् । पश्येन्निमित्तमशुभंतच्चनानुव्रजेद्भिषक् । यथाव्यसनिनंप्रेतंप्रेतालंकारमेववा । भिन्नंदग्धंविनष्टंवातद्वादीनिवचांसिवा । रसोवाकटुकस्तीव्रोगन्धोवाकौणपोमहान् । स्पर्शोवाविपुलःक्रूरोयद्वान्यदशुभंभवेत् । तत्पूर्वमभितोवाक्यंवाक्यकालेथवापुनः । दूतानांव्याहृतंश्रुत्वाधीरोमरणमादिशेत् ।

अर्थ--जिस समय दूत वैद्यके समीप आनकर रोगीकी व्यवस्था आदिका वर्णन करे उस समय दूत वैद्य निमित्तोंको देखे यदि अशुभ निमित्त होयतो वैद्य उस दूतके साथ न जाय अब उन निमित्तोंको कहतेहैं । जैसेकि जो दूत जूआ मद्य आदिका व्यसनीहो, अथवा अंगहीनहो, मुरदाके तुल्य, तथा मरे हुएके वस्त्र आभूषणोंको धारण करता, रस्सीआदि टूटेपदार्थ, वस्त्रादि दग्धवस्तु, फूटाहुआ घडाआदि, अथवा जिसकालमें दूत आवे उस समय वैद्य छिन्न, भिन्न, दग्ध, विनष्ट आदि वचनोंको कानोंसे सुने, तथा उस समय कटु तीव्र रसकी वस्तु जैसे मिरच अफीम आदिको देखे, अथवा उस समय कोई नाकमें दुर्गंध आवे, वा दुःसह स्पर्श होय, तो अशुभहै । अथवा इसी प्रकारके कोई अन्य अशुभ निमित्त होय जैसे रुधिर, करवीर, कुसुमादिक शब्द तो अशुभ हैं । ये संपूर्ण निमित्त दूतके कहनेके पश्चात् अथवा उसी समय होवे, तो वैद्य रोगीका कि जिसके लिये दूत आया है उसका मरण कहै, अर्थात् उस दूतके साथ न जाय ।

अब शुभ दूतोंको कहते हैं ।

दूताःस्वजातयोऽव्यङ्गाःपटवोनिर्मलांबराः ।
सुखिनोश्ववृषारूढाःशुभवस्त्रफलैर्वृताः ।

अर्थ--रोगीकी ज्ञातिका, उत्तम अंगका, चतुर, स्वच्छवस्त्रोंका धारण करता, सुखी और घोडा, बैल (गाड़ी आदिमें जुतेहुए) पर बैठा, शुभवस्त्र और फल करके युक्तहो वो शुभहै ।

स्वज्ञातिःश्वेतवस्त्रोद्रविणयुतकरःक्षत्रियोब्राह्मणोवा ।
ताम्बूलाढ्यःसुशीलःशुभवचनवदःस्यात्प्रशस्तोत्रदूतः ।

अर्थ--अपनी जातिका, सपेद वस्त्रको धारण करे, कुछ द्रव्यको हाथोंमें लिये हो, अथवा ब्राह्मण, क्षत्री हो, बीडाचाबरक्खाहो, सुशील, शुभवचनोंका बोलनेवाला, ऐसा दूत यदि रोगीके समीपसे आवे तो शुभहै ।

रिक्तपाणिर्नपश्येतराजानंभिषजंगुरुम् ।

अर्थ--दूतको उचितहै कि खाली हाथ वैद्यके पास न जावे, जैसे यह धर्मशास्त्रका वाक्य है कि राजा, वैद्य, और अपने गुरुको रीते हाथोंसे न देखे अतएव जो कुछ फलादिहो सो लेजाय ।

रक्तपित्तातिसारेषुप्रमेहेषुतथैवच । प्रशस्तोजलरोधेषुदूतवैद्यसमागमः । विज्ञायैवंविभागंतुशेषंबुद्ध्येतपण्डितः ।

अर्थ--रक्तपित्त अतिसार, और प्रमेह इन रोगोंमें रुकेहुए जलसमीपसे वैद्यके लिवानेको आयाहुआ दूत शुभहै । उसीप्रकार उदावर्त्त, मुत्रकृच्छ्र, आदि रोगमें जलवेगका दर्शन होना उत्तम है । इसीरीतिसे अन्य रोगोंमेंभी वैद्य अपनी बुद्धिसे विचारलेवे ।

शुक्लवासाःशुचिर्गौरःश्यामोवाप्रियदर्शनः । स्वस्यांजातौस्वगोत्रेवादूतःकार्यकरःस्मृतः । गोयानेनागतस्तुष्टःपादाभ्यां शुभचेष्टितः । धृतिमान्विधिकालज्ञःस्वतन्त्रःप्रतिपत्तिमान् । अलंकृतोमङ्गलवान्दूतःकार्यकरःस्मृतः ।

अर्थ--सपेद वस्त्र धारण करे, पवित्र, गौरस्वरूप, अथवा श्यामस्वरूप हो परंतु प्रियदर्शन हो (कोई गौरमनुष्यभी भयानक होते हैं) रोगीकी जात और गोत्रका होय, ऐसा दूत कार्यकर्त्ता जानना । जो गोयान । (बैलकी गाडी) में बैठकर आयाहो, प्रसन्नहो अथवा पैदल आयाहो, शुभ चेष्टाका कर-

नेवाला, बुद्धिवान्, विधि और कालका ज्ञाता, स्वतंत्र (किसीका नौकर न हो) ज्ञानी, अथवा प्रगल्भ, अलंकृत (सुंदर वेषवाला) मंगलवान् ऐसा दूत कार्यकर्त्ता जानना चाहिये ।

स्वस्थंप्राङ्मुखमासीनंसमेदेशेशुचौशुचिम् ।
उपसर्पतियोवैद्यंसचकार्यकरःस्मृतः ।

अर्थ–नैरोग्य सन्मुख मुख करे बैठा समान देश और पवित्र स्थानमें पवित्रतासे ऐसे वैद्यकेपास जो दूत आते हैं वो कार्यकर्त्ता जानने ।

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघण्टुरत्नाकरे शुभाशुभदूतवर्णनंनाम एकत्रिंशत्तमस्तरङ्गः ॥ ३१ ॥

शकुन देखनेका कारण ।

साध्यासाध्यत्वमाख्यातिशकुनस्तुशुभाशुभः ।
अतोभिधास्येशकुनंतद्विज्ञातुंरुजावताम् ।

अर्थ–शुभ और अशुभ शकुन क्रमसे साध्यासाध्यको सूचित करे है अतएव रोगवान्को उन शकुनोंके जाननेके लिये मैं शकुनको वर्णन करताहूं ।

दूतके शकुन ।

वैद्याह्वानायदूतस्यगच्छतोरोगिणःकृते ।
नशुभंसौम्यशकुनंप्रदीप्तंचसुखावहम् ।

अर्थ–जब दूत रोगीके लिये वैद्यको बुलानेको जाय तब रस्तेमें शांति शकुन होयतो अशुभ है । और यदि दीप्तशकुन होयतो सुखकारी जानने ।

दिशाओंकी दग्धादिसंज्ञा ।

दग्धादिग्दिनकृत्त्यक्ताधूमितायांसयास्यति । दीप्तायत्रास्त्यसौशेषापंचशांताःशुभादिशः । दग्धैशानीसुप्रभातेऐन्द्रीदिक्धूमितानना । प्रत्येकमष्टप्रहरैर्भुंक्तेष्टौभास्करोदिशः ।

अर्थ–अब दिशाओंकी दग्धादिसंज्ञा कहते हैं । जैसे कि जिस दिशाको सूर्यने त्याग करीहो वो दग्धा कहाती है । और जिस दिशामें सूर्य जायगा वो दिशा धूमिता कहाती है । और जिस दिशामें सूर्य है वो दिशा दीप्ता कहाती है । बाकीकी पांच दिशा शांत जाननी । जैसे प्रातःकालमें ईशानदिशा दग्धा है, पूर्वदिशा धूमिता है, इसीप्रकार प्रत्येक आठों प्रहरोंमें सूर्य आठों दिशाओंको भोगे है ।

दग्धादि दिशाओंका फल ।

दिक्षुशान्तासुवक्तारोमधुरंपृष्ठतोनुगाः । वामगादक्षिणावापिशकुनाःकर्मसिद्धिदाः । पुरतोदिक्षुदीप्तासुवक्तारोनात्रसाधकाः ।

अर्थ–शांत दिशामें बोलनेवाले मधुर वचनके अथवा पिछाडी, वामांगमें, अथवा दहनीतरफ जो शकुन होते हैं वो कर्मको सिद्धि कर्त्ता जानने, और सन्मुख अथवा दीप्तदिशामें बोलनेवाले ऐसे शकुन कार्यसाधक नहीं हैं अर्थात् अशुभ हैं ।

दूतके प्रश्नाक्षरोंपर फल ।

दूतस्योदितवर्णवृन्दमखिलंद्वेधाविभज्यात्रिभिर्भक्ता-
व्योमनिमृत्युमाशुविवदेदन्यत्रसंजीवनम् ।

अर्थ--अब दूतके वाक्यद्वारा रोगीका शुभाशुभ कहतेहैं जैसे कि, दूतके उच्चारण करेहुए अक्षरसमूहोंको दोगुनेकर फिर तीनका भाग देय यदि शून्य बचे तो रोगीका शीघ्र मरण कहै और एक दो बचे तो शुभ कहै ।

प्रकारांतर ।

दूतस्यप्रश्नाक्षरयोगसंख्यात्रिधाष्टभाज्याप्रवदंतिशेषे ।
समेचमृत्युर्विषमेचनैवविलोक्यवैद्यैःखलुप्रश्नकाले ।

अर्थ--दूतके प्रश्नाक्षरोंकी संख्याको त्रिगुण कर आठका भाग देय यदि सम २-४-६ बचे तो मृत्यु होय और विषम१-३-५-७ बचेतो रोगी नहीं मरे यह वैद्यको प्रश्नकालमें अर्थात् दूत पूछे कि महाराज आप कहो यह रोगी बचेगा या मरेगा तब देखना चाहिये ।

वैद्यको देखनेयोग्य दूतके चिह्न ।

आगत्योपाश्रयेद्योपुरमथनदिशंपश्चिमामुत्तरांवा शंभोःकाष्ठांसशस्तोपरदिशिनतुपाङ्गारभस्मादिसंस्थः। रक्तस्रग्गंधवस्त्रस्तृणलगुडदलच्छेदनः पङ्कतैलाभ्यक्तोवक्षोजनासालिकनिहितकरोयश्चविक्षिप्तकेशः ।

अर्थ--जो दूत वैद्यकेपास आनकर ईशानदिशा, पश्चिमदिशा, वा उत्तरमें

१ वस्त्रातपत्रपादत्रव्यसनंव्यसनीक्षणम् । चैत्यध्वजानांपात्राणांपूर्णानांचनिमज्जनम् । कृष्णधान्यगुडोदश्विल्लवणासवचर्मणाम् ।

बैठे इनमें जो दूत ईशानकोणमें बैठे सो उत्तम है। और दिशाओंमें तथा तुष, अंगारेकी भस्म में बैठे तो अशुभ है। उसीप्रकार लाल फूलमाला, लाल चंदन लाल वस्त्रको धारण करेहो और जो तिनका लकडी, पत्तेको तोडै कीच तैल जिसने लगाय रक्खाहो और वक्षस्थल, नासिका, इन स्थानोंपर हाथको धरेहो और जिसने माथेके बाल खोल रक्खे हो वो दूत अशुभ है।

सजातयःसुचेष्टाश्चसजीवदिशिसंस्थिताः । भिषजंसमयेप्राप्तारोगिणःसुखहेतवः । यस्यांप्राणमरुद्वातिसादिशाजीवसंज्ञिता ।

अर्थ--रोगीकी जातिका सुंदर चेष्टावान, जीवदिशामें स्थित और वैद्यको समयपर बुलाने आयाहो वो दूत रोगीके सुखका हेतु जानना, अर्थात् शुभ है। कदाचित् कोई पूंछेकि जीव दिशा किसको कहते हैं ? इसलिये कहते हैं कि जिस दिशामें प्राणपवन संचार करे वो दिशा जीवसंज्ञक है।

चलतेसमय वैद्यको शुभाशुभ शकुन।

मांसोदकुम्भातपत्रोविप्रवारणगोवृषाः। शुक्लवर्णाश्चपूज्यन्ते प्रस्थानेदर्शनंगताः। स्त्रीपुत्रिणीसवत्सागौर्वर्द्धमानमलंकृता। कन्यामत्स्याःफलंचामंस्वस्तिकंमोदकादधि। हिरण्याक्षतपात्रंवारत्नानिसुमनोनृपः । अप्रशान्तोऽनलोवाजीहंसश्चाषः शिखीतथा। ब्रह्मदुन्दुभिजीमूतशंखवेणुरथस्वनाः । सिंहगोवृषनादाश्चह्रेषितंगजबृंहितम् ।

अर्थ–अब वैद्यको रोगीके घर जाते जो शकुन हो उनको लिखते हैं। जैसे कच्चा मांस, भरा और रीता जलका घडा (अर्थात् जब वैद्य रोगीके घरमें प्रवेश करे तब भरा मिले और जब निकले तब रीता घडा) छत्र, ब्राह्मण, हाथी, गौ, बैल और सपेदवर्णके सर्व पदार्थ शुभ है (परंतु कपास हड्डी, छाछ, भस्म, खार, इत्यादि शुभ नहीं हैं) पुत्रवती स्त्री, बछडेसहित गौ, सराव, शृंगारयुक्त कन्या, मछली, कच्चे फल, मोतियोंकी माला अथवा साथिया जो स्त्री काढती है, लड्डू दही, सुवर्ण, खील, अक्षतका पात्र, रत्न, राजा, प्रज्वलित अग्नि, घोडा, हंस, नीलकंठ, मोर, वेद-

ध्वनि, नगाडेन्का शब्द, मेघकी गर्जन, शंख, वेणु, रथ, इनका शब्द । सिंह, गौ, बैल, और हाथी इनका हींसना ये संपूर्ण सुंदर चित्तवाले वैद्यको मार्गमें मिलना शुभ है ।

शस्तंहंसरुतंनृणांकौशिकश्चैववामतः ।
प्रस्थानेयायिनःश्रेष्ठावाचश्चहृदयङ्गमाः ।

अर्थ-यात्रिक मनुष्योंको हंसका शब्द और कौशिक (पेचक पक्षी) का शब्द वामदिक्में होय तो शुभ है । तथा मनहरणकर्त्ता वाणीभी यात्रिकको शुभ है ।

पत्रपुष्पफलोपेतान्सक्षीरान्निरुजोद्रुमान् ।
आश्रितावानभोवेश्मध्वजतोरणवेदिकाः ।

अर्थ-पत्र, पुष्प और फलयुक्त, तथा क्षीरयुक्त नैरोग्य वृक्षोंमें । तथा उच्च स्थान, घर, ध्वजा, तोरण, और वेदी इनमें जो शकुन होते हैं वो शुभ हैं ।

अप्रशस्त दर्शन ।

शुष्केऽशनिहतेपत्रेवल्लीनद्धेसकंटके । वृक्षेऽथवाश्मभस्मास्थिविट्तुषाङ्गारपांसुषु । चैत्यवल्मीकविषमस्थितादीप्तखरस्वराः । पुरतोदिक्षुदीप्तासुवक्तारोनार्थसाधकाः ।

अर्थ-शुष्क तथा बिजलीका माराहुआ, वेल लताओंसे आच्छादित और कांटेवाला ऐसा वृक्ष । अथवा पत्थर, भस्म, हड्डी , विष्ठा, तुष, धूल, चैत्य (गामबाहर देवताकी भावना करके स्थापित वृक्ष) बमई, विषमतासे बैठे हुए दीप्त और घोर शब्दसे सन्मुख, और दीप्तदिशाओंमें जो शकुन होते हैं वो कार्यसाधक नहीं होते अर्थात् वो अशुभ हैं ।

पुन्नामानःखगावामाःस्त्रीसंज्ञादक्षिणाःशुभाः । पुन्नामावामतःश्रेष्ठोगजखच्चरवर्जितः । स्त्रीनामादक्षिणेश्रेष्ठाशिवाश्यामाविवर्जिता ।

अर्थ-पुरुषसंज्ञक पक्षियोंका बोलना वामदिक्में अच्छा है और स्त्रीसंज्ञकोंका दहनी तरफसे शुभ है । और हाथी, खिच्चरको त्याग कर बाकी पुरुषसंज्ञक पशुओंका वामभागमें बोलना शुभ है । और शिवा (श्यारिया) तथा श्यामा (श्यामचिडिया) इनको त्याग कर बाकी स्त्रीसंज्ञक पशुपक्षियोंका दक्षिणभागमें बोलना शुभ है ।

दक्षिणाद्वामगमनंप्रशस्तंश्वशृगालयोः। वामंनकुलचाषाणां नोभयंशशसर्पयोः। भाषकौषिकयोश्चैवनप्रशंस्तंकिलोभयम् । दर्शनंवारुतश्चापिनगोधाकृकलासयोः। दूतैरानिष्टैस्तुल्यानामशस्तंदर्शनंनृणाम्।

अर्थ--कुत्ता और स्यारियाका दहनी तरफसे वामभागमें जाना शुभहै। और नौला, चाष (नीलकंठ) इनका वामतरफसे दहनी तरफ जाना शुभहै। और ससेका तथा सर्पका दोनों भागमें जाना निषेध है। भाष (सपेदचील) कौषिक (पेचक वा उल्लू) इनका दर्शन और शब्द दोनों अशुभ हैं उसी प्रकार करकैंटा (गिरगट) और गोहकाभी दर्शन और शब्द शुभ नहींहै और जो दुष्ट दूतके लक्षण लिखे हैं इसी प्रकारके मनुष्यके दर्शन अशुभ है।

मार्गच्छेदोहिमार्जारोगोधासरठवानरैः।
रोगिद्वाराभिगमने मंगलंतदमङ्गलम्।

अर्थ–बिल्ली, गोह, दोमुखकी सर्पिणी, और वानर इनका रोगीके घर जाते हुए वैद्यका मार्ग काटना अच्छे शकुनको अमंगल करदेताहै। अर्थात् इनका रास्ता काटना अमंगलीक है।

कुलत्थतिलकार्पासतुषपाषाणभस्मनाम्। पात्रंनेष्टंतथाङ्गारतैलकर्दमपूरितम्। प्रसन्नेतरमद्यानांपूर्णंवारक्तसर्षपैः। शवकाष्ठपलाशानांशुष्कानांपथिसङ्गमाः।नेष्यन्तेपतितान्तस्थदीनान्धरिपवस्तथा । मृदुशीतोऽनुकूलश्चसुगंधिश्चानिलः शुभः। खरोष्णोऽनिष्टगन्धश्चप्रतिलामश्चगर्हितः।

अर्थ--कुलथी, तिल, कपास, तुष, पत्थर, भस्म, तथा अंगारेसे भरा तैलसे भरा, और कीचसे भरा ऐसा पात्र। दुष्ट मद्योंकरके परिपूर्ण पात्र लालसरसो, मुरदा, लकडी, ढाककी सुखी लकडी मार्गमें मिलना तथा पतित घरके भीतर बैठे, दीन, अंधे और शत्रु और तीखी गरम दुर्गंधवाली उलटी पवन इत्यादि मिलेतो वैद्यको शुभ नहींहै। परंतु मृदु, शीतल, अनुकूल और शुभपवन संमुखसे लगना शुभहै।

निमित्त।

ग्रन्थ्यर्बुदादिषुसदाछेदशब्दश्चपूजितः। विद्रध्युदरगुल्मेषु

भेदशब्दस्तथैवच ।रक्तपित्तातिसारेषुरुद्धशब्दःप्रशस्यते ।
एवंव्याधिविशेषेणनिमित्तमुपधारयेत् ।

अर्थ-ग्रन्थी (गांठ) और अर्बुदादि रोगोंमें यदि वैद्यको छेदशब्द होयतो उत्तमहै । विद्रधि, उदररोग और गुल्म रोगमें भेदशब्द होना शुभ है । रक्त-पित्त, अतिसार आदि रोगोंमें रुद्ध (रोको) ऐसा शब्द शुभहै । इसीप्रकार प्रत्येक व्याधिमें वैद्य निमित्तोंको जानलेवे ।

तथैवाक्रुष्टहाकष्टमाक्रन्दरुदितस्वनाः । छर्द्यावातपुरीषाणां
शब्दोवैगर्दभोष्ट्रयोः । प्रतिषिद्धंतथाभग्नंक्षुतंस्खलितमाहतम् ।
दौर्मनस्यंचवैद्यस्ययात्रायांनप्रशस्यते ।

अर्थ-उसी प्रकार बुरी रीतिसे पुकारना, हाय! कष्टहै ऐसा कहना चिल्लाना, रुदन करना, तथा वमन, अधोवायु, और मलमूत्रका शब्द, तथा गधा ऊं-टका डकरना, और छींकना, ये शब्द बुरेहैं । चोटलगना, गिरना, लडाई और दौर्मनस्य ये वैद्यको यात्रामें शुभ नहीं है ।

चिकित्सांरोगिणःकर्तुंगच्छतोभिषजःशुभम् ।
यात्रेयःसौम्यशकुनःप्रोक्तोदीप्तोनशोभनः ।

अर्थ-चिकित्सा करनेको जानेवाले वैद्यको मार्गमें सौम्य (शांत) शकुन शुभहै । और दीप्त शकुन शुभ नहीं है अर्थात् अशुभ है ।

प्रवेशेप्येतदुद्देशादवेक्ष्यश्चतथातुरे ।
प्रतिद्वारंगृहेवास्यपुनरेतन्नगण्यते ॥

अर्थ-जो शकुन यात्रामें कहेहैं वो प्रवेशमेंभी देखने तथा रोगीके पास जा यकरभी देखने तथा उस रोगीके जिस समय घरके द्वारमें प्रवेश कराचाहे तबभी देखे फिर शकुनका फल नहीं गिना जाता ।

केशभस्मास्थिकाष्ठाश्मतुषकार्पासकंटकाः । खट्वोर्ध्वपादाम-
द्यापोवसातैलंतिलास्तृणम् । नपुंसकंव्यङ्गभग्ननग्नमुण्डासि-
ताम्बराः । प्रस्थानेवाप्रवेशेवानेष्यंतेदर्शनंगताः ।

अर्थ-केश, भस्म, हड्डी, पत्थर, तुष, कपास, कांटे, उलटी, खाट, मद्यपी चरबी, तेल, तिल तृण, नपुंसक, अंगहीन, टटे अंगका, नंगा, मुंडित, काले-

रंगके वस्त्रका पहननेवाला इन सबका प्रस्थानमें अथवा प्रवेशमें दर्शन होना अशुभ है ।

भाण्डानांसङ्करस्थानांस्थानात्सञ्चरणंतथा । निखातोत्पाटनंभङ्गःपतनंनिर्गमस्तथा । वैद्यासनावसादोवारोगीवास्याद्धोमुखः । वैद्यंसम्भाषमाणोऽङ्गंकुड्यमास्तरणानिवा । प्रमृद्याद्राधुनीयाद्वाकरौपृष्ठंशिरस्तथा। हस्तंचाकृष्यवैद्यस्यन्यसेच्छिरसिचोरसि । योवैद्यमुन्मुखःपृच्छेदुन्मार्ष्टिस्वाङ्गमातुरः । नसविध्यतिवैद्योवागृहेयस्यनपूज्यते ।

अर्थ–पात्रोंका औंधे मुख होना, तथा स्थानसे चलायमान होना, पृथ्वी खोदकर गाडना, अथवा पृथ्वीसे उखाडना, वा भंगहोना, पतनहोना, अथवा उनका लेकर निकालना, वैद्यके आसनका विनाशहोना, अथवा रोगीका मुख नीचेको होय । रोगी वैद्यके बोलनेपर अपने अँगोंको भींतसे अथवा बिछयेपर रगडे अथवा पटके उसी प्रकार हाथ, पीठ और शिरको रगडे वा देदे मारे, तथा वैद्यके हाथको पकडकर अपने मस्तक और छातीपर धरे । और जो रोगी वैद्यसे अपना हाल ऊंचा मुख करके पूछे अथवा अपने अंगोंको झाडने पोछने लगे और जिसके घरमें वैद्यका पूजन न हो ऐसा रोगी अच्छा नहीं हो किंतु मरे ।

भवनेपूज्यतेवापियस्यवैद्यःससिद्ध्यति । शुभंशुभेषुदूतादिष्वशुभंह्यशुभेषुच । आतुरस्यध्रुवंतस्माद्दूतादींल्लक्षयेद्भिषक् ।

अर्थ–जिसके घरमें वैद्यका पूजन होता है वह रोगी शीघ्र अच्छा होजाता है । शुभ रोगियोंके शुभ दूतादिक होते हैं, और अशुभके अशुभ होते हैं, अतएव वैद्य रोगीके दूतादिककी अवश्य परीक्षा करे आदिशब्दसे शकुन, निमित्तादि जानने अर्थात् इनकीभी परीक्षा वैद्य करे ।

रोगीके जीवनमरणकी परीक्षा ।

ऋतुहरनयनकराम्बुधिमुनिरसवेदाग्निचन्द्रादिग्दुर्गाः । विन्यस्याधोविलिखेदादानिहान्तांस्तथावर्णान् । पंचान्त्यस्वरव-

---

१ अशुभं सर्वथोलूकबिडालसरठेक्षणम् । धनुरैन्द्रश्चलालाटमशुभंशुभमन्यतः। आग्निपूर्णानि पात्राणिभिन्नानि विशिखानिच । दध्यक्षतादिनिर्गच्छन्वक्ष्यमाणं च मंगलम् । वैद्योमरिष्यतांवेश्मप्रविशन्नेत्रपश्यति । दूताद्यसाधुदृष्टैवंत्यजेदार्त्तमतोऽन्यथा । करुणाशुद्धसंतानोयत्नतः समुपाचरेदिति वाग्भट्टे ।

ज्यांनथकृत्वाचोहलश्चपृथक् । दूतातुरयोर्नाम्नोर्वसुभिःसंशोधितासुसंख्यासु । जीवत्यधिकेरोगीम्रियतेहीनेसमेव्याधिः ।

अर्थ-ऋतु ६ हरनयन ३ कर २, अम्बुधि ४, मुनि ७, रस ६, वेद ४, अग्नि ३, चंद्र १, दिक् १०, दुर्गा ९, इन अंकोंको एक ऊपरकी सीधी पंक्तिमें लिखे फिर उसके नीचे अकारसे लेकर हकारपर्यंत वर्णोंको लिखे और स्वरमेंसे अंत्यके पांच स्वर त्यागदेवे इसप्रकार चक्रको तयार करके फिर दूत और रोगी दोनोंके नामके अक्षरोंके कोष्ठकाक्षरोंकी संख्या जोडके उसमें आठका भाग देवे यदि रोगीकी संख्या अधिक आवे तो बचे,और न्यून होय तो मरे और समान अर्थात् जितने नामके अक्षर होय उनीके समान संख्या आवे तो रोगी रोग ग्रस्त रहे ।

रोगमुक्तीप्रश्नकोष्टकम् ।

६	३	२	४	७	६	४	३	१	१०	९
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ॠ	ऌ	ॡ	ए
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट
ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ
ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह

प्रकारान्तर ।

वर्णाङ्कात्मानिमण्डलेअइउएओकादिवर्णाल्लिखेत्त्यक्त्वा ङक्षभणंलमप्यथतिथीन्सर्वांश्चपंक्तिक्रमात् । अर्कग्लौगुरुशुक्रसौरिकुजविच्छून्यान्यधोधःक्रमात् ।पौष्णादीन्यपिसप्तभानिचपुरावत्पश्चपश्चाग्रतः । आख्यायाःप्रथमाक्षरंभवतियत्कोष्टेततःकोष्टको बालाख्यश्चकुमारकोप्यथयुवावृद्धोमृतश्चक्रमात । भंवारश्चतिथित्रयंप्रभवतिचैतन्मृताख्यंतदा मृत्युर्निश्चयतोऽन्यथाक्वचिदितिप्रोक्तोनृणांनिश्चयः। किञ्चिल्लाभकरोबालःकुमारस्त्वधर्लाभकृत् । सर्वसिद्धियुवादत्तेवृद्धोहानिंमृतोमृतिम् ।

अर्थ–वर्णात्मक तथा अंकात्मक मंडलमें अ इ उ ए ओ और क ख इत्यादि वर्ण लिखे, उनमें ङ क्ष ञ ण ल ये अक्षर छोडदे और १५ तिथि पंक्तिक्रम करके लिखे, और रवि, चंद्र, गुरु, शुक्र, शनि, मंगल, बुध, और शून्य ये लिखे फिर रेवतीसेलेकर प्रत्येक खडी पंक्तीमें प्रथम सात सात नक्षत्र फिर बाकीकी पंक्तिमें पांचपांच इसप्रमाण लिखे । इसप्रकार कोष्ठक तयार करे पीछे दूतके प्रश्नको प्रथमाक्षर जिस कोष्ठकमें होय उस कोष्ठकसे बाल, कुमार, युवा, वृद्ध, और मृत इसक्रमसे नक्षत्र, वार, तिथि, यदि ये मृताख्य कोष्ठकमें आवें तो रोगीकी मृत्यु होय अन्यथा सुख होय । बाल किंचित् लाभकारक, कुमार अर्थलाभ करता, युवा सर्वसिद्धिदाता और वृद्ध हानिकारक एवं मृत मृत्युका दाता जानना ।

प्रश्नचक्रम्

अ	क	छ	ड	ध	भ	व	१	६	११	र	मं	रे	अ	भ	कृ	रो	मृ	आ
इ	ख	ज	ढ	न	म	श	२	७	१२	चं	बु	पु	पु	आ	म	पू	०	०
उ	ग	झ	त	प	य	ष	३	८	१३	गु	०	उ	ह	चि	स्वा	वि	०	०
ए	घ	ट	थ	फ	र	स	४	९	१४	शु	०	अ	ज्ये	मू	पू	उ	०	०
ओ	च	ठ	द	ब	ल	ह	५	१०	१५	श	०	श्र	ध	श	पू	उ	०	०

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघण्टुरत्नाकरे शकुनाध्यायवर्णनं नाम द्वात्रिंशस्तरङ्गः ॥ ३२ ॥

---

१ लग्नं वैद्योद्युनं रोगोमध्यंरोगीख १० मौषधम् । तद्बलाबलमादेश्यं सौम्यक्रूरयुतेन्यथा ॥ १ ॥ शुभग्रहाः सौम्यनिरीक्षिताश्चविलग्नसप्ताष्टमपञ्चमस्थाः । त्रिषट्दशायेषुनिशाकरस्याच्छुभंभवेद्रोगनिपीडितानाम् ॥ २ ॥

समरसारे–प्रश्नाग्नलाश्चप्रमितिः कुयुक्ताभूयो र २ निघ्ना ल २ हृताचशेषे । के १ जीवितं खे २ ऽतिरुजोमृतिर्ने ० भवेच्चातिथ्यांमरणाभिधायाः ३

प्रश्नविनोदे–श्रीपुंसोर्नामराश्यैक्यांत्रिभिर्भक्तावशेषकम् । शशि १ शून्ये ० पुमान्मृत्युः द्विशेषेस्त्रीविनाशनम् ४ उदयात्घटिकास्त्रिघ्नास्तिथिवारेणसंयुताः । सूर्यैश्चविभजेद्धीमान्विज्ञेयंमृत्युजीवनम् । रामे[३] बाणे[५] रसे[६] सिद्धे[८] नन्दे[९] रुद्रे[११] श्चजीवनम् । रूप पक्षे[२] युगे[४] द्वीपे[७] देशे[१०] सूर्यैर्नजीवनम् ।

ॐ

श्रीशंवन्दे ।

श्रीनिकुञ्जविहारिणे नमः ।

अथ स्वप्नप्रकाशिकाप्रारम्भः ।

स्वप्नाधिपं हरिं नत्वा स्वप्नविज्ञानहेतवे ।
स्वप्नप्रकाशिकां वक्ष्ये सर्वचित्तानुगामिनीम् ॥ १ ॥

अर्थ–स्वप्नाधिप श्रीहरिको नमस्कार कर स्वप्नविज्ञानके लिये सबके चित्तमें गमन करनेवाली अर्थात् सबको प्रिय ऐसी स्वप्नप्रकाशिकाको कहते हैं ।

स्वप्नानतः प्रवक्ष्यामि मरणाय शुभाय च ।
सुहृदो यांश्च पश्यन्ति व्याधितो वा स्वयं तथा ॥ २ ॥

अर्थ–अब मैं स्वप्नोंको कहूंगा कि, जिनको मरणके अर्थ अथवा अच्छाहोनेके अर्थ रोगीके सुहृद् अथवा स्वयंरोगी देखता है ।

सप्तविधस्वप्न ।

दृष्टः श्रुतोऽनुभूतश्च प्रार्थितः कल्पितस्तथा ।
भाविको दोषजश्चैव स्वप्नः सप्तविधो विदुः ॥ ३ ॥

अर्थ--तहां कहते हैं कि, स्वप्न सात प्रकारके हैं । १ दृष्ट (जो दिनमें देखा हो उसीको रात्रिको स्वप्नमें देखे) २ श्रुत (जो बात सुनी हो उसी को स्वप्नमें देखे) ३ अनुभूत (जो बात जाग्रत् अवस्थामें अनुभव करी हो उन्हींको स्वप्नमें देखे) ४ प्रार्थित (जो वस्तुकी जाग्रत् अवस्थामें इच्छा की हो उसीको स्वप्नमें देखना) ५ कल्पित (जो दिनमें किसी वस्तुकी कल्पना करे वो स्वप्नमें देखे) ६ भाविक (जो दृष्टश्रुतसे विलक्षण देखे और उसको उसका वैसाही फल हो उसको भाविक जानना) ७ दोषज अर्थात् वात पित्त कफ इनकी प्रकृतिके अनुसार स्वप्न दीखना ।

तत्र पञ्चविधं पूर्वमफलं भिषगादिशेत् । दिवास्वप्नमतिह्रस्वमतिदीर्घं च बुद्धिमान् ॥ ४ ॥ दृष्टः प्रथमरात्रे यः स्वप्नः सोल्पफलोभवेत् । न स्वप्याद्यं पुनर्दृष्ट्वा स सद्यः स्यान्महाफलः ॥ ५ ॥

१ तेष्वाद्यानिष्फलाः पंचयथास्वप्रकृतिर्दिवा । विस्मृतोदीर्घस्वप्नोतिपूर्वरात्रेचिरात्फलम् ॥ दृष्टःकरोतितुच्छंचगोसर्गेतदहर्महत् । निद्रयाचानुपहतःप्रतीपैर्वचनैस्तथा ॥

अर्थ--तिन दृष्टादिक सात स्वप्नोंमें प्रथमके पांच स्वप्नोंको वैद्य निष्फल कहे । तथा दिनका स्वप्न एवं अति छोटा अथवा अत्यंत बडा स्वप्नकोभी वैद्य निष्फल जाने और जो स्वप्न प्रथमरात्रिमें देखा हो वह अल्प फलको देता है। जिस स्वप्नको देखकर फिर न सोवे वह स्वप्न शीघ्र महाफलको देय है।

१ वाग्भट लिखते हैं कि, जो प्रकृतिसंबंधी स्वप्न अर्थात् जैसे दोषकी प्रकृति हो उसीप्रकारका स्वप्न देखाहुआभी निष्फल है । जैसे वातप्रकृतिवाला वातप्रकृतिके अनुरूप स्वप्न देखे । पित्तप्रकृतिवाला पित्तप्रकृतिके और कफप्रकृति कफप्रकृतिके एवं द्वंद्वजके और त्रिदोषज जो द्वंद्वजके और त्रिदोषज प्रकृतिके अनुरूप स्वप्न देखे तो निष्फल है । और जिस स्वप्नको देखा उसकी विस्मृति होजावे वोभी निष्फल है शेष समान है।

मनोवहानां पूर्णत्वाद्दोषैरतिबलैस्त्रिभिः।
स्रोतसां दारुणान्स्वप्नान्काले पश्यत्यदारुणान् ॥ ६ ॥

अर्थ--मनोवह अर्थात् मनके वहनेवाली नाडियोंके छिद्र जिससमय अतिबली तीनों दोषोंसे पूर्ण होजाते हैं उस कालमें यह मनुष्य दारुण (खोटे) और अदारुण (शुभ) स्वप्नोंको देखता है।

नातिप्रसुप्तः पुरुषः सफलानफलानपि ।
इन्द्रियेशेन मनसा स्वप्नान्पश्यत्यनेकधा ॥ ७ ॥

अर्थ--जिससमय यह पुरुष न अत्यंत सोता हो और न जगता हो उससमय इन्द्रियोंके अधिपति मनकरके सफल और निष्फल अनेकप्रकारके स्वप्नोंको देखता है। जिसमें स्वप्न देखता है उस अवस्थाको स्वप्नावस्था कहते हैं।

तथाच ग्रन्थान्तरे ।

सर्वेन्द्रियाण्युपरतौ मनोह्युपरतं यथा ।
विषयेभ्यस्तदा स्वप्नं नानारूपं प्रपश्यति ॥ ८ ॥

अर्थ--और ग्रंथान्तरोंमेंभी लिखा है, कि जिससमय संपूर्ण इन्द्री और मन विषयोंसे उपरामको प्राप्त होते हैं, तब यह प्राणी अनेक प्रकारके भले बुरे स्वप्नोंको देखता है।

तत्रादौ रोगभाविस्वप्नाः ।

श्वभिरुष्ट्रैः खरैर्वापि याति यो दक्षिणां दिशम् ।
स्वप्ने यक्ष्मा तमाविश्य न जीवन्नवसृज्यते ॥ ९ ॥

अर्थ-तहां प्रथम रोग होनहार स्वप्नोंको कहते हैं । जो मनुष्य स्वप्नमें कुत्ता, ऊंट और गधेपर चढके दक्षिणदिशाको जाता है, उसके राजयक्ष्माका रोग होकर मरता है ।

रक्तपित्तसंभवे ।

लाक्षारक्ताम्बराभं यः पश्यत्यम्बरमन्तिकात् ।
स रक्तपित्तमासाद्य तेनैवान्ताय नीयते ॥ १० ॥

अर्थ-जो मनुष्य स्वप्नमें लाख और लाल वस्त्रके समान आकाशको देखता है वह रक्तपित्तरोगको प्राप्त हो और उसी रक्तपित्तसे मरणको प्राप्त होता है ।

रक्तरोगे ।

रक्तस्रग्रक्तसर्वाङ्गो रक्तवासा मुहुर्हसन् ।
यः स्वप्ने ह्रियते नार्या स रक्तं प्राप्य सीदति ॥ ११ ॥

अर्थ--जो मनुष्य स्वप्नमें लाल फूलमाला और अपने संपूर्ण अंगोंको लाल और लाल वस्त्रोंको धारण करता वारंवार हँसता है, एवं जिसको स्वप्नमें लाल वस्त्र धारण करनेवाली स्त्री खींचती है वह रुधिरके रोगसे मरता है ।

गुल्मरोगे ।

शूलाटोपान्त्रकूटाश्च दौर्बल्यं चातिमात्रया ।
नखादिषु च वैवर्ण्यं गुल्मेनान्तकरो नरः ॥ १२ ॥

अर्थ-जिस मनुष्यके स्वप्नमें शूलरोग, अफरा, आंतोंका रोग, अत्यंत दुर्बलताका रोग, और जिसके नख दुष्टरंगके होजांय उस मनुष्यकी मृत्यु गुल्मरोगसे होती है ।

लताकण्टकिनी यस्य दारुणा हृदि जायते ।
स्वप्ने गुल्मस्तमन्ताय क्रूरो विशति मानवम् ॥ १३ ॥

अर्थ-जिस स्वप्नमें मनुष्यके हृदयमें घोर कांटेवाली लता (वेल) उत्पन्न होय उसमनुष्यके मारनेको क्रूर गुल्मरोग उसकी देहमें प्रवेश करता है ।

कुष्ठरोग ।

कायेऽल्पमपि संस्पृष्टं सुभृशं यस्य दीर्यते । क्षतानि च नरो

हन्ति कुष्ठैर्मृत्युर्हिनस्ति तम् ॥ १४ ॥ नग्नस्याज्यावसिक्त-स्यजुह्वतोऽग्निमनर्चिषम् । पद्मान्युरसि जायन्ते स्वप्ने कुष्ठै-र्मरिष्यतः ॥ १५ ॥

अर्थ–जिसकी देह नेकभी स्पर्श करनेसे फटजावे और घावहोजावे वो मनुष्य कुष्ठकरके मरण पाताहै । यह जाग्रत् अवस्थामें जानना और यही मनुष्य स्वप्नमें नग्नहो घृतको देहमें लगावे । और ज्वालारहित अग्निमें हवन करे तथा उसके हृदयमें कमल प्रगट होय वो कुष्ठकरके मरेगा ऐसा जानना ।

प्रमेहरोगे ।

स्नातानुलिप्तगात्रेऽपि यस्मिन्गृध्यंति मक्षिकाः । स प्रमे-हेण संस्पर्शं प्राप्य तेनैव हन्यते ॥ १६ ॥ स्नेहं बहुविधं स्वप्ने चांडालैः सह यः पिबन् । बध्यते स प्रमेहेण स्पृश्य-तेऽन्ताय माधवः ॥ १७ ॥

अर्थ–जो मनुष्य स्नानकर चुकाहो और तैलआदिका मालिसकर चुकाहो तथापि उसकी देहमें मक्खी आनकर बैठ, वह मनुष्य प्रमेहरोगको प्राप्तहो और उसी प्रमेहरोगकरके मारा जाताहै यह जाग्रत् अवस्थामें जानना । अब कहतेहैं कि वही मनुष्य स्वप्नमें चांडाल (भंगी डोम आदि) के साथ अनेक प्रकारके घृततैलादि स्नेहका पान करता है वो प्रमेहकरके मरताहै । उसको मधुप्रमेह होताहै ।

उन्मादरोगे ।

ध्यानायामस्तथोद्वेगो चोहश्च स्थानसम्भवः । अरतिर्बलहा-निश्च मृत्युरुन्मादपूर्वकः ॥ १८ ॥ आहारद्वेषिणं पश्यन् लुप्तचित्तं मुदर्दितम् । विद्याद्धीनो मुमूर्षुतं उन्मादेनातिपा-तिना । क्रोधनं त्रासबहुलं हन्त्युन्मादः शरीरिणम् ॥ १९ ॥ नृत्यन्रक्षोगणैः साकं यः स्वप्नेऽम्भसिसीदति । स प्राप्य भृ-शमुन्मादं याति लोकमतः परम् ॥ २० ॥

अर्थ--एकठिकाने बहुत देरीतक ध्यानका लगजाना, मनमें उद्वेग और तर्क वितर्क, सर्व वस्तुमात्रमें तर्क करे अरति और बलहानि नौ ये लक्षण उन्मादरोग होनेवाले रोगीकेहैं वह इसी रोगसे मरे । जो मनुष्य भोजन नहीं

करे, निमग्न चित्तसे देखे, तथा आनंदसे पीडित चित्त जिसका अर्थात् अत्यंत आनंदित रहे।एवं जो अत्यंत क्रोधी और जिसको अत्यंत त्रास होय वह अति प्रबल उन्मादरोगसे मरनेवाला जानना ये जाग्रत् अवस्थाके चिह्नहैं । और जिस मनुष्यके ये जाग्रत अवस्था चिह्नहो वह स्वप्नमें राक्षसोंके समूहोंकरके नाचताहुआ जलमें डूबजावे। वह उन्मादरोगको प्राप्त हो मृत्युको प्राप्तहोताहै ।

अपस्माररोगे ।

असत्तमः पश्यति यः शृणोत्यप्यसतःस्वरान् । बहून्बहुविधान्जाग्रन्सोऽपस्मारेण बध्यते ॥ २१ ॥ मत्तं नृत्यन्तमाविध्य प्रेतो हरति यं नरम्। स्वप्ने हरति तं मृत्युरपस्मारपुरःसरः ॥ २२ ॥

अर्थ-- जो मनुष्य जाग्रत् अवस्थामें अकस्मात् अनेक प्रकारके भयानक दुष्ट स्वरूपोंको देखे और अनेक प्रकारके दुष्टशब्दोंको सुने वो अपस्मार (मृगी) रोग प्रगट होकर और इसी रोगसे माराजाय । एवं यही मनुष्य स्वप्नमें उन्मत्तहो नाचने लगे उस नाचते हुएको मृतपुरुष बांधकर लेजाय वो अपस्मारकरके मरे इसमें संदेह नहीं ।

स्तम्भेते प्रतिबुद्धस्य हनूमन्ये तथाक्षिणी।
यस्य तं बहिरायामो गृहीत्वा हन्त्यसंशयम् ॥ २३ ॥

अर्थ-जिस जगतेहुए पुरुषके ठोडी, मन्यानाडी, और नेत्र ये स्तंभितहोजावे उसको बहिरायाम (वादीका रोग) होकर निश्चय मरता है ।

शष्कुलीरप्यपूपान्वै स्वप्ने खादति यो नरः।
स चेत्तादृक्छर्दयति प्रतिबुद्धो न जीवति ॥ २४ ॥

अर्थ-जो मनुष्य स्वप्नमें पूडी, पूआ खायकर फिर उसी प्रकार उलटी कर देवे और जगपडे तो वो नहीं जीवे ।

अनेक रोगोंमें विविधस्वप्न ।

ज्वरितानां शुनासख्यं कपिसख्यन्तु शोषिणाम् । उन्मादे राक्षसैः प्रेतैरपस्मारे प्रवर्त्तनम् ॥ २५ ॥ मेहातिसारिणां तोयपानं स्नेहस्य कुष्ठिनाम् । गुल्मेषु स्थावरोत्पत्तिः कोष्ठे मूर्ध्नि शिरोरुजि ॥ २६ ॥ शष्कुलीभक्षणं छर्द्यां मध्वा-

श्वासपिपासयोः ॥ हारिद्रं भोजनं वापि यस्य स्यात्पाण्डुरोगिणः । रक्तपित्ती पिबेद्यश्च शोणितं स विनश्यति ॥ २७ ॥

अर्थ-स्वप्नमें ज्वर होनेवाले मनुष्योंकी कुत्तेके साथ प्रीति होतीहै । जिनके शोषरोग होनेवालाहो उनकी बंदरोंके साथ प्रीति होती है । उन्माद होनेवालेकी राक्षसोंके साथ, अपस्मार (मृगी) रोग होनेवालेकी प्रेतोंके साथ प्रीति होती है । प्रमेहरोगवाले और अतिसारी स्वप्नमें जलपीते हैं । कुष्ठ होनेवाले तेलपीते हैं गुल्मरोग होनेवालोंके कोठेमें और मस्तकपर वृक्षोत्पत्तिहो । मस्तकरोग और छर्दिरोग होनेवाला मनुष्य चनेकी तिलमिली पूडी खाता है और श्वासरोग तथा प्यासरोगवाला मार्ग चलता है । पांडुरोग होनेवाला हलदी मिले पदार्थ खाताहै । और जो रक्तपित्ती स्वप्नमें रुधिर पीताहै वो अवश्य मरण पावे ।

एतानि पूर्वरूपाणि यः सम्यगवबुद्ध्यते । स एषामनुबन्धश्च फलञ्च ज्ञातुमर्हति ॥ २८ ॥ इमांश्चाप्यपरान्स्वप्नान्दारुणानुपलक्षयेत् ॥ व्याधितानां विनाशाय क्लेशाय महतेऽपि वा ॥ २९ ॥

अर्थ-जो पुरुष इन रोगोंके पूर्वरूपोंको उत्तमरीतिसे जानताहै वह इन दुष्ट पूर्वरूपोंका यत्न और इनके फलकोभी जानता है। इसप्रकार यह मनुष्य इनको और अन्य दुष्ट स्वप्नोंको रोगीकी मृत्युके अर्थ अथवा घोर कष्टके लिये देखता है ।

अथान्याशुभस्वप्नानि ।

यस्योत्तमाङ्गे जायन्ते वंशगुल्मलतादयः। वयांसि च विलीयन्ते स्वप्ने मौण्ड्यमियाच्च यः ॥३०॥ गृध्रोलूकश्वकाकाद्यैः स्वप्ने यः परिवार्यते ॥ ३१ ॥

अर्थ-अब अन्य अशुभ स्वप्नोंको कहते हैं । जैसे कि जिसके मस्तकपर बांसका वृक्ष, गुल्म (छोटा जवासेके सदृश वृक्ष) और लता प्रगटहो, और जिसके देहमें पक्षी प्रवेश करे, तथा स्वप्नमें मुंडित होकर गमन करे, और जिसको गीध, उल्लू, कुत्ता और कौआ आदि त्रासदेवे ।

रक्षप्रेतपिशाचस्त्रीचाण्डालद्रुमडादिकैः । वंशवेत्रलतापाशतृणकण्टकसङ्कटे ॥ ३२ ॥ प्रमुह्यन्ति हि यः स्वप्ने

लगति प्रपतत्यपि। भूमौ पांसूपधानायां वल्मीके वाथ भस्मनि ॥ ३३ ॥ श्मशानायतनश्वभ्रे स्वप्ने यः प्रपतत्यपि। कलुषेऽम्भसि पङ्के वा कूपे वा तमसावृते ॥ ३४ ॥ स्वप्ने मज्जति शीघ्रेण स्रोतसा ह्रियते च यः।

अर्थ-जो मनुष्य स्वप्नमें राक्षस, प्रेत, पिशाच, स्त्री, चांडाल, द्रुमडादिकोंकरके बांस, वेत, लता, फांस, तिनका, और कांटेके संकटमें मोहितहो, लगकर गिरपडे, तथा रेतली पृथ्वीमें तथा सर्पकी बांबीमें राखमें, श्मशानमें देवस्थानमें, गड्ढेमें, दुष्ट जलमें, कीचमें, अंधौए कूएमें गिर और पानीके वेगकरके जो हरण करा जाय अर्थात् बहजावे।

स्नेहपानन्तथाभ्यङ्गप्रच्छर्दनविरेचने ॥ ३५ ॥ हिरण्यलाभः कलहः स्वप्ने बन्धपराजयौ। उपानद्युगनाशश्च प्रपातःपांसुचर्म्मणोः ॥ ३६ ॥ हर्षस्वप्ने प्रकुपितैः पितृभिश्चावभर्त्सनम्। दन्तचन्द्रार्कनक्षत्रदेवतादीपचक्षुषाम् ॥ ३७ ॥ पतनं वा विनाशोवा स्वप्ने भेदो नगस्य वा।

अर्थ-स्वप्नमें तेलका पीना तथा देहमें लगाना उलटी करना, दस्त होना तथा सुवर्णका मिलना, कलह होना, बंधनमें पडना और हारना, जोडियोंका नाश, पांसू और चमडेका गिरना, तथा स्वप्नमें खुसी होना, और कुपितहुए पित्रेश्वरोंकरके ललकारा जाना, दांत, चंद्र, सूर्य, नक्षत्र, देवता, दीपक और नेत्र इनका गिरपडना अथवा नाश होना तथा पर्वतका टूटना।

रक्तपुष्पं वनं भूमिं पापकर्मालयांचिताम् ॥ ३८ ॥ गुहान्धकारं संबाधं स्वप्ने यः प्रविशत्यपि। रक्तमाली हसन्नुच्चैर्दिग्वासा दक्षिणां दिशम् ॥ ३९ ॥ दारुणामटवीं स्वप्ने कपियुक्तेन याति वा।

अर्थ-जो मनुष्य स्वप्नमें लालपुष्प वन, पृथ्वी, हिंसाघर, गुफा और अंधकार इनमें प्रवेश करे तथा लालमालाको पहन खिलखिलायके हँसता, नंगाहो दक्षिण दिशाको जाय अथवा बंदरको साथ लेकर दारुण वनीमें प्रवेश करे।

कषायिणामसौम्यानां नग्नानां दण्डधारिणाम् ॥ ४० ॥ कृ-

ष्णानां रक्तनेत्राणां स्वप्ने नेच्छंति दर्शनम् । कृष्णा पापा निराचारा दीर्घकेशनखस्तनी ॥ ४१ ॥ विरागमाल्यवसना स्वप्ने कालनिशा मता । इत्येते दारुणाः स्वप्ना रोगीयैर्याति पञ्चताम् ॥ ४२ ॥ अरोगः संशयं गत्वा कश्चिदेव विमुच्यते ।

अर्थ–कोरडाको हाथमें लिये भयंकर रूपवाले नग्न दंडको धारण करनेवाले काले लालनेत्रवाले पुरुषोंका स्वप्नमें दर्शन होना अशुभ है। काली पापिष्ठ अमंगली आचरणवाली तथा केश नख और स्तन जिसके लंबे होय और दुष्ट रंगकी माला तथा वस्त्रोंको धारण करनेवाली ऐसी स्त्रीका स्वप्नमें दीखना कालरात्रि जाननी । ये संपूर्ण दारुण स्वप्न हैं यदि रोगी देखे तो मृत्युको प्राप्त हो, और आरोग्य पुरुष देखे तो संशयको प्राप्त हो, ऐसे दुष्ट स्वप्नोंसे कोईभी पुण्यवान् पुरुष बचता है ।

तथा च सुश्रुते ।

स्नेहाभ्यक्तशरीरस्तु करभव्यालगर्दभैः ॥ ४३ ॥ वराहैर्महिषैर्वापि यो यायाद्दक्षिणामुखः । रक्ताम्बरधरा कृष्णा हसन्ती मुक्तमूर्धजा ॥ ४४ ॥ यं वा कर्षति बद्धा स्त्री नृत्यन्ती दक्षिणामुखम् । अन्त्यावसायिभिर्य्यो वा कृष्यते दक्षिणामुखः ॥ ४५ ॥ परिष्वजेरन् यं वापि प्रेताः प्रव्रजितास्तथा ।

अर्थ–अब सुश्रुतके मतसे दुष्ट स्वप्न कहते हैं जैसे कि देहमें तेलका लगाना तथा ऊंट, सर्प, गधा, सूकर, और भैंसा इनपर बैठकर जो दक्षिणदिशाको जाय तथा लाल वस्त्रके धारण करनेवाली काली, बाल जिसके खुले रहे ऐसी स्त्री हँसती नाचती जिस मनुष्यको बांधकर दक्षिणदिशाको घसीटे अथवा जो चांडालोंकरके दक्षिणदिशाकों घसीटा जावे अथवा जिसको मृतपुरुष और संन्यासी आलिंगन करे ।

मूर्द्धन्याघ्रायते यस्तु श्वापदैर्विकृताननैः ॥ ४६ ॥ पिबेन्मधु च तैलं च यो वा पङ्केऽवसीदति ॥ पङ्कप्रदिग्धगात्रो वा प्रनृत्येत्प्रहसेत्तथा ॥ ४७ ॥ निरम्बरश्च यो रक्तां धारयेच्छिरसि स्रजम् ।

अर्थ–स्वप्नमें जिसके मस्तकको विकराल मुखके कुत्ते सूंघे और जो सहत

तेल पीवे, अथवा कीचमें डूबजावे, अथवा जिसके संपूर्ण अंगोंमें कीच लगजाव, नांचि, हँसे, तथा नग्नहो मस्तकपर लाल पुष्पकी माला धारण करे ।

यस्य वंशो नलो वापि तालो वोरसि जायते ॥ ४८ ॥ यं वा मत्स्यो ग्रसेद्यो वा जननीं प्रविशेन्नरः । पर्वताग्रात्पतेद्यो वा श्वभ्रे वा तमसावृते ॥ ४९ ॥ ह्रियते स्रोतसा यो वा यो वा मौढ्यमवाप्नुयात् । पराजीयेत बध्येत काकाद्यैर्वाभिभूयते ॥ ५० ॥

अर्थ--स्वप्नमें जिसकी छातीमें बांसका नरसलका अथवा ताडका वृक्ष उत्पन्न हो, तथा जिसको मछली निगलजावे, अथवा अपनी मातामें प्रवेश करजावे, पर्वतके अग्रभागसे अंधकारयुक्त गड्ढेमें गिरे, अथवा पानीके वेगसे बहिजावे, वा मुंडन हो, तथा शत्रुसे पराजित हो वा बंधनको प्राप्त हो एवं जो काक (चील, गीध, घूघू) आदिसे पीडित होवे ।

यः पश्येद्देवतानां वा प्रकम्पमवनेस्तथा । शाल्मलीं किंशुकं यूपं वल्मीकं पारिभद्रकम् ॥ ५१ ॥ पुष्पाढ्यं कोविदारं वा चितां यो वाधिरोहति । कार्पासतैलपिण्याकलोहानि लवणं तिलान् ॥ ५२ ॥ लभेताश्नाति वा पक्वमन्नं यश्च पिबेत्सुराम् । स्वस्थः स लभते व्याधिं व्याधितो मृत्युमृच्छति ॥ ५३ ॥

अर्थ–जो मनुष्य स्वप्नमें देवप्रतिमाको और पृथ्वीको हिलती देखे, तथा सेमरका वृक्ष, ढाकका वृक्ष, यूप (यज्ञमें पशु मारनेका स्तंभ) बमई, नीमका वृक्ष, और फूलाहुआ कचनारका वृक्षको देखे अथवा अपनेको चितामें बैठा देखे, तथा कपास, तेल, खल, लोहेके पदार्थ, नोन, तिल, ए प्राप्त होय अथवा पक्व अन्न (पूडीकचोडी, लड्डू, आदि) को स्वप्नमें भक्षण करे, दारू पीवे, इत्यादि स्वप्नोंसे स्वस्थ पुरुष रोगीहो और रोगी पुरुषकी मृत्यु होय ।

विष्णुपुराणे ।

देवद्विजादिभूपानां प्रजानां क्रोध एव च । आलिंगनं कुमारीणांप्राणिनां चैव मैथुनम् ॥ ५४ ॥ हानिश्चैव स्वगा-

त्राणां वीरकंठमनप्रियान् । दक्षिणाशाभिगमनं व्याधिनाभिभवस्तथा॥ ५५ ॥ फलापहारश्च तथा शाड्वलानां विशोधनम्।काषायवस्त्रधारित्वंतद्वत्क्रीडनके तथा ॥ ५६ ॥ स्नेहपानावगाहौ च रक्तं माल्यानुलेपनम् । एवमादीनिचान्यानि दुस्वप्नानिविनिर्दिशेत् ॥ ५७ ॥

अर्थ-विष्णुपुराणमें लिखाहै कि स्वप्नमें देव ब्राह्मण आदिका राजाका और प्रजाका क्रोधितहोना, कुमारी (कन्याओंका) आलिंगन करना, पशुआदि प्राणियोंका मैथुन देखना, अपने देहकी हानी वीर, कंठ और मनवांछित पदार्थोंका नाश देखना, अपनेको दक्षिणदिशामें जाताहुआ देखे, तथा रोगसे आक्रांत देखे, फलोंका हरण, घासका काटना, तथा गेरुआ कपडे पहने उसीप्रकार अपनेको खेलता तेलपीता तेलसे स्नान करता लालपुष्पमाला और लालचंदन धारण करे हुए देखना, इनसे आदिले और बहुतसे दुःस्वप्न जानने चाहिये ।

वराहः ।

हरिणारोहे भ्रमणं मृत्युर्नचिरेण सूकरारोहे ।
उष्ट्रारोहे व्याधिर्वृद्धिः स्यात्कुञ्जरारोहे ॥ ५८ ॥

अर्थ-वाराहमिहिर लिखते हैं कि, स्वप्नमें हरिणके ऊपर अपनेको बैठा देखे तो भ्रमण करे, और शूकरके ऊपर बैठा देखे तो थोडेही कालमें मृत्युहो उसी प्रकार ऊंटपै बैठनेसे रोग, और हाथीपर बैठनेसे कुटुंबवृद्धिहोय ।

मार्कण्डेयः ।

वांत्यामूत्रपुरीषं तु सुवर्णं रजतं तथा । प्रत्यक्षमथवा स्वप्ने जीवेत दशमासिकम् ॥ ५९ ॥ लोहदंडयुतं कृष्णं नरं कृष्णपरिच्छदम्। स्वप्ने च पार्श्वतो दृष्ट्वा त्रिरात्रान्मृत्युमादिशेत् ॥ ६० ॥

अर्थ-मार्कंडेय ऋषि लिखतेहैं कि जो मल, मूत्र, सुवर्ण और चांदीकी वमनको जागते अथवा स्वप्नमें देखे वो मनुष्य दश महिने जीवे । जो मनुष्य स्वप्नमें लोहदंडका धारण करनेवाला और संपूर्ण परिच्छद (हाथी घोडे आदि) जिसके कालेहो ऐसे पुरुषको अपनेपास खडा देखे वो तीन रात्रिमें मरेगा ऐसा जानना ।

करालैर्विकटैः कृष्णैः पुरुषैरुद्यतायुधैः।
पाषाणैस्ताड्यते स्वप्ने सद्यो मृत्युर्भवेन्नरः ॥ ६१ ॥

अर्थ–जो स्वप्नमें कराल, विकट, काले पुरुष, हाथमें शस्त्र ले रक्खे हों तथा पत्थर मारतेहों ऐसा देखे वो शीघ्र मरे।

रक्तकृष्णाम्बरधरा गायन्ती च हसन्ति च।
दक्षिणाशां नयेन्नारी स्वप्ने सोऽपि न जीवति ॥ ६२ ॥

अर्थ–लाल अथवा काले वस्त्रके धारण करनेवाली स्त्री गाती हँसती जिसको स्वप्नमें दक्षिणदिशाको लेजावे वो मनुष्य नहीं जीवे।

यस्तु प्रावरणं शुक्लं स्वप्ने पश्यति मानवः।
कृष्णरक्तमपि स्वप्ने तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥ ६३ ॥

अर्थ–जो मनुष्य स्वप्नमें अपने ओढने बिछानेके वस्त्रोंको सपेद वा काले और लाल देखे उसकी मृत्यु उपस्थित है ऐसा जानना।

श्वभ्रे यो निपतेत्स्वप्ने द्वारं चास्य पिधीयते।
नचोत्तिष्ठति यस्तस्मात्तदन्तं तस्य जीवितम् ॥ ६४ ॥

अर्थ–जो मनुष्य स्वप्नमें गड्ढेमें गिरपडे, जिसके घरके किवाँड लगजावे वो पुरुष जबतक शय्यासे नहीं उठे तबतकही उसका जीवनहै ऐसा जानना।

रक्तगंधप्रलिप्ताङ्गो रक्तमाल्योपशोभितः। तैलाभ्यक्तोऽतिपीतश्च मुंडितो रक्तवस्त्रधृक् ॥ ६५ ॥ खरमारुह्यवेगेन दक्षिणां दिशमाव्रजेत्। स्वात्मा च दृश्यते स्वप्ने स याति यममन्दिरम् ॥ ६६ ॥

अर्थ–रक्तगंध और लालफूलमाला जिसने पहिर रक्खीहो तथा तेलको लगावे तथा पीवे। मुंडितहो लालवस्त्रको धारण कर गद्धेके ऊपर बैठ वेगसे दक्षिण दिशामें जाय इसप्रकार जो मनुष्य अपने आपको स्वप्नमें देखे वह अवश्य यमराजके घरको पधारे।

दंता यस्य विशीर्यन्ते केशा यस्य पतन्ति च।
धननाशो भवेत्तस्य व्याधिपीडाप्यसंशयम् ॥ ६७ ॥

अर्थ–जिस मनुष्यके स्वप्नमें दांत और बाल गिरजावे उसका धननाश और व्याधिपीडा होय।

अभिद्रवन्ति यं स्वप्ने शृङ्गिणो दंष्ट्रिणोऽथवा ।
वानरा वा वराहा वा तस्य राजकुलाद्भयम् ॥ ६८ ॥

अर्थ–स्वप्नमें जिसके पीछे शींगवाले (बैल, भैंसा, आदि) और डाढा-वाले (सिंह, वघेरा, कुत्ता आदि) और बंदर तथा सूअर दौडे । उसको राजकुलसे भय होय ।

स्वप्नेभ्यक्तस्तु रजसा तैलेन च घृतेन च ।
स्नेहेन वा तथान्येन व्याधिं तस्य विनिर्दिशेत् ॥ ६९ ॥

अर्थ–जो स्वप्नमें धूल, वा तैल, तथा घीको देहमें लगाता है एवं और प्रकारका स्नेह (चरबीआदि) को लगाता है वह अवश्य रोगी होय ।

रक्ताम्बरधरानारी रक्तगंधानुलेपना ।
अवगूहति यं स्वप्ने तस्य मृत्युं विनिर्दिशेत् ॥ ७० ॥

अर्थ--लाल वस्त्र और लाल चंदनके धारण करनेवाली स्त्री जिस पुरुषका आलिंगन करे उसकी मृत्यु हो ।

कृष्णाम्बरधरानारी कृष्णगन्धानुलेपना ।
अवगूहति यं स्वप्नेऽकल्याणं तस्य निर्दिशेत् ॥ ७१ ॥

अर्थ–काले वस्त्र और काले चंदनके धारण करनेवाली स्त्री जिस पुरुषका आलिंगन करे उसका अकल्याण जानना ।

स्वप्नेषुनग्नान्मुण्डांश्च रक्तकृष्णाम्बरावृतान् । व्यंगांश्च विकृतान्कृष्णान्सपाशान्सायुधानपि ॥ ७२ ॥ बध्नतो निघ्नतश्चापि दक्षिणांदिशमाश्रितान् । महिषोष्ट्रखरारूढान्स्त्रीपुंसोयेस्तुपश्यति । स स्वस्थो लभते व्याधिं रोगी यात्येवपञ्चताम् ॥ ७३ ॥

अर्थ–स्वप्नमें नंगे, मुंडित, लाल काले वस्त्रके धारण करनेवाले, अंगहीन-विकराल, काले फांसी और शस्त्रोंको लिये ऐसे पुरुष बांधते मारते दक्षिण, दिशाको ले जाते तथा भैंसा ऊंट और गधेपर चढेहुए जिस स्त्री पुरुषको दीख वह नैरोग्य रोगी होय और जो रोगी है वह मृत्यु पावे ।

अधोयोनिं पतत्युच्चाज्जलेग्नौ वा विलीयते । श्वापदैर्हन्यते यापि मत्स्याद्यैर्गिलितो भवेत् ॥ ७४ ॥ यस्य नेत्रे विली-

येते दीपो निर्वाणतां व्रजेत्। तैलं सुरां पिबेद्वापि लोहं वा लभते तिलान् ॥ ७५ ॥ पक्कान्नं लभतेऽश्नाति विशेत्कूपं रसातलम्। स स्वस्थो लंभते व्याधिं रोगीयात्येव पञ्चताम् ॥ ७६ ॥

अर्थ--जो मनुष्य स्वप्नमें अपनेको पर्वतवृक्षआदि ऊंचे स्थानसे गिरा हुआ देखे तथा पानीमें डूबा हुआ अग्निमें जलाहुआ तथा कुत्ताने नखोंसे घायल करा हुआ मछलीकर्के भक्षित, अकस्मात् नेत्र जाते रहे, तथा अकस्मात् दीपक बुझा हुआ ऐसा देखे तथा तैल, दारू इनको पीवे लोह, तिल इनका लाभ होय, तथा पक्वान्नका लाभ होकर उसको भोजन करे तथा कूआमें व पातालमें प्रवेश शरे, इस प्रकारके दुष्ट स्वप्न देखनेसे जिसकी प्रकृति स्वस्थ है उसको रोग होय और जो रोगी है वो मरे।

दुःस्वप्नान्येवमादीनि दृष्ट्वा ब्रूयान्न कस्यचित्। स्नानं कुर्यादुषस्येव दद्याद्धेमतिलानयः ॥ ७७ ॥ पठेत्स्तोत्राणि देवानां रात्रौ देवालये वसेत्। कृत्वैवं त्रिदिनं मर्त्यो दुःस्वप्नात्परिमुच्यते ॥ ७८ ॥

अर्थ–पूर्वोक्त नग्नमुंडादि दुष्ट स्वप्नोंको देखकर किसीसे न कहे और प्रातःकाल स्नान कर सुवर्ण और तिलका और लोहका दान करे, फिर दुष्ट स्वप्नको नाशकर्त्ता ऐसे देवताओंके (विष्णुसहस्रनामादि) स्तोत्रोंका पाठ करे। इसप्रकार दिनमें कर रात्रिमें देवमन्दिरमें स्थित हो जागरण करे इसप्रकार तीनदिन करनेसे मनुष्य दुःस्वप्नके फलसे छूट जाता है।

ग्रन्थांतरे च।

स्तुतिश्च वासुदेवस्य तथा तस्य च पूजनम्।
नागेन्द्रमोक्षश्रवणं ज्ञेयं दुःस्वप्ननाशनम् ॥ ७९ ॥

अर्थ–औरभी ग्रन्थान्तरोंमें लिखा है कि, श्रीवासुदेवकी स्तुति तथा श्रीवासुदेव भगवान्का पूजन और गजेन्द्रमोक्षका श्रवण करनेसे दुःस्वप्नका फल नष्ट होता है।

पराशरस्मृतौ।

देवद्विजाग्निप्रतिपूजनानि मंत्रोपवासादिपवित्रमेव। तिलान्नगोभूमिहिरण्यदानं दुस्वप्नसंदर्शननाशनानि ॥ ८० ॥ अ-

थाम्बुसंस्पर्शनमंत्रहोमतिलप्रदानं तपनं च भूयः। शांतिर्जपो होमतथान्नदानंदुःस्वप्नहन्तॄणि पयश्च गांगम् ॥ ८१ ॥

अर्थ–पाराशरस्मृतिमें लिखा है कि देव ब्राह्मण और अग्नि इनका पूजन, गायत्र्यादि दिव्य मंत्रोंका जप करना, उपवासादि पवित्र कर्मोंका अनुष्ठान तथा तिल, अन्न, गौ, पृथ्वी, और सुवर्णका दान, ये सब दुःस्वप्न देखनेके फलको नष्ट करे हैं। उसीप्रकार जलोंका स्पर्श, मंत्रजापपूर्वक होम, तिलदान तप करना, शांति कराना, जप, होम, अन्नदान और श्रीभागीरथीगंगाके जलका सेवन दुःस्वप्नकी शांति करे है।

सुश्रुते च।

स्वप्नानेवंविधान्दृष्ट्वा प्रातरुत्थाय यत्नवान् । दद्यान्माषांस्तिलाँल्लोहं विप्रेभ्यः काञ्चनं तथा ॥ ८२ ॥ जपेच्चापि शुभान्मंत्रान्गायत्रीं त्रिपदां तथा। दृष्ट्वा च प्रथमे यामे सुप्याद्ध्यात्वा पुनः शुभम् ॥ ७३ ॥ जपेद्वान्यतमं देवं ब्रह्मचारी समाहितः । नचाचक्षीत कस्मैचिद्दृष्ट्वा स्वप्नमशोभनम् ॥ ८४ ॥ देवतायतने चैव वसेद्रात्रित्रयं तथा। विप्रांश्च पूजयेन्नित्यं दुःस्वप्नात्परिमुच्यते ॥ ८५ ॥

अर्थ–सुश्रुतमें लिखा है कि पूर्वोक्त अशुभ स्वप्नोंको देखे तो प्रातःकाल उठकर यत्नपूर्वक ब्राह्मणोंको उडद, तिल, लोह और सुवर्णका दान करे। तथा शुभवैदिकमंत्रोंका तथा त्रिपदा गायत्रीमंत्रका जप करे, यदि रात्रिके प्रथमप्रहरमें स्वप्न देखे तो शुभवस्तुका स्मरण कर फिर शयन करे अथवा अपनी इच्छाके अनुसार चाहिये जिस देवताका ध्यान करे और ब्रह्मचर्यमें रहना, दुष्ट स्वप्नको किसीके आगे कहे नहीं और देवमंदिरमें तीन रात्र जागरण करे नित्य ब्राह्मणोंका पूजन कराकरे तो दुःस्वप्नसे छूट जावे।

चरके।

अकल्याणमपिस्वप्नं दृष्ट्वा तत्रैव यः पुनः।
पश्येत्सौम्यं शुभाकारं तस्य विद्याच्छुभं फलम् ॥ ८६ ॥

अर्थ–चरकमें लिखा है कि, यदि यह प्राणी दुःस्वप्न देखे और उसीके पिछाडी शुभस्वप्न देखे तो उसका शुभही फल जानना।

अथ शुभस्वप्नानाह।

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि प्रशस्तं स्वप्नदर्शनम्। देवद्विजान्गोवृषभान्जीवतः सुहृदो नृपान् ॥ ८७ ॥ समिद्धमग्निं विप्रांश्च निर्मलानि जलानि च। पश्येत्कल्याणलाभायव्याधेरपगमाय च ॥ ८८ ॥

अर्थ-अब इसके उपरान्त उत्तम स्वप्नदर्शनको कहते है। जैसे कि देवता ब्राह्मण, गौ, बैल, जीवते हुए अपने सुहृद, राजा, देदीप्यमान अग्नि, विप्र, और निर्मल जलोंको यह प्राणी कल्याणके लाभार्थ और व्याधिके दूर होनेके-लिये देखता है।

मांसं मत्स्यान्स्रजःश्वेता वासांसि च फलानि च।
लभते धनलाभाय व्याधेरपगमाय च ॥८९॥

अर्थ-मांस, मछली, श्वेत फूलमाला, श्वेत वस्त्र, और फक, इनको यह प्राणी स्वप्नमें धनके लाभार्थ और रोगके दूर होनेके लिये देखता है।

महाप्रसादसफलवृक्षवारणपर्वतान्।
आरोहेद्द्रव्यलाभाय व्याधेरपगमायच ॥ ९० ॥

अर्थ-बडा भारी मंदिर, सफल वृक्ष, हाथी और पर्वत, इनपर स्वप्नमें यह प्राणी द्रव्यलाभके और रोग दूर होनेके अर्थ चढता है।

नदीनदसमुद्रांश्च क्षुभितान्कलुषोदकान्।
तरेत्कल्याणलाभाय व्याधेरपगमायच ॥ ९१ ॥

अर्थ-जो मनुष्य स्वप्नमें बढेहुए नदी, नद, समुद्र, दूषित जलको तरताहै, अर्थात् इनके पार जाता है, वो कल्याण, लाभ और रोगमुक्तिके अर्थ है।

उरगो वा जलौको वा भ्रमरो वापि यं दशेत्।
आरोग्यं निर्दिशेत्तस्य धनलाभं च बुद्धिमान् ॥ ९२ ॥

अर्थ-जिस प्राणीको स्वप्नमें सर्प, जोक, अथवा भौंरामक्खी काटे उसको आरोग्य और धनका लाभ बुद्धिवान् पुरुष कहै।

एवंरूपाञ्छुभान्स्वप्नान्यः पश्येद्व्याधितो नरः
स दीर्घायुरितिज्ञेयस्तस्मै कर्म समाचरेत् ॥ ९३ ॥

अर्थ-इसप्रकार जो रोगी मनुष्य शुभ स्वप्न देखता है, उसकी दीर्घायु जाननी इसकी चिकित्सा वैद्यको करनी चाहिये।

ग्रहनक्षत्रताराणां चन्द्रमंडलदर्शनम्।भास्करोदयनं चैव प्रज्वलंतं हुताशनम् ॥ ९४ ॥ हर्म्येष्वारोहणं चैव प्रासादशिरसोऽपि वा। एवमादीनि संदृष्ट्वा नरः सिद्धिमवाप्नुयात् ९५

अर्थ-ग्रह, नक्षत्र, तारागण, चन्द्रमंडल, सूर्योदय, प्रज्वलित अग्नि, महलके ऊपर चढना, तथा मंदिरके ऊपर चढना इत्यादि अन्य शुभ स्वप्न देखनेसे प्राणीको सिद्धिकी प्राप्ति होती है।

स्वप्ने तु मदिरापानं वसामांसस्य भक्षणम्।कृमिविष्ठानुलेपं च रुधिरेणाभिषेचनम् ॥ ९६ ॥ भोजनं दधिभक्तस्य श्वेतवस्त्रानुलेपनम्।रत्नान्याभरणादीनि स्वप्ने संदर्शनं शुभम् ॥९७॥

अर्थ--स्वप्नमें मदिराका पीना, वसा (चरवी) मांसका भक्षण करना देहमें कृमि पडजावे तथा सर्व अंगमें विष्ठा लगी प्रतीत हो, तथा रुधिरसे स्नान दहीभातका भोजन, सपेद वस्त्र और सपेद चंदनका लगाना, तथा रत्न, भूषण आदिका देखना शुभ है।

देवविप्रद्विजच्छत्रतुषपङ्कजपार्थिवान्। शुक्लपुष्पांबरधरांप्रशस्ताभरणाङ्गनाम् ॥ ९८ ॥ वृषभं पर्वतं क्षीरफलवृक्षाधिरोहणम्। दर्पणामिषमाल्याप्तिस्तरणं च महाम्भसा ॥ ९९ ॥ दृष्ट्वा स्वप्नेऽर्थलाभःस्याद्रोगमुक्तिश्च जायते ॥

अर्थ-देवता, ब्राह्मण, (द्विजत्रिवर्ण) छत्र, तुष, कमल, राजा, सपेद पुष्प और सपेद आभूषणके धारण करनेवाली स्त्री, बैल, पर्वत, दूध, फल जिन्में लग रहे ऐसे वृक्षोंपर चढना, दर्पण, मांस और माला इनकी प्राप्ति होना, बडे भारी जलाशयके पार होना, इत्यादि स्वप्नमें देखनेसे धनकी प्राप्ति हो और रोगसे मुक्ति होती है।

बृहद्यात्रायां वराहः।

शैलप्रासादनागाश्च वृषभारोहणं हितम् ॥१००॥ चन्द्रताराकेग्रसनं परिमार्गण एव वा। भूम्यम्बुधीनां ग्रसनं शत्रूणां

१ एकप्रकारकी अच्छीमदिराहोतीहै उसका स्वप्नमें पीना शुभहै।

च वधक्रिया ॥ १०१ ॥ जयो विवाहद्यूतेषु संग्रामेषु तथा जयः । भक्षणं चैव मांसानां मत्स्यानां पयसस्तथा॥ १०२ ॥ दर्शनंरुधिरस्यापि स्नानं वा रुधिरस्य च । सुरा रुधिरमद्यानां पानं क्षीरस्य पायसः ॥ १०३ ॥ अत्रैव वेष्टितं भूमौ निर्मलं गगनं तथा । मुखेन दोहनं शस्तं महिषीणां तथा गवाम् ॥ १०४ ॥ सिंहीनां हस्तिनीनां च वडवानां तथैवच । प्रासादो देवविप्रेभ्यो गुरुभ्यश्च तथा शुभः ॥ १०५ ॥ अम्भसा त्वभिषेकश्च ज्ञेयं राज्यप्रदं हितत् ।

अर्थ–बृहद्यात्राग्रंथमें श्रीवराहमिहिरका वाक्यहै जैसे कि स्वप्नमें पर्वत, मंदिर, हाथी, बैल इनपर चढना । चंद्र, तारागण, और सूर्यको ग्रसना । अथवा स्वप्नमें इनको ढूंढना, पृथ्वी और समुद्रको ग्रसना, शत्रओंका वधकरना, विवाह और जूआ खेलनेमें जीतहोना । तथा लड़ाई वा कुश्तीमें जीत होना । मांस, मछली, और दूधका भक्षण करना, रुधिरका देखना, तथा रुधिरसे स्नान करना, सुरा (दारू), रुधिर, मद्य, दूध, और खीरका भोजन, अथवा इन्हीं दूध खीर आदिसे पृथ्वीमें लिहसजाना, निर्मल आकाशका देखना, मुखमें गौ, भैंस, सिंहिनी, हथनी, घोडी आदिका दूध दूहना । देव, ब्राह्मण, और गुरुओंका मंदिर ये सब स्वप्नमें दीखना शुभहै । तथा स्वप्नमें जल से अभिषेकका देखना राज्य दाता है ।

राष्ट्रेभिषेकश्च तथा छेदनं शिरसोऽपि च ॥ १०६ ॥ मरणं वह्निलाभश्च वह्निदाहो गृहादिषु । तथोदकानां तरणं तथा विषमलंघनम् ॥ १०७ ॥ हस्तिनीवडवानां च गवाश्च प्रसवो गृहे । आरोहणं गजेन्द्राणां रोदनं च तथा शुभम् ॥१०८॥

अर्थ–राज्यमें अभिषेक, मस्तकका काटना, मरण, अग्निका मिलना तथा अग्निसे घरका फुकना, जलाशयोंका तरण, और विषमस्थान (खाई, गड्ढा) आदिका फांदना; हथनी, घोडी, और गौका घरमें ब्याहना (अर्थात् बच्चादेना) हाथीपर बैठना तथा स्वप्नमें रुदन करना शुभ है ।

परस्त्रीणां तथा लाभस्तथालिंगनमेव च । निगडैर्बन्धनं चैव तथा विष्ठानुलेपनम् ॥ १०९ ॥ जीवानां भूमिपाला-

नांसुहृदामपि दर्शनम् । शुभान्येतानि प्रोक्तानि राज्यलाभकराणि च ॥ ११० ॥

अर्थ-परस्त्रियोंका लाभहोना, तथा परस्त्रियोंका आलिंगन करना हाथपैरोंमें बेडीन्का तथा विष्ठाका देहमें लेप होना, शुभजीव, राजा, और सुहृदोंका दर्शन होना ये संपूर्ण स्वप्न शुभ राज्य लाभकारीहै ।

आचारमयूखे ।

आरोहणं गोवृषकुञ्जराणां प्रासादशैलाग्रवनस्पतीनाम् ।
विष्ठानुलेपो रुदितं मृतं च स्वप्नेष्वगम्यागमनं प्रशस्तम् ॥ १११

अर्थ-स्वप्नमें गौ, बैल, हाथी, मंदिर, पर्वत, वनस्पती (वृक्ष) इनपर चढना, विष्ठाका लेप होना, रुदनकरना, मराहुआ देखना, और अगम्या (भैन, बेटी, आदि) से गमन करना, उत्तम कहाहै ।

क्षीरिणं फलिनं वृक्षमेकाकी यः प्ररोहति ।
तत्रस्थः स विबुध्येत धनं शीघ्रमवाप्नुयात् ॥ ११२ ॥

अर्थ-दूधवाले फलित वृक्षपर अकेला चढे और उसी जगे यदि जगपरे तो शघ्रि धनकी प्राप्ति होवे ।

यस्य श्वेतेन सर्पेण ग्रस्तश्चेद्दक्षिणः करः ।
सहस्रलाभस्तस्यस्यादपूर्णे दशमे दिने ॥ ११३ ॥

अर्थ-जिस प्राणीके स्वप्नमें दहने हाथको श्वेत सर्प काटे, उसको दश दिनके भीतर एक सहस्र १००० रुपयोंका लाभ होय ।

उरगो वृश्चिको वापि जले ग्रसति यं नरम् ।
विजयं चार्थसिद्धिं च पुत्रं तस्य विनिर्दिशेत् ॥ ११४॥

अर्थ-जिस प्राणीको स्वप्नमें जलमें सर्प बिन्छू, डसे उसकी विजय धनकी और पुत्रकी प्राप्ति कहनी चाहिये ।

प्रासादस्थस्तु यो भुंक्ते यो वा तरति सागरम् ।
अपि दासकुले जातः स राजा नियतं भवेत् ॥ ११५ ॥

अर्थ-जो स्वप्नमें महलपर बैठकर भोजनकरे और जो समुद्रके पार हो जाय वह यदि दासकुलमें भी उत्पन्न हुआहो तौभी निश्चय राजा होय ।

यस्तु मध्ये तडागस्य भुंक्ते च घृतपायसम् ।
अखण्डे पुष्करे पत्रे तं विद्यात्पृथिवीपतिम् ॥ ११६ ॥

अर्थ-जो प्राणी स्वप्नमें तालावके बीचमें बैठकर साबत कमलके पत्तेपर घृत और खीरका भोजन करे उसको राजा जानना चाहिये । अर्थात् राजा होय।

बलाकां कुक्कुटीं क्रौंचीं दृष्ट्वा यः प्रतिबुध्यति ।
कुलजां लभते चान्यां भार्यां च प्रियवादनीम् ॥ ११७ ॥

अर्थ-जो प्राणी स्वप्नमें बगली, मुरगी, क्रौंची पक्षीको देखकर जगे तो उसको प्रिय बोलनेवाली कुलवान् भार्याकी प्राप्ति होय ।

नागपत्रं लभेत्स्वप्ने कर्पूरमगरुं तथा ।
चंदनं पाण्डुरं पुष्पं तस्य श्रीः सर्वतो सुखी ॥११८॥

अर्थ-जिस मनुष्यको स्वप्नमें पान, कपूर, अगर, चंदन, और पीलाफूल मिले उसको धनकी प्राप्ति होय ।

क्षीरं पिबति यः स्वप्ने सफेनं दोहने कृते ।
सोमपानं भवेत्तस्य भोक्ता भोगाननेकशः ॥ ११९ ॥

अर्थ-जो मनुष्य स्वप्नमें दुहाहुआ झागसहित दूध पीताहै, उसको यज्ञके सोमपानकी प्राप्तिहो और अनेक भोगोंको भोगे ।

दधि दृष्ट्वा भवेत्प्रीतिर्गोधूमांश्च धनागमः ।
यवान्यज्ञागमं विद्याल्लाभः सिद्धार्थकानपि ॥ १२० ॥

अर्थ-स्वप्नमें दही देखनेसे सर्व प्राणियोंको प्रियहोय । गेहूं देखनेसे धनकी प्राप्ति और यव देखनेसे यज्ञका आगम अर्थात् यज्ञ होय और पीलीसरसोंके देखनेसे लाभ होय ।

रथं गोवृषसंयुक्तमेकाकी यः प्ररोहति ।
तत्रस्थः स विबुध्येत धनं शीघ्रमवाप्नुयात् ॥१२१ ॥

अर्थ-जो मनुष्य स्वप्नमें बैलजुडे हुए रथमें अकेला बैठता है। और उसी समय नींद खुलजावे तो शीघ्र धनकी प्राप्ति होय ।

दधिलाभे भवेदर्थो घृतलाभे ध्रुवं यशः ।
घृतं भक्षेद्धुवं क्लेशो यशस्तु दधिभक्षणे ॥ १२२ ॥

अर्थ--स्वप्नमें दहीकी प्राप्ति होनेसे धनकी प्राप्तिहो, घृतके मिलनेसे यश होय स्वप्नमें घृतके खानेसे क्लेश होय, और दही खानेसे यश प्राप्ति होय ।

बृहस्पतिः ।

मानुषस्य तु मांसानि यस्तु स्वप्नेषु भक्षयेत् ।
अपक्वान्येव सर्वाणि शृणु तस्य तु यत्फलम् ॥ १२३ ॥

अर्थ–बृहस्पति लिखतेहैं कि जो मनुष्य स्वप्नमें मनुष्यका अपक्व मांसको भक्षण करताहै, उसके प्रत्येक अंगका मैं फल कहता हूं तू सुन ।

पादं पञ्चशतं लाभः सहस्रं बाहुभक्षणे ।
मस्तकाशनतो राज्यं मंत्रिता हृदयाशनात् ॥ १२४ ॥

अर्थ–पैरके मांस खानेसे ५०० रुपेकी प्राप्तिहो । एवं भुजाके मांस भक्षणसे १००० हजार रुपेकी प्राप्ति, मस्तक भक्षणसे राज्य प्राप्ति, और हृदयके मांसको स्वप्नमें खानेसे मंत्री होय ।

उपानहौ ध्वजं चक्रं लब्ध्वा यस्तु विबुध्यते ।
असिंवा निर्मलां तीक्ष्णामध्वानं तस्य निर्दिशेत् ॥ १२५ ॥

अर्थ–जो मनुष्य स्वप्नमें जूताजोडी, ध्वजा, चक्र, निर्मल और तीक्ष्ण तलवारको प्राप्ति होकर और उसी समय जगपडे तो उसका मार्ग चलना पडेगा ऐसा जानना ।

नावमारोहयेद्यस्तु नदीं वा विपुलां तरेत् ।
प्रवासं नियतं तस्य शीघ्रमागमनं पुनः ॥ १२६ ॥

अर्थ -जो मनुष्य स्वप्नमें नौकापर बैठ बडीभारी नदीको तरताहै । वह अवश्य प्रदेशको जायगा और उसजगसे शीघ्र आगमन होय ।

पीताम्बरधरानारी पीतमाल्यानुलेपना ।
अवगूहति यं स्वप्ने कल्याणं लभते हि सः ॥ १२७ ॥

अर्थ--जो मनुष्य स्वप्नमें पीलेवस्त्र और पीले चंदन फूलमालाके धारण करनेवाली स्त्रीका आलिङ्गन करना देखे तो वो कल्याणको प्राप्त होताहै ।

श्वेताम्बरधरानारी श्वेतमाल्यानुलेपना ।
अवगूहति यं स्वप्ने तस्य श्रीः सर्वतोमुखी ॥ १२८ ॥

अर्थ–उसीप्रकार सपेदवस्त्र सपेद चंदन तथा सपेद फूल मालाके धारण

करनेवाली स्त्री जिसको स्वप्नमें आलिंगन करे. उसको चारोंतरफसे लक्ष्मी-का आगमन होय।

सर्वाणि शुक्लान्यति शोभनानि कार्पासभस्मौदनतक्रवर्ज्यम्।
सर्वाणि कृष्णान्यतिनिन्दितानि गोहस्तिदेवद्विजवाजिवर्ज्यम्।

अर्थ-स्वप्नमें-कपास, भस्म (राख), भात, और छाछको त्यागकर संपूर्ण सपेद वस्तु शुभकारी है। और गौ, हाथी, देव, ब्राह्मण, और घोडा इनको परित्याग कर संपूर्ण कृष्णवस्तु स्वप्नमें दीखना अशुभ है।

देवा द्विजास्तथा गावः पितरो लिङ्गिनो नृपाः।
यद्वदन्ति नरं स्वप्ने तत्तथैव भवेद्ध्रुवम् ॥ १२९ ॥

अर्थ-देव, ब्राह्मण, गौ, पितर, विरक्त पुरुष, और राजा ये स्वप्नमें जो बात कहे वो उसी प्रकार होय, इसमें संदेह नहीं।

आसने शयने याने शरीरे वाहनेऽपि वा।
ज्वलमाने विबुध्येत तस्य श्रीः सर्वतो मुखी॥ १३० ॥

अर्थ-जो मनुष्य आसन, शय्यापर, सवारीमें, देहमें, और वाहन (घोडा, हाथी आदि) के अपनेको पजरता देखे और उसी बखत जगपरे तो उसको चारोंतरफसें लक्ष्मीकी प्राप्ति होय।

वडवां कुक्कुटीं दोलां लब्ध्वा यस्तु विबुध्यते।
सकामां लभते भार्यां सुभगां प्रियवादनीम्॥ १३१ ॥

अर्थ--जो मनुष्य स्वप्नमें घोडी, मुरगी, और हिंडोला इनको प्राप्तहो जग परे तो वह सकामा और प्रिय बोलनेवाली ऐसी स्त्रीको प्राप्त होवे।

निगडैर्बध्यते यस्तु पाशैर्वा बध्यते भृशम्।
सुपुत्रो जायते तस्य सुप्रतिष्ठां च विंदति ॥ १३२ ॥

अर्थ-जो मनुष्य स्वप्नमें बेडी और फाँसोंसे बँधजावे उसके सुन्दर पुत्र होय और उत्तम प्रतिष्ठाको प्राप्त, होताहै।

पराशरसंहितायाम्।

स्वाङ्गप्रज्वलनं परोपशमनं शक्रध्वजालिंगकृत्संयुक्तोऽपि नरैर्विपत्यच विपत्प्रक्षेपणं दिक्षु च। बद्धो वा निगडै-

ग्रसेच्चदहनं नारीक्षितो बाहुना छत्रं वा द्विरदादिरोहणविधौ· दिव्योऽपि च ब्राह्मणः ॥ १३३ ॥

अर्थ–पराशरसंहितामें लिखा है कि, स्वप्नमें अपने अंगोंका फुकता देखना शत्रुको जीतना, बिजलीको छूना, विपत्यमेंभी विपत्यका पडना दिशाओंमें फिकना, पैरोंमें बेडी परना, अग्निको ग्रसना, भुजाओंसे शत्रुदमन, छत्र और हाथीपर बैठना तथा दिव्य ब्राह्मणका दर्शन होना ।

दिनकरशशिताराभक्षणस्पर्शनानि विशरणमपिमूर्ध्नःसप्तपंचत्रिधा वा । वृषभग्रहनरेन्द्रश्वेतसिंहाधिरोहाग्रसनमुदधिभूमौ भूमिराज्यप्रदानि ॥ १३४ ॥

अर्थ–सूर्य, चंद्र, तारागणोंका भक्षण करना, मस्तकके सात, पांच अथवा तीन टूक होना । बैल, घर, राजा इनका दर्शन । सपेद सिंहानपर बैठना तथा समुद्र और पृथ्वीको ग्रस लेना इत्यादि स्वप्न पृथ्वीके राज्यदाता हैं ।

विपुलरणविमर्दद्यूतवादैर्जयश्च पशुमृगमनुजानां लब्धिरध्यासनं वा ॥ विवसनपरिलेपोगम्यनारीगमो वा स्वमरणशिखिलाभःसस्यसंदर्शनं च ॥ १३५ ॥

अर्थ--स्वप्नमें बडाभारी रण जूआ और वादमें जीत होना, तथा पशु, मृग और मनुष्योंकी प्राप्ति तथा सिंहासनकी प्राप्ति दिव्यवस्त्रोंका और चंदनादिका पहरना लगाना एवं अगम्यास्त्रीसे गमन, अपना मरण देखना. अग्निकी प्राप्ति और हरीहरीघासका देखना ।

सितसुरभिमनोज्ञालेपमाल्यांबराणांद्विजसुरगुरुराज्ञां दर्शनं ह्याशिषश्च । मणिरजतसुवर्णाम्भोजपात्रेषुभुंक्ते घृतदधिपरमान्नं सर्वमेतच्छुभञ्च ॥ १३६ ॥

अर्थ–सुंदर सुगंधित सपेद चंदन आदिका लेप और फूलमाला तथा वस्त्रका धारण करना, ब्राह्मण देवता राजा इनका दर्शन होना, तथा आशीर्वाद देना, तथा मणि, चांदी, सुवर्ण, और कमल आदिके पात्रमें घी, दही, खीरका भोजन इत्यादि स्वप्न देखना शुभ है ।

निष्फल स्वप्न ।

यथास्वं प्रकृतिस्वप्नो विस्मृतो विहतश्च यः ।
चिन्ताकृतो दिवा दृष्टो भवन्त्यफलदास्तु ते ॥१३७॥

अर्थ–यथा प्रकृतिके अनुसार अर्थात् जैसी जिसकी वातपित्तादिक प्रकृति ऐसा स्वप्न और जो स्वप्न देखा हो उसकी याद भुलगई हो, और जो विहित हो (अर्थात् प्रथम दुष्ट स्वप्न देखे फिर उसके पिछाडी शुभ स्वप्न देखे) और जो चिंतवन कराहुआ तथा दिनका देखा ये स्वप्न निष्फल हैं ।

तथाच ।

आयुस्तृतीयभागे शेषे पतितः प्रकीर्तितः स्वप्नः ।
अतिहासशोककोपोत्साहजुगुप्साभयाद्गुणोत्पन्नः॥१३८॥
वितथः क्षुधापिपासामूत्रपुरीषोद्भवः स्वप्नः ।

अर्थ–अत्यंत वृद्धावस्थाका स्वप्न, अत्यंत हास्य, शोक, कोप, उत्साह, निंदा, भय इन कारणोंसे तथा जो भूख, प्यास और मूत्र, मलकी बाधामें स्वप्न दीखे वो निष्फलहै ।

प्रकृतिजन्यस्वप्न ।

वाताधिकेऽभ्रं भ्रमतिर्विपश्येत्कृष्णानि वर्णानि प्रचंडवातम् ।
पित्ताधिके काञ्चनरत्नमाल्यदिवाकराग्निज्वलनानिपश्येत्॥१३९॥
श्लेष्माधिकश्चन्द्रभशुक्लपुष्पसरित्सरोम्भोनिधिलंघनानि ।
काले मरुत्पित्तकफप्रकोपः साधारणं स्याद्बलसन्निपातात्१४०

अर्थ–जिस प्राणीकी वातप्रकृति होतीहै वो आकाशमें भ्रमण करे तथा काले रंगके पदार्थोंको देखे तथा प्रचंड पवन (आंधी)को देखताहै । पित्ताधिक प्रकृतिवाला मनुष्य सुवर्ण और रत्नोंकी माला, सूर्य, अग्नि और प्रकाशवान् पदार्थ (बिजली आदिको) देखे । कफाधिक प्रकृतिवाला मनुष्य चन्द्रमाके तुल्य सपेद पुष्प, सरोवर, नदी, समुद्रको तरना इत्यादि स्वप्न देखे और मिश्रित प्रकृतिवाले मनुष्य मिश्रित स्वप्नको देखतेहैं ।

स्वप्नस्य प्रहरपरत्वेन फलम् ।

स्वप्ने तु प्रथमे यामे संवत्सरविपाकिनः । द्वितीये चाष्टाभिर्मासैस्त्रिभिर्मासैस्तृतीयके ॥ १४१ ॥ चतुर्थयामे यःस्वप्नो

मासेन फलदः स्मृतः । अरुणोदयवेलायां दशाहेन फलं भवेत् ॥ १४२ ॥ गोविसर्जनवेलायां सद्य एव फलं भवेत् १४३

अर्थ--रात्रिके प्रथम प्रहरका देखाहुआ स्वप्न १ वर्षमें फल देताहै । दूसरे प्रहरका स्वप्न आठ महिनेमें फलदेय । तीसरे प्रहरका स्वप्न तीन महिनेमें और रात्रिके चतुर्थ प्रहरमें देखाहुआ स्वप्न १ महिनेमें अपना शुभाशुभ फल-करे । और जो अरुणोदय (भाकफाटे) स्वप्न देखाहो वह दशदिनमें फल-करे । उसीप्रकार गौ छोडनेके समय जो स्वप्न देखा हुआ स्वप्न तत्काल शुभाशुभ फल देताहै । परंतु जो मनुष्य जिस समय जागताहै उसको उसी समयका देखाहुआ स्वप्न शुभाशुभ फल देताहै ।

स्वप्नदर्शनविधिः ।

दुकूलमुक्तामणिभिर्नरेन्द्राः सामंतदैवज्ञपुरोहिताश्च । तद्देव-तागारमनुप्रविश्य प्रवेशतस्तत्र दिगीश्वरं च॥१४४॥अभ्य-र्च्य मंत्रैस्तु पुरोहितस्तु संयम्य तस्यां भुवि संयतात्मा । ब्राह्मीशपूर्वामथ भागपुष्पं कृत्वोपधानं शिरसि क्षितीशः । तथैकभुग्दक्षिणपार्श्वशायी स्वप्नं परीक्षेत यथोपदेशम्॥१४५॥

अर्थ--अब स्वप्न देखनेकी विधि कहतेहैं।कि राजा-वस्त्र, मोती, मणिकोले और सामंत (सूबेदार) ज्योतिषी,पुरोहित इनको साथले देवताके मंदिरमें जाय और उसजगे गंध पुष्प धूप दीप नैवेद्य तथा वस्त्र रत्नादिकसे मंत्रपाठपूर्वक इष्ट देवका पूजन करे।फिर उस राजाका पुरोहित इन्द्रियोंको जीत उसी मंदिर के पूर्वकी ओर अथवा ईशानकी ओर विस्तराकरकै और पुष्पोंको तथा सुगं-धित वस्तुको अपने सिराने धरके सोवे उसी प्रकार स्वयं राजा एकवार भो-जन करे और दहनी करवट सोवे इसप्रकार यथोपदेश उस मंदिरमें स्वप्नकी परीक्षा करे ।

शयनकेसमयजपनीयमन्त्र ।

नमः शम्भो त्रिनेत्राय रुद्राय वरदाय च । वामनाय वि-रूपाय स्वप्नाधिपतये नमः ॥ १४६ ॥ भगवन् देवदेवे-श शूलभृद्वृषवाहन ॥ इष्टानिष्टे ममाचक्ष्व स्वप्ने सुप्तस्य सांत्वतः ॥ १४७ ॥

अर्थ-जिस समय मंदिरमें सोवे उस समय " नमःशंभो त्रिनेत्राय " इस मंत्रको जपे इसका यह अर्थहै कि त्रिनेत्र, रुद्र, वरद, वामन, विरूप, स्वप्नाधिपके अर्थ नमस्कारहै हेभगवन् ! हेदेवदेवेश ! हेशूलके धारणकर्त्ता! हेवृषवाहन ! निद्रामें मुझको निरंतर इष्ट और अनिष्ट भवितव्यको कहो ।

एकवस्त्रः कुशास्तीर्णे सुप्तः प्रयतमानसः ।
निशान्ते पश्यते स्वप्नं शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥१४८॥

अर्थ-स्वप्नदेखनेकी इच्छा वाला पुरुष एकवस्त्रको धारणकर कुशाके आसनपर मनको एकाग्रकर शयनकरे इसप्रकार करनेसे इसप्राणीको रात्रिके अंतमें जैसा कुछ शुभाशुभ भवितव्यहो ऐसा स्वप्नदीखे ।

एतत्पवित्रं परमं पुण्यदं पापनाशनम् ।
यः पठेत्प्रातरुत्थाय दुःस्वप्नं तस्य नश्यति ॥१४९॥

अर्थ--परम पवित्र पुण्यदायक और पापनाशक इस स्वप्नप्रकाशिका ग्रंथको प्रातःकालउठकर जो पाठ करताहै उसप्राणीका दुःस्वप्न देखाहुआ नष्टहो और शुभफलकी प्राप्तिहो ।

इति श्रीआयुर्वे० माथुरकृष्णलालात्मजेन दत्तरामेण निर्मिता स्वप्नप्रकाशिका नाम त्रयस्त्रिंशस्तरङ्गः ॥ ३३ ॥

समाप्तेयं स्वप्नप्रकाशिका ।

इति
स्वप्नप्रकाशिका समाप्ता ।

ॐ

श्रीशंवन्दे

श्रीनिकुञ्जविहारिणे नमः ।

अथ नाडीदर्पणप्रारम्भः ।

मङ्गलाचरणम् ।

श्रीमंतं जगदीश्वरं गदगदाधारञ्च धन्वन्तारि-
मम्बां श्रीजगदम्बिकाप्रतिकृतिं श्रीकृष्णलालाभिधम् ।
तातं कृष्णपरावतारमहिमं नत्वा मुहुः संयतः
श्रीकृष्णांघ्रिसरोरुहद्वयसुधाधारामिलिंदायितः ॥ १ ॥
श्रीमन्माथुरमण्डलाभिजननः श्रीदत्तरामाभिधो
दृष्ट्वा तन्त्रसमूहमूहविधयाऽऽलोड्य स्वयं यत्नतः ।
बालानां सुखहेतवे मतिमतामानन्दसंप्राप्तये
नाडीदर्पणनामधेयकमिमं ग्रन्थं करोम्यादरात्॥२॥युग्मम्॥

अर्थ–श्रीमान् जगदीश्वर रोग और आरोग्यके आधार ऐसे श्रीधन्वन्तरि भगवान् तथा जगन्माता (लक्ष्मी) के तुल्य रमा नामक अपनी माताको तथा कृष्णका परावतार ऐसे श्रीकृष्णलाल (कन्हैयालाल) नामक अपने पिताको वारंवार यत्नपूर्वक नमस्कारकर श्रीकृष्णचरणकमलयुगलामृत धाराको पानकरता भ्रमर और श्रीमधुपुरीमंडल अथवा माथुरद्विज (चौबे) नको मंडल कहिये समूह तामें निवासी जाकों, अथवा जन्म जाको ऐसाजो दत्तराम संज्ञक मैं सो अनेक शास्त्रसमूहको देख और स्वयंविधिपूर्वक यत्नसे मथनकर बालकोंके सुखकेलिये और पंडितोंके आनंदकी प्राप्तिकेअर्थ इस नाडीदर्पण नामकग्रंथको परमआदरसे करताहूं। यहग्रंथ यथानाम तथा गुणोंमेंभी है अर्थात् जैसे दर्पणसे इसप्राणीके संपूर्ण गुणदोष प्रगटहोतेहैं उसी प्रकार इसग्रंथसे नाडियोंके संपूर्ण गुणदोष उत्तम रीतिसे प्रगटहोतेहैं।

वाग्भटः ।

रोगमादौ परीक्षेत तदनन्तरमौषधम् ॥
ततः कर्म भिषक् पश्चाज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥ ३ ॥

अर्थ-वागभटग्रंथमें लिखाहै वैद्यको उचितहै कि, प्रथम रोगकी परीक्षा करे रोगजाननेके अनंतर औषधकी परीक्षा करे रोग और औषध दोनों जाननेके पश्चात् ज्ञानपूर्वक अर्थात् सावधानीकेसाथ चिकित्साकरे यानी औषध देवे।

लक्षयित्वा देशकालौ ज्ञात्वा रोगबलाबलम्।
चिकित्सामारभेद्वैद्यो यः कीर्तिमवाप्नुयात् ॥ ४ ॥

अर्थ-देश और कालका लक्ष करके और रोगको बली और निर्बलित्व जानके जो वैद्य चिकित्साका प्रारम्भ करताहै वह यश और कीर्त्तीको पाताहै।

रुग्णावस्थां ततो नाडीं भेषजं पथ्यमेव च।
देशं कालञ्च पात्रञ्च यो जानाति स वैद्यराट् ॥ ५ ॥

अर्थ-जो रोगीकी अवस्था, नाडी, औषध; पथ्य, देश, काल, और पात्रको जानताहै। उसको वैद्यराज कहतेहैं।

रोगोंके आठस्थान।

रोगाक्रान्तशरीरस्य स्थानान्यष्टौ परीक्षयेत्।
नाडीं मूत्रं मलं जिह्वां शब्दस्पर्शदृगाकृतिम् ॥ ६ ॥

अर्थ-वैद्य रोगीमनुष्यके आठ स्थानोंकी परीक्षाकरे, जैसेकि नाडी परीक्षा, मूत्रपरीक्षा, मलपरीक्षा, जिह्वापरीक्षा, शब्दपरीक्षा, स्पर्शपरीक्षा, नेत्रपरीक्षा, आर रोगीकी आकृतिकी परीक्षा।

नानाशास्त्रविहीनानां वैद्यानामल्पमेधसाम् ॥
नाड्याद्यष्टपरीक्षाश्च सुखार्थं प्रभवन्ति हि ॥ ७ ॥

अर्थ-अनेक शास्त्र पढनेकरके रहित अल्प बुद्धि वैद्योंके लिये यह नाडी आदि अष्टविधपरीक्षा सुखके अर्थ होवेगी।

आद्यं तावन्नाडिकाविज्ञानादेव वातपित्तकफजनितानामातङ्कानां साध्यासाध्यकष्टसाध्यसभेदकविज्ञानं सुकरत्वेन भिषग्भिरवाप्यतेऽतएव तावन्निरूप्यते ॥ ८ ॥

अर्थ-तहां प्रथम वैद्योंको नाडीके देखनेसे ही वात, पित्त और कफजनित रोगोंका साध्यासाध्य और कष्टसाध्य सभेदविज्ञान सहजमें प्राप्त होसक्ताहै; अतएव प्रथम उसी नाडीपरिक्षाका वर्णन करतेहैं। प्रथम नाडीदेखनेकी आवश्यकता दिखातेहैं।

नाडीज्ञानकी आवश्यकता।

नाडीज्ञानं विना वैद्यो न लोके पूज्यतां व्रजेत् ॥
अतश्चातिप्रयत्नेन शिक्षयेद्बुद्धिमान्नरः ॥ ९ ॥

अर्थ–नाडीज्ञानके विना वैद्य संसारमें पूज्य (माननीय) नहीं होता अतएव बुद्धिवान् मनुष्यको उचितहै कि नाडीज्ञानको सद्गुरुसे अति यत्नपूर्वक सीखे अर्थात् नाडी देखनेका अनुभव करे।

बोधहीनं यथा शास्त्रं भोजनं लवणं विना ॥
पतिहीना यथा नारी तथा नाडीं विना भिषक् ॥ १०॥

अर्थ–जैसे बोधविना शास्त्रपढनेकी शोभा नहीं, विना लवण भोजनके पदार्थ प्रियनहीं, और पतिके विना स्त्रीकी शोभा नहीं, उसीप्रकार नाडी ज्ञानके विना वैद्यकी शोभा नहींहै।

नाडीजिह्वार्त्तवादीनां लक्षणं यो न विन्दति।
मारयत्याशु वै जन्तून्स वैद्यो न च शोभनः ॥ ११ ॥

अर्थ–जो नाडीपरिक्षा, जिह्वापरीक्षा, और स्त्रीके आर्त्तवकी परीक्षा नहीं जाने वह मूढवैद्य तत्काल रोगियोंको मारताहै, इसीकारण ऐसा मूढवैद्य उत्तम नहींहै।

आदौ सर्वेषु रोगेषु नाडीजिह्वाग्रनेत्रकम् ॥
मूत्रार्त्तवं परीक्षेत पश्चाद्रुग्णं चिकित्सयेत् ॥ १२ ॥

अर्थ–वैद्य प्रथम संपूर्ण रोगोंमें नाडी, जिह्वा, नेत्र, मूत्र और आर्त्तवकी परीक्षा कर फिर रोगीकी चिकित्सा करे।

नाडीज्ञानं विना यो वै चिकित्सांकुरुते भिषक्।
स नैव लभते लक्ष्मीं न च धर्मं न वै यशः ॥ १३ ॥

अर्थ–जो वैद्य विना नाडीपरीक्षाके जाने चिकित्सा करताहै वह धनधर्म, और यशको नहीं प्राप्तहोता परंच उसको अपयशकी प्राप्ती और मूर्ख कहलाताहै।

नाड्या मूत्रस्य जिह्वायाः कुरु पूर्वं परीक्षणम् ॥
औषधं देहितज्ज्ञाने वैद्य रुग्णसुखावहम् ॥ १४ ॥

अर्थ–हेवैद्य! प्रथम नाडी, मूत्र, और जिह्वाका परीक्षण कर जब नाडी

मूत्र और जिह्वाको परीक्षाद्वारा रोगका निश्चय करलेवे तब रोगीको सुख-, कारी औषधी दे ।

यथा वीणागता तन्त्री सर्वान्रागान्प्रभाषते ॥
तथा हस्तगता नाडी सर्वान्रोगान्प्रकाशते ॥ १५ ॥

अर्थ–जैसे वीणाकी तार संपूर्ण रागोंको सूचना करतीहै, उसी प्रकार हाथकी नाडी सर्वरोगोंको प्रकाशित करतीहै इस श्लोकका तात्पर्य यह है वीणाका तारभी जो बजाने वालेहैं उन्हीको उस तारके रागकी प्रतीत होतीहै उसी प्रकार हाथकी नाडीभी जो नाडीके जानने वालेहैं उन्हींको रोगप्रकाशित करतीहै जैसे मूर्खके वास्ते तारद्वारा राग नहींमालूमहो उसप्रिकार मूर्खवैद्यको नाडीदेखना निष्प्रयोजनहै ।

नाडीलक्षणमज्ञात्वा निदानग्रन्थवाक्यतः ॥
चिकित्सामारभेद्यस्तु स मूढ इति कीर्त्यते ॥ १६ ॥

अर्थ–जो वैद्य नाडीके लक्षण बिना जाने केवल निदानग्रंथके वाक्योंसे रोगपरीक्षा कर चिकित्सा करताहै वह मूढ (मूर्ख) ऐसा कहलाताहै ।

निदानपञ्चकादीनांलक्षणं वैद्यसत्तमः ॥
नाडींतु संवलीकृत्य चिकित्सामाचरेत्खलु ॥ १७ ॥

अर्थ–इसीकारण उत्तमवैद्य निदानपंचकादिके लक्षण जानके और उनमें नाडीके लक्षणभी मिश्रित (सामिल) करके चिकित्साका प्रारंभ करे ।

कियत्स्वपि च चिह्नेषु ज्ञातेष्वपि चिकित्सितम् ॥
निष्फलं जायते तस्मादेतच्छृणवेकचेतसा ॥ १८ ॥

अर्थ–अब कहतेहैं कि बहुतसे चिह्न जानने परभी चिकित्सा निष्फल होजातीहै, अतएव इसनाडी दर्पणग्रंथमें जो कहा जाताहै उसके हे वैद्य! तूं एकाग्र चित्तसे सुन ।

तत्रादौ प्रोच्यते नाडीपरीक्षातिप्रयत्नतः ॥
नानातन्त्रानुसारेण भिषगानन्ददायिनी ॥ १९ ॥

अर्थ–तहां प्रथम अनेक ग्रंथोंके अनुसार वैद्योंको आनंददायिनी यत्नपूर्वक नाडीपरिक्षा कहतेहैं ।

क्वचिद्ग्रन्थानुसंधानाद्देशकालविभागतः ॥
क्वचित्प्रकरणाच्चापि नाडीज्ञानंभवेदपि ॥ २० ॥

अर्थ- अब नाडीज्ञानकी परिपाटी कहतेहैं कि,कहींतो नाडीज्ञान ग्रंथ पढनेसे होताहै, कहीं देश कालके जाननेसे और कहीं प्रकरण वशसे नाडीका ज्ञान होता है. तात्पर्य यहहै कि, वैद्य केवल ग्रंथकेही भरोसे न रहै, किंतु कुछ अपनीभी बुद्धिसे विचारे यह कौन स्थानहै, कौनसा कालहै, और ये रोगी क्या आहार विहार करके आयाहै, इसप्रकार अच्छी रीतिसे विचारकर नाडीको कहे।

सद्गुरोरुपदेशाच्च देवतानां प्रसादतः ॥
नाडीपरिचयः सम्यक् प्रायः पुण्येन जायते ॥ २१ ॥

अर्थ-अब नाडीज्ञानकी उत्कृष्टता दिखातेहैं कि,सद्गुरु अर्थात् सद्वैद्यके बतानेसे और देवताओंकी प्रसन्नतासे तथा पूर्वजन्मके पुण्यकरके नाडीपरिचय होताहै, किंतु अपनेआप पढनेसे और विनादेवकृपाके तथा अधर्मी नास्तिकको नाडी देखनेका ज्ञान नहीं होताहै, अतएव जिसको नाडीज्ञानकी आवश्यकता होवे वो सद्गुरु और देवसेवा तथा धर्ममें तत्पर होय।

नाडीपरिचयो लोके न च कुत्रापि दृश्यते ॥
तेन यत्कथ्यते चात्र तत्समाधेयमुत्तमैः ॥ २२ ॥

अर्थ--नाडीका परिचय अर्थात् नाडीदेखनेका ज्ञान इससंसारमें कहीं नहीं दीखता इसीकारण जो इसग्रंथमें कहाजाताहै वो उत्तमपुरुषोंको अवश्य जानना चाहिये।

परीक्षणीयाः सततं नाडीनां गतयः पृथक् ॥
न चाध्ययनमात्रेण नाडीज्ञानं भवेदिह ॥ २६ ॥

अर्थ-वैद्यको उचितहै कि, निरंतर नाडीकी गतिकी परीक्षा कराकरे क्योंकि केवल पढनेहीसे नाडीका ज्ञान नहीं होता।

न शास्त्रपठनाद्वापि न बहुश्रुतकारणम् ॥
नाडीज्ञाने मनुष्याणामभ्यासः कारणं परम् ॥ २४ ॥

अर्थ-नाडीके ज्ञानमें शास्त्रपढनेसे अथवा बहुतनाडीसंबंधी वार्त्ताओंके सुननेसे नाडीका ज्ञान नहीं होता, किंतु नाडीज्ञानमें मनुष्योंको केवल अभ्यासही परम कारणहै इस्से अभ्यासकरे।

नाडीगतिमिमां ज्ञातुं योगाभ्यासवदेकतः ॥
शक्यते नान्यथा वैद्य उपायैः कोटिशैरपि ॥ २८ ॥

अर्थ--वैद्यको इस नाडीकी गति जाननेमें समर्थहोना केवल योगाभ्यासके सदृश नाडीदेखनेके अभ्याससेही होसकता है, अन्य करोडों उपायोंसेभी नाडीज्ञान नहीं होता ।

जलस्थलनभश्चारिजीवानांगतिभिःसह ॥
गतयो ह्युपमीयन्ते नाडीनां भिन्नलक्षणाः ॥ २६ ॥

अर्थ--जल, स्थल, और आकाशमें विचरने वाले जीवोंकी गति (चाल) करके भिन्नलक्षणा नाडियोंकी गति अनुमान करीजातीहै अर्थात् जलचर जीव (जोंक, मेंडक आदि) स्थलचरजीव (सर्प, हंस, मोर आदि) और आकाश चारीजीव (लवा, बटेर आदि, ये जैसे चलतेहैं इनके सदृश नाडी चलतीहै, इनमें जिस दोषकी जैसी चाल नाडीकी लिखीहै उसको उसी प्रकारकी देखकर वैद्य नाडीको वातपित्तादिककी नाडी बतावे, अन्यथा नाडीका ज्ञानहोना कठिनहै ।

कस्य कीदृग्गतिस्तत्र विज्ञातव्या विचक्षणैः ॥
अध्येतव्यं च तच्छास्त्रं सद्गुरोर्ज्ञानशालिनः ॥ २७ ॥

अर्थ--वैद्यहोनेवाले प्राणीको उचितहै कि, उत्तम ज्ञानवान् शास्त्रके ज्ञाता गुरूसे किस जीवकी कैसी गतिहै इसको सीखे और जो इसनाडी विषयके ग्रंथहैं उनको पढे, किसी जगे हमने ऐसा लिखा देखाहै कि, दशवर्षतो वैद्यकके ग्रंथ पढे और गुरूके आगे अनुभव (आजमायस) करे, क्योंकि यह विद्या पढनेका समय बहुत उत्तमहै, इस समय ग्रंथ और रोगी दोनों उपस्थितहैं जो ग्रंथमें पढे उसको गुरूके आगे रोगीपर परीक्षा करे, यदि जो बात समझमें न आवे तो उसको उसीसमय गुरूसे पूछलेय तो संदेह निवृत्तहो जावे, फिर दशवर्ष वनमें रहकर वनवासियोंसे अर्थात् माली, काछी, भील, ग्वारिया आदिसे औषधका नाम और उसके गुण तथा परीक्षा सीखे तब इसको वैद्यक करनेका अधिकार होताहै ।

कल्याणमपि वारिष्टं स्फुटं नाडीप्रकाशयेत् ॥
रुजां कालिकवैशिष्ट्याद्भवेत्सापि विलक्षणा ॥ २८ ॥

अर्थ--कल्याण (शुभ) और अरिष्ट (अशुभ) इन दोनोंको नाडी प्रत्यक्ष प्रकाशित करेहै । तथा कालके वैशिष्ट्य करके रोगके समय नाडी विलक्षण होजातीहै ।

यल्लक्षणा तु नैरुज्ये नोदितायांतथा रुजि ॥
वयः कालरुजां भेदैर्भिन्नभावं विभर्त्ति सा ॥ २९ ॥

अर्थ–जैसी आरोग्य पुरुषकी नाडी होतीहै ऐसी रोगावस्थामें नहीं रहती इसका यह कारणहै कि अवस्था, काल, और रोगोंके भेदकरके नाडी भिन्न भावको धारण करतीहै। अर्थात् विपरीतता ग्रहण करतीहै।

तदवस्थामतः प्राज्ञः सर्वथा सार्वकालिकीम् ।
ज्ञातुं यतेत मतिमान्लक्षणैः सुसमाहितः ॥ ३० ॥

अर्थ–इसीसे चतुर वैद्यको उचितहै कि, उस नाडीके सर्वकालकी सदैव लक्षणोंके जाननेका यत्न सावधानता पूर्वक करता रहै।

नाडीके स्पंदनकाकारण।

परिव्याप्याखिलं कायं धमन्यो हृदयाश्रयाः। वहन्त्यःशोणितस्रोतः शरीरं पोषयन्ति ताः ॥ ३१ ॥ हृदयाकुञ्चनाद्रक्तं कियदुत्प्लुत्य धामनीम् । तत्सञ्चितं तदुत्थश्च प्रविश्य चापरास्वपि ॥ ३२ ॥ व्रजित्वा निखिलं देहं ततो विशति फुप्फुसम् । फुप्फुसाद्धृदयं याति क्रियैवं स्यात्पुनः पुनः ॥ ३३ ॥ रुधिरोत्प्लववेगेन धमनी स्पन्दते मुहुः । उत्प्लवप्रकृतेर्भेदाद्भेदः स्यात्स्पन्दनस्य च ॥ ३४ ॥ स्थौल्यादिकंधमन्याश्च तत्प्रकृत्यैव जायते। तत्प्रकारान्समासेन ब्रुवे वत्स निशामय ॥ ३५ ॥

अर्थ–अब नाडीके चलनेका कारण कहतेहैं कि,हृदयके आश्रित धमनी नाडी संपूर्णदेहमें व्याप्तहो रुधिरको स्रोतके द्वारा वहन करतीहै। उसी रुधिरके बहनेसे शरीरको पोषण करतीहै। उन संपूर्ण धमनी नाडियोंका आश्रय हृदयस्थ रक्ताधार यंत्रहै, रक्ताधार यह एक स्थूलमांसनलिका ऊपरकी तरफ कुछ उठीहुईहै। यह नली समुदाय धमनी नाडीका मूलभागहै। इसी स्था-

१ (वयःकालरुजाभेदैः) इस लिखनेका यह प्रयोजनहै कि जैसी नाडी बाल्य अवस्थामें होतीहै ऐसी यौवन अवस्थामें नहीं और जैसी यौवन अवस्थामें होतीहै ऐसी वृद्धावस्थामें नहीं होती इसीप्रकार प्रातःकाल मध्याह्न और सायंकालमें पृथक् पृथक् भावसे चलतीहै तथा प्रत्येक रोगोंमें नाडीकी गति विलक्षण होतीहै अर्थात् जैसी ज्वरवान्की नाडी होतीहै ऐसी अतिसारवान्की नहीं होती और जैसी अतिसारीकी होतीहै ऐसी ग्रहणीरोगवालेकी नहींहो इत्यादि।

नसे धमनी नाडियोंकी अनेक शाखा प्रशाखा निकलीहैं ये संपूर्ण देहमें व्याप्तहैं । इस समस्त सूक्ष्म नलाकृति मांसनलीका नाम धमनी है धमनी मार्गसे हृदयका संचित रुधिर सकलदेहमें परिभ्रमण करके देहका पोषण करता है ।

हृदययंत्र स्वभावसेही सदैव खुलता मुदता रहताहै, जैसे भिस्तीकी सछिद्र जलपूर्ण मसकको ऊपरसे दाबनेसे उस मुसकके भीतरका जल जैसे छिद्रमें होकर बडेवेगसे निकलताहै उसीप्रकार हृदयके मुदनेसे हृदयस्थ रुधिरका कितनाहीं अंश उछलकर तत्संलग्न स्थूल धमनीमें प्रवेश करेहै । यह आकुंचन अर्थात् हृदयका मुदना जितनी देरमें होताहै उतने कालमें वह उत्प्लुत रुधिर धमनियोंके द्वारा समस्त देहमें परिभ्रमण करके फुप्फुसमें जायकर प्राप्त होताहै, फुप्फुससे फिर दूसरीबार हृदयमें आताहै और उसी-प्रकार जाता है, जीतेहुए देहमें इसीप्रकार यह क्रिया एक नियमके साथ वारंवार होती रहतीहै, इस रुधिरके उत्प्लुव (उछलने) से संपूर्ण धमनी स्प-न्दन कहिये फडकतीहै । रुधिर हृदयमेंसे वारंवार उछलकर धमनीके छिद्र-में प्रवेश होकर वेगके साथ चलताहै, इसी कारण धमनी नाडी भी वारंवार तडफतीहै । यह रुधिरके उत्प्लव प्रकृति भेदसे धमनीके तडफमें भेद होताहै [अर्थात् यदि रुधिर मंदवेगसे उछले तो नाडी मंद प्रतीत होतीहै, और रुधिर शीघ्र उछले तो नाडीभी शीघ्र चारिणी होतीहै] एवं रुधिरके स्वभा-वानुसार नाडीमें स्थूलता, सूक्ष्मता और कठिनत्वादि धर्म उत्पन्न होतेहैं । अब जो जो अवस्था नाडीसे जैसे जैसे लक्षण होतेहैं उन सबको मैं आगे कहताहूं ।

नाडीके नाम ।

हिंस्रा स्नायुर्वसा नाडी धमनी धामनी धरा ।
तन्तुकी जीवितज्ञाच शिरा पर्यायवाचकाः ॥ ३६ ॥

अर्थ–हिंस्रा, स्नायु, वसा, नाडी, धमनी, धामनी, धरा, तंतुकी, जीवितज्ञा और शिरा, ये नाडीके पर्यायवाचक शब्द हैं, अर्थात् ये नाडीके नामांतरहै ।

नाडीके भेद ।

तत्र कायनाडी त्रिविधा । एका वायुवहा । अन्या
मूत्रविडस्थिरसवाहिनी । अपरा आहारवाहिनीति ॥ ३७॥

अर्थ–तहाँ देहकी नाडी तीन प्रकारकीहै, एक पवनको बहतीहै दूसरी मल, मत्र, हड्डी और रसको बहतीहै तीसरी आहारको बहती है ।

कन्दमध्ये स्थितानाडी सुषुम्नेति प्रकीर्त्तिता।
तिष्ठन्ते परितः सर्वाश्चक्रेस्मिन्नाडिकास्ततः॥ ३८॥

अर्थ-नाभीके मध्यमें सुषुम्ना नाडी स्थितहै, इसी नाभिचक्र और सुषुम्ना नाडीके चारोंतरफ संपूर्ण नाडी स्थितहै।

नाभिमध्ये स्थितानाडी गोपुच्छाकृतिसर्वतः।
तिष्ठन्ते परितःसर्वास्ताभिर्व्याप्तमिदं वपुः॥ ३९॥

अर्थ-संपूर्ण नाडी नाभिके बीचमें गोपुच्छके सदृश स्थितहो सर्वत्र फैल रही है। जिनसे यह देह व्याप्त होरहाहै, जैसे गौकी पूछ ऊपरके भागमें मोटी होतीहै और नीचेको क्रमसे पतली होतीहै, उसीप्रकार नाडीनको जानना ये सब नाभीसे निकलकर चारोंतरफ फैल गईहैं।

सार्द्धस्त्रिकोटयो नाड्योहि स्थूलाः सूक्ष्माश्च देहिनाम्।
नाभिकन्दनिबद्धास्तास्तिर्यगूर्ध्वमधः स्थिताः॥ ४०॥

अर्थ-इन मनुष्योंके देहमें छोटी और बडी सब मिसकर ३५०००००साडेतीन करोड नाडीहैं, वो सब नाभिसे बँधीहुई तिरछी, ऊपर और देहके अधोभागमें स्थितहै।

तिस्रः कोटयोऽर्द्धकोटी च यानि लोमानि मानुषे।
नाडीमुखानि सर्वाणि धर्मबिन्दून्क्षरन्ति च॥ ४१॥

अर्थ--ऊपरके श्लोकमें जो साढेतीनकरोड नाडी कहीहैं, वो मनुष्यके देहमें जितने रोमहैं वो सब उन नाडियोंके मुखहैं, उनसे पसीना झडता रहता है।

द्विसप्ततिसहस्रन्तु तासां स्थूलाः प्रकीर्तिताः।
देहे धमन्यो धन्यास्ताः पञ्चेन्द्रियगुणावहाः॥ ४२॥

अर्थ-उन साढेतीन करोड नाडियोंमें १०७२ एकहजार और बहत्तर स्थूल नाडीहैं, वो धमनी देहमें पवनको धमातीहैं। और पंचेन्द्रियोंको गुण (शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंध) को बहतीहैं।

तासाञ्च सूक्ष्मसुषिराणि शतानि सप्त
स्वच्छानि यैरसकृदन्नरसं वहद्भिः।

आप्यायते वपुरिदं हि नृणाममीषा-
मम्भः स्रवद्भिरिव सिन्धुशतैः समुद्रः ॥ ४२ ॥

अर्थ-उन पूर्वोक्त नाडियोंमें छोटे छिद्रवाली स्वच्छ ७०० सातसौ नाडीहैं वो सब अन्नरसके बहनेवालीहैं, उस रसमें संपूर्ण देहका पोषण होताहै जैसे सैकडों नदियोंके जलसे समुद्र तृप्त होताहै ।

आपादतः प्रततगात्रमशेषमेषा-
मामस्तकादपि च नाभिपुरःस्थितेन ।
एतन्मृदङ्ग इव चर्मचयेन नद्धं
कायं नृणामिह शिराशतसप्तकेन ॥ ४४ ॥

अर्थ-नाभिस्थानस्थित सातसौ नाडीन्से मस्तकसेले पैरोंतक संपूर्ण देह व्याप्त हैं जैसे मृदंगमें सर्वत्र चर्मकी रस्सी खिंचीहुई होतीहै, उसीप्रकार मनुष्यकी देह इन सातसौ नाडियोंसे बद्ध होरहीहै ।

सप्तशतानां मध्ये चतुरधिकाविंशतिः स्फुटास्तासाम् ।
एका[१] परी क्षणीया दक्षिणकरचरणविन्यस्ता ॥ ४५ ॥

अर्थ--पूर्वोक्त सातसौ नाडियोंमें २४ चौवीस नाडी मुख्यहैं, उनमेंभी पुरुषके दहने हाथ और पैरमें स्थित मुख्य एक नाडीकी परीक्षा करनी चाहिये "चतुरधिका" इसपदके कहनेसे यह प्रयोजनहै कि, धमनी नाडी चोबीसहैं जैसे लिखाहै ।

तिर्यक्कूर्मो देहिनां नाभिदेशे
वामे वक्त्रं तस्य पुच्छन्तु याम्ये ।
ऊर्द्ध्वे भागे हस्तपादौ च वामौ
तस्याधस्तात्संस्थितौ दक्षिणौ तौ ॥ ४६ ॥
वक्त्रे नाडी द्वयं तस्य पुच्छे नाडी द्वयन्तथा ।
पञ्च पञ्च करे पादे वामदक्षिणभागयोः ॥ ४७ ॥

अर्थ-मनुष्योंके नाभिदेशमें तिरछा कूर्म (कछवा) स्थितहै, बांई तरफ उसका मुखहै और दहनी तरफ पूंछहै, ऊपरके भागमें बाँईतरफ हाथहै,

१ शतानि सप्त नाड्यस्तु कथिता याः शरीरिणाम् । संभूयाङ्गुष्ठमूले तु शिरामेकामधिष्ठिता ।

और नीचे दक्षिण पैरहै उस कच्छपके मुखमें दोनाडी, पूंछमेंदो और हाथ पैरोंमें दहनी और बांई तरफ पांच पांच नाडी जाननी।

फिर उसी श्लोककी व्याख्या करतेहैं " तासां मध्ये एकेति" इस पद-लिखनेका यह प्रयोजनहै कि, यद्यपि हाथपैरोंमें पांच पांच नाडीहैं परंतु उनमेंभी पुरुषके दहने हाथ पैरकी एक एक नाडी मुख्यहै और स्त्रीके वाम हाथ पैरकी एक एक नाडी मुख्यहै यह अर्थांशसे जाना जाताहै अतएव वैद्यको इन्हींकी परीक्षा करनी चाहिये जैसे लिखाहै।

वामे भागे स्त्रिया योज्या नाडी पुंसस्तु दक्षिणे।
इति प्रोक्तो मया देवि सर्वदेहेषु देहिनाम्॥ ४८॥

अर्थ–स्त्रीके वामभागकी और पुरुषके दहने भागकी नाडी देखे हेदेवि ! यह सर्वदेहधारियोंमें देखनेकी विधि मैंने कहीहै, परंतु जो नपुंसक है उनमें प्रथम यह परीक्षाकरे कि यह स्त्री षंढ है या पुरुषषंढ पश्चात् स्त्री षंढकी वामहाथकी और पुरुष षंढके दहने हाथकी नाडी देखे इनमें समानता सर्वथा नहीं होसकती, और कृत्रिम (बनेहुए) हिजडे होतेहैं उनकी नाडी यथा प्रकृतिमें स्थित होतीहै और "चरणेति" इस पदके धरनेसे कोई कहताहै कि, वाम पैरकी नाडीको दहनी गांठके पिछाडीके पार्श्वभागमें देखनी और दहने पैरकी नाडी बांई ग्रंथिके पिछाडीके पार्श्वमें देखनी यह श्रेष्ठ पुरुषोंकी आज्ञाहै कोई छः स्थानोंकी नाडी देखना लिखताहै यथा।

अङ्गुष्ठमूले करयोःपादयोर्गुल्फदेशतः।
कपालपार्श्वयोः षड्भ्यो नाडीभ्यो व्याधिनिर्णयः॥ ४९॥

अर्थ--हाथोंकी नाडी अँगूठेकी जडमें देखे, और पैरोंकी नाडी टकनाओंके नीचे देखे, मस्तककी नाडी दोनों कनपटियोंमें देखे, इसप्रकार इन छः स्थानकी नाडी देखनेसे व्याधिका यथार्थ निर्णय होताहै।

नाभ्योष्ठपाणिपात्कंठनासोपान्तेषु याः स्थिताः।
तासु प्राणस्य सञ्चारं प्रयत्नेन विभावयेत्॥ ५०॥

अर्थ–नाभी, होठ, पैर, हाथ, कंठ और नासिकाके समीप भागमें जो नाडी स्थितहै उनमें प्राणोंका संचारको यत्नपूर्वक जाने, अर्थात् इन स्थानोंमें सदैव प्राण पवनका संचार होताहै, इसीसे अत्यंत उपद्रवमें इन स्थानोंकी नाडी देखनी चाहिये।

पाणिपात्कण्ठनासाक्षिकर्णजिह्वान्तमेढ्रगाः।
वामदक्षिणतो लक्ष्याः षोडश प्राणबोधकाः ॥ ५१ ॥

अर्थ-हाथ, पैर, कंठ, नासिका, नेत्र, कान, जिह्वाका अंत्यभाग और मेढ्र (योनि लिंग) इनके वामभाग और दक्षिणभागमें नाडी देखनी क्योंकि ये १६ नाडी प्राणबोधकहै ऐसा जानना।

कण्ठनाडी।

आगन्तुकं ज्वरं तृष्णामायासं मैथुनं क्रमम्।
भयं शोकश्च कोपश्च कण्ठनाडी विनिर्दिशेत् ॥ ५२ ॥

अर्थ-आगंतुज्वर, तृषा, परिश्रम, मैथुन, ग्लानि, भय, शोक और कोप इतने रोगोंको कंठनाडी देखकर कहे।

नासानाडी।

मरणं जीवनं कामं कण्ठरोगं शिरोरुजाम्।
श्रवणानिलजाद्रोगान्नासानाडी प्रकाशयेत् ॥ ५३॥

अर्थ-मरण, जीवन, कामबाधा, कंठरोग, मस्तकरोग, कानके पवनके रोगोंको नासिकाकी नाडी प्रकाशित करतीहै।

उक्त नाडियोंका प्रमाण।

हस्तयोश्च प्रकोष्ठान्ते मणिबन्धेऽङ्गुलिद्वयम्। पादयोर्नाडिकास्थानं गुल्फस्याधोऽङ्गुलिद्वयम्॥ ५४ ॥ कण्ठमूलेऽङ्गुलिद्वंद्वं नासायामङ्गुलिद्वयम्। एवमप्यङ्गुलिद्वंद्वमग्रतः कर्णरन्ध्रयोः ॥ ५५ ॥

अर्थ-अब अन्यनाडी किस किस भागमेंहैं और वो कितनी बडीहैं यह कहते हैं। तहां दोनों हाथके प्रकोष्ठान्तमें जहां मणिबंध अर्थात् पहुँचाहै उसजगे दो अंगुल नाडी देखनेका स्थानहै और पैरोंमें टकनाके नीचे दो अंगुल नाडीका स्थान है तथा कंठकी जडमें अर्थात् हसलीमें दो अंगुल एवं नासिकामें दो अंगुल नाडीका स्थानहै। इसीप्रकार दोनों कर्णके छिद्रके अग्रभागमें भी दो दो अंगुल नाडीके परिक्षाका स्थानहै। तात्पर्य यहहै कि, जब हाथकी नाडी प्रतीत न होवे तब इन स्थानोंकी नाडी देखनी।

निस्तुषयव एकस्तत्प्रमाणाङ्गुलं स्यात्
तदुभयमितसद्मन्येव नाडीप्रचारः।

न भवति यदि तस्मिन्गेहिनी गेहमध्ये
कथमिह गृहमेधी तत्र जीवस्तदा स्यात् ॥ ८६ ॥

अर्थ-छिलका रहित एक यवके प्रमाण इस जगे अंगुल मानाहै । ऐसे दो अंगुल प्रमाण स्थानमें नाडी रहती है यदि देहरूप घरमें नाडीरूप स्त्री न होवे तो जीवरूप जो गृहस्थीहै सो क्याकरे, अर्थात् यावत्काल देहमें नाडी रहतीहै तबतक जीवहै विना स्त्रीके घरमें रहना निंदितहै " धिग्गृहं गृहिणीं-विना " तात्पर्य यहहै, कि जीव, पुरुष, नाडी स्त्री ये अन्योन्य एकके विना दूसरा नहीं रहसकता ।

परीक्षणीय ।

वातं पित्तं कफं द्वंद्वं सन्निपातं तथैव च ।
साध्यासाध्यविवेकश्च सर्वं नाडी प्रकाशयेत् ॥ ८७ ॥

अर्थ-वात पित्त कफ द्वंद्वज दोष और सन्निपात एवं साध्यासाध्य (चकारसे कष्टसाध्य) इनकी संपूर्ण विवेचनाको नाडी प्रकाशित करती है ।

इति श्रीमाथुरकृष्णलालसूनुना दत्तरामेण सङ्कलिते नाडीदर्पणे प्रथमावलोकः ।

नाडीज्ञानसमय ।

प्रातः कृतसमाचारः कृताचारपरिग्रहम् ।
सुखासीनः सुखासीनं परीक्षार्थमुपाचरेत् ॥ १ ॥

अर्थ-अब नाडी देखनेका समय कहतेहैं कि,चिकित्सक प्रातःकालमें प्रातः-कृत्य समाप्तिके अनंतर नाडीपरीक्षार्थ रोगीके समीप प्राप्त हो रोगीके प्रातः-कृत्य समाप्तिके पश्चात् उसको सुखपूर्वक बैठाकर इसीप्रकार स्वयं आप सुख-पूर्वक बैठकर यथाविधान नाडी परीक्षा करे । इसजगे प्रातःकालका तो उपलक्षण मात्रहै किंतु मध्याह्न और सायंकालमें भी नाडीपरीक्षा करे जैसे लिखाहै " मध्याह्ने चोष्णतान्विता " इत्यादि ।

निषिद्धकाल ।

सद्यःस्नातस्य भुक्तस्य क्षुत्तृष्णातपसेविनः । व्यायामाक्रा-न्तदेहस्य सम्यङ्नाडी न बुध्यते ॥ २ ॥ तैला[1]भ्यक्ते रते-रन्ते भोजनान्ते तथैव च । उद्वेगादिषु नाडी च न सम्य-गवबुध्यते ॥ ३ ॥

---

१ तैलाभ्यङ्गे च सुप्ते च तथा च भोजनान्तरे । तथा न ज्ञायते नाडी यथा दुर्गतरा नदी ॥ इति । पाठान्तरम् ।

अर्थ--तत्काल स्नान करा हो, तत्काल भोजन कराहो, अथवा "सुप्तस्य" अर्थात् निद्रित, क्षुधित, तृषार्त्त, गरमीसे घबडाया हुआ, तथा व्यायामद्वारा थकित देह जिसका ऐसे मनुष्यकी नाडी भलेप्रकार प्रतीत नहीं हो, उसी-प्रकार जिसने तेल लगायाहो, मैथुनान्तमें भोजनके मध्यमें उद्वेग आदि समयमें नाडीकी यथार्थगति निश्चय नहीं हो, अतएव वैद्य इन समयोंसे नाडीपरीक्षा न करे किंतु रोगीका चित्त जिससमय स्वस्थहोय तब नाडी देखे परंतु वातमूर्च्छादिक क्षणिक रोगोंमें यह उक्तनियम नहींहै ।

नाडीदेखने योग्य वैद्य ।

स्थिरचित्तः प्रसन्नात्मा मनसा च विशारदः ।
स्पृशेदङ्गुलिभिर्नाडीं जानीयाद्दक्षिणे करे ॥ ४ ॥

अर्थ–अब नाडी देखने योग्य वैद्य कहते हैं कि जो स्थिरचित्त और प्रसन्न आत्मा तथा मनकरके चतुर ऐसा वैद्य तीन उंगलियोंसे दहने हाथकी नाडीका स्पर्श करके उसकी गतिकी परीक्षा करे ।

मूढ वैद्य ।

पीतमद्यश्चञ्चलात्मा मलमूत्रादिवेगयुक् ।
नाडीज्ञानेऽसमर्थः स्याल्लोभाक्रान्तश्च कामुकः ॥ ५ ॥

अर्थ–जिसने मद्य पीरक्खाहो और चंचलचित्त, मल मूत्र बाधा लग रहीहो, लोभी और कामीहो ऐसे वैद्यको नाडी न दिखावे, क्योंकि यह नाडीके जाननेमें असमर्थ है ।

नाडी देखने योग्य रोगी ।

त्यक्तमूत्रपुरीषस्य सुखासीनस्य रोगिणः ।
अन्तर्जानुकरस्यापि नाडी सम्यक्प्रबुद्ध्यते ॥ ६ ॥

अर्थ–अब नाडी देखनेके योग्य रोगी कहतेहैं,कि जो मलमूत्रका परित्याग करचुकाहो और सुखपूर्वक घोंटुओंके भीतर हाथको करे सावधानीसे बैठा-हो, ऐसे रोगीकी नाडीको वैद्य देखे, क्योंकि ऐसे मनुष्यकी नाडी भली रीतिसे जानी जातीहै ।

नाडीदर्शनमें अयोग्य ।

धूर्त्तमार्गस्थविश्वासरहिताज्ञातगोत्रिणाम् ।
विनाभिशंसनं वैद्यो नाडीद्रष्टा च किल्बिषी ॥ ७ ॥

अर्थ–अब कहतेहैं कि,ऐसे मनुष्योंकी नाडी वैद्य न देखे कि,जो धूर्तहै तथा मार्गमें गलते चलते दिखाने लगे और जिनको विश्वास नहींहै, तथा जिसकी जातिपाँति वैद्य नहीं जाने और बिनकहे अर्थात् जबतक रोगी अथवा उस रोगीके बांधव न कहे तबतक वैद्य नाडी न देखे, यदि उक्तमनुष्योंकी वैद्य नाडी देखे तो पापभागी होताहै।

परीक्षाप्रकार।

सव्येन रोगधृतिकूर्परभागभाजा
पीड्याथ दक्षिणकरांगुलिकात्रयेण।
अङ्गुष्ठमूलमधिपश्चिमभागमध्ये
नाडीं प्रभंजनगतिं सततं परीक्षेत्॥ ८॥

अर्थ–अब नाडी परीक्षाका प्रकार लिखते हैं कि, रोगके धारण करने वाली जो पहुँचेमें नाडीहै उसको दहने हाथकी तीन उंगली (तर्जनी, मध्यमा, और अनामिका) से दाबकर तथा रोगीके हाथकी कोहनीको दूसरे हाथसे अच्छी रीतिसे पकडकर उसके अँगूठेकी जडके नीचे वातगति नाडीकी वारंवार परीक्षा करे। तात्पर्य यह है कि, प्रथम दहने हाथसे कोहनीको पकडे फिर वहाँसे हाथको हटाय नाडीको दाबे और बाँए हाथसे रोगीके हाथको साधकर नाडीकी परीक्षा करे।

इसजगे " दक्षिणकरांगुलिकात्रयेण " यह पद केवल उपलक्षण मात्रको धराहै किंतु नाडी वामहाथसे भी देखे यदि ऐसा न मानोगे तो फिर अपनी नाडीका देखना किसप्रकार होगा। और बाजे वैद्य दहने हाथकी नाडी वामहाथसे और वामहाथकी दहनेसे देखतेहैं यह ठीकहै।

कदाचित् कोई शंकाकरे कि, एकही हाथकी नाडी देखनेसे रोग जानाजाताहै फिर दोनों हाथकी देखना व्यर्थहै, इसलिये कहतेहैं कि, बहुतसे मनुष्योंके वामअंगही चेष्टावाले होतेहैं, अतवा ऐसे मनुष्योंके वामअंगकी जबतक यथार्थ ज्ञान नहीं होता। दूसरे दोषोंके भेदसे नाडीके वाम दक्षिणमें भेद होजाताहै, अथवा यह परंपराहै इसीसे लोकविरुद्धभयसे देखतेहैं।

दूसरा प्रकार।

ईषद्विनामितकरं विततांगुलीयं बाहुप्रसाररहितं परिपीडनेन।

ईषद्विनम्रकृतकूर्परवामभागहस्ते प्रसारितसदङ्गुलिसंधिकेच॥९॥ अङ्गुष्ठमूलपरिपश्चिमभागमध्येनाडीप्रभंजनगतिं प्रथमंपरीक्षेत् १०

अर्थ–वैद्य रोगीके हाथको किंचिन्मात्र नवायकर और हाथकी उंगलियों-को एकत्र कर तथा भुजाको बहुत लंबी न होनेदे और हाथ पट्टी आदिसे बँधा न हो क्योंकि पट्टीआदिके बँधनेसे नाडीकीगति रुकजातीहै फिर रोगीके कूर्पर (कोहनीके वामभाग) को पकड अंगुली और उनकी संधिसहित हाथको पसार रोगीके अँगूठेके पिछलेभागमें प्रथम वातकी परीक्षा करे, कारण यहहै कि,आदिमें वातका स्थानहै अतएव प्रथम वातकी परीक्षा-करनी चाहिये ।

प्रदर्शयेद्दोषनिजस्वरूपं व्यस्तं समस्तं युगलीकृतं च ।
मूकस्य मुग्धस्य विमोहितस्य दीपप्रभावा इव जीवनाडी॥११॥

अर्थ–यह जीवनाडी गूंगेके मूढके और मोहितपुरुषके पृथक् पृथक् और मिले तथा द्वंद्वज दोषोंका जो निज स्वरूपहै उसको दिखातीहै, जैसे दीपक अपने प्रकाशसे घरमें स्थित पदार्थोंको दिखाताहै ।

स्त्रीणां भिषग्वामहस्ते वामे पादे च यत्नतः । शास्त्रेण संप्रदायेन तथा स्वानुभवेन च ॥ परीक्षेद्रत्नवच्चासावभ्यासादेव जायते ॥ १२ ॥

अर्थ–वैद्य स्त्रियोंके वामहाथ और वामपैरमें शास्त्रकी संप्रदायसे और अपने अनुभवद्वारा रत्नके समान नाडी परीक्षाकरे,यह परीक्षा केवल अभ्यास साध्यहै तात्पर्य यह है कि, जैसे जोहरी रत्नपरीक्षामें अभ्यास करनेसे रत्नकी परीक्षा करताहै उसीप्रकार इस नाडीका देखनाभी रत्नपरीक्षाके समानहै, अतएव इसके देखनेमें वैद्य अभ्यास करे ।

करस्याङ्गुष्ठमूले या धमनी जीवसाक्षिणी ।
तच्चेष्टया सुखं दुःखं ज्ञेयं कायस्य पण्डितैः ॥ १३ ॥

प्रभञ्जनगतिर्यत्र इतिनाडचन्तरनिरासः सततं इति।
सुस्थदशायामपि परीक्षणीया।

अर्थ-तहां नाडीदेखनेका स्थान कहतेहैं,जैसेकि हाथके अँगूठेकी जडमें जो जीवसाक्षिणी धमनी नाडीहै उसकी चेष्टा करके इसप्राणीके देहका सुख दुःख वैद्यजन जाने, ८ के श्लोकमें "प्रभंजनगतिर्यत्र" इस लिखनेसे यह सूचनाकरी कि अँगूठेके संनिकट नाडीको देखनी अन्य नाडियोंको न देखना तथा "सततं" इस पदके धरनेसे यह प्रयोजन है कि, वैद्य रोगावस्थाहीमें नाडी न देखे किंतु स्वस्थ दशामेंभी नाडीकी परीक्षाकरे, कारण कि जिसकी नाडी स्वस्थावस्थामें देखीहै यदि उसके रोग प्रगटहोनेवाला होवेतो उस रोगका निश्चय नाडीद्वारा बहुत सुगमतासे होसकताहै इसीसे लिखाहै यथा।

भाविरोगावबोधाय सुस्थनाडीपरीक्षणम् ॥ १४ ॥

अर्थ-अर्थात् होनहार रोगज्ञानके अर्थ वेगको स्वस्थ (रोगरहित) मनुष्यकी नाडीपरीक्षा करनी चाहिये।

स्पर्शनादिभिरभ्यासान्नाडीज्ञो जायते भिषक्। तस्मात्परामृशेन्नाडीं सुस्थानामपि देहिनाम् ॥ १५ ॥ स्पर्शनात्पीडनाद्घाताद्वेदनान्मर्दनादपि। तासु जीवस्य सञ्चारं प्रयत्नेन निरूपयेत् ॥ १६ ॥

अर्थ-ग्रन्थान्तरोंमें लिखाहै कि, स्पर्शनादिके अभ्याससे अर्थात् प्रत्येककी नाडी देखनेसे यह वैद्य नाडीका ज्ञाता होताहै अतएव यह वैद्य स्वस्थ मनुष्योंकीभी नाडी देखाकरे उस नाडीके स्पर्शसे, पीडन (दाबने) से घातसे ऊंगलियोंमें लगनेसे वेदन [तडफ] से और मर्दनकरना इन कारणोंसे वैद्य उन नाडियोंके जीवसंचारको निरूपण करे।

गुरुतोऽत्र प्रयत्नेन वैद्येन शुभमिच्छता।
ज्येष्ठेनाङ्गुष्ठमूलेन नाडीपुच्छं परीक्षयेत् ॥ १७॥

अर्थ-यशेच्छुवैद्य यत्नपूर्वक गुरुसे अर्थात् गुरुद्वारा अँगूठेकी जडमें नाडीपुच्छकी परीक्षाकरे, तात्पर्यार्थ यह है कि, जो वैद्य अपने हितकी चाहना करे

१ यद्यस्ति नाडी सर्वत्र शरीरे धातुवाहिनी। तथाप्यंगुष्ठमूलस्था करस्था सर्वशोभना ॥ १ ॥ विलसति मणिरन्ध्रे ग्रन्थिरंगुष्ठमूले तदधरणमिताभिस्त्र्यंगुलीभिर्निपीड्य। स्फुरणमसकृदेषा नाडिकायाः परीक्षा पदमनुघुटिकाधोंऽगुष्ठमूले तथैव ॥ २ ॥

वो गुरुद्वारा नाडीपरीक्षा सीखे स्वयंही न देखनेलगे ज्येष्ठ कहनेसे अँगूठेका बृहन्निम्नभाग जानना ।

नाडीं वायुप्रवाहेण शास्त्रं दृष्ट्वा च बुद्धिमान् ।
गुरूपदेशं संस्मृत्य परीक्षेत मुहुर्मुहुः ॥ १८ ॥

अर्थ–बुद्धिवान्वैद्य पवनके संचारकरके और शास्त्रके अनुसार तथा गुरूके उपदेशको स्मरणकर वारंवार नाडीकी परीक्षा करे ।

वारत्रयं परीक्षेत धृत्वा धृत्वा विमुच्य च ।
विमृश्य बहुधा बुद्ध्या रोगव्यक्तिं तु निर्दिशेत्॥ १९॥

अर्थ–वारंवार नाडीपर उँगली रखे और हटायले अर्थात् नाडीको कुछ दबायके ढीली छोडदेवे इसप्रकार करनेसे नाडीकी सबलता और निर्बलता चौडाव लंबाव तथा शीघ्रता और मंदताका ज्ञान होताहै । इस प्रकार तीन वार परीक्षाकर संपूर्ण नाडीकी व्यवस्था अपने मनमें विचार कर फिर रोग व्यक्ति कहे अर्थात् इसरोगीके देहमें अमुक रोगहै ऐसे विना विचारे न कहे ।

अङ्गुलित्रितयैः स्पृष्ट्वा क्रमाद्दोषत्रयोद्भवैः ।
मन्दां मध्यगतां तीक्ष्णां त्रिभिर्दोषैस्तु लक्षयेत् ॥ २० ॥

अर्थ–नाडीको तीनउँगलियोंके स्पर्शसे तीनोंदोषोंकरकै मन्द, मध्य और तीक्ष्ण गति जाननी, अर्थात् प्रथम उँगलीमें मध्यस्पर्शहोनेसे वातकी और बीचकी उँगलीमें तीक्ष्णस्पर्शहोनेसे पित्तकी और अंतकी उँगली (अनामिका) में स्पर्शहोनेसे कफकी नाडी जाननी ।

रोगरहितमनुष्यकी नाडी ।

भूलता भुजगप्राया स्वच्छा स्वास्थ्यमयी शिरा ।
सुखितस्य स्थिरा ज्ञेया तथा बलवती मता ॥ २१ ॥

अर्थ–स्वस्थ अवस्थाकी नाडी कैंचुआ और सर्पके समान टेढीगतिसे और पुष्ट तथा जडता रहित होतीहै यह नैरोग्य पुरुषकी नाडीके लक्षणहै तथा सुखी पुरुषकी नाडी स्थिर और बलवान् होतीहै ।

नाडीके देवता ।

वातनाडी भवेद्ब्रह्मा पित्तनाडी च शंकरः ।
श्लेष्मनाडी भवेद्विष्णुस्त्रिदेवा नाडिदेवताः ॥ २२ ॥

अर्थ–वातनाडीका ब्रह्मा,पित्तनाडीका शंकर,और कफनाडीका पति विष्णुहै।

नाडीन्के वर्ण।

वातनाडी भवेन्नीला पित्तनाडीतु पाण्डुरा।
श्वेता तु कफनाडी स्यादेवं वर्णानि संवदेत्॥ २३॥

अर्थ--वातकी नाडीका वर्ण नीलहै, पित्तकी नाडीका पीला, कफनाडीका श्वेत, इसप्रकार नाडीके वर्ण कहने चाहिये।

नाडीन्का स्पर्श।

पित्तनाडी भवेदुष्णा कफनाडी तु शीतला।
वातनाडी भवेन्मध्या एवं स्पर्शविनिर्णयः॥ २४॥

अर्थ--पित्तकी नाडी स्पर्शकरनेसे गरम प्रतीत होतीहै, कफकी नाडी शीतल, और वातकी नाडीका स्पर्श मध्यम होताहै इसप्रकार नाडीका स्पर्श जानना।

कालपरत्व नाडीकी गति।

प्रातः स्निग्धमयी नाडी मध्याह्ने चोष्णतान्विता।
सायाह्ने धावमाना च रात्रौ वेगविवर्जिता॥२५॥

अर्थ--स्वभावसेही नाडी प्रातःकाल स्निग्ध, मध्याह्नमें उष्ण, सायंकालमें वेगवती, तथा रात्रिमें वेगवर्जित होतीहै

अथ वातादिस्वभावक्रम।

आदौ च वहते वातो मध्ये पित्तं तथैव च।
अन्ते च वहते श्लेष्मा नाडिकात्रयलक्षणम्॥ २६॥

अर्थ–अब वातादिकका स्वभाव क्रम कहतेहैं जिस समय वैद्य कोहनीको पकडताहै। उसके द्वितीयक्षणमें प्रथम वातकी नाडी फिर मध्यमें पित्तकी और अंतमें कफकी नाडी चलतीहै। यह द्वितीयादिक्षणोंमें जाननी कोई कहताहै कि, आदिमें वातकी बीचमें पित्तकी और अंतमें कफकी नाडी चलतीहै यह बात सर्वथा निर्मूलहै क्योंकि स्थानका नियम किसी जगे नहीं करा, विशेष आगे कहतेहैं यथा।

उक्त श्लोककाविरोधीवचन।

आदौ च वहते पित्तं मध्ये श्लेष्मा तथैव च।
अन्ते प्रभञ्जनो ज्ञेयः सर्वशास्त्रविशारदैः॥ २७॥

---

१ चिराद्रोगविवर्जितेति पाठान्तरम्।

अर्थ-आदिमें पित्तकी मध्यमें कफकी और अंत्यमें वातकी नाडी सर्वशास्त्रज्ञाता वैद्यों करके जाननी ।

नाडीचक्रमिदम् ।			
वात	पित्त	कफ	नाडीके नाम
श्याम हरित	पीत लाल नील	सपेद	नाडीके वर्ण
ब्रह्मा	शिव	विष्णु	नाडीके देवता
न गरम न शीतल किंतु मध्यम	गरम	शीतल	नाडीका स्पर्श
विषम	दीर्घ	ह्रस्व	नाडीमाप
गंधहीन	तीव्रगंध	मध्यमगंध	नाडीका गंध
तिर्यग्गमन	ऊर्ध्वगमन	अधोगमन	नाडीका गमन
हलकी	हलकी	भारी	नाडीकी गुरुता और लघुता
रात्रिदिवाबली	दिवाबली	रात्रिबली	नाडीके बलवान होनेका समय

उक्त श्लोककापुष्टिकर्त्ता दृष्टान्त ।

तृणं पुरःसरं कृत्वा यथा वातो वहेद्बली । शेषस्थंच तृणंगृह्य पृथिव्यां वक्रगो यथा ॥ २८ ॥ एवं मध्यगतो वायुः कृत्वा पित्तपुरस्सरम् । स्वानुगं कफमादाय नाड्यां वहति सर्वदा ॥ २९ ॥

अर्थ-इस वाक्यको दृष्टान्त देकर पुष्ट करतेहैं, कि जैसे प्रबलवात अर्थात् आंधी, तिनका ओंको अगाडी करके और कुछ पिछाडीके तिनका ओंको लेकर आप बीचमें टेढीहोकर चलतीहै । इसीप्रकार मध्यगत वायु पित्तको अगाडीकर और अपने पिछाडी कफको करके बीचमें आप टेढी होकर चलती है ।

अतएव च पित्तस्य ज्ञायते कुटिलागतिः । वक्रा प्रभञ्जनस्यापि प्रोक्ता मन्दा कफस्य च ॥ ३० ॥ पित्ताग्रेऽस्ति ग-

तिः शीघ्रा तृणस्येति विदृश्यताम्। मन्दानुगस्य वक्रा वै मारुतो मध्यगस्य ह ॥ ३१ ॥ तथात्रैव च ज्ञातव्या गतिर्दोषत्रिकोद्भवा। नान्यथा ज्ञायते स्नायुगतिरेतद्विनिश्चितम् ॥ ३२ ॥

अर्थ-इसीसे नाडीमें पित्तकी गति कुटिलहै और वातकी गति टेढी एवं कफकी मन्दगति प्रतीत होतीहै। पित्तकी शीघ्रगति सो आंधीमें तृणके देखनेसे प्रत्यक्ष होतीहै। और जैसे आंधीमें पिछाडीके तृणकी मंदगति होतीहै उसीप्रकार नाडीमें पिछाडी कफकी मंदगतिहै। और जैसे आंधीके बीचमें पवनकी गति टेढी तिरछी होतीहै। उसीप्रकार इसनाडीके बीचमें वातकी गति टेढी तिरछी प्रतीत होतीहै इसप्रकार ही नाडीकी गति प्रतीत होतीहै। अन्यप्रकारसे नहीं।

परंतु हमको शंकाहैकि, नाडीका और आंधीका क्या संबंधहै, क्योंकि आंधीमें आगे पीछे और बीचमें पवनही कहातीहै, परंतु नाडीमें तो न्यारे न्यारे दोषहैं जैसे वात, पित्त, तथा कफ, और पवनका एकहीकर्महै परंतु इन तीनों दोषोंके कर्म पृथक् पृथक् हैं, इस कारण यह दृष्टान्तही असंभवहै हमारे मनको हरण कर्त्ता नहींहै।

ग्रंथकर्त्ताकामत।

इदानीं कथयिष्यामि स्वमतं शास्त्रसंमतम्। मिथ्यारोपितवादस्य खण्डनं लोकरञ्जनम् ॥ ३३ ॥ वातमग्रेवदन्त्येके पित्तमग्रेच केचन। हास्यास्पदमिदंसर्वं न तु सत्यं मनागपि ॥ ३४ ॥

अर्थ-अब हम शास्त्रसंमत तथा मनुष्योंकी रंजना (प्रसन्नता) को और मिथ्यारोपित वादका खंडनरूप अपने मतको कहतेहैं। जैसे कोई तो वातकी, और कोई पित्तकी नाडीको आगे बतलाताहै यह केवल उनके हास्यका स्थानहै किंतु किंचिन्मात्रभी सत्य नहींहै इसप्रकार माननेसे बडाभारी अनर्थहोताहै जैसे आगे लिखते हैं।

सति पित्तभवे व्याधौ बुद्ध्यतिक्रमतो यदि। वातकोपवशादेवमादौ ज्ञात्वा धरागतिम् ॥ ३५ ॥ प्रदद्देद्भेषजं ह्युष्णं

तद्दोषविनिवृत्तये । तदा नूनं भवेन्मृत्युः पित्तकोपेन भूयसा ॥ ३६ ॥

अर्थ–कदाचित् किसीरोगीके पित्तकी व्याधिहोवे और वैद्यबुद्धिभ्रमसे वातकोपकी नाडी अग्रभागमें समझकर उस रोगीको दोष दूर करनेको उस उष्ण (शुंठ्यादि) औषध देय तो कहो एकतो पित्तदोषकी गरमी और दूसरे गरम ही दीनी औषध अब कहो वह रोगी पित्तकी गरमीके मारे मरेगा कि बचेगा ? किंतु अवश्यही मरेगा ।

सति वातभवे व्याधौ बुद्ध्याति क्रमतो यदि । नाडीगतिं पित्तवशादादौ ज्ञात्वा ततो भिषक् ॥ ७३ ॥ प्रदद्भेषजं शीतं तद्दोषविनिवृत्तये । तदा नूनं भवेन्मृत्युर्वातकोपेन भूयसा ॥ ३८ ॥

अर्थ-इसीप्रकार रोगीके देहमें वातजन्य रोग होय और वैद्यबुद्धिके भ्रमसे पित्तकी नाडी जानकर यदि उसरोगीको पित्तनाशक शीतल उपचार करे तो कहो अत्यंत शरद औषधसे रोगी शरदीके मारे मरेगा या बचेगा ? किंतु अवश्यही मरेगा ।

अत्याश्चर्यमिदं लोके वर्त्तते दृश्यतां यथा । वदन्त्येके दिनं रात्रिं केऽपि रात्रिदिनं तथा ॥ ३९ ॥ एवं स्वेच्छाभिलापेन स्वल्पलोभेन मानवाः । रोगिणां सुप्रियान्प्राणान्हरन्ति ज्ञानवर्जिताः ॥ ४० ॥

अर्थ–इस संसारमें अत्यंत आश्चर्यहै देखो कोई दिनको रात्रि और कोई रात्रिको दिन कहताहै । इसप्रकार अपनी अपनी इच्छानुसार बकतेहैं और ये मूर्ख वैद्य थोडेसे लोभके कारण रोगियोंके परमप्रिय प्राणोंको हरण करतेहै । कहो इनसे बढकर कौन पामरहै जो विना विचारे अनर्थ करतेहैं भाई यह वैद्यविद्या खेल नहींहै ।

अतएवं मया चित्ते सर्वमानीय तत्वतः । कथ्यते, नास्तिनास्तीह नाडीस्थानविचारणा ॥ ४१ ॥ किन्तु नाडीगतिः श्रेष्ठा शास्त्रकारैः प्रकीर्त्तिता । न च तत्राहि सन्देहो लेशमात्रोऽपि विद्यते ॥ ४२ ॥ तत्प्रकारोप्ययं ज्ञेयः सावधानत-

या किल। यथा स्पर्शजलौकादिगतिर्वातस्य गद्यते॥ ४३॥ न तत्र कुरुते कोऽपि पित्तश्लेष्मभवं भ्रमम् । कुलिङ्गकाकमण्डूकगतिः पित्तस्य कीर्त्यते॥ ४४ ॥ न तत्र कोऽपि कुरुते वातश्लेष्मभवं भ्रमम्। कपोतानां मयूराणां हंसकुक्कुटयोरपि॥ ४५॥ या गतिः सा च विज्ञेया कफस्यैव गतिर्नृभिः। न तत्र कोऽपि कुरुते वातपित्तभवं भ्रमम्॥ ४६॥

अर्थ--इन ऊपरकहेहुए सर्वकारणोंको अपने चित्तमें भलेप्रकार विचारकर हम कहतेहैं कि, नाडीके जो आदि मध्य और अंत्य ये स्थान किसीने कहेहैं सो नहीं हैं। तो क्याहै? इसलिये कहतेहैं कि, नाडी की जो गति है वो सत्यहै क्योंकि इसमें सर्वग्रंथकर्त्ताओंकी संमतिहै और इसमें लेशमात्रभी संदेह नहींहै, उसप्रकारको तुम सावधानताकरके सुनो, जैसे सर्प और जोककी गति वातकीहै इसमें कोई भ्रम नहीं करे कि, यह पित्तकी नाडीहै या कफकी उसीप्रकार कुलिग काक और मंडूककी गति पित्तकीहै इसमें वात तथा कफकी नाडीका कोई भ्रम नहीं करता, इसी प्रकार कपोत, मोर, हंस, और कुक्कुट इनकी जो गतिहै वह कफकीहै इसमें कोई यह नहीं कहे कि, ये गति कफकी नहींहै वातपित्तकी है, इसीसे हमारा तो यही सिद्धांतहै कि, नाडीके स्थान असत्य और गति सत्यहै।

वातादिकोंकीक्रमसेगति।

वाताद्वक्रगता नाडी चपला पित्तवाहिनी।
स्थिरा श्लेष्मवती ज्ञेया मिश्रिते मिश्रिता भवेत्॥ ४७॥

अर्थ-वात तिरछी वहतीहैं, अतएव वातकी नाडी टेढी चलतीहै, अग्नि चंचल हो ऊपरको जातीहै अतएव पित्तकी नाडी ऊपरकी तरफ बहतीहै और चपलहै, जल नीचेको जाताहै इसीसे प्रबल नहींहै अतएव कफकी नाडीभी स्थिरहै और जो मिश्रित नाडीहै उनकी गतिभी मिलीहुई होतीहै। इस्से यह दिखाया कि द्विदोषजमें दोदोषके चिह्न होतेहैं, त्रिदोषमें तीनों दोषोंके चिह्न होतेहैं, कदाचित् कोई प्रश्नकरे कि, एकही नाडी चपल और स्थिर कैसे होसकतीहै? इस्से कहतेहैं कि, समय भेद होनेसे दोनों गति होसकतीहै।

वातादिकी विशेषगति।

सर्पजलौकादिगतिं वदन्ति विबुधाः प्रभञ्जने नाडीम्।

पित्ते च काकलावकभेकादिगतिं विदुः सुधियः ॥ ४८ ॥
राजहंसमयूराणां पारावतकपोतयोः ।
कुक्कुटादिगतिं धत्ते धमनी कफसंवृता ॥ ४९ ॥

अर्थ–सर्प और जोखकी गति पंडित जन वातकी नाडीकी गति कहतेहैं, अर्थात् जैसे सर्प और जोख टेढे तिरछे होकर चलतेहैं उसीप्रकार वादीकी नाडी चलतीहै । आदि शब्दसे विच्छूकी गतिका ग्रहणहै । उसी प्रकार पित्तमें काक (कौआ) लावक (लवा) और भेक (मेंडका) की गतिके सदृश नाडी चलती है अर्थात् जैसे कौआ, लवा, और मेंडका भुदकते उछलते चलतेहैं उसी प्रकार पित्तकी नाडी चलतीहै । आदिशब्दसे कुलिंग और चिडा आदिकी गतिका ग्रहणहै । एवं राजहंस (वतक) मोर, खबुतर, कपोत (पिंडुकिया) और मुरगा इन पक्षियोंकीसी अर्थात् ये पक्षी जैसे मंदमंद गति चलतेहैं इसप्रकार कफकी नाडी चलतीहै । आदिशब्दसे हाथी और उत्तम स्त्रीकी चालका ग्रहण है अर्थात् जैसे हाथी और उत्तम स्त्री झूमती हुई मंदमंद चलतीहै इसी प्रकार कफकी नाडी चलती है ।

द्वंद्वजनाडीकी चाल ।

मुहुः सर्पगतिं नाडीं मुहुर्भेकगतिं तथा । वातपित्तद्वयोद्भूतां प्रवदन्ति विचक्षणाः ॥ ५० ॥ भुजगादिगतिश्चैव राजहंसगतिं धराम् । वातश्लेष्मसमुद्भूतां भाषन्ते तद्विदो जनाः ॥ ५१ ॥ मण्डूकादिगतिं नाडीं मयूरादिगतिं तथा । पित्तश्लेष्मसमुद्भूतां प्रवदन्ति महाधियः ॥ ५२ ॥

अर्थ–वारंवार सर्पगति (टेढी) और वारंवार मेंडकाकी गति (उछलती) नाडी चले उसको चतुरवैद्य वातपित्तकी नाडी कहतेहैं । तथा कभी सर्पगति और कभी राजहंसकी गतिसे नाडी चले उसको पंडितजन वातकफकी नाडी कहतेहैं । एवं कभी मेडक और कभी मोरकी चाल चले उस नाडीको पित्तकफकी बुद्धिवान् वैद्य कहतेहैं ।

प्रकारान्तर ।

वातेऽधिके भवेन्नाडी प्रव्यक्ता तर्जनीतले । पित्ते व्यक्ता मध्यमायां तृतीयाङ्गुलिगा कफे ॥ ५३ ॥ तर्जनी मध्यमा-

मध्ये वातपित्ताधिके स्फुटा । अनामिकायां तर्जन्यां व्यक्ता वातकफे भवेत् ॥ ९४ ॥ मध्यमानामिकामध्ये स्फुटा पित्तकफेऽधिके । अङ्गुलि त्रितयेऽपि स्यात्प्रव्यक्ता सान्निपाततः ॥ ९५ ॥

अर्थ–वाताधिक्य नाडी तर्जनीके नीचे चलतीहै । पित्तकी नाडी मध्यमा उंगलीके नीचे और कफकी नाडी तीसरी उंगली अर्थात् अनामिकाके नीचे चलतीहै । वातपित्तकी नाडी तर्जनी और मध्यमाके नीचे चलतीहै । वातकफकी नाडी अनामिका और तर्जनीके नीचे चलतीहै । मध्यमा और अनामिकाके नीचे पित्तकफाधिक नाडी चलतीहै । और तीनों उंगलियोंके नीचे सन्निपातकी नाडी गमन करतीहै ।

वक्रमुत्प्लुत्य चलती धमनी वातपित्ततः । वहेद्वक्रश्चमन्दश्च वातश्लेष्माधिकं त्वचः ॥ ९६ ॥ उत्प्लुत्य मन्दं चलति नाडी पित्तकफेऽधिके ।

अर्थ--वातपित्ताधिक्यसे नाडी टेढी और उछलती हुई चलतीहै । वातकफसे टेढी और मन्दगमनकरतीहै पितकफाधिक्यमें नाडी उछलीहुई मंद गमन करतीहै ।

त्रिदोषकीनाडी ।

उरगादिलावकादि हंसादीनाञ्च बिभ्रती गमनम् ॥ ९७ ॥ वातादीनाञ्च समं धमनी सम्बन्धमाधत्ते ।

अर्थ–वातादि त्रिदोषके समान होनेसे नाडी सर्प, लवा और हंस आदि पक्षियोंके समान गमन करतीहै समके कहनेसे न्यूनाधिक्यका त्यागहै यदि नाडी तीनों दोषोंकी क्रमसे चले तो असाध्य नहींहै ।

लावतित्तिरवार्ताकगमनं सन्निपाततः ॥ ९८ ॥ कदाचिन्मन्दगमना कदाचिच्छीघ्रगा भवेत्।त्रिदोषप्रभवे रोगे विज्ञेया हि भिषग्वरैः ॥ ९९ ॥

अर्थ–लवा तीतर और बटेरकी चाल नाडी सन्निपातके कोपसे करतीहै कभी मंदगमन करे, और कभी शीघ्रगमनकरे, ऐसी नाडी त्रिदोषजन्य रोगमें वैद्योंको जाननी चाहिये इस त्रिदोषमें पित्तके क्रमसे साध्यासाध्य

और कृच्छ्रसाध्य जानना अर्थात् अधिकपित्तसे साध्य, मध्यसे कष्टसाध्य, और पित्त सर्वथा नाडीमें न होय तो वह रोगी असाध्यहै ।

सामान्यतापूर्वकसुखसाध्यत्व ।

यदा यं धातुमाप्नोति तदा नाडी तथागतिः ।
तथा हि सुखसाध्यत्वं नाडी ज्ञानेन बुध्यते ॥ ६० ॥

अर्थ–नाडी जिसमय जिसधातुमें प्राप्तहोय उससमय यदि उसका प्रकृति अनुसार चलना होय तो पीडा सुखसाध्य ऐसे नाडीज्ञानकरके जानी जातीहै इसका निष्कृष्टार्थ यहहैं कि, अपराह्णादि कालमें वातोल्बणा नाडी प्रथम वातकी गति करके चले, फिर क्रमसे पित्त और कफकी चालचले, किंतु पित्तोल्बणा वातगतिसे न चले तो सुखसाध्य जाननी यदि इस्से विपरीत होय तो विपरीत अर्थात् असाध्य जाननी जैसे किसीने कहाहै " नाडी यथा कालगतिस्त्रयाणां प्रकोपशान्त्यादिभिरेव भूयः" ।

असाध्यत्व ।

मन्दं मन्दं शिथिलशिथिलं व्याकुलं व्याकुलं वा
स्थित्वा स्थित्वा वहति धमनी याति नाशं च सूक्ष्मा ।
नित्यं स्थानात्स्खलति पुनरप्यंगुलिं संस्पृशेद्वा
भावैरेवं बहुविधविधैः सन्निपातादसाध्या ॥ ६१ ॥

अर्थ–जो नाडी कभी प्रखरतारहित मंदमंद गमन करे, कभी स्खलित भावसे कभी व्याकुल व्याकुलवत् [जैसे त्रासित मनुष्य चलताहै) कभी ठहर ठहरके चले और जो संपूर्ण रूपसे लुप्तहोजाय अथवा बहुत सूक्ष्म वहे अर्थात् यह प्रतीत नहोय कि, यह नाडी चलेहै या नहीं चले और जो नित्यस्थान अर्थात् अंगुष्ठमूलको परित्याग करदे, इसीप्रकार कुछकालमें फिर अपने स्थानमें प्रगटहोय उंगलियोंको आघातकरे, ऐसे अनेक प्रकारके भावोंकरके नाडीको मृत्युकी कारण जाननी ।

महादाहेऽपि शीतत्वं शीतत्वे तापिता शिरा ।
नानाविधगतिर्यस्य तस्य मृत्युर्न संशयः ॥ ६२ ॥

अर्थ–जिस प्राणीके देहमें अत्यंत ताप होय परंतु नाडी शीतल होय, एवं देह अत्यंत शीतल होय और नाडी उष्ण प्रतीतहो, तथा जिसनाडीकी अनेकप्रकारकी गति होय उसरोगीकी निश्चय मृत्यु होय, इस श्लोकमें महाशब्द पित्तकृत दाहके निवारणार्थहै ।

त्रिदोषे स्पन्दते नाडी मृत्युकालेऽपि निश्चला ॥ ६३ ॥

अर्थ-सन्निपातावस्थामें मृत्युकालमेंभी नाडी सामान्य भावसे चलतीहै क्योंकी अतिसारादि रोगोंमें हाथपैरमें स्वेदादिक करनेसे नाडीका तडफना प्रतीत होताहै।

पूर्वं पित्तगतिं प्रभञ्जनगतिं श्लेष्माणमाबिभ्रतीम्
स्वस्थानभ्रमणं मुहुर्विदधतीं चक्रादिरूढामिव।
तीव्रत्वं[1] दधतीं कलापिगतिकां सूक्ष्मत्वमातन्वतीं
नो साध्यां धमनीं वदन्ति सुधियो नाडीगतिज्ञानिनः ॥६४॥

अर्थ-प्रथम पित्तगतिसे चले (अर्थात् प्रथम वातगति चलना चाहिये सो त्यागदे यह विपरीत क्रम दिखाया) फिर बातगति और फिर कफकी गति-से चले तथा अपने स्थानको छोड वारंवार अनेक प्रकारसे चक्र (चाक) पर बैठ चाकफेरीके सदृश भ्रमणकरे, कभी तीव्रवेगसे चले और कभी मोरकी गतिके समान उत्तरोत्तर मंद पडजावे ऐसी नाडीको नाडीके ज्ञाता साध्य नहींकहते किंतु असाध्य कहतेहैं।

यात्युच्चा च स्थिरात्यन्ता या चेयं मांसवाहिनी।
या च सूक्ष्मा च वक्रा च तामसाध्यां विदुर्बुधाः ॥ ६५ ॥

अर्थ-जो नाडी अत्यंत ऊंची, अत्यंत स्थिर, और जो मांसवाहिनी कहि-ये मांसाहारकरनेसे जैसी चले ऐसी चलने लगे और जो अत्यंत सूक्ष्म और टेढीहो उसको वैद्यजन असाध्य कहतेहैं।

असाध्यनाडीकापरिहार।

भारप्रवाहमूर्च्छाभयशोकप्रमुखकारणान्नाडी।
संमूर्च्छितापि गाढं पुनरपि सा जीवनं धत्ते ॥ ६६ ॥

अर्थ-अत्यंत बोझाके उठानेसे, अथवा विषवेग धाराकेबहनेसे, रुधिर देख-नेके कारण जो मूर्च्छित होगयाहो राक्षसादि दर्शनकरके भयभीततासे धनपु-त्रादि नष्टहोनेके शोकसे जो नाडी अत्यंत स्पन्दरहितभी होगईहो वो फिर भी साध्यताको प्राप्त होतीहै कोई "भावप्रवाह" ऐसा पाठमानताहै सो असत्है।

पतितः सन्धितो भेदी नष्टशुक्रश्च यो नरः।
शाम्यते विस्मयस्तस्य न किञ्चिन्मृत्युकारणम् ॥ ६७ ॥

---

१ भीमत्वंदधतीं कदाचिदपि वा इति पाठांतरम् ॥

अर्थ–जो उच्चस्थानादिसे गिराहो, हड्डी आदिके जोडनेसे अतिसार रोग वाला, जिसके यक्ष्मा आदि रोगके कारण अथवा रमणकरनेके कारण शुक्रक्षीण होगयाहो, ऐसे मनुष्योंकी यदि नाडी अत्यंत क्षीणभी होगईहो तथापि मृत्युका कारण नहींहै, अर्थात् असाध्यके विस्मयको दूरकरेहै ।

तथा भूताभिषङ्गेऽपि त्रिदोषवदुपस्थिता । समाङ्गा वहते नाडी तथाच न क्रमंगता । अपमृत्युर्नरोगाङ्गा नाडीतत्सन्निपातवत् ॥ ६८ ॥

अर्थ–एवं भूताभिषंग अर्थात् भूतप्रेतबाधामें यदि नाडी सन्निपातके सदृश चले तथा वह नाडी वातपित्त कफ स्वभाव क्रमवालीहो किंतु वे क्रम न होय तौ उस सन्निपातके सदृश नाडीसेभी मृत्युका भय नहींहै ।

स्वस्थानहीने शोके च हिमाक्रान्ते च निर्गदाः ।
भवन्ति निश्चला नाड्यो न किञ्चित्तत्र दूषणम् ॥ ६९ ॥

अर्थ–उच्चस्थानसे गिरनेसे शोक और हिम (बर्फ कोहल आदिकी शरदी)से यदि नाडी निश्चल होय फिरभी प्रगट होय इस्से मृत्यु शंकाका भय नहींहै । इस श्लोकमें "निर्गदा" जो पदहै सो असंगतहै । क्योंकि निर्गदा नाडीभी निश्चला होतीहै ।

स्तोकं वातकफं जुष्टं पित्तं वहति दारुणम् ।
पित्तस्थानं विजानीयाद्भेषजं तस्य कारयेत् ॥ ७० ॥

अर्थ–किंचिन्मात्र वातकफयुक्त और पित्त जिसमें प्रबल होय तो उस रोगीका यत्न करना चाहिये, वो असाध्य नहींहै ।

स्वस्थानच्यवनं यावद्धमन्या नोपजायते ।
तावच्चिकित्सा[1] सत्वेऽपि नासाध्यत्वामिति स्थितिः ॥ ७१ ॥

अर्थ–जबतक नाडी स्वस्थान कहिये अंगुष्ठमूलसे च्युत न होय, तावत्कालतक चिकित्सा करे यह असाध्य नहींहै ।

प्रसङ्गवशकालनिर्णय कहतेहैं ।

भूलता भुजगाकारा नाडी देहस्य संक्रमात् ।
विशीर्णा क्षीणतां याति मासान्ते मरणं भवेत् ॥ ७२ ॥

अर्थ–कभी नाडी कैंचुऐके सदृश कृश और टेढी चले, कभी सर्पके समान

---

१ तत्स्थाचिह्नस्य सत्वेपीति पाठान्तरम् ।

पुष्ट बलयुक्त और तिरछी चले, तथा कभी अलक्ष और अति कृशता पूर्वक गमनकरे एवं कभी देह सूजन आदिसे स्थूल होजावे और कभी कृशहो जाय तो वह रोगी दूसरे महिनेमें मरे।

क्षणाद्गच्छति वेगेन शांततां लभते क्षणात्।
सप्ताहान्मरणं तस्य यद्यङ्गे शोथवर्जितः॥ ७३॥

अर्थ–कभी नाडी जल्दी चले कभी चलनेसे रहि जावे और देहमें शोथ होय नहीं, तो उस प्राणीकी सातदिनमें मृत्यु होय।

निरीक्षा दक्षिणे पादे तदा चैषा विशेषतः।
मुखे नाडी वहेन्नित्यं ततस्तु दिनतुर्यकम्॥ ७४॥

अर्थ–पुरुषके दहने पैरमें और स्त्रीके वामपैरमें यदि नाडी विशेष संचारकरे तथा आदिमें नित्य नाडी चले तो वह रोगी चारदिन जीवे। आदिशब्दसे इस जगे तर्जनी ऊंगली जाननी।

हिमवद्विशदा नाडी ज्वरदाहेन तापिनाम्।
त्रिदोषस्पर्शभजतां तदा मृत्युर्दिनत्रयात्॥ ७५॥

अर्थ--सन्निपात ज्वर दाहसे संतप्त रोगीकी नाडी यदि शितल और निर्मल होय तो वह रोगी तीन दिनमें मरे।

गतिन्तु भ्रमरस्येव वहेदेकादिनेन तु।
कन्देन स्पन्दते नित्यंपुनर्लगति नाङ्गुलौ॥ ७६।

अर्थ–जिस प्राणीकी नाडी भ्रमरके सदृश गमन करे अर्थात् जैसे भौंरा कुछ दूर उडकर चला जाताहै और फिर उसीजगे आय जाताहै इस प्रकार नाडी चलनेसे उसकी एकदिनमें मृत्यु होय।

मरणे डमरूकारा भवेदेकादिने न तु।

अर्थ–मरणमें नाडी डमरूके आकार होतीहै, वो १ दिनमें मरे।

दृश्यते चरणे नाडी करे नैवाधि दृश्यते।
मुखं विकसितं यस्य तं दूरात्परिवर्जयेत्॥ ७७॥

अर्थ–जिसके चरणमें नाडी प्रतीत होय और हाथमें न मालुमहो, तथा जिसका मुख खुलगयाहो उसे वैद्य त्यागदेय।

वातपित्तकफाश्चापि त्रयो यस्यां समाश्रिताः।
कृच्छ्रसाध्यामसाध्यां वा प्राहुर्वैद्यविशारदाः॥ ७८॥

अर्थ-जिसकी नाडीमें वातपित्त और कफ यै तीनोंदोष होय उसरोगीको बुद्धिवान् वैद्य कृच्छ्रसाध्य अथवा असाध्य कहतेहैं ।

शीघ्रा नाडी मलोपेता शीतला वाथ दृश्यते ।
द्वितीयदिवसे मृत्युर्नाडीविज्ञातृभाषितम् ॥ ७९ ॥

अर्थ-जिस रोगीकी नाडी बहुधा मलदूषित होकर शीघ्र चले, किंवा शीतल प्रतीतहो उस रोगीकी दूसरे दिन मृत्युहोय, इस प्रकार नाडीज्ञान पारंगत वैद्योंने कहाहै ।

मुखे नाडी वहेत्तीव्रा कदाचिच्छीतला वहेत् ।
आयाति पिच्छलस्वेदः सप्तरात्रं न जीवति ॥ ८० ॥

अर्थ-वातनाडी तीव्रगति, तथा कभी मंदबहे तथा अंगमेंसे गाढा पसीना निकले तो वह रोगी सातरात्रि नहीं बचे ।

देहे शैत्यं मुखे श्वासो नाडी तीव्रा विदाहिनी ।
मासार्धं जीवितं तस्य नाडीविज्ञातृभाषितम् ॥ ८१ ॥

अर्थ-शरीरमें शीतलता, मुखसे अत्यंत श्वास छोडे,तथा नाडी तीव्र दाहयुक्त चले, उसका अर्धमास आयुष्यहै, ऐसे नाडीज्ञाताओंने कहाहै ।

मुखे नाडी यदा नास्ति मध्ये शैत्यं बहिः क्लमः ।
यदा मन्दा वहेन्नाडी त्रिरात्रं नैव जीवति ॥ ८२ ॥

अर्थ-जिस कालमें वातनाडी चले नहीं अंतर्गत शीतहो तथा बाहर ग्लानीहो कर मंदमंद नाडी चले तो वह रोगी तीनरात्रि नहीं जीवे ।

अतिसूक्ष्मातिवेगा च शीतला च भवेद्यदि ।
तदा वैद्यो विजानीयात्स रोगी त्वायुषः क्षयी ॥ ८३ ॥

अर्थ--जिस कालमें नाडी अति सूक्ष्म किंवा अतिवेगवान् और शीतल वहे तो रोगी क्षीण आयुहै ऐसे वैद्य जाने

विद्युद्द्रोगिणां नाडी दृश्यते न च दृश्यते ।
अकालविद्युत्पातेव स गच्छेद्यमसादनम् ॥ ८४ ॥

अर्थ- जिस रोगीकी नाडी कभी२बिजलीके समान फडकजावे और फिर अस्तहो जावे, वो रोगी अकस्मात् जैसे बिजली गिरतीहै, इसप्रकार रोगी यमराजके घर जाय ।

तिर्यगुष्णा च या नाडी सर्पगा वेगवत्तरा ।
कफपूरितकंठस्य जीवितं तस्य दुर्लभम् ॥ ८५ ॥

अर्थ--नाडी उष्ण वक्रगति तथा सर्पके समान बहुत वेगवानहो, तथा कंठ कफसे घिरजावे ऐसा रोगीका जीवन दुर्लभ जानना ।

चला चलितवेगा च नासिका धारसंयुता ॥
शीतला दृश्यते या च याममध्येच मृत्युदा ॥ ८६ ॥

अर्थ--जिसकी नाडी कांपनेवाली तथा चंचल नासिकाके श्वासोच्छ्वासके आधारसे चलने वाली और शीतल ऐसी प्रतीतहो वो रोगी एकप्रहरमें मरे ऐसा जानना ।

शीघ्रा नाडी मलोपेता मध्याह्नेग्निसमो ज्वरः ।
दिनैकं जीवितं तस्य द्वितीयेऽह्नि म्रियेत सः ॥ ८७ ॥

अर्थ-जिस रोगीकी त्रिदोषयुक्त नाडी बहुतजल्दी चले, तथा जिसको मध्याह्नमें अग्निके समान ज्वर आवे, उस रोगीकी आयु एकदिनकीहै दूसरे दिन मृत्यु होय ।

स्कन्देन स्पन्दते नित्यं पुनर्लगति नाङ्गुलौ ।
मध्ये द्वादशयामानां मृत्युर्भवति निश्चितम् ॥ ८८ ॥

अर्थ-जो नाडी अपने मूलस्थानमें फडके नहीं और उंगलियोंका स्पर्श न करे उसकी बारह प्रहरमें मृत्युहोय, ऐसा जानना ।

स्थित्वा नाडी मुखे यस्य विद्युद्द्युतिरिवेक्षते ।
दिनैकं जीवितं तस्य द्वितीये म्रियते ध्रुवम् ॥ ८९ ॥

अर्थ-जिस रोगीकी नाडी मूलस्थानके अग्रभागमें ठहरकर बिजलीके सदृश तडफजावे वह एकदिन जीवे, दूसरे दिन निश्चय मरे ।

स्वस्थानविच्युता नाडी यदा वहति वा न वा ।
ज्वाला च हृदये तीव्रा तदा ज्वालावधि स्थितिः ॥ ९० ॥

अर्थ-जिस रोगीकी नाडी अपने स्थानसे विच्युतहो (छूट) कर कभी चले कभी नहीं चले और हृदयमें तीव्र दाह होय तो जबतक हृदयमें ज्वालाहै तावत्काल रोगीका जीवन है ।

अङ्गुष्ठमूलतो बाह्ये द्व्यंगुले यदि नाडिका।
प्रहरार्द्धाद्बहिर्मृत्युं जानीयाच्च विचक्षणः॥ ९१॥

अर्थ-अंगुष्ठमूल अर्थात् तर्जनी उंगली धरनेके स्थलमें यदि नाडीकी गति प्रतीत नहो, केवल मध्यमा और अनामिका इन दो अंगुलीसे प्रतीत होय तो उस रोगीकी ।र्ध प्रहरके उपरांत मृत्यु होय।

सार्द्धद्वयाङ्गुलाद्बाह्ये यदि तिष्ठति नाडिका।
प्रहरैकाद्बहिर्मृत्युं जानीयाच्च विचक्षणः॥ ९२॥

अर्थ-नाडी मूलस्थानसे २॥ अंगुल अंतर अर्थात् यदि केवल अनामिकाके शेषार्द्ध मात्रमें फडके उसकी प्रहरउपरांत अर्थात् दूसरे प्रहरमें मृत्युहोय।

पादाङ्गुलगता नाडी चञ्चला यदि गच्छति।
त्रिभिस्तु दिवसैस्तस्य मृत्युरेव न संशयः॥ ९३॥

अर्थ-यदि नाडी तर्जनीको सर्वांश और मध्यमा ऊंगलीके चतुर्थांशमें व्याप्तहो प्रतीति होवे और मध्यमाके अवशिष्ट पादत्रय और अनामिकाके सर्वांशमें न प्रतीत होय तो उस रोगीकी तीनदिनमें मृत्यु होय।

पादाङ्गुलगता नाडी कोष्णा वेगवती भवेत्।
पञ्चभिर्दिवसैस्तस्य मृत्युर्भवति नान्यथा॥ ९४॥

अर्थ--नाडी पूर्ववत् तर्जनी और मध्यमाके चतुर्थांशमें व्यापकहो जल्दी जल्दी चले और किंचिन्मात्र गरम प्रतीतहोय तो उसरोगीकी चारदिनमें निश्चय मृत्युहोय।

पादाङ्गुलगता नाडीमन्दमन्दा यदा भवेत्।
पञ्चभिर्दिवसैस्तस्य मृत्युर्भवति नान्यथा॥ ९५॥

अर्थ-नाडी पूर्ववत् समग्र तर्जनी और मध्यमाके चतुर्थांशमें व्याप्तहो मन्द मन्द चले तो उसरोगीकी पांचवे दिन मृत्युहोय।

नाडी द्वारा आयुका ज्ञान।

वामनाडी दीर्घरेखा बाहुमूले च स्पन्दते।
जीवेत्पञ्चशतं वर्षं नात्र कार्या विचारणा॥ ९६॥

अर्थ-जिस रोगीकी वामनाडी दीर्घरेखाके आकारसे भुजाकी जडमें तडफे वो १०५ वर्षजीवे इसमें संदेह नहीं।

दीर्घाकारा वामनाडी कर्णमूले च स्पन्दते।
जीवेत्पञ्चशतं सार्द्धं धनिको धार्मिको भवेत् ॥ ९७ ॥

अर्थ--जिसकी वामनाडी आकारमें लंबी होकर कानकी जडमें प्रतीत होय वह सार्धपंचशतवर्ष जीवे और धनिक तथा धार्मिक होय।

वामनाडी स्वल्परेखा हनुमूले च स्पन्दते।
पञ्चवर्षाधिकञ्चैव जीवनं नात्रसंशयः ॥ ९८ ॥

अर्थ–जिसकी वामनाडी स्वल्परेखामें हो ठोडीकी जडमें तडफे वो पांच वर्ष अधिक जीवे इसमें संदेह नहीं।

नाडीद्वारा भोजनका ज्ञान।

पुष्टिस्तैलगुडाहारे मांसे च लगुडाकृतिः। क्षीरे च स्तिमिता वेगा मधुरे भेकवद्गतिः ॥ ९९ ॥ रम्भागुडवटाहारे रूक्षशुष्कादिभोजने। वातपित्तार्त्तिरूपेण नाडी वहति निष्क्रमम् ॥ १०० ॥

अर्थ--तैल और गुडके खानेसे नाडी पुष्ट प्रतीत होतीहै, मांसके खानेसे नाडी लकडीके आकार चलतीहै, दूधपीनेसे मंदगतिसे चलतीहै। मधुरआहारसे नाडी मेंडकके समान चलतीहै केला, गुड, वडा, रूक्षवस्तु, और शुष्क द्रव्यादि भोजनसे जैसी वातपित्तरोगमें नाडी चलतीहै उस प्रमाण चलेहै।

अथ रसज्ञानम्।

मधुरे बर्हिगमना तिक्ते स्याद्धूलतागतिः[1]। अम्ले कोष्णात्प्लवगतिः कटुके भृंगसन्निभा ॥ १०१ ॥ कषाये कठिना म्लाना[2] लवणे सरला द्रुता। एवं द्वित्रिचतुर्योगे नाना धर्मवती धरा ॥ १०२ ॥

अर्थ–मिष्ट पदार्थ भक्षणसे नाडी मोरकीसी चाल लचतीहै कडुई द्रव्य भक्षणसे स्थूलगति, खट्टे पदार्थ खानेसे कुछ उष्ण और मेंडकाकीगति होतीहै, चरपरी द्रव्य खानेसे भौंराके आकार गति होतीहै, कसेली द्रव्य खानेसे नाडी कठोर और म्लान होतीहै. निमकीन पदार्थ खानेसे सरल (सीधी) और जल्दी चलने वाली होतीहै, इसीप्रकार भिन्न भिन्न रसके

१ तिक्ते स्यात्स्थूलता गते। २ कषाये कठिनाम्लावा इति वा पाठः।

एकही समय सेवन करनेसे नाडी अनेकप्रकारकी गतिवाली होतीहै ।

अम्लैश्च मधुराम्लैश्च नाडी शीता विशेषतः । चिपिटैर्भृ-ष्टद्रव्यैश्च स्थिरा मन्दतरा भवेत् ॥१०३॥ कूष्माण्डमूल-कैश्चैव मन्दमन्दा च नाडिका । शाकैश्च कदलैश्चैव रक्तपू-र्णेवनाडिका ॥ १०४ ॥

अर्थ–खट्टे पदार्थ अथवा मधुराम्ल (मिष्ट और खट्टामिला) भोजनसे नाडी शीतल होतीहै, चिरवा और भुनीहुई (चना, वोहरी) द्रव्य भक्षणसे नाडी स्थिर और मंदगति चलतीहै पेडा मूली अथवा कंदपदार्थके भक्षणसे नाडी मंद मंद चलतीहै शाक (पत्रपुष्पादिकका) और केलेकी फली भक्षण करनेसे नाडी रक्तपूर्णके सदृश चलेहै ।

मांसात्स्थिरवहा नाडी दुग्धे शीता बलीयसी । गुडैः क्षीरैश्च पिष्टैश्च स्थिरा मन्दवहा भवेत् ॥ १०५ ॥ द्रवेऽतिकठिना नाडी कोमला कठिनापि च । द्रवद्रव्यस्य काठिन्ये को-मला कठिनापि च ॥ १०६ ॥

अर्थ--मांस भक्षणसे नाडी मंदगामिनी होतीहै, दूधके पीनेसे नाडी शीतल और बलवती होतीहै, तथा गुड, दूध, और पिष्टपदार्थ (चूनके, पिट्ठी आदिके पदार्थ) भक्षणसे नाडी चंचलतारहित मंदगामिनी होतीहै, द्रवपदार्थ (कढी, पने, श्रीखंडआदि) भोजनसे नाडी कठिन होतीहै और कठोर (लड्डू, सुहार, आदि) से नाडी कोमल होतीहै यदि द्रवपदार्थ कुछ कठोर होयतो नाडी कोमल और कठोर उभय स्वभाववती होतीहै ।

उपवासाद्भवेत्क्षीणा तथा च द्रुतवाहिनी ।
संभोगान्नाडिका क्षीणा ज्ञेया द्रुतगतिस्तथा ॥१०७॥

अर्थ–उपवास (निराहार) से नाडी क्षीण और शीघ्रवाहिनी होतीहै एवं स्त्रीसंभोगसे नाडी क्षीण और शीघ्र चलनेवाली होतीहै ।

कुपथ्यवसनाडीकीचाल ।

उष्णत्वं विषमावेगा ज्वरिणां दधि भोजना ॥ १०८ ॥

अर्थ–यदि ज्वरवान् पुरुष दही खाय तो उसकी नाडी गरम और विषम-वेगवती होतीहै ।

इति श्रीमाथुरकृष्णलालाङ्गजदत्तरामेणसङ्कलिते नाडीदर्पणे द्वितीयावलोकः ॥ २ ॥

अब इसके उपरांत कितनेक रोगोंके नाडीकी जैसी अवस्था होतीहै उसको लिखतेहैं तहाँ, रोगनिरूपणमें प्रधानता करके प्रथम ज्वरनिरूपण करतेहै।

ज्वरके पूर्वरूपमें।

अङ्गग्रहेण नाडीनां जायन्ते मंथराः प्लवाः।
प्लवः प्रबलतां यातिज्वरदाहाभिभूतये ॥ १ ॥
सान्निपातिकरूपेण भवन्ति सर्ववेदनाः।

अर्थ-ज्वर आनेवाली अवस्थाके कितनेक क्षण पहिले अंगमें पीडा होने लगे, नाडी मंथर (मंद) भावसे मेंडकाकी चाल चलने लगे तथा दाह ज्वरकी पूर्वावस्थाके वा धारामें वहनेवाले मेंडकाके समान तथा सांनिपातिक ज्वरकी पूर्व अवस्थाके प्रमाण नाना आकृतिसे गमन करे।

ज्वरके रूपमें।

ज्वरकोपेन धमनी सोष्णा वेगवती भवेत् ॥ २ ॥

अर्थ-जिस कालमें इसप्राणीको ज्वर चढआताहै उस समय नाडी गरम और वेगवती होतीहै।

ऊष्मा पित्ताद्दते नास्ति ज्वरो नास्त्युष्मणा विना।
उष्णा वेगधरा नाडी ज्वरकोपे प्रजायते ॥ ३ ॥

अर्थ-विना पित्तके गरमी नहीं और विनागरमीके ज्वर नहीं होता अत-एव ज्वरके वेगमें नाडी गरम और वेगवान् होतीहै।

ज्वरे च वक्रा धावन्ती तथा च मारुतः प्लवे।
रमणान्ते निशि प्रातस्तथा दीपशिखा यथा ॥ ४ ॥

अर्थ-ज्वरके कोपमें और बादीमें नाडी टेढी और दौडती चलतीहै, तथा मैथुनकरनेंके पिछाडी रात्रिमें और प्रातःकालमें नाडी दीपशिखाके समान मंद गमन करतीहै।

वातज्वरे।

सौम्या सूक्ष्मा स्थिरा मन्दा नाडी सहजवातजा।
स्थूला च कठिना शीघ्रा स्पन्दते तीव्रमारुते ॥ ५ ॥
वक्रा च चपला शीतस्पर्शा वातज्वरे भवेत्।

अर्थ-स्वाभाविक वायुके द्वारा नाडी कोमल, सूक्ष्म, स्थिर, और मंद

वेगवाली होतीहै तीव्रवायु द्वारा नाडीस्थूल, कठिन, तथा जल्दी चलनेवाली होतीहै और वातज्वरमें टेढी, चपल, तथा शीतल स्पर्शवान् नाडी होती है ।

द्रुता च सरला दीर्घा शीघ्रा पित्तज्वरे भवेत् ।
शीघ्रमाहननं नाड्याः काठिन्याच्चलते तथा ॥ ६ ॥

अर्थ–पित्तज्वरमें नाडी शीघ्र चलनेवाली, सरल, दीर्घ और कठिनताके साथ शीघ्र फडकनेवाली होतीहै ।

नाडी तन्तुसमा[1] मन्दा शीतला श्लेष्मदोषजा ।
मलाजीर्णे नातितरां स्पन्दनं च प्रकीर्तितम् ॥ ७ ॥

अर्थ–कफके प्रकोपमें नाडी तंतुवत् सूक्ष्म, मंद वेगवाली और शीतल होती है । और मलाजीर्णमें अत्यंत नहीं फडकती ।

द्वंद्वजनाडी ।

चञ्चला[2] तरला स्थूला कठिना वातपित्तजा । ईषच्च दृश्यतेतूष्णा मन्दा स्याच्छ्लेष्मवातजा ॥ ८ ॥ निरंतरं खरं रूक्षं मन्दश्लेष्मातिवातलम् । रूक्षवाते भवेत्तस्य नाडी स्यात्पित्तसन्निभा ॥ ९ ॥ सूक्ष्मा शीता स्थिरा नाडी पित्तश्लेष्मसमुद्भवा ॥ १० ॥

अर्थ–वातपित्तकी नाडी चञ्चल, तरल, स्थूल, और कठोर होतीहै । वातकफकी नाडी कुछ गरम और मंदगामिनी होतीहै । जिस नाडीमें किंचिन्मात्र कफ और अधिक वात होतीहै । वह अत्यंत खर और रूक्ष होतीहै । जिसके नाडीमें वायूका अत्यंत कोप होय उसकी पित्तके सदृश अर्थात् अत्यंत वक्र और अत्यंत स्थूल होय, पित्तकफ ज्वरमें नाडी सूक्ष्म शीतल और मन्दवेगवाली होतीहै ।

रुधिरकोपजनाडी ।

मध्ये करे वहेन्नाडी यदि सन्तापिता ध्रुवम् ।
तदा नूनं मनुष्यस्य रुधिरापूरितामलाः ॥ ११ ॥

---

१ मंदाच सुस्थिरा शीता पिच्छला श्लेष्मिणोर्भवेत् इति पाठांतरम् ।

२ वक्रा च ईषचपला कठिना वातपित्तजा इति पाठान्तरम् ।

अर्थ--मध्य करमें अर्थात् मध्यमांगुलीनिवेशस्थलमें नाडी संतापित होकर तडफे तो जानेकि वातादि दोषत्रय रक्तप्रकोपकरके परिपूर्णहै। अर्थात् रुधिरसे दूषितहै।

आगन्तुकरूपभेदमाह।

भूतज्वरे सेक इवातिवेगाद्धावन्ति नाड्यो हि यथाब्धिगामाः।

अर्थ--भूतज्वरमें नाडी अत्यंत वेगसे चलतीहै, जैसे समुद्रमें जानेवाली नदियोंका प्रवाह वेगसे चलताहै।

तथा।

एकाहिकेन क्वचन प्रदूरे क्षणान्तगामा विषमज्वरेण ॥ १२ ॥
द्वितीयके वाथ तृतीयतुर्य्यें गच्छन्ति तप्ता भ्रमिवत् क्रमेण १३॥

अर्थ -एकाहिकज्वरमें नाडी सरलमार्गको त्यागकर क्षणक्षणमें पार्श्वगामिनी होतीहै तथा द्वितीय, तृतीय (तिजारी) और चातुर्थनामक विषमज्वरमें उष्ण होकर इतस्ततो धावमाना होतीहै।

अन्यत्रापि।

उष्णवेगधरा नाडी ज्वरकोपे प्रजायते। उद्वेगक्रोधकामेषु भयचिन्ताश्रमेषुच। भवेत्क्षीणगतिर्नाडीज्ञातव्या वैद्यसत्तमैः ॥ १४ ॥

अर्थ–गरम और वेगवान् नाडी ज्वरके कोपमें होतीहै उद्वेग, क्रोध, काम, बाधा, भय, चिन्ता और श्रम इनमें नाडी क्षीणगतिवाली होतीहै अर्थात् मंद मंद गमन करतीहै।

प्रसङ्गादाह।

व्यायामे भ्रमणे चैव चिन्तायां श्रमशोकतः।
नाना प्रभावगमना शिरा गच्छति विज्वरे ॥ १५ ॥

अर्थ--व्यायाम (दंडकसरत) करनेसे, डोलनेसे, चिंता, श्रम, और शोकसे एवं ज्वररहित मनुष्यकी नाडी अनेकप्रभावसे गमन करतीहै।

अजीर्णरूपमाह।

अजीर्णे तु भवेन्नाडी कठिना परितो जडा।
प्रसन्ना च द्रुता शुद्धा त्वरिता च प्रवर्तते ॥ १६ ॥

अर्थ- आमाजीर्ण और पक्वाजीर्ण दोनोंमें नाडी कठोर और दोनोंपार्श्वोंमें जड होतीहै इसीप्रकार कभी निर्मल निर्दोष तथा शीघ्रवेगवती होतीहै।

तत्र विशेषमाह ।

पक्वाजीर्णे पुष्टिहीना मन्दं मन्दं वहेज्जडा ।
असृक्पूर्णा भवेत्कोष्णा गुर्वी सामा गरियसी ॥ १७ ॥

अर्थ--पक्वाजीर्णमें नाडी पुष्टतारहित मंद मंद चलतीहै। तथा भारीहोतीहै एवं रुधिरकरके परिपूर्णनाडी गरम भारी होतीहै और आमवातकी नाडी भारी होतीहै ।

लघ्वी भवति दीप्ताग्नेस्तथा वेगवती मता ।
मन्दाग्नेः क्षीणधातोश्च नाडी मन्दतरा भवेत् ।
मग्नेऽग्नौ क्षीणतां याति नाडी हंसाकृतिस्तथा ॥ १८ ॥

अर्थ-दीप्ताग्निवाले मनुष्यकी नाडी हलकी और वेगवती होतीहै, मंदाग्नि वालेकी और क्षीणधातुकपुरुषकी नाडी मंदतर होतीहै, इसीप्रकार जिस मनुष्यकी जठराग्नि सर्वथा मंदहोगईहो उसकी नाडी हंसके समान अतिशयमंद होतीहै ।

आमाश्रमे पुष्टिविवर्धनेन भवन्ति नाड्यो भुजगाग्रमानाः ।
आहारमांद्यादुपवासतो वा तथैव नाड्योऽग्रभुजाभिवृत्ताः॥१९॥

अर्थ--आम, और परिश्रम न करनेसे तथा देहमें अत्यंत पुष्टता होनेसे नाडी सर्पके अग्रभागके सदृश होतीहै इसीप्रकार थोडा भोजन करनेसे या उपवास करनेसे नाडी भुजाके अग्रभागमें सर्पके अग्रभाग समान होतीहै ।

ग्रहणीरोगे ।

पादे च हंसगमना करे मंडूकसंप्लवा ।
तस्याग्निर्मन्दता देहे त्वथवा ग्रहणीगदे ॥ २० ॥

अर्थ-जिसकी पैरकी नाडी हंसके समान और हाथकी नाडी मेंडकाके समान चले उसके देहमें मंदाग्निहै अथवा संग्रहणी रोगहै ऐसा जानना।

भेदेन शान्ता ग्रहणीगदेन निर्वीर्यरूपा त्वतिसारभेदे ।
विलम्बिकायां प्लवगा कदाचिदामातिसारे पृथुता जडा च॥२१॥

अर्थ--संग्रहणीका दस्तहोनेके उपरांत नाडी शांतवेगा होतीहै, अतिसाररोगका दस्तहोनेके उपरांत नाडी सर्वथा बलहीन होजातीहै विलंबिकारोगमें नाडी मेंडकाके तुल्य चलतीहै इसीप्रकार आमातिसारमें नाडी स्थूल और जडवत् होतीहै ।

विषूचिकाज्ञानम्।

निरोधे मूत्रशकृतोर्विड्ग्रहे त्वितराश्रिताः।
विषूचिकाभिभूते च भवन्ति भेकवत्क्रमाः॥ २२॥

अर्थ--केवल मल वा केवल मूत्र अथवा मलमूत्र दोनों येसाथ बंद होजावे वा इच्छापूर्वक इनके वेगको रोकनेसे एवं विषूचिका रोगमें नाडीकी गति मैंडकाकी चालके समान होतीहै।

आनाहमूत्रकृच्छ्रे।

आनाहे मूत्रकृच्छ्रे च भवेन्नाडीगरिष्ठता।

अर्थ-आनाह (अफरा) और मूत्रकृच्छ्र रोगमें नाडी गुरुतर अर्थात् भारी होतीहै।

शूलरोगे।

वातेन शूलेन मरुत्प्लुवेन सदैव वक्रा हि शिरा वहन्ती।
ज्वालामयी पित्तविचेष्टितेन साध्यान शूलेन च पुष्टिरूपा२३

अर्थ-वायुशूलमें और वायुके प्रखरतानिबंधनमें नाडी सदैव अत्यंत टेढी चलतीहै। पित्तके शूलमें यह अतिशय गरम होतीहै। और आमशूलमें पुष्टियुक्तहोतीहै।

प्रमेहज्ञानम्।

प्रमेहे ग्रन्थिरूपा सा सुतप्ता त्वामदूषणे।

अर्थ-प्रमेह रोगमें नाडी ग्रंथि अर्थात् गांठके आकार प्रतीत होयहै और आमवात रोगमें नाडी सर्वकालमें उष्ण होतीहै।

विषविष्टम्भगुल्मज्ञानम्।

उत्पित्सुरूपा विषरिष्टकार्यां विष्टम्भगुल्मेन च वक्ररूपा।
अत्यर्थवातेन अधः स्फुरन्ती उत्तानभेदिन्यसमाप्तकाले॥२४॥

अर्थ-विषभक्षण वा सर्पादि दंशजन्य अरिष्टलक्षण प्रकाशित होनेसे तत्कालमें नाडी देखनेसे बोधहोयहै। कि, इसके यह रोग नवीन उत्पन्न होताहै। और विष्टंभ तथा गुल्म रोगमें विषके तुल्य और विशेषता यह होतीहै कि, उसनाडीकी गति वक्ररूप होतीहै। इन दोनों पीडामें अत्यंत वायुका प्रकोप होनेसे नाडी अधःस्फुरित होय एवं इनकी असंपूर्णावस्थामें अर्थात् पूर्वरूपावस्थामें नाडी अत्यंत उर्ध्वगति होय।

गुल्मे विशेषमाह।

गुल्मेन कम्पाथ पराक्रमेण पारावतस्येव गतिं करोति॥ २४॥

अर्थ--गुल्मरोगमें नाडी कंपितहो बलपूर्वक खबूतरकी तुल्य गमन करतीहै ।

अथ भगन्दरज्ञानम् ।

व्रणार्थे कठिने देहे प्रयाति पैत्तिकं क्रमम् । भगन्दरानुरूपेण नाडी व्रणनिवेदने ॥ २६ ॥ प्रयाति वातिकं रूपं नाडीपावकरूपिणी ॥ २७ ॥

अर्थ--व्रणरोगकी अपक्वअवस्थामें नाडीकी गति पैत्तिक नाडीके तुल्य होतीहै । भगंदर तथा नाडीव्रण रोगमें नाडीकी गति वातनाडीके तुल्य और अत्यंत उष्ण होतीहै ।

वान्तादिज्ञानम् ।

वान्तस्य शल्याभिहतस्य जन्तोर्वेगावरोधाकुलितस्य भूयः । गतिं विधत्ते धमनी गजेन्द्रमरालमानेव कफोल्बणेन ॥ स्त्रीरोगादिकमपि रक्तादिज्ञानक्रमेण ज्ञातव्यम् ॥ २८ ॥

अर्थ–वमित (जिसने रद्द करीहो) शल्याभिहत (जिसको किसी प्रकारका बाण आदि शल्य लगाहो) और वेगरोधी (जिसके मल मूत्रको धारण कर रक्खाहो) ऐसे प्राणियोंकी नाडी तथा कफोल्बणा नाडी हाथी और हंसादिककी गतिके समान चलतीहै । इसीप्रकार रक्तादि ज्ञानकरके अनुक्त जो स्त्रीके रोग प्रदरादिक उनकोभी वैद्य अपनी बुद्धि मानीसे जान लेवे यह नाडीपरीक्षा शंकरसेनके मतानुसार लिखीहै ।

नाडीस्पन्दनसंख्या ।

षष्ट्यास्पन्दास्तु मात्राभिः षट्पञ्चाशद्भवन्ति हि । शिशोः सद्यः प्रसूतस्य पञ्चाशत्तदनन्तरम् ॥ २९ ॥ चत्वारिंशत्ततः स्पन्दाः षट्त्रिंशद्यौवने ततः । प्रौढस्यैकोनत्रिंशत्स्युर्वार्धकेऽष्टौ च विंशतिः ॥ ३० ॥

अर्थ–अब नाडीके फडकनेकी संख्या कहतेहैं, जैसे कि ६० दीर्घ अक्षर उच्चारण करनेमें जितना काल लगताहै उतने समयमें अर्थात् १ पलमें तत्काल हुए बालकी नाडीकी स्पंदनसंख्या ५६ बार होतीहै । इसके उपरान्त अवस्था बढनेके अनुसार ५० तथा ४० बार होतीहै । यौवन अवस्था अर्थात् जवानीमें ३६ बार होतीहै । और प्रौढ अवस्थामें २९ बार और बुढापेमें २८ बार, एकपलमें नाडी फडकतीहै ।

पुंसोऽतिस्थविरस्यस्युरेकत्रिंशदतः परम्। योषितां पुरुषाणाञ्च स्पन्दास्तुल्याः प्रकीर्त्तिताः॥ ३१॥ प्रौढानां रमणीनान्तु द्व्यधिकाः सम्मता बुधैः॥ ३२॥

अर्थ-अति वृद्धहोनेसे नाडीकी संख्या फिर बढने लगतीहै अर्थात् एकपलमें ३१ बार तडफतीहै। यह अवस्था भेदकरके संपूर्ण स्पन्दन संख्या लिखी गईहै। यह संख्या स्त्री और पुरुष दोनोंमें समान कहीहै। परंतु केवल प्रौढावस्थामें स्त्रीकी नाडी संख्या संख्याकी अपेक्षा अधिक अधिक अर्थात् प्रौढ पुरुषकी स्पन्दनसंख्या प्रतिपलमें २९ बार होतीहै। और प्रौढास्त्रीकी संख्या ३१ बार होतीहै।

दशगुर्वक्षरोच्चारकालः प्राणः षडात्मकैः।
तैः पलं स्यात्तु तत्षष्ट्या दण्ड इत्यभिधीयते॥ ३३॥

अर्थ-एक दीर्घवर्ण उच्चारण करनेमें जितना समय लगताहै उसको एक मात्रा अथवा निमेष कहतेहैं। १० मात्राका १ प्राण ६ प्राणका १ पल ६० पलका १ दंड होताहै। अतएव एक पलका साठ भाग उसमें एक भागको विपल कहतेहैं उसीको मात्रा कहतेहैं।

मतान्तरेण।

स्वस्थानां देहिनां देहे वयोवस्थाविशेषतः।
प्रवहन्ति यथा नाड्यस्तत्संख्यानमिहोच्यते॥ ३४॥

अर्थ-अब मतान्तरसे कहतेहैं कि, स्वस्थ पुरुषोंके देहमें आयुकी अवस्था विशेषकरके जैसे नाडी चलतीहै उनकी संख्या इसग्रंथमें लिखतेहैं।

सार्द्धद्वयपलः कालो यावद्गच्छति जन्मतः।
तावत्प्रकम्पते नाडी चत्वारिंशच्छताधिकम्॥ ३५॥

अर्थ-बालकके जन्मलेनेसे यावत् २॥ पल व्यतीत नहीं हो उतने समयमें १४० बार नाडी वारंवार कंपन होतीहै।

तदूर्ध्वं हायनं यावत्सार्द्धद्वयपलेन सा।
मुहुः प्रकम्पमाधत्ते त्रिंशद्वारं शतोत्तरम्॥ ३६॥

अर्थ-फिर १ वर्षकी अवस्थापर्यंत बालककी नाडी २॥ पलमें १३० बार तडफतीहै।

उपरिष्टादाद्वितीयात्तावत्काले शरीरिणः ।
ततः प्रकम्पते नाडी दशाधिकशतं मुहुः ॥ ३७ ॥

अर्थ-वर्ष दिनसे लेकर जबतक यह बालक दो वर्षका होताहै तावत्कालपर्यंत नाडी ढाई पलमें ११० बार वारंवार तडफतीहै ।

ततस्त्रिवत्सरं व्याप्य देहिनां धमनी पुनः ।
मुहुः प्रकम्पते तद्वत्सार्द्धद्वयपले शतम् ॥ ३८ ॥

अर्थ-फिर दो वर्षसे उपरांत तीन वर्षतकके बालककी नाडी २॥ पलमें १०० वार वारंवार तडफतीहै ।

ततस्त्वा सप्तमाद्वर्षान्नवतिः स्यात्प्रवेपनम् ।
धमन्यास्तन्मिते काले प्रत्यक्षादनुभूयते ॥ ३९ ॥

अर्थ-फिर तीन वर्षसे सात वर्षतकके बालककी नाडी २॥ पलमें ९० बार वारंवार चलतीहै ।

ततश्चतुर्दशं तावत्पञ्चाशीतिः प्रवेपनम् । त्रिंशद्वर्षमभिव्याप्य ततोऽशीतिः प्रकीर्तितम् । शताद्धवत्सरं व्याप्य कंपनं पञ्चसप्ततिः । ततोऽशीतौ प्रकथितं षष्टिवारं प्रवेपनम् ॥४०॥

अर्थ-फिर सात वर्षसे लेकर चौदह वर्षकी अवस्थातक इस प्राणीकी नाडी २॥ पलमें ८५ बार तडफतीहै । और चौदह वर्षकी अवस्थासे लेकर ३० वर्षकी अवस्थापर्यंत ढाई पलमें ८० वार तडफतीहै । तीस वर्षके उपरांत पचास वर्ष पर्यंत ८० बार कंपन होताहै । और पचास वर्षसे लेकर अस्सी वर्षकी अवस्थातक इस प्राणीकी नाडी २॥ पलमें ६० बार कंप होतीहै ।

वयोऽवस्थाक्रमेणैवं क्षीयन्ते गतयो मुहुः ।
सार्द्धद्वयपले काले नाडीनामुत्तरोत्तरम् ॥ ४१ ॥

अर्थ-फिर जैसे जैसे अवस्था क्षीण होती जातीहै उसी प्रकार नाडीका गमनभी २॥ पलमें क्षीण होता जाताहै ।

एवं बहुविधाद्रोगात्तत्तल्लिङ्गानुबोधनी ।
नाडीनां च गतिस्तद्वद्भवेत्कालात्पृथक्पृथक् ॥ ४२ ॥

अर्थ-इसप्रकार अनेकविध रोगोंसे उन्हीं उन्हीं लिङ्गोंकी बोधन करनेवाली नाडियोंकी गति पृथक् पृथक् कालमें पृथक् पृथक् होतीहै ।

हृदयस्य बृहद्भागः संकोचं प्राप्यते यदि।
प्रसारयेत्तदा नाडी वायुना रक्तवाहिनी॥ ४३॥

अर्थ–जिस समय हृदयका बृहद्भाग संकुचित होताहै और खुलताहै उस-समय रक्तवाहिनी नाडियोंकी गति पवनके वेगसे प्रस्पन्दन होतीहै।

नाडीगतिरतिक्षीणा भवेन्मलविभेदतः।
जीर्णज्वरादल्परक्ता दुर्बलत्वाच्च तादृशी॥ ४४॥

अर्थ–मलके निकलनेसे नाडीकी गति अत्यंत क्षीण होतीहै। उसीप्रकार जीर्णज्वरसे अल्परुधिरसे और दुर्बलतासेभी नाडी अतिक्षीण होतीहै।

तर्पयन्त्यसृजं देहे व्याघातैर्गतिभेदतः।
तेजःपुञ्जा चञ्चला च दुर्बला क्षीणधीरगे॥ ४५॥

अर्थ--ये संपूर्ण रक्तवाहिनी नाडी आघात करके और अपनी गतिके भेद-से देहमें रुधिरको तर्पण करेहै अर्थात् सर्वत्र फैलातीहै। उनकी गति भेद कहतेहै। जैसे-तेजःपुञ्जा, चञ्चला, दुर्बला, क्षीणदा और धीरगामिनी, ये ना-डियोंकी पांच प्रकारकी गति हैं।

चञ्चला और तेजःपुञ्जागति।

रक्तोष्णे शीघ्रगा नाडी ज्वरे च चञ्चला भवेत्।
ज्वरारम्भे तथा वाते तेजःपुञ्जा गतिः शिरा॥ ४६॥

अर्थ–तहां रुधिरके कोपमें गरमीमें नाडी शीघ्र चलतीहै, उसीप्रकार ज्व-रमें चंचला नाडी होतीहै और ज्वरके आरंभमें तथा वातके रोगमें नाडी-की तेजःपुंजा गति होतीहै।

दुर्बला और क्षिणिनाडी।

दुर्बले ज्वररोगे च अतिसारे प्रवाहिके।
दुर्बला क्षीणदा नाडी प्रबला प्राणघातिका॥ ४७॥

अर्थ–दुर्बलतामें ज्वरमें अतिसार और प्रवाहिकारोगमें नाडीकी दुर्बला गति होतीहै, क्षीणदा नाडीप्रबल प्राणोंकी नाशक होतीहै।

बहुकालगता रोगाः सा नाडी धीरगामिनी।

अर्थ–जिसप्राणीके बहुतदिनोंसे रोगहोवे उसकी नाडी धीरगामिनीहोतीहै।

सुखीपुरुषकीनाडी।

हंसगा चैव या नाडी तथैव गजगामिनो।

सुखं प्रशस्तं च भवेत्तस्यारोग्यं भवेत्सदा ॥ ४८ ॥

अर्थ-जिसप्राणीकी नाडी हंसकीसी अथवा हाथीकीसी चाल चले उसको उत्तम सुख होय और सदैव आरोग्य रहे ।

सुव्यक्तता निर्मलत्वं स्वस्थानस्थितिरेव च ।
अमन्दत्वमचाञ्चस्यं सर्वासां शुभलक्षणम् ॥ ४९ ॥

अर्थ-उत्तम प्रकारसे प्रतीतहो निर्मल अपने स्थानमें स्थिति, अमंदत्व और चांचल्यता रहितहो ये संपूर्ण नाडियोंके शुभ लक्षण जानने ।

दोषसाम्याच्च सादृश्यादनुक्तासुरुजास्वपि ।
ज्ञातव्या धमनी धर्मा युक्तिभिश्चानुमानतः ॥ ५० ॥

अर्थ-यह कितनेएक रोगोंमें नाडीकी प्रकृति लिखीहै, इस्से भिन्न अन्य समस्त रोगोंमें जैसी जैसी नाडियोंकी गति होतीहै उसको वैद्य अनुमान और युक्तिद्वारा जाने, अर्थात् जिस रोगकी जिस जिस रोगके साथ सादृश्यताहै अथवा जिसकिसी रोगमें संपूर्ण कुपितदोषोंके साथ अन्य किसीरोगके कुपित दोषोंकी साम्यता मिले उन उन रोग समस्तोंमें नाडीकी एकविध गती होतीहै ऐसा जानना ।

नाडीदर्शनानंतरहस्तप्रक्षालन ।

नाडीं दृष्ट्वा तु यो वैद्यो हस्तप्रक्षालनं चरेत् ।
रोगहानिर्भवेच्छीघ्रं गंगास्नानफलं लभेत् ॥ ५१ ॥

अर्थ-जो वैद्य रोगीकी नाडीदेखकर हाथको जलसे धोताहै तो जिस-रोगीकी नाडी देखी उसका रोग शीघ्र नष्टहोय और वैद्यको गंगास्नानका फल प्राप्तहोय ।

तथा च ।

यो रोगिणः करं स्पृष्ट्वा स्वकरं क्षालयेद्यदि ।
रोगास्तस्य विनश्यन्ति पङ्कप्रक्षालनाद्यथा ॥ ५२ ॥

अर्थ-जो वैद्य रोगीकी नाडी देख अपने हाथको धोताहै इसकर्मसे जैसे धोनेसे कीच जातीहै इसप्रकार उसरोगीका रोग दूर होताहै ।

इति श्रीपाठकज्ञातीयमाथुरकृष्णलालसूनुना दत्तरामेण निर्मिते आयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरान्तर्गते नाडीदर्पणे आयुर्वेदोक्तनाडीपरीक्षावर्णनंनामचतुस्त्रिंशस्तरङ्गः ॥ ३४ ॥

अथयूनानीमतानुसारनाडीपरीक्षामाह।

[1]नाडीनामान्तरं नब्जं यूनानीवैद्यके मतम्।
विधास्ये तत्क्रमं चात्र वैद्यानां कौतुकाय च ॥ १ ॥

अर्थ–यूनानी वैद्य नाडीको नब्ज कहते हैं उस नब्जका क्रम अर्थात् नब्ज परीक्षाको मैं वैद्योंके कौतुकनिमित्त लिखताहूं।

हय्वानी चैव नफसानी रूहद्वयमुदाहृतम्।
हृदयस्थं शिरःस्थं च देही देहसुखावहम् ॥ २ ॥

अर्थ–रूह दो प्रकारकीहै एक हयवानी दूसरी नफसानी, हयवानी हृदयमें रहतीहै। और नफसानी मस्तकमें रहतीहै। ए दोनों देहधारियोंकी देहको सुखदायक है।

तत्सङ्गतास्तु या नाड्यः शुरियानसवः क्रमात्।
हृत्पद्मे यास्तु संलग्नाः समन्तात्प्रस्फुरन्ति ताः ॥ ३ ॥

---

१ मानसिक शिराके परिवर्तनको नाडी कहतेहैं, वह मनके प्रफुल्लित और संकुचित होनेसे चलतीहै इसका यह कारणहै कि उसके विकसित होनेसे बाहरी पवन भीतर जातीहै, इसीसे हयवानीरूह जो मनमें है वह प्रसन्न होतीहै। और उष्ण पवनके दूरकरनेको हृत्पद्म संकुचित होताहै, इन दोनों कारणोंसे मनुष्यके संपूर्ण देहकी चेष्टा और उसके रोग तथा स्वस्थताका ज्ञान होताहै इस नाडीके दश भेदोंसे शरीरकी चेष्टा प्रतीत होतीहै।

प्रथमतो यह कि, यह कितनी विकसित और कितनी संकुचित होतीहै, इसके विस्तार(लंबाव) आयत (चौडाव) और गंभीरादि भेदसे नौ भेद होतेहैं, अर्थात् कितनी लंबी, कितनी चौडी और कितनी गंभीर इन तीनोंको अधिक न्यून और समानताके साथ प्रत्येकके गुणन करनेसे नौ भेद होतेहैं। जैसे १ दीर्घ २ ह्रस्व ३ समान ४ स्थूल ५ कृश और ६ समान विस्तृत ७ बहिर्गति अत्युच्च ८ अंतर्गति अतिनीच ९ उच्चनीचत्वसमान।

१ अतिलंबनाडीमें अति उष्णताके कारण रोगकी आधिक्यता प्रतीत होतीहै। २ न्यूनलंबनाडीमें गरमीके न्यून होनेसे रोगकी न्यूनता प्रतीत होतीहै, ३ समान लंब नाडीमें प्रकृतिकी उष्णता यथार्थ रहतीहै। ४ अधिक विस्तृतमें शरदी अधिक होतीहै। अतएव यह नाडी अपने अनुमानसे अधिक चौडी होतीहै।

अर्थ–उस रूहके साथ लगीहुई जो नाडी है वो दो है एक शुरियान् दूसरी असव इनमें शुरियान् नाडी हत्पद्ममें लगरहीहै उस्से सर्वत्र स्फुरण होताहै ।

शिरोन्तर्भागसम्बद्धास्ताभिश्चेष्टादिकं भवेत् ।
श्रेष्ठो जीवनिवासोऽहृद्राज्ञो राज्यासनं यथा ॥ ४ ॥

अर्थ–और दूसरी असव नामक जो नाडीहै, वह शिरोन्तरभाग अर्थात् मस्तकके भीतर लगरहीहै, इन नाडियोंकरके इसदेहकी चेष्टादि होतीहै । जैसे राजा राजसिंहासनपर स्थितहो शोभित होताहै । उसीप्रकार जीवका श्रेष्ठनिवास हृदय स्थान है ।

तद्भवाधमनी मुख्या मनुष्यमणिबन्धगा ।
परीक्षणीया भिषजा ह्यङ्गुलीभिश्चतसृभिः ॥ ५ ॥

अर्थ–उन हृद्गतनाडियोंमें मनुष्यके पहुचेकी धमनी नाडी मुख्यहै । उसको वैद्य चार उंगली रखकर परीक्षा करे । अपने शास्त्रमें तीन उंगलीसे परीक्षा करना लिखाहै परंतु यूनानी वैद्य चार दोषोंको चार उंगलियोंसे देखना कहतेहैं ।

यथैणगतिपर्यायस्तद्वदुत्प्लुत्य गच्छति ।
गिजाली गतिराख्याता पित्तकोपविकारतः ।

अर्थ–जैसे मृगका बच्चा उछलता कूदता चलताहै इसप्रकार नाडीकी गतिको गिजाली कहतेहैं । यह पित्त कोप विकारको सूचित करतीहै ।

तरङ्गनाममोजःस्यान्मोजीगतिरितीरिता ।
निवेदयतिवर्ष्मस्थं वायोरुष्माणमेव सा ॥ ७ ॥

अर्थ–यूनानी जलकी लहरको मोज कहतेहैं उस मोज सदृश नाडीकी गतिको मौजी गति कहतेहैं यह देहस्थ पवनकी गरमीको जाहिर करतीहै ।

दूदस्यात्कृमिपर्यायो दूदी तस्य गतिः स्मृता ।
श्लेष्मणःसंचयं चामं प्रकटीकुरुते हि सा ॥ ८ ॥

अर्थ-दूद (कानसलाई आदि) कृमिका पर्याय है अतएव तद्विशिष्टा नाडीकी गतिको दूदी गति कहतेहैं । यह कफके संचयको और आमको प्रकाशित करतीहै ।

उमलिपपीलिकामोर उमली तद्गतिः स्मृता ।
यस्य नाडी तथा गच्छेन्मृतिं तस्याशु निर्दिशेत् ॥ ९ ॥

अर्थ-उमल चैंटी (कीडी) और मोरका नामहै अतएव इन्होंकिसी गतिको उमली गति कहतेहैं । जिस पुरुषकी नाडी ऐसी अर्थात् मोर चैंटी कीसी चले वो प्राणी जल्दी मृत्युको प्राप्तहो ।

असिपत्रस्य पर्यायो मिन्शार इति कीर्तितः ।
यथास्यात्तत्क्रमः काष्ठे मिन्शारी सा गतिर्भवेत् ॥ १० ॥
तद्वात धमनी धत्ते बाह्यान्तः शोथरोगिणः ।

अर्थ-आरेका पर्याय यूनानीमें मिन्शार है वो जैसे लकडीके ऊपर चलताहै इसप्रकार नाडीके गमन करनेको मिन्शारी गति कहतेहैं । इसप्रकारकी नाडी बाहर भीतर शोथरोगीकी चलतीहै ।

जन्वलफारनाम्नीया गतिर्मूषकपुच्छवत् ॥ ११ ॥
पित्तश्लेष्मप्रकोपेण धमन्याः सम्भवेत्किल ।

अर्थ-जिस नाडीकी गति मूषक (चूहे) की पुच्छसदृशहो अर्थात् एक ओरसे मोटी और दूसरी तरफ क्रमसे पतलीहो उसको जन्वलफार गति कहतेहैं यह पित्तकफके कोपमें होतीहै ।

माली शलाकासदृशी सूक्ष्मा धीरा बलात्ययात् ॥ १२ ॥
गत्याघातद्वयं यस्यामधस्तादङ्गुलेर्भवेत् ।
जुलफिकरत्तत्स्मृता पित्तश्लेष्मदग्धप्रबोधिनी ॥ १३ ॥

अर्थ-जो नाडी सलाईके आकार अत्यंत सूक्ष्म और धीरगामिनी होय वह माली कहातीहै यह बलनाश होनेसे होतीहै और जो नाडी मध्यमांगुलिमें दोवार आघातकरे वह पित्तकफ दग्धको बोधन करतीहै इसको जुलफिकरत कहतेहैं ।

मुत्तइद प्रस्फुरन्तीया गतिः कोष्ठस्य रूक्षताम् ।
विड्ग्रहत्वं च सौदावी विचाराज्ज्ञापयत्यपि ॥ १४ ॥

अर्थ-जिस नाडीके प्रस्फुरणसे कोठेकी रूक्षता प्रगटहोवे उसको मुत्तइद कहतेहैं और इसीसे मलबंधका ज्ञान होताहै यह सौदावी (वादीकी) नाडीके विचारसे जाने ।

इर्त्तिशा कम्पपर्यायस्तद्विशिष्टा तु या भवेत् ।
मुर्त्तइश्नाम सा ज्ञेया सफरासौदाविकारयुक् ॥ १५ ॥

अर्थ-कंपको फारसीमें इर्तिशा कहतेहैं, उसके समान जो नाडीहो उसको मुर्त्तइस नाडी कहतेहैं यह सफरा (पित्त) और सौदा दोनोंके मिश्रितावस्थामें होतीहै ।

मुम्तिला पूर्त्ति तूद्दिष्टाऽसृजोस्यां मुम्तिली तु सा ।
तमःकफादधोगाया मुन्खफिज् सा प्रकीर्त्तिता ॥ १६ ॥

अर्थ-परिपूर्णको फारसीमें मुम्तिला कहतेहैं, अतएव जिस नाडीसे रुधिरकी परिपूर्णता प्रतीतहो उस नाडीकी गतिको मुम्तिली कहतेहैं जो नाडी तमोगुण वा कफसे अधोभागमें गमनकरे उसको मुन्खफिज् नाडी कहतेहैं।

ऊर्ध्वमुत्प्लुत्य या गच्छेत्किंचिन्मायुप्रकोपतः ।
शाहक्बुलन्द सा ख्याता धमनी संपरीक्षकैः ॥ १७ ॥

अर्थ-जो नाडी पित्तके प्रकोपसे उछलकर ऊपरको गमनकरे उसको नाडीके ज्ञाता वैद्य साहक्बुलन्द नामक कहतेहैं ।

चतुरङ्गुलिसंस्थानादपि दीर्घा तवीलसा ।
दराज इति पर्यायस्तस्या एव निपातितः ॥ १८ ॥

अर्थ-जो नाडी चारअंगुलसे भी अधिक लंबीहो उसको तवील ऐसा कहतेहैं और उसी नाडीका नामान्तर दराज है ।

परिमाणान्न्यूनरूपा सा कसीर समीरिता ।
अमीक निम्नगा या च अरीज आयती स्मृता ॥ १९ ॥

अर्थ-जितना नाडी परिमाण कहाहै यदि उस्से न्यूनहो उसको कसीर कहतेहैं और अधोगामिनी नाडी अमीक कहतेहैं और लंबी नाडीको अरीज कहाहै ।

यथा गतिस्तु दोषाणां धत्ते प्राज्यत्वहीनते ।
गलवे कसूर अक्वात तारतम्येन निर्दिशेत् ॥ २० ॥

अर्थ-दोषोंके यथागति अनुसार नाडीको बली और निर्बली जानना इनके बली निर्बली आदि नाडियोंको गलवे कसूर और अरक्वातके तारतम्यसे कहे ।

वाकियुल्वस्तनिर्दोषा स्वस्थस्य परिकीर्त्तिता।
इति संक्षेपतो नाडीपरीक्षा कथिता बुधैः॥ २१ ॥
विस्तरस्तु मया प्रोक्तो भाषायां जनहेतवे।

अर्थ–स्वस्थ प्राणीकी निर्दोष नाडीको वाकियुल्वस्त कहतेहैं यह मैंने संक्षेपसे यूनानी मतानुसार नाडीपरीक्षा कहीहै इसका विस्तार मैंने भाषामें कहाहै ।

यूनानी मतानुसार नाडीकोष्टकम् ।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
गिजालि	मोजी	दूदी	मिन्शारी	जनबुल फार	नुम्ली	मतली	मतरकी	जुलफिकरत	वाकअफि ल्वस्त
मृग शावक	तरंग	कृमि	आरा	मूसेकी पूछ	मोरचैंटी	शिलाई	हथोडा	शोकाक्रांत समान	विषम टंकोरदेना
मृगके बच्चेके समान जो नाडी उछलती कूदती चले उसको गिजाली कहतेहैं यह पित्ताधिक्यसे होती है।	जो नाडी जलकी तरंगके समान गमनकरे उसको मोजी गति कहतेहैं । यह तरीको सूचित करतीहै । अथवा देहकी निर्बलताको सूचित करेहै।	जो नाडी कीडाके समान मंद मंद गमनकरे वो कफ और आम दोषको सूचित करतीहै । इस नाडीकी गतिको दूदी कहतेहैं ।	जैसे लकडीके ऊपर आरा चलता इसप्रकार खरदराट लिये जो नाडी उंगलियों का स्पर्शकरे वो बाहर और भीतर सूजनको सूचित करतीहै । इस गतिको मिन्शारी गति कहतेहैं ।	जो नाडी चूहेकी पूछसदृश गमनकरे उसको जनबुल्फार गति कहते हैं । यह कफपित्तके कोपसे होतीहै ।	जो नाडी चैंटी और मोरकी गतिके समान गमन करे उसको नुम्ली गति कहते हैं । ऐसी नाडी रोगीकी शीघ्र मृत्यु सूचना करतीहै ।	जो नाडी सलाईके समान दोनों प्रांतोंमें पतली और बीचमें मोटी होकर गमन करे उसको मतली गति कहते है । यह निर्बलता सूचना करतीहै ।	जो नाडी हथोडेके समान उंगलियोंको वारंवार चोट देवे उसको मतरकी गति कहतेहैं । यह अत्यंत गरमीकी सूचना करतीहै ।	जो नाडी गमन करते करते ठहर जावे उसको जुल्फिकर गति कहतेहैं । यह दिलकी कमजोरी सूचित करतीहै प्रायःयह शोक समय होतीहै ।	जिस नाडीका टंकोरदेना जिस वक्तमें देना उचितहै उससे पहिलेही जास्ती टंकोर देदेवे यह श्वासाधिक्य निर्बलतामें होतीहै ।

यूनानी भाषामें नाडीको नब्ज कहनेका यह कारणहै कि नब्जका अर्थ शिराका तडफना है वह प्रत्येक मनुष्यकी प्रकृति, देश, काल, अवस्थाओंके भेदसे समान नहीं होती, कुछ नकुछ भेद रहताहीहै वैद्य जिस स्वस्थमनुष्यकी

नाडी अनेकबार देखी होगी यदि फिर उसकी रोगावस्थाके देखेगा तो उस को उसकी नाडीका ज्ञान यथार्थ होगा, अन्यथा ज्ञान होना अति दुस्तर है।

नाडीदेखनेवालेको वा दिखानेवालेको उचितहै कि किसीवस्तुका हाथ को सहारा न देवे, न कोई वस्तु पकड रक्खीहो, तथा रोगीके हाथमें पट्टी आदि बंधनादिक न होवे, यद्यपि बहुतसे वैद्य पहुचे, कनपटी, गुदा, टकने आदि अनेक स्थानकी नाडी देखतेहैं।परंतु बहुधा हाथकी देखनेका यह कारणहै कि अन्यनाडी सब थोडी थोडी प्रगटहै शेष हाड मांसमें प्रवेश होनेके कारण अस्त होरहीहै उसजगे उंगलीयोंको स्पर्श प्रतीत नहीं होसकता परंतु हाथ की नाडी विशदहै अतएव इसपर उंगली उत्तमरीतिसे धरी जातीहै,परंतु मुख्य कारण इसका यह है कि किसी स्त्रीकी नाडी देखनेकी आवश्यकता हो वे तो वो अन्योन्य अङ्गोंकी नाडी लज्जाके वश नहीं दिखा सकती, परंतु हाथके दिखानेमें किसीकोभी संकोच नहीं होता अतएव सर्वत्र हाथकी नाडी देखना प्रसिद्धहै ।

अब कहतेहैं कि, यूनानी वैद्य नाडीकी गति दोप्रकारकी वर्णन करतेहैं प्रथम इम्बिसात दूसरी इन्किबाज ।

इम्बिसात (बाह्यगति)	इन्किबाज (अभ्यंतरगति)
इम्बिसात उसगतिको कहतेहैं जब नाडी बाहर आनकर ऊंगलियोंका स्पर्श करतीहै ।	इन्किबाज उसगतिको कहतेहैं कि, जब नाडी ऊंगलियोंका स्पर्शकर भीतरको प्रवेश करतीहै ।

दोषः खिल्त इति प्रोक्तः स चतुर्धा निरूप्यते ।
सौदा सफरा तथा वल्गंतुरीयं खून उच्यते ॥ २१ ॥

यूनानीमें दोष शब्दको खिल्त कहते हैं वह चार प्रकारकाहै जैसे सौदा (वात) सफरा (पित्त) वल्गम (कफ) और चौथा दोष खून (रुधिर) है परंतु अपने शास्त्रमें दूष्यहोनेसे इसको दोष नहीं माना यह शारीरकमें हम लिख आएहैं ।

प्रत्येकदोषमेंदोदोगुणहैंयथा ।

तत्र सौदा धरातत्त्वं रूक्षं शीतं स्वभावतः । पित्तमग्नेः स्वरूपन्तु सफरा रूक्षउष्णकम् ॥ २२ ॥ वल्गंवारिस्वरूपं स्यात्सकफः स्निग्धशीतलः ॥ अस्रं वायुः खून इति स्निग्धोष्णं तेषु तद्वरम् ॥ २३ ॥

तहां सौदा अर्थात् वातमें पृथ्वीतत्त्व अधिकहै अतएव वातस्वभावसेही रूक्ष और शीतलहै पित्तमें अग्नितत्व विशेषहै अतएव सफरा (पित्त) रूक्ष और उष्णहै बल्गम (कफ) में जलतत्व अधिक होनेसे स्निग्ध शीतलगुण वालाहै खून (रुधिर) में वायुतत्व अधिक होनेसे स्निग्ध और उष्णहै अतएव अन्य दोषोंकी अपेक्षा यह रुधिर श्रेष्ठहै।

इस प्रकार दोषोंके गुणोंका विचारकर उक्त नाडीके लक्षणोंसे मिलाकर द्वंद्वज गुण अपनी बुद्धिसे कल्पना करै।

जैसे जो नाडी दीर्घ और स्थूलहो उसको गरम और तर गुणविशिष्ट होनेसे रुधिरकी जाननी और जो नाडी दीर्घ तथा पतली होवे उसमें गरम और शुष्क गुण होनेसे पित्तकी जाननी जो ह्रस्व और मोटीहो वह शरद और तर गुणवाली होनेसे कफकी जाननी और जो नाडी ह्रस्व और पतली होवे उसमें शरद और खुष्क गुणहोनेसे वातकी नाडी जाननी चाहिये।

इम्बसातके भेद।

तवील (दीर्घाकार)			अरीज (स्थूलाकार)			उमक (बहिर्गत्याकार)		
मुअदिल समान ३	कसीर ह्रस्व २	तवील १ दीर्घ	अरीज स्थूल	ज्यैयकवा जीक (कृश)	मुअदिल समान	मुशरिफ उमक बाहिर्गत	मुनखफिज अंतर्गत	मुअदिल समान
यदि नाडी चार अंगुलसे कुछभी न्यूनाधिक नहो किंतु समहो तो उसप्राणीके शरदी गरमी समान जाननी।	और चार अंगुलसे न्यून होवे तो वो शरदीके लक्षणवाली जाननी अर्थात् ऐसे पुरुषके शरदी जानना।	जो नाडी पहुचेसें भुजाके प्रति चार अंगुलसे अधिक लंबी प्रतीतहो तो वो गरमीके लक्षणवाली जाननी।	यदि नाडी तर्जनी उंगलीसे लेकर कनिष्ठिका पर्यंत स्थूल प्रतीत होवे तो वो तर अर्थात् जैसे रुधिर और कफमें।	जो नाडी पतली प्रतीतहोवे उसको रूक्ष अर्थात् खुष्क कहतेहैं। जैसे पित्त और वात कोपमें होतीहै।	जो नाडी न स्थूलहो न कृशहोवे किंतु समानहो उसमें तरी ठीकठीक होतीहै।	जो नाडी अत्यंत उछलकर बलपूर्वक उंगलियोंको स्पर्शकरे उसमें गरमीकी आधिक्यता प्रतीत होतीहै।	जो नाडी हद्से कम ऊंची उठे अर्थात् धीरे उंगलियोंको स्पर्शकरे उसमें गरमीकी न्यूनता प्रतीत होतीहै। किंतु शरदीको द्योतन करतीहै।	जो नाडी न बहुत उभरी हुईहो न बहुत बिलकुल दबी हुई हो किंतु समानहो इसमें गरमी ठीक होतीहै॥

अब जानना चाहिये कि हिकमतमें दोष चारप्रकारके कहे हैं यथा।

अन्यचक्र ।

१	नाडीका बलाबल	सबल	शीघ्रचारिणी	जो नाडी उंगलियोंके मांसमें जोरसे धक्कादेकर ऊंची उठावेतो हृदयकी प्रबलता जाने ।
		दुर्बल	मंदचारी	और यदि नाडी उंगलियोंको स्पर्शकर दबजावे तो हृदयकी दुर्बलता जाननी ।
		मोतदिल	समता	और जो नाडी न बहुत जोरसे लगे न अत्यंत धीरे लगे वो दिलकी समताको प्रगट करतीहै ।
२	नाडीका विलंबहोना	सरी	समता	जो नाडी शीघ्र आवा गमनकरे वो देहमें गरमीकी विशेषता द्योतन करतीहै ।
		वती	मंदचारी	और धीरे धीरे आवा गमनकरे वो देहमें शरदीकी आधिक्यता द्योतन करतीहै ।
		मोअदिल	शीघ्रचारी	जो नाडी मध्यम चालसे आवा गमनकरे वो शरदी गरमीकी समानता प्रगट करतीहै ।
३	आकृति	मृदु	नरम	जो नाडी दाबनेसे सहज दबजावे उसको तरस्निग्ध कहतेहैं, इसे फारसीमें लीन कहतेहैं ।
		कठिन	सख्त	और जो दबानेसे न दबे वह खुष्कजाननी उसको फारसीमें सख्त कहतेहैं ।
		सम	मोअद्दिल	जिसमें मध्यम गुणहो अर्थात् न बहुतकठोर न बहुत नम्र वो मोतदिल जाननी ।
४	प्रमाण	रुधिरपूर्ण	मुमतिला	जो नाडी मोटी और शीघ्र चलतीहो वह रुधिर और मवादसे भरी हुई जानना अथवा जीवसे परिपूर्ण जानना ।
		स्वल्परुधिर	खाली	और जो नाडी खाली होतीहै वो मंद और पतली होतीहै उसमें थोडा रुधिर और मवाद जानना ।
		समता	मोद्दिल	और जब नाडी न भरीहो न खालीहो वो समान कहलातीहै । इसमें मवाद ठीक होताहै ।
५	स्पर्श	उष्ण	गरम	जिस समय नाडीका स्पर्श गरम प्रतीतहो तब रुधिरमें ज्वर वा गरमी जानना ।
		शीत	सरद	और जिस समय स्पर्शमें शीतलता प्रतीतहो तब रुधिरमें शरदीकी आधिक्यता जाने ।
		सम	मोअद्दिल	जिस समय नाडीमें शीत उष्णता समान प्रतीतहो उसको सम कहतेहैं ।
६	साध्यासाध्य	पूर्वसदृश	उस्तवा	जो नाडी कमसे कम् ३५ वार टंकोर देके ठेहर जावे वो साध्यहै ।
		विपरीत	इख्तिलाफ	जो ३५ वार टंकोर देनेमें कई वार टूटजावे अर्थात् ठहर कर चले वो असाध्यहै ।
		समता	मोअद्दिल	जो बहुतवार न टूटे किन्तु अल्पवार टूटकर फिर शीघ्र चलने लगे उसको याप्य जानना ।
७	स्थिति	अत्यंत	मुत्तवार	जो नाडी उंगलियोंको स्पर्शकरके शीघ्र नीचे चली जावे वो निर्बल जाननी ।
		धैर्य	मुतफावत	जो नाडी उंगलियोंको कुछकालतक स्पर्शकरे उसको बलवान् कहतेहैं ।
		समता	मोद्दिल	और जो समान रीतिसे उंगलियोंका स्पर्शकरे उसको समान स्थितिवाली जाननी ।

प्रत्येक प्रस्तार के नौ नौ भेद होतेहैं लंबाव चौडाव और गहराई तीनो प्रमाणको हकीम लोग कुतर कहतेहैं ।

उन दो तीन कुतरोंको एकत्र करो अर्थात् प्रस्तार करो तो दोप्रस्तार २७ सत्ताईस सत्ताईस के होतेहैं जैसे आगेके दोनों चक्रोंमें लिखेहैं दोनो प्रस्तार करनेकी यह रीतिहै कि तीनप्रकारके लंबावको तीन प्रकारोंकी चौड़ाईके साथ गुणदेवे तो नौ होवेगी इसीप्रकार लंबाई और गहराइयोकों तथा चौडाई और गहराईकी तीन तीन प्रकारोंके साथ मिलानेसे नौ नौ भेद होतेहैं इस प्रकार तीनोंके सत्ताईस सत्ताईस भेद होतेहैं इसका उदाहरण आगे चक्रोंसे समझाना चाहिये इस गुणनको फारसीवाले सनाई कहतेहैं ।

नाडीनां प्रस्तारचक्रम् ।																	
सनाई (द्विगुण)									सलासी (त्रिगुण)								
द स	द क	द य	ह स	ह क	ह य	य स	य क	य य	द स व	द स अं	द स य	द क व	द क अं	द क य	द य व	द य अं	द य य
द व	द अं	द य	ह व	ह अं	ह य	य व	य अं	य य	ह स व	ह स अं	ह स य	ह क व	ह क अं	ह क य	ह य व	ह य अं	ह य य
स व	स अं	स य	क व	क अं	क य	य व	य अं	य य	य स व	य स अ	य स य	य क व	य क अं	य क य	य य व	य य अं	य य य

इन दोनों चक्रोंमें जो अक्षर हैं उनमें द से दीर्घ, ह सें ह्रस्व, और यसे यथार्थ कहिये समान जानना उसीप्रकार स से स्थूल, क से कृश, व से बहिर्गत असे अंतरगतकी समस्या जानलेनी चाहिये ।

इति बृहन्निघण्टुरत्नाकरे नाडीदर्पण यूनानीमतानुसारं नाडीपरीक्षणं तरंगः ।

PULSE EXAMIN.

अथैंग्लंडीयमतेन नाडीपरीक्षा ।

ऐंगलंडीयभाषायां नाडी पल्सेति शब्दिता । तस्याः परोक्षापरोक्षभेदेन द्विविधा गतिः ॥ १ ॥ द्रष्टुर्याङ्गुलिसंस्पर्शे

परोक्षा न करोति सा । करोति या साऽपरोक्षांगुलिस्पर्शश्च पश्यतः ॥ २ ॥

अर्थ-इंग्लंड अर्थात् अँगरेजीमें नाडीको पल्स Pulse कहतेहैं वह दो प्रकारकी है एक परोक्ष और दूसरी अपरोक्ष तहां जो नाडी देखनेवालेकी ऊँगलियोंका स्पर्श न करे वह परोक्ष कहातीहै और जो उंगलियोंका स्पर्श करे वो अपरोक्ष अर्थात् प्रत्यक्ष नाडी कहातीहै ।

उत्थानापेक्षया पुंस आसने तदपेक्षया । शयने नाडिकावेगो मन्दी भवति नानृतम् ॥ ३ ॥ सायंतनाद्धि समयात्प्रातःकालेऽधिका गतेः । वेगसंख्या भवेन्निद्राकालेह्रासं च गच्छति ॥ ४ ॥

अर्थ-खडे होनेकी अपेक्षा (वनिसवत) बैठनेमें और बैठनेकी अपेक्षा सोनेमें नाडीकी गति घटजातीहै । उसीप्रकार सायंकालकी अपेक्षा प्रातःकालमें नाडीकी गति बढजातीहै । और निद्रामें नाडीकी संख्या घटजातीहै ।

भोजनस्याथ समये वेगसंख्या विवर्द्धते । अहिफेनसुरादीनामुष्णानां यदि भोजनम् ॥ ५ ॥ बुभुक्षावसरे नाडीगतेर्वेगो ह्रसत्यलम् । एषा नाडीगतेर्वेगचर्या सन्मान्यतामता ॥ ६ ॥

अर्थ-यदि अफीम मद्य आदि गरमवस्तु खाय तो उस गरम भोजनके कारण नाडीकी संख्या बढजातीहै और अत्यंत शीतलवस्तु खानेसे नाडीकी संख्या न्यून होजातीहै, यह अर्थांशसे जाना जाताहै । उसीप्रकार भोजनके समय नाडीका वेग मंद होजाताहै, यह नाडीकी सामान्य गति संख्या कहीहै ।

नाडीकी व्यवस्था जाननेके लिये वैद्यको प्रथम इतनी वस्तुओंका जानना अति आवश्यकहै । जैसे प्रथम नाडी देखनेकी विधि दूसरे आरोग्यावस्थाकी नाड़ी तीसरे रोगावस्थाकी नाड़ी और चतुर्थ नाड़ी देखनेका यंत्र ।

१ नाडीदेखनेकी विधि-नाड़ी देखनेके जो नियम वैद्योंने निश्चित

कररक्खेहैं, यदि उनके अनुसार न देखी जावे तो हम जानतेहैं कि नाडी का यथार्थ ज्ञान होना अति असंभवहै। अतएव अब उन नियमोंको वर्णन करतेहैं।

प्रथम--वैद्य या रोगी कहींसे चलकर आया हो तो उचितहै कि, थोडी देर विश्राम लेकर फिर नाडी देखे या दिखावे, तथा परिश्रमकी अवस्थामें और शोक विचारके समयभी नाडी न देखे ऐसे समयकी नाडी विश्वास योग्य नहींहै।

दूसरे-रोगीको बिठलाकर या लिटाकर यदि कोई आवश्यकता होयतो खडी करके रेडिअल आर्टेरी Radial Artery (जो पहुचेमें अंगूठेकी जडमें त्वचाके भीतरहै) उसपर बराबर तीन उंगली रखकर नाडी देखना, परंतु कभी पहुचेकी देखना असंभव होय तो अन्यान्य स्थानकी देखे, जैसे मस्तक संबंधी रोगमें कनपटीकी नाडी, तथा गठियामें पहुचेपर पट्टी बँधीहो अथवा दोनों हाथ कटगए हो तो प्रगंड (बाजू) की नाडी देखे, और कभी कभी पैरमें टकनेके नीचे भीतर की तरफ पोस्टीरीअर टीबीअल Posteriar Tibial नाडीको देखते हैं।

तीसरे-वैद्यको रोगीके दोनों हाथोंकी नाडी देखनी चाहिये, इसका यह कारणहै कि ऐसा देखा गयाहै, कि एक ओरकी नाडी दूसरी नाडीसे बडी होतीहै। और यहभी स्मरण रखना कि,दहने हाथकी बायेंहाथसे और वामहाथकी दहने हाथसे नाडी देखे इसमें सरलता रहतीहै।

चतुर्थ-स्त्रीकी नाडी दहने हाथकी अपेक्षा वामहाथकी उत्तमरीतिसे विदित होतीहै इस्से प्रतीत होताहै कि, स्त्रियोंकी बाँए हाथकी नाडी कुछ बडी होतीहै। हिंदुस्थानी वैद्य जो स्त्रीके वामकरकी नाडी देखतेहैं कदाचित् उसका यही कारण न होय।

पांचवे-नाडीकी स्पन्दन संख्या अर्थात् शीघ्रगति और मंदगति जाननेके पश्चात् उसके बलाबल जाननेको कुछ दबाकर फिर ढीली छोडदेवे, जिससे यह प्रतीत होजावे कि, नाडी दबानेसे कितनी दबतीहै। परन्तु इतनी न दबावे कि जिस्से रुधिरका भ्रमण बन्दहोजावे, केवल इतनी दावे कि,जिस्से नाडीकी तडफ प्रतीत होती रहे।

छठे–धैर्यरहित पुरुषोंकी या अत्यंत डरपोककी नाडी देखेतो उनका ध्यान वार्त्तालापमें लगाय लेवे, इसका यह कारण है कि ऐसे मनुष्योंके तुच्छ-कारणसे हृदयकी खटक न्यून होजातीहै । अतएव नाडीका वृत्तान्त ठीक ठीक निश्चय नहीं होता ।

अब कहतेहै कि रुदन करनेसे और मचलनेसे बालकोंके पहुचेकी नाडी-का देखना कठिनहै । इसवास्ते उनको गोदीमें बैठाल खिलौने आदिका लोभ देके उनके छातीपर कान लगाकर हृदयकी धड़धडाटका निश्चय कर-ना । यदि नाडीकाही देखना जरूरी होवे तो निद्रा अवस्थामें देखनी चाहिये

सातमें–नाडी देखनेके समय यहभी अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि, नाडीपर किसी प्रकारका दवाब नहो जैसे बंध, अथवा तंगी, या रसौली वा घोटू आदिका सहारा नहोवे । क्षणिक और मानसिक रोगोंमें अनेकवार नाडी देखनी चाहिये कि, जिस्से रोग भलेप्रकार समझमें आयजावे ।

आरोग्यावस्थाकी नाडी ।

मध्यम श्रेणीके युवापुरुषोंकी नाडी आरोग्यावस्थामें साथ प्रबंधके कुछ दबनेवाली और कुछ भरीहुई होतीहै । परंतु चिह्न भेद और अवस्था तथा स्वभावादि भेदसे नाडीमें अंतर होजाताहै, और बालिकाओंकी नाडी पुरु-षोंकी अपेक्षा कुछ छोटी होतीहै । और शीघ्रचारिणी होतीहै । दंभी प्रकृति-वालोंकी नाडी भरीहुई, कठोर और शीघ्रगामिनी होतीहै । कोमल स्वभा-ववाले मनुष्योंकी नाडी धीरे धीरे चलेहै और नम्र होतीहै । वृद्धावस्थामें कठोर होतीहै ।

नाडीकी स्पन्दनसंख्या (जिनका निश्चय करना नाडीकी और अवस्था-ओंसे सुगमहै) सदैव हृत्पद्मके संकुचित खटकेके समान होतीहै । इस्से क-दापि अधिक नहीं होती, परंतु अपस्मारआदि चित्तके रोग और मूर्च्छा आदिमें एक दो गति न्यून हो जातीहै ।

छोटे बालककी नाडीके गति अधिक होतीहै, फिर जैसे जैसे अवस्थाकी वृद्धि होतीहै उसी प्रकार क्रमसे नाडीकी स्पन्दन संख्या न्यून होती जातीहै परंतु वृद्धावस्थामें फिर कुछ कुछ बढतीहै ।

अवस्थानुसारनाडीकीगति	
गतिप्रमाण	अवस्था
१४०	सद्यःप्रसूत बालककी
१२० सें १३० तक	दूधपीनेवाले बालककी
१००	५वर्षसे६वर्षतकके बालककी
९०	१५वर्षतकवाले नवयुवावस्थामें
७० से ७५	३५ वर्षतक अर्थात् युवावस्थामें
७०	३५वर्षसे लेकर५० वर्षवालोंकी अर्थात् वृद्धावस्थामें
७५ से ८० तक	अतिवृद्धावस्थामें

इस चक्रमें जो नाडीकी संख्या है वह आरोग्य पुरुषके लिये ठीकहै। परंतु रोगावस्थामें न्यूनाधिक होजातीहै। यदि नैरोग्य पुरुषकी नाडीकी गति १ मिन्टमें ७२ बार हो और स्त्रीकी ८२ बार होय तो ठीक जाननी, स्त्रीकी १० गति पुरुषसे सदैव अधिक होतीहै। और गर्मी, सूजन, ज्वर, अतिदुर्बलता जागना, प्लेथोराके प्रथमदर्जासेलार रुधिर, क्रोध, जोश आदिमें ७० या अस्सीसे १०० या १२० वरंच २०० तक नाडीकी गति संख्या प्रत्येक मिन्टमें हो जातीहै एवं शरदी आलस्य, निद्रा, कुछ थकावट, क्षुधामें, हवाके दबावमें, बेफिकरीमें, इत्यादि कारणोंसे नाडीकी गति ऐसी न्यून होजातीहै कि प्रत्येक मिन्टमें ६०, या ६५ तकही रह जाती है।

रोगावस्थाकी नाडी।

रोगावस्थामें नाडीकी गति संस्था और अन्य अन्य लक्षणोंमें विशेष अंतर होताहै जैसे आगे लिखतेहैं।

ज्वर, प्रदर वमन, विरेचन, बुहरान, इत्यादि रोगोंमें नाडी इतनी शीघ्र चलतीहै कि गणना करना कठिन होजाताहै यदि ज्वरावस्थामें अकस्मात् नाडी मंदपडजावे तथा उसके साथ अन्य अशुभ लक्षणोंकी आधिक्यता होवे तो उसप्राणीके मस्तकमें किसीप्रकारके विघ्नसें सक्ता या पक्षाघात होकर रोगीके मरनेका भय रहताहै।

गति संख्याके सिवाय नाडीमें जो वृत्तान्त निश्चय होताहै, उसको आगे कहतेहैं।

नाडीकीअँग्रेजसिंज्ञा।

आनन्दादितरावस्थास्वानंदापेक्षया गतेः।
वेगसंख्या वर्द्धते सा नाडीन्फ्रीक्वेंटशब्दिता॥ १॥

अर्थ-आनंदकी अपेक्षा जिस नाडीकी संख्या अधिक वेगवान् हो उसको अंग्रेजीमें Frrehquent फ्रीक्वंट कहतेहैं ।

आनन्दादितरावस्थास्वानन्दापेक्षया गतेः ।
वेगसंख्या ह्रसति सा नाडीन्फ्रीक्केंटशब्दिता ॥ २ ॥

अर्थ-जिस नाडीमें आनन्दकी अपेक्षा स्पन्दन संख्या न्यून होय उस मंदचारिणी नाडीको अँग्रेजीमें Infreequent इन्फ्रीकैंट कहतेहैं ।

चिरकालधृतायां च नाड्यां संख्या न वर्द्धते ॥
न वा ह्रसति वेगस्य सा च रेग्यूलराभिधा ॥ ३ ॥

अर्थ-जिस नाडीपर बहुतदेरीतक हाथधरनेपरभी कुछ न्यूनाधिक्य प्रतीत न होय उस नाडीको अँग्रेजीमें Regular रेग्यूलर कहतेहैं ।

चिरकालधृतायाश्च नाड्यां संख्या विवर्द्धते ॥
मन्दी भवति चावस्था सैरैंग्यूलरशब्दिता ॥ ४ ॥

अर्थ--जो नाडी बहुतदेरी हाथ रखनेसे कुछ न्यूनाधिक्य प्रतीतहोय उस अवस्थाको डॉक्टरलोग Irregular इरैंग्यूलर कहतेहैं ।

सकृदङ्गुलिसंस्पर्शादन्तर्धानन्तु गच्छति ।
इन्टर्मिटेंटाभिधा साऽसृक्कफाशयदूषिणी ॥ ५ ॥

अर्थ-जो नाडी एकवार उँगलियोंका स्पर्शकर छिपजावे, वह रुधिर और कफाशयकी दूषितकर्त्ता हृदयसंबंधी व्याधिको उत्पन्नकरे इसको इंग्लंडीयवैद्य Intermittent इन्टर्मिटेंट कहतेहैं ।

यदा रक्तेन पूर्णत्वमापन्ना नाडिका भवेत् ।
तदा फुल्शब्दविख्याताथवा लार्जेति विश्रुता ॥ ६ ॥

अर्थ-जिस समय नाडी रुधिरसे परिपूर्ण होतीहै उसको डॉक्टरलोग फुल् या Full Large लार्ज ऐसा कहतेहैं ।

यस्यां हृत्कमलोच्छ्वासाद्रक्तमल्पं वहेत्तु सा ।
रिक्तानाडी स्माल संज्ञा समाख्याताङ्गभाषया ॥ ७ ॥

अर्थ-जिस समय हृदयसे रुधिर अल्प प्रगटहोय उस रिक्तनाडीको पाश्चिमात्य वैद्य Egual स्माल ऐसा कहतेहैं ।

या वै गुणवदातन्वी नाडी क्षीणत्वशंसिनी।
रक्ताऽल्पतां द्योतयन्ती सा थ्रेडीपल्ससंज्ञिता ॥ ८ ॥

अर्थ-जो नाडी डोरेके माफिक बहुतबारीक प्रतीत होय वह क्षीणता और रक्तकी अल्पताको प्रकाश करने वालीको Thready Pulse थ्रेडीपल्स ऐसा कहतेहैं।

अङ्गुलीभिर्यदा नाडी पीडितापि न नम्रताम् ।
व्रजेत्तदातिरूक्षत्वद्योतिनीहार्डशब्दिता ॥ ९ ॥

अर्थ-जो नाडी उँगलियोंके पीडनसेभी अर्थात् दाबनेसेभी नम्र न होवे वो रूक्षताकी द्योतनकरता नाडीको डॉक्टरजन Hard हार्ड ऐसा कहतेहैं।

अङ्गुलीभिर्यदा नाडी पीडिता नम्रतां व्रजेत् ।
सार्द्रत्वद्योतिनी मृद्वी साफ्टशब्देन शब्दिता ॥ १० ॥

अर्थ--जो नाडी उँगलियोंके दबानेसे दबजावे उस मृदुनाडीको साफ्ट ऐसा कहतहैं यह आर्द्रत्वको द्योतन करतीहै।

प्रतिस्पन्दं शीघ्रतायां संख्या यस्या न वर्धते ।
सकृच्छैघ्र्यधरा तूर्णगा नाडी क्वीकशब्दिता ॥ ११ ॥

अर्थ-जिस नाडीमेंकी प्रत्येक तडफ शीघ्रभी होय परंतु स्पन्दन संख्या न बढे किंतु एकबारही जल्दीकरे उस तूर्णगामिनी नाडीको इंग्लैंडीय वैद्य Quick क्वीक् ऐसा कहतेहैं यह निर्बलताको द्योतन करतीहै ।

यस्या मन्दगतिर्या च नाडी पूर्णा भवेत्तु सा ।
स्लोशब्दशब्दिता ज्ञेया रक्तकोपप्रकाशिनी ॥ १२ ॥

अर्थ-जो नाडी मंदगतिहो और परिपूर्णहो वह रुधिरकोपके प्रकाश करनेवाली नाडीको इंग्लैंडीय वैद्य Slow स्लो कहते हैं।

खूनकी गतिके कारण नाडीके अनेक भेद हैं जैसे आर्योटा Poorta Water Harm वटिरहेमें Bounding बौंडिंग् Lavauering लेवोरग Thriling Pulse थ्रिलिंग् पल्स Reaboubled रिडबल Dicrratores या डाईक्रोटस और इसीटेटआदिहैं। जोलहरके समान-

उंगलियोंको लगकर हटजावे उसको जर्किंग् अर्थात् झटकेदार नाडी कहते हैं । किँवारोंकी रिगडके माफिक आयोंटा होती है । उछलनेवाली नाडीको बौंडिग् कहते हैं, जो नाडी काँपती हो उसको थ्रिलिंग्पल्स कहते हैं । इसी प्रकार अन्य सब नाडीयोंकी गतिको बुद्धिवान्नें डॉक्टरद्वारा और उनके ग्रंथों-से जाननी इसजगे ग्रंथविस्तारके भयसे नहीं लिखी ।

नाडीदर्शक यंत्र ।

नाडी देखनेके लिये अँग्रेजी डॉक्टरोंने एक यंत्र निर्माण करा है उसको अँग्रेजी बोलीमें स्फिग्मोग्राफ् Sphygmograph कहत हैं । इसमें अनेक टुकडे होते हैं विना दृष्टिगोचर हुए उनका समझना मुष्किल् है इसलिये उस यंत्रकी तसबीर जो इस नाडीदर्पणग्रंथके पिछाडी है उस्से समझना उसके आवश्यक विभागों कुछ इसजगे वर्णन करते हैं ।

अ–पटलीके चलाने और रोकनेकी खूटी ।

क–ताली लगानेकी कमानी ।

च–नाडीके कम अधिक दबाव करनेका गोलाकार चक्रविशेष ।

ट–कज्जलसे रंजित काग़ज़ धरनेकी जगह ।

त–चिह्नित होनेके पश्चात् जो काग़ज़ निकलता है ।

प–जिनसे काग़ज़पर चिह्न होते हैं वो सूई ।

इस यंत्रके लगानेकी यह विधि है कि जब हांतीदांतवाले स्थानको रेडियल्पर धरकर यंत्रको काममें लाते हैं तो नाडीकी तडफ कमानीको लगती है जिसके द्वारा सूईसे काग़ज़पर लहरदार रेखा प्रगट होती है कि, जिनसे हृदयके घडनेका हाल और रुधिरभ्रमणका वृत्तान्त उत्तमरीतिसे प्रतीत होता है । प्रत्येक लहरमें एक रेखा उठनेकी होती है फिर मुडनेकी और फिर उतरने की तथा उतरनेकी लहरमें दो लहर प्रगट होती है इन लहरोंकाभी चिह्न स्फिग्मोग्राफ यंत्रमें लिखाहै सो देखलेना ।

खडीरेखा हृदयके संकोच होनेसे होती है और मुरडनेका कोना नाडियों-के किसीप्रकार संकोचसे होताहै और जिससमय हृदयके संकोचसे रुधिर अयोर्टा में पहुँचताहै तो पहली रेखा प्रगट होती है फिर अयोर्टाके किंवाड बंदहोने से दूसरी लहर खांचितक बनतीहै अयोर्टाके मुकडनेके पीछे रुधिर आगेको

अथ डाक्टरीमतानुसार नाडीचक्रम्

नाडीयोंकी व्यवस्था	संस्कृतनाम	अँग्रेजीअक्षरोंमें नाडीके नाम	अँग्रेजी नाम	संख्या
हृदयके खटकाके संख्यानुसारनाडी दोप्रकारकीहै पहली फ्रीक्वेंट इसमें आरोग्यअवस्थाकी अपेक्षा गतिसंख्या अधिक होतीहै।	शीघ्रचारिणी	Friqune	फ्रीक्वेंट	१
दूसरी इन्फ्रीक्वेंट इसकी दशा फ्रीक्वेंटसे विपरीत होतीहै यह स्त्रियोंके वातगुल्म रोगमें होतीहै।	मंदगामिनी	infriquent	इन्फ्रीक्वेंट	२
हृदयकी गतिके प्रबंधानुसारभीनाडीकीदोअवस्था पाई जातीहै एक रेग्यूलर,नाडीन्में क्रमानुसार रुधिर जानेवाली नाडीको रेग्यूलर कहते हैं इसपर हाथ रखनेसे गति एकसी मालूमहो और कभी बीचमें अंतर नहीं पडता।	सावधानता सूचक	Re gulars	रेग्यूलर्स	३
दूसरी इर्रेग्यूलर अर्थात् नाडीन्में क्रमके विपरीत रुधिर जाय इसपर हाथ रखनेसे गति एकसी प्रतीत नहीं होती और बीचमें अंतर पडजाताहै रोगावस्थामें नाडीका सप्रबंधित अर्थात् क्रमपूर्वक चलना अच्छाहै।	असावधानता सूचक	Irregulars	इर्रेग्यूलर्स	४
जिस नाडीके तडफ होनेमें जितना काल जाताहै उससे अधिक होजाय अर्थात् दूसरी गतिकाभी काल व्यतीत होजावे उसको इंटरमिटेंट कहतेहैं परंतु गतिके भेदसे यह दो प्रकारकीहै एक रेग्यूलर इंटरमिटेंट और दूसरी इर्रेग्यूलर इंटरमिटेंट है।	सांतरिक	Idtermittent	इंटरमिटेंट	५
मस्तकके सूजनेमें अन्यकारणोंसे नाडीमें अधिक रुधिर पहुचे और उंगलियोंके नीचे नाडीका उत्प्लवन अधिक प्रतीतहो तो उसनाडीको फुल् या लार्ज कहतेहैं यह अधिक रुधिर वृद्धिमें अथवा कठोररोगोंमें प्रतीत होतीहै।	परिपूर्ण	Fullया Large	फुल् या लार्ज	६
जो नाडी फुल् लार्जके विपरीतहो अर्थात् नाडियोंमें अल्प रुधिर पहुँचे और नाडीका उत्प्लवन उंगलियोंको थोडा प्रतीतहो उसनाडीको स्माल अर्थात् बारीक नाडी कहतेहैं।	रिक्त	smal	स्माल	७
जब नाडी अत्यंत सूक्ष्मसूतके समान हो तो उसको अँग्रेजीमें थ्रेडीपल्स कहतेहैं यह रुधिरकी न्यूनावस्था अथवा दुर्बलतामें देखी जाती है।	सूक्ष्मतर	Thaeadvpnlse	थ्रेडीपल्स	८
नाडीकी दिवारकी लचकके तुल्य नाडीकी दोगति होतीहै एक हार्ड अर्थात् कठोर इसे किंचिन्मात्र भी दबानेसे उंगलियोंको कठोरता प्रतीत होती है यह नाडीकी अधिक लचकके कारण होतीहै।	कठिन	Hard	हार्ड	९
द्वितीय साफ्ट या नम्र जिसकी दशा हार्ड नाडीके विपरीत होतीहै यह नाडीके अनुरोध (नाडीकीदिवार) की लचकसे और देहके निर्बलतामें पाई जाती है	मृदु	Soft	साफ्ट	१०
नाडीकी गतिमें जो समय व्यतीत होताहै उसके अनुसार नाडी द्विविध होती है एक क्वीक् अर्थात् शीघ्रचारिणी नाडीकी प्रत्येक गति शीघ्र शीघ्रहो परंतु एक अथवा मानासिक रोगोंमें जिनमें स्वभाव दुष्टहो उनमें पाईजातीहै।	शीघ्रगामिनी	quiek	क्वीक्	११
जो क्वीक् नाडीके विपरीतहो अर्थात् सुस्तहो उसको स्लो नाडी कहतेहैं।	धीरगामिनी	Slow	स्लो	१२

बढजाता है और दूसरी लहर परिपूर्ण होकर एकवार हृदयके खटकेकी चिह्नितरेखा संपूर्ण होजातीहै।

इति नाडीदर्पणेऐंग्लैंडीयनाडीपरीक्षावर्णनं नाम पञ्चमावलोकः।

इति श्रीमाथुरकृष्णलालपुत्रदत्तरामेण सङ्कलिते आयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघण्टुरत्नाकरान्तर्गते नाडीदर्पणे ऐंग्लैंडीयनाडीपरीक्षावर्णनं नाम पञ्चमावलोकश्चाष्टत्रिंशस्तरङ्गः॥ ३८॥

समाप्तोऽयं नाडीदर्पणाख्यो ग्रंथः।

NADIDARPAN.

खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई-४